

ब्रह्माण्ड पुराण

(प्रथम खण्ड)

॥ कृत्य-समुद्देश्य ॥

नमोनमः क्षये सृष्टी स्थितौ सत्त्वमयाय वा ।

नमो रजस्तमः सत्त्वत्रिरूपाय स्वयंभूते ॥१॥

जितं भगवता तेन हरिणा लोकधारिणा ।

अजेन विश्वरूपेण निर्गुणेन गुणात्मना ॥२॥

ब्रह्माण्डं लोककक्तरिं सर्वज्ञमपराजितम् ।

प्रभुं भूतभविष्यस्य साम्प्रतस्य च सत्पतिम् ॥३॥

ज्ञानमप्रतिमं तस्य वैराग्यं च जगत्पतेः ।

ऐश्वर्यं चैव धर्मश्च सद्विभः सेव्यं चतुष्यम् ॥४॥

इमान्तरस्य वै भावान्तित्यं सदसदात्मकात् ।

अविनश्यः पुनस्तान्वै क्रियाभावार्थमीश्वरः ॥५॥

लोकब्रह्मलोकतस्त्वज्ञो योगमास्थाय योगवित् ।

असृजतसर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ॥६॥

तमहं विश्वकर्मणं सत्पति लोकसाक्षिणम् ।

पुराणाख्यानजिज्ञासुर्गच्छामि शरणं विमुम् ॥७॥

संसार के सृजन, उसके पालन अथवा उसके संहार काल में सत्त्व स्वरूप वाले के लिए द्वारम्बार नमस्कार है। रजोगुण-तमोगुण और सत्त्व-गुण के तीन स्वरूप वाले भगवान् स्वयम्भू के लिए नमस्कार है। १। जन्म न धारण करने वाले, विश्व के स्वरूप वाले, गुणों से रहित और गुणों के रूप वाले, विश्व के स्वरूप वाले, गुणों से रहित और गुणों के रूप वाले, लोकों के धारण करने वाले उन भगवान् हरिने जय प्राप्त किया है। २। समस्त



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

I creator of
hinduism
server!



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

I creator of
hinduism
server!

लोकों के रचने वाले, सबके ज्ञाता, पराजित न होने वाले, भूत-भविष्यत् और वर्तमान काल के प्रभु सत्पति ।३। अनुपम ज्ञान के स्वरूप और उन जगतों के स्वामी का ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य और धर्म ये चारों सत्पुरुषों के द्वारा सेवन करने के योग्य हैं ।४। नित्य ही भले और बुरे स्वरूप वाले मनुष्य के इन भावों की क्रिया के आव के लिए ईश्वर ने फिर रचना की थी ।५। लोकों की रचना करने वाले और लोकों के तत्वों के ज्ञाता, योग के जानने वाले भगवान् ने योग में समास्थित होकर समस्त स्थावर (अचर) और जङ्गम (चर) जीवों की रचना की थी ।६। पुराण के आख्यान की इच्छा वाले मैंने व्यापक सत्पति लोकों के साक्षी विश्वकर्मा उन प्रभु की शरण ग्रहण की है ।७।

पुराणं लोकतत्त्वार्थमखिलं वेदसंमितम् ।

प्रशशांस स भगवान् वसिष्ठाय प्रजापतिः ॥८

तत्त्वज्ञानामृतं पुण्यं वसिष्ठो भगवानृषिः ।

पौत्रमध्यापयामास शक्तेः पुत्रं पराशरम् ॥९

पराशरश्च भगवान् जातूकण्यमृषि पुरा ।

तमध्यापितवान्दिव्यं पुराणं वेदसंमितम् ॥१०

अधिगम्य पुराणं तु जातूकण्यो विशेषवित् ।

द्वैपायनाय प्रददौ परं ब्रह्म सनातनम् ॥११

द्वैपायनस्ततः प्रीतः शिष्येभ्यः प्रददौ वशी ।

लोकतत्त्वविधानार्थं पंचभ्यः परमाद्भुतम् ॥१२

विष्ण्यापनार्थं लाकेषु बहवर्थं श्रुतिसंमतम् ।

जैमिनि च सुमन्तुः च वैशंपायनमेव च ॥१३

चतुर्थं पैलवं तेषां पंचमं लोमहर्षणम् ।

सूतमद्भुतवृत्तान्तं विनीतं धार्मिकं शुचिम् ॥१४

लोकतत्त्व के अर्थ वाले, वेद के समान सम्पूर्ण पुराण की भगवान् प्रजापति ने वसिष्ठ मुनि के आगे प्रशंसा की थी अर्थात् उनको पढ़ाया था ।८। भगवान् वसिष्ठ ऋषि ने परम पुण्यमय अमृत के सहश इस तत्व ज्ञान को भाजि दे दिया अपने घोड़े कराण रक्षा कराना था ।९। प्राचीन काल में

भगवान् पराशर ने इस परम दिव्य और वेद के ही सहश पुराण को जातू-कर्ण्य कृषि को पढ़ाया था । १०। विशेष ज्ञान रखने वाले जातूकर्ण्य कृषि के इसका ज्ञान प्राप्त करके इस सनातन पर ब्रह्म को द्वैपायन के लिए प्रदान किया था । ११। परम संयमी द्वैपायन कृषि ने अत्यधिक प्रसन्न होकर अत्यन्त अद्भुत इस पुराण को लोक तत्व के विधान के लिए अपने पाँच शिष्यों को दिया था अर्थात् पढ़ाया था । १२। विपुल अर्थों से समन्वित श्रुति के समान इसके लोकों में विरुद्धापन के लिए पढ़ाया था जिनमें जैमिनि, सुमन्तु और वैणस्पायन थे । १३। चौथे पैलव और पाँचवें लोमहर्षण थे । सूत परम विनम्र, धार्मिक और पवित्र थे अतः उनको यह अद्भुत वृत्तान्त वाला पुराण पढ़ाया था । १४।

अधीत्य च पुराणं च विनीतो लोमहर्षणः ।

कृषिणा च त्वया पृष्ठः कृतप्रज्ञः सुधार्मिकः ॥ १५ ॥

वसिष्ठश्चापि मुनिभिः प्रणम्य शिरसा मुनीत् ।

भक्तयो परमया युक्तः कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ॥ १६ ॥

अवाप्तविद्यः सन्तुष्टः कुरुक्षेत्रमुपागमत् ।

सत्रे सवितते यत्र यजमानानृषीञ्शुचीन् ॥ १७ ॥

वियेनोहसंगसंम्य सत्त्विणो रोमहर्षणम् ।

विधानतो यथाशास्त्रं प्रज्ञयातिजगाम ह ॥ १८ ॥

कृषयश्चापि ते सर्वे तदानीं रोमहर्षणम् ।

हृष्टवा परमसंहृष्टाः प्रीताः सुमनसस्तथा ॥ १९ ॥

सत्कारैरच्युत्यामासुरच्युपाद्यादिभिस्ततः ।

अभिवाद्य मुनीन्सवीन् राजाज्ञामभिगम्य च ॥ २० ॥

कृषिभिस्तैरनुज्ञातः पृष्ठः सर्वमनामयम् ।

अभिगम्य मुनीन्सवीस्तेजो ब्रह्म सनातनम् ।

सदस्यानुमते रम्ये स्वास्तीर्णे समुपाविशत् ॥ २१ ॥

परम विनयी लोमहर्षण मुनि ने इस परम श्रेष्ठ पुराण का अध्ययन करके जब समाप्त किया था तो कृषि आपने उनसे पूछा था जो कि भली प्रकार से धर्म के समाचरण करने वाले और परम प्रज्ञावान् थे । ५१। अनेक

मुनियों के साथ संयुत होकर समस्त मुनियों को शिर झुकाकर प्रणाम किया था और परम भक्ति भाव से युक्त होकर प्रदक्षिणा की थी । १६। सम्पूर्ण विद्या को प्राप्त करके ये परम सन्तुष्ट हुए और फिर वे कुरुक्षेत्र में पहुँच गये थे । जहाँ पर एक विशाल यज्ञ होरहा था और पवित्र बहुत से यजमान तथा ऋषिगण विद्यमान थे । १७। सब याजिकों ने परम नन्दता से रोमहर्षण ऋषि से भेंट की थी । शास्त्रों के अनुसार विधि पूर्वक प्रज्ञा से अतिगमन किया था । १८। उस समय में उन समस्त ऋषियों ने भी रोमहर्षण मुनि का दर्शन प्राप्त कर अत्यन्त हर्ष प्राप्त किया था और सबके मन में विशेष प्रसन्नता हुई थी । १९। सब ऋषियों ने उनका विशेष समादर एवं सत्कार करके अध्यंपाद्य आदि के द्वारा उनका समर्चन किया था । राजा के द्वारा आज्ञा प्राप्त करके समस्त मुनिगणों को प्रणाम किया था । २०। कुण्ल-क्षेत्र पूछे जाने पर समस्त ऋषियों के द्वारा आज्ञा प्राप्त की थी । सनातन ब्रह्म के तेज स्वरूप उन सब ऋषियों के समीप जाकर सदस्यों के द्वारा अनुमत अपने आसन पर विराजमान हो गये थे । २१।

उपविष्टे तदा तस्मन्मुनयः शंसितव्रताः ।

मुदान्विता यथान्यायं विनयस्थाः समाहिताः ॥२२

सर्वे ते ऋषयश्चैनं परिवार्य महाब्रतम् ।

परमप्रीतिसंयुक्ता इत्यूचुः सूतनंदनम् ॥२३

स्वागतं ते महाभाग दिष्ट्या च त्वां निरामयम् ।

पश्याम धीमन्नत्रस्थाः सुव्रतं मुनिसत्तमम् ॥२४

अशून्या मे रसाद्यैव भवतः पुण्यकर्मणः ।

भवांस्तस्य मुनेः सूत व्यासस्यापि महात्मनः ॥२५

अनुग्राह्यः सदा धीमाङ् शिष्यः शिष्यगुणान्वितः ।

कृतबुद्धिश्च ते तत्त्वमनुग्राह्यतया प्रभो ॥२६

अवाप्य विपुलं ज्ञानं सर्वतश्छन्नसंशयः ।

पृच्छतां नः सदा प्राज् सर्वमाख्यातुमर्हसि ॥२७

तदिच्छामः कथां दिव्यां पौराणीं श्रुतिसंमिताम् ।

श्रोतुं धर्मर्थंयुक्तां तु एतद्व्यासाच्छ्रुतं त्वया ॥२८

एवमुक्तस्तदा सूतस्त्वृषिभिर्विनयान्वितः ।

उवाच परमप्राज्ञो विनीतोत्तरमुक्तमम् ॥२६

उस समय में उनके अपने आसन पर बैठ जाने पर समस्त मुनियों ने व्रत धारण किया था और परम प्रसन्न होकर विनीत भाव से सावधान होकर उचित स्थान पर वे सब स्थित हो गये थे । २२। उन समस्त ऋषियों ने महान व्रत धारण करके परम प्रीति से समन्वित होकर उन सूतनत्वन जी से पूछा था । २३। हे महान् भाग वाले ! हम सब आपका स्वागत करते हैं । हे धीमन् ! यहाँ पर स्थित हुए हम सब परम कुशल, सुन्दर व्रतधारी और मुनियों में परम श्रेष्ठ आपका हम दर्शन कर रहे हैं । २४। पुण्य कर्मों वाले आपके पदार्पण से आज ही यह भूमि हमारे लिए आनन्दमयी हुई है । हे सूतजी ! आप तो महान् आत्मा वाले उन श्रीव्यासजी के कृपा पात्र हैं । २५। व्यासदेव जी के आप अनुग्रह के योग्य शिष्य हैं और सदा शिष्य में होने वाले गुण-गणों से युक्त है तथा परम बुद्धिमान् हैं । हे प्रभो ! आप बुद्धि से युक्त हैं और गुरुदेव के अनुग्रह के पात्र होने से आपको सम्पूर्ण तत्त्व ज्ञान है । २६। आपने बहुत अधिक ज्ञान की प्राप्ति की है अतः आपके सभी प्रकार के संशय दूर हो गये हैं । हे प्राज्ञ ! हम लोग अब पूछ रहे हैं अतएव सभी कुछ हमारे सामने वर्णन करने के योग्य होते हैं । २७। हम लोग सब श्रुति सम्मित परमदिव्य पुराण सम्बन्धिनी कथा का श्रवण करना चाहते हैं । आपने इस इसका श्रवण व्यासदेव जी से किया है उसी धर्मयों से युक्त पौराणिक कथा को हम सुनना चाहते हैं । २८। उस समय में जब इस प्रकार के ऋषियों के द्वारा कहा गया तो विनय से संयुक्त और परम पण्डित सूतजी ने उत्तम विनीत उत्तर दिया था । २९।

ऋषेः शुश्रूषणं यच्च तस्मात्प्रज्ञा च या मम ।

यस्माच्छुश्रूषणार्थं च तत्सत्यमिति निश्चयः ॥३०

एवं गतेऽर्थे यच्छक्यं भया वक्तुं द्विजोत्तमाः ।

जिज्ञासा यत्र युष्माकं तदाज्ञातुमिहार्हंथ ॥३१

एतच्छ्रुत्वा तु मुनयो मधुरं तस्य भाषितम् ।

प्रत्यूचुस्ते पुनः सूतं वाष्पपर्याकुलेक्षणम् ॥३२

भवान् विशेषकुशलो व्यासं साक्षात् दृष्टवान् ।

तस्मात्त्वं संभवं कृत्स्नं लोकस्येमं विदर्शय ॥३३

यस्य यस्याऽन्वये ये ये तांस्तानिच्छाम वेदितुम् ।

तेषां पूर्वविसृष्टि च विचित्रां त्वं प्रजापते ।

सत्कृत्य परिपृष्ठः स महात्मा रोमहर्षणः ॥३४

विस्तरेणानुपूर्व्या च कथयामास सत्तमः । सूत उवाच ।

यो मे द्वैपायनप्रीतः कथां वै द्विजसत्तमाः ॥३५

पुण्यामाख्यातवान्विप्रास्तां वै वक्ष्याम्यनुकमात् ।

पुराणं संप्रवक्ष्यामि यदुक्तं मातरिश्वना ॥३६

ऋषि व्यासदेव से जो भी कुछ मैंने श्रवण किया है और उस श्रवण करने से जो ज्ञान मुझे प्राप्त हुआ है जिससे भली-भाँति श्रवण कराने के लिए वह ज्ञान पूर्णतया सत्य है—ऐसा मेरा निश्चय है । ३०। हे उत्तम द्विजगणो ! इस प्रकार से ज्ञान प्राप्त होने पर जो भी कुछ मेरे द्वारा कहा जा सकता है मैं कहूँगा । जिस विषय में आपकी जो भी जानने की इच्छा है । उसको आप आज्ञा देने के योग्य हैं । ३१। मुनिगणों ने उनके इस प्रकार के मधुर भाषण को सुनकर उन्होंने प्रेमाश्रुओं से भरी हुई अँखों वाले सूतजी से फिर कहा था । ३२। आप तो विशेष रूप से निपुण हैं और आपने साक्षात् रूप से श्री व्यासजी का दर्शन किया है । इस कारण से आप इस लोक की सम्पूर्ण उत्पत्ति को विशेष रूप से दिखलाने की कृपा कीजिए । ३३। जिसके वंश में जो-जो भी हुए हैं उन-उन सबको हम जानना चाहते हैं । और आप उनके पूर्व में होने वाली प्रजापति की विचित्र विशेष सृष्टि को भी बतलाइए—यह भी हम सब जानने की इच्छा करते हैं । सत्कार करके उन महात्मा सूतजी से जब पूछा गया था । ३४। तब उन परमश्रेष्ठ महापुरुष ने आनुपूर्वी से विस्तार के साथ कहा था । श्रीसूतजी ने कहा—हे द्विज-श्रेष्ठो ! परम प्रसन्न हुए द्वैपायन मुनि ने जो परम पुण्यमयी कथा मुझसे कही थी हे विप्रगणो ! उसको मैं अनुक्रम से कहूँगा । मातरिश्वा ने जो पुराण कहा है उसको मैं बतलाऊँगा । ३५-३६।

पृष्ठेन मुनिभिः पूर्वेन्मिषीयैर्महात्मभिः ।

संगंश्च प्रतिसंगंश्च वंशो मन्वंतराणि च ॥३७

वंश्यानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम् ।

प्रक्रिया प्रथमः पादः कथायां स्यात्प्रसिद्धः ॥३८

अनुषंग उत्पोद्धात उपसंहार एव च ।

एवं पादास्तु चत्वारः समासात्कीर्तिता मया ॥३६

वक्ष्यामि तान्पुरस्तात् विस्तरेण यथाक्रमम् ।

प्रथमं सर्वशास्त्राणां पुराणं ब्रह्मणा श्रुतम् ॥४०

अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिःसृताः ।

अज्ञानि धर्मशास्त्रं च व्रतानि नियमास्तथा ॥४१

अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम् ।

महदादिविशेषांतं सृजामीति विनिश्चयः ॥४२

नैमिषारण्य के निवासी महात्मा मुनियों ने पहिले पूछा था । पुराण का लक्षण ही यह है—सर्व अर्थात् सृष्टि और प्रतिसर्व अर्थात् उस सृष्टि से होने वाली सृष्टि, वंशों का वर्णन, मन्वन्तर अर्थात् मनुओं का कथन तात्पर्य कौन-कौन मनु किस-किस के पश्चात् हुए । ३७। वंशों में होने वालों का चरित—यह ही पाँचों बातों का होना पुराण का लक्षण है । इसमें भी चार पाद होते हैं—प्रक्रिया पहिला पाद है जो कथा में परिग्रह होता है । ३८। अनुषज्ज्ञ, उत्पोद्धात और उपसंहार इस प्रकार से संक्षेप से मैंने चार पाद बतला दिये हैं । ३९। अब पहिले उनको क्रम के अनुसार विस्तार के साथ बतलाऊँगा । सबसे प्रथम सभी शास्त्रों से पूर्व ब्रह्माजी ने पुराण का शब्दन किया था । ४०। इसके पश्चात् उनके मुख से वेद निकले थे और वेद के अज्ञ शास्त्र, धर्मशास्त्र व्रत तथा नियम आदि उनके मुख से निकले थे । ४१। जो अव्यक्त कारण है वह नित्य है और सत् तथा असत् स्वरूप वाला है । महत् आदि लेकर विशेष के अन्त तक का मैं सृजन करता हूँ—ऐसा विशेष निश्चय किया था । ४२।

अंडं हिरण्मयं चैव ब्रह्मणः सूतिरुत्तमा ।

अंडस्यावरणं वार्धिरपामपि च तेजसा ॥४३

वायुना तस्य वायोश्च खेन भूतादिना ततः ।

भूतादिर्महता चैव अव्यक्तेनावृतो महान् ॥४४

अन्तर्वर्ति च भूतानामंडमेवोपवर्णितम् ।

नदीनां पर्वतानां च प्रादुर्भवोऽत्र पठ्यते ॥४५

मन्वंतराणां सर्वेषां कल्पानां चैव वर्णनम् ।

कीर्त्तनं ब्रह्मवृक्षस्य ब्रह्मजन्म प्रकीर्त्यते ॥४६

अतः परं ब्रह्मणश्च प्रजासर्गोपवर्णनम् ।

अवस्थाश्चात्र कीर्त्यते ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥४७

कल्पानां संभवश्चैव जगतः स्थापनं तथा ।

शयनं च हरेरप्सु पृथिव्युद्धरणं तथा ॥४८

सविशेषः पुरादीनां वर्णश्रिमविभाजनम् ।

ऋक्षाणां ग्रहसंस्थानां सिद्धानां च निवेशनम् ॥४९

ब्रह्माजी की सर्वोत्तम प्रसूति हिरण्यमय अण्ड का आवरण सागर है, जलों का आवरण तेज के द्वारा हुआ । ४३। उस तेज का वायु से और वायु का आकाश से आवरण हुआ था फिर भूत आदि से हुआ था । भूत आदि का महत् से और महान् का अव्यक्त के द्वारा आवरण हुआ था । ४४। भूतों के अन्दर रहने वाला अण्ड ही उपवर्णित है । इसमें नदियों का और पर्वतों का प्रादुर्भव पढ़ा जाया करता है । ४५। समस्त मन्वन्तरों का और सब कल्पों का वर्णन है । इस ब्रह्म वृक्ष का कीर्तन ही ब्रह्म का जन्म कीर्तित किया जाया करता है । ४६। इसके आगे ब्रह्माजी की प्रजाओं का उपसर्ग का उप वर्णन है । अव्यक्त जन्म वाले ब्रह्माजी की इसमें अवस्था का कीर्तन किया जाता है । ४७। कल्पों की उत्पत्ति-जगत की स्थापना भगवान् हरि का जलों में शयन करना तथा पृथिवी के उद्धार का वर्णन है । ४८। पुर आदि का विशेषता के साथ वर्णन, चारों वर्णों और चारों आश्रमों का विभाजन, नक्षत्रों की स्थिति, ग्रहों का संस्थान और सिद्धों के निवास स्थलों का वर्णन है । ४९।

योजनानां यथा चैव संचरो बहुविस्तरः ।

स्वर्गस्थानविभागश्च मत्यनां शुभचारिणाम् ॥५०

वृक्षाक्षामोषधीनां च वीरुधां च प्रकीर्त्तनम् ।

देवतानामृषीणां च द्वे सृती परिकीर्तिते ॥५१

आम्रादीनां तरुणां च सर्जनं व्यजनं तथा ।

पशूनां पुरुषाणां च संभवः परिकीर्तितः ॥५२

तथा निर्वचनं प्रोक्तं कल्पस्य च परिश्रहः ।

नव सर्गां पुनः प्रोक्ता ब्रह्मणो बुद्धिपूर्वकाः ॥५३

त्रयो ये बुद्धिपूर्वास्तु तथा यल्लोककल्पनम् ।

ब्रह्मणोऽवयवेभ्यश्च धर्मादीनां समुद्भवः ॥५४

ये द्वादशं प्रसूर्यते प्रजाकल्पे पुनः पुनः ।

कल्पयोरंतरे प्रोक्तं प्रतिसंधिश्च यस्तयोः ॥५५

तमोमात्रा वृत्तत्वात् ब्रह्मणोऽधर्मसंभवः ।

सत्त्वेद्वित्ताच्च देहाच्च पुरुषस्य च सभवः ॥५६

बहुत विस्तार से योजनों के संचरण का वर्णन स्वर्ग स्थान और विभाग जो कि शुभ रामाचरण करने वाले मनुष्यों का है उसका वर्णन है ॥५०। फिर वृक्षों की, औषधियों की, लताओं की सृष्टि का कीर्तन किया गया है । देवगणों और ऋषियों की दो प्रकार की उत्पत्ति बतलायी गयी है ॥५१। आख आदि वृक्षों की सृष्टि तथा व्यञ्जन की सृजन और पुरुषों का एवं पशुओं का सृजन बताया गया है ॥५२। उसी प्रकार से निर्वचन कहा गया है और कल्प का परिवर्णन किया है । इस प्रकार से ब्रह्मा के बुद्धि के साथ नौ सर्ग कहे गये हैं ॥५३। जो ये तीन हैं वे बुद्धि से युक्त हैं और जो लोकों की कल्पना है ब्रह्मा के अवयवों से धर्म आदि को उत्पत्ति होती है ॥५४। प्रजा के कल्प में जो द्वादश प्रसूत हुआ करते हैं और बार-बार उत्पन्न होते हैं जो उन दोनों की प्राप्ति सन्ति है वह कल्पों के अन्तर में कही गयी है ॥५५। तमोगुण की मात्रा से समावृत होने से ब्रह्मा से अधर्म की उत्पत्ति हुआ करती है और सत्त्व के उद्गेक वाले देह से पुरुष की उत्पत्ति होती है ॥५६।

तथैव शतरूपायां तयोः पुत्रास्ततः परम् ।

प्रियन्रतोत्तानपादौ प्रसूत्याकृतयः शुभाः ॥५७

कीर्त्येते धूतपाप्मानस्त्रैलोक्ये ये प्रतिष्ठिताः ।

रुचेः प्रजापतेश्चोर्ध्वं माकूत्यां भिष्युनोदभवः ॥५८

प्रसूत्यामपि दक्षस्य कन्यानामुद्भवः शुभः ।

दक्षायणीषु वाप्यूर्ध्वं शब्दाद्यासु महात्मनः ॥५९

धर्मस्य कीर्त्यते सर्गः सात्त्विकस्तु सुखोदयः ।
 तथाऽधर्मस्य हिंसायां तामसोऽशुभलक्षणः ॥६०
 भृगवादीनामृषीणां च प्रजासर्गोपवर्णनम् ।
 ब्रह्मर्षेश्च वसिष्ठस्य यत्र गोत्रानुकीर्त्तनम् ॥६१
 अग्नेः प्रजायाः संभूतिः स्वाहायां यत्र कीर्त्यते ।
 पितृणां द्विप्रकाराशां स्वधायां तदनन्तरम् ॥६२
 पितृवंशप्रसंगेन कीर्त्यते च महेश्वरात् ।
 दक्षस्य शापः सत्याश्च भृगवादीनां च धीमताम् ॥६३

उसी प्रकार से ही शतरूपा में उन दोनों के पुत्र समुत्पन्न हुए थे । इसके आगे प्रियव्रत और उत्तानपाद हुए थे । प्रसूति की परम शुभ आकृतियाँ थीं । ५७। त्रिभुवन में जो प्रतिष्ठा से युक्त थे वे पापों से रहित थे—ऐसा ही कहा जाता है । प्रजापति से रुचि की और फिर आकूति में मिथुन से उत्पत्ति हुई थी । ५८। प्रजापति दक्ष की कन्याओं का प्रसूति में जन्म परम शुभ हुआ शब्दाद्य दाक्षायणीओं में भी महान् आत्मा वाले धर्म का उद्भव हुआ था । ५९। यह धर्म का जन्म परम सात्त्विक और सुख के उदय वाला सर्ग कहा जाता है । उसी भाँति हिंसा में अधर्म का उद्भव हुआ है जो तामस और अशुभ लक्षण वाला है । ६०। भृगु आदि ऋषियों की प्रजा के सर्ग का उपवर्णन है और जिसमें ब्रह्माण्ड वसिष्ठजी के गोत्र का अनुकीर्त्तन किया है । ६१। जिसमें स्वाहा नाम धारिणी स्वाहा पत्नी में अग्नि की सन्तति का वर्णन किया जाता है । इसके उपरान्त स्वधा नाम की पत्नी में दो प्रकार के पितृगणों का वर्णन किया जाता है । ६२। पितृगणों के वंश के प्रसरण से भगवान् महेश्वर से और सती से दक्ष प्रजापति के लिए शाप का वर्णन है और परम बुद्धिमान भृगु आदि ऋषियों को जो प्रतिशाप दिया गया है उसका वर्णन होता है । ६३।

प्रतिशापश्च दक्षस्य रुद्रादद्भुतकर्मणः ।

प्रतिषेधश्च वैरस्य कीर्त्यते दोषदर्शनात् ॥६४

मन्वन्तरप्रसंगेन कालार्घ्यानं च कीर्त्यते ।

प्रजापते कर्त्त्वमस्य कर्त्त्वायाः मुभलक्षणम् ॥६५

प्रियव्रतस्य पुत्राणां कीर्त्यंते यत्र विस्तरः ।

तेषां नियोगो द्वीपेषु देशेषु च पृथक् पृथक् ॥६६

स्वायंभुवस्य सर्गस्य ततश्चाप्यनुकीर्त्तनम् ।

वर्षणां च नदीनां च तदभेदानां च सर्वशः ॥६७

द्वीपभेदसहस्राणामन्तर्भविश्च सप्तसु ।

विस्तरान्मण्डलं चैव जंबूद्वीपसमुद्रयोः ॥६८

प्रमाणं योजनाग्रेण कीर्त्यंते पर्वतैः सह ।

हिमवान्हेमकूटश्च निषधो मेरुरेव च ।

नीलः श्वेतश्च शृङ्खी च कोर्त्यन्ते सप्त पर्वताः ॥६९

तेषामन्तरविष्कंभा उच्छ्रायायामविस्तराः ॥७०

अद्भुत कर्मो वाले भगवान् रुद्र से दक्ष के प्रतिशाप का कथन है और दोष के दर्शन से वैर के प्रतिषेध का कीर्त्तन किया जाता है ।६४। मन्वन्तर के प्रसङ्ग से काल का भी आल्यान कहा जाता है प्रजापति कर्वम की कल्या का शुभ लक्षण बताया जाता है ।६५। जहाँ पर प्रियव्रत राजा के पुत्रों का विस्तार कीर्त्तित किया जाता है और द्वीपों में तथा देशों में पृथक्-पृथक् उनके नियोग का वर्णन है ।६६। इसके अनन्तर स्वायंभुव मनु के सर्ग का वर्णन किया जाता है और सब वर्षों का नदियों का और समस्त उनके भेदों का अनुकीर्त्तन किया जाता है ।६७। फिर सहस्रों द्वीपों के भेदों का सात द्वीपों में ही अन्तर्भवि का वर्णन तथा जम्बू द्वीप और समुद्र के मण्डल का विस्तार से वर्णन किया जाता है ।६८। योजनों के अग्रभाग से पर्वतों के साथ प्रमाण का कीर्त्तन किया जाता है । इसके अनन्तर हिमवान्-हेमकूट-निषध-मेरु-नील श्वेत और शृङ्ख-इन सात पर्वतों का वर्णन किया जाता है ।६९। उनके अन्तर विष्कंभ, उच्छ्राय, आयाम और विस्तार का वर्णन किया जाता है ।७०।

कीर्त्यन्ते योजनाग्रेण ये च तथ निवासिनः ।

भारतादीनि वर्षणि नदीभिः पर्वतैस्तथा ॥७१

भूतैश्चोपनिविष्टानि गतिमदिभध्रुवैस्तथा ।

जम्बूद्वीपादयो द्वीपाः समुद्रैः सप्तभिर्वृताः ॥७२

ततः स्वर्णमयी भूमिलोकालोकश्च कीर्त्यते ।

सप्रमाणा इमे लोकाः सप्तद्वीपा च मेदिनी ॥७३

रूपादयः प्रकीर्त्यन्ते करणात्प्राकृतेः सह ।

सर्वे चैतप्रधानस्य परिणामैकदेशिकम् ॥७४

पर्यायिपरिमाणं च संक्षेपेणात्र कीर्त्यते ।

सूर्यचन्द्रमसोश्चैव पृथिव्याश्चाप्यशेषतः ॥७५

प्रमाणं योजनाग्रेण सांप्रतेरभिमानिभिः ।

महेन्द्राद्याः शुभाः पुण्या मानसोत्तरमूर्धनि ॥७६

अत ऊद्धर्वगतिश्चोत्ता सूर्यस्यालातचक्रवत् ।

नागवीथ्यक्षवीथ्योश्च लक्षणं च प्रकीर्त्यते ॥७७

योजनों की अग्रता से वहाँ पर उन पर्वतों में जो निवास किया करते हैं उनका भी वर्णन किया जाता है और भारत आदि वर्षों का नदियों के और पर्वतों के साथ वर्णन किया जाता है ॥७१। जो कि भूतों से और मतिमान् ध्रुवों के साथ वहाँ पर उपनिविष्ट हैं उनका कीर्त्तन किया जाता है । जम्बू द्वीप आदि द्वीप सात समुद्रों के द्वारा घिरे हुए हैं ॥७२। वहाँ पर स्वर्ण से परिपूर्ण है और वहाँ पर लोकालोक नाम वाला पर्वत है—यह बताया जाता है । ये सब लोक प्रमाणों से युक्त हैं और सप्तद्वीप तथा पृथिवी हैं—इनका भी प्रमाण बताया जाता है ॥७३। करण से प्राकृतों के साथ-साथ प्रादिक का कीर्त्तन किया जाता है । यह सभी कुछ प्रधान के परिमाण का एक देशिक है अर्थात् यह सब प्रकृति के परिणाम के कारण ही होता है ॥७४। इनका पर्याय-परिणाम यहाँ पर बहुत ही संक्षेप के साथ कीर्तित किया जाता है । सूर्य और चन्द्र का तथा पृथिवी का पूर्ण परिणाम बताया जाता है ॥७५। इस समय में होने वाले उनके अभिमानी अर्थात् स्वामियों का प्रमाण योजनों के हिसाब से कहा जाता है । मानस के उत्तर में ऊपर परम शुभ और पुण्यमय महेन्द्र आदि हैं—उनका वर्णन है । इसके ऊपर अलात (मशाल) के चक्र की भाँति सूर्य की गति बतायी गयी है । और नागवीथी तथा अक्षवीथी का लक्षण बताया जाता है ॥७६-७७।

कोष्ठयोर्लेखयोश्चैव मण्डलानां च योजनैः ।

लोकालोकस्य सन्द्याया अहनो विषुवतस्तथा ॥७८

लोकपालः स्थिताश्चोद्वं कीर्त्यन्ते ते चतुर्दिशम् ।

पितृणां देवतानां च पञ्चानां दक्षिणोत्तरी ॥७६

गृहिणां न्यासिनां चोक्तो रजः सत्त्वसमाश्रयः ।

कीर्त्यन्ते च पदं विष्णुर्धर्मद्या यत्र च स्थिताः ॥८०

सूर्यचन्द्रमसोश्चारो ग्रहाणां ज्योतिषां तथा ।

कीर्त्यन्ते धूतसामर्थ्यत्प्रजानां च शुभाऽशुभम् ॥८१

ब्रह्मणा निर्मितः सौरः सादनार्थं च स स्वयम् ।

कीर्त्यन्ते भगवान्येन प्रसर्पति दिवः क्षयम् ॥८२

स रथाऽधिष्ठितो देवेरादित्येक्ष्यषिभिस्तथा ।

गन्धवैरप्सरोभिष्च ग्रामणीसर्पराक्षसैः ॥८३

अपां सारमयात्स्यन्दात्कर्थ्यते च रसस्तथा ।

वृद्धिक्षयौ च सोमस्य कीर्त्येते सोमकारितौ ॥८४

मण्डलों के योजनों के हिसाब से कोष्ठों और लेखों का वर्णन है। लोकालोक की सम्भ्या का, दिन का तथा विषुवत् का वर्णन किया जाता है। ७८। ऊपर की ओर लोकपाल स्थित रहा करते हैं और उनका कीर्त्यन्त चारों दिशाओं में किया जाता है। पितृगणों और देवगणों के मार्गङ्गम से दक्षिण और उत्तर में बताये गये हैं। ७९। गृहस्थियों और संन्यासियों का मार्ग रजोगुण और सत्त्वगुण के समाश्रय बाला कहा गया है और भगवान् विष्णु का स्थान बताया गया है जहाँ पर धर्म आदि स्थित रहा करते हैं। ८०। सूर्य-चन्द्रमा, ज्योतिर्गण और ग्रहों का सञ्चरण कीर्तित किया जाता है जो कि सामर्थ्य के धारण करने से प्रजाजनों के लिए शुभ औद अशुभ हुआ करते हैं। तात्पर्य यह है कि कुछ शुभ ग्रहों की चाल मानवों को शुभ होती है और कुछ पाप ग्रहों के चाल बुरी हुआ करती है। ८१। ब्रह्माजी ने स्वयं ही सौर की रचना सदना करने के लिए की है—ऐसा कीर्तित किया जाता है। जिससे भगवान् भ्रुवन भास्कर दिन के अन्त में क्षय को प्राप्त होते हैं। ८२। वह भगवान् सूर्यदेव रथ पर अधिष्ठित हैं और वे देव-असुर-ऋषि-गण-गन्धवै-अप्सरा गण-ग्रामवासी-सूर्य और राक्षसों के द्वारा जली के सार को प्राप्त करता है और स्यन्द होने से वह रस कहा जाया करता है। चन्द्र द्वारा किये गये सोम के वृद्धि तथा क्षय कहे जाते हैं। ८३-८४।

सूर्यदीनां स्थन्दनानां ध्रुवादेव प्रवर्तनम् ।
 कीर्त्यते शिशुमारस्य यस्य पुच्छे ध्रुवः स्थितः ॥८५
 तारारूपाणि सर्वाणि नक्षत्राणि ग्रहैः सह ।
 निवासा यत्र कीर्त्यते देवानां पुण्यकर्मणाम् ॥८६
 सूर्यरश्मिसहस्रं च वर्षशीतोष्णविश्रवः ।
 प्रविभागश्च रश्मीनां नामतः कर्मतीर्थतः ॥८७
 परिमाणं गतिश्चोक्ता ग्रहाणां सूर्यसंश्रयात् ।
 वेश्यारूपात्प्रधानस्य परिमाणो महद्भवः ॥८८
 पुरुरवस ऐलस्य माहात्म्यस्यानुकीर्तनम् ।
 पितृणां द्विप्रकाराणां माहात्म्यं वामृतस्य च ॥८९
 ततः पर्वाणि कीर्त्यन्ते पर्वणां चैव संधयः ।
 स्वर्गलोकगतानाऽच्च प्राप्तानाऽच्चाप्यधोगतिम् ॥९०
 पितृणां द्विप्रकाराणां श्राद्धेनानुग्रहो महान् ।
 युगसंख्याप्रणाणं च कीर्त्यते च कृतं युगम् ॥९१
 त्रेतायुगे चापकषद्विात्तियाः संप्रवर्तनम् ।
 वर्णनामाश्रमाणां च संस्थितिर्धर्मंतस्तथा ॥९२

सूर्यादि स्थन्दनों ध्रुव से ही प्रवर्तन होता है जिस शिशुमार के पुच्छ में स्थित ध्रुव कीत्तित किया जाता है ।८५। ताराओं के रूप वाले समस्त नक्षत्र ग्रहों के साथ रहते हैं जहाँ पर पुण्य कर्मों वाले देवों के निवास बतलाये जाया करते हैं ।८६। सूर्य की सहस्र किरणें, वर्षा, शीत, गर्भों का विस्तवण और रश्मियों का विभाग नाम से और कर्म तीर्थ से हैं ।८७। भगवान् सूर्यदेव के संभ्रम से ग्रहों की गति और परिणाम कहे गये हैं । वेश्या रूप से प्रधान का परिमाण महद्भव है ।८८। पुरुरवा और ऐल के माहात्म्य का अनुकीर्तन है ।८९। इसके अनन्तर पर्वं तथा पर्वों की सन्धियाँ कही जाती हैं । जो प्राणी स्वर्गलोक में प्राप्त होते हैं और जो अधोगति अर्थात् नरक-गामी हैं उनका वर्णन है । दोनों प्रकार के पितृगणों का श्राद्ध करने से बड़ा भावी अनुग्रह होता है ताकि ग्रुणों तक विताने समर्थ न हो । आपु वृषभस्त्राणा

प्रमाण बताया गया है तथा कृतयुग (सत्ययुग) का वर्णन किया है । १०-६१। और त्रेतायुग में अपकर्ष से वार्ता की सम्प्रवृत्ति होती है । उसी भाँति धर्म से चारों वर्णों की और चारों आश्रमों की संस्थिति होती है । ६२।

वज्जप्रवर्त्तनं चैव संवादो यत्र कीर्त्यते ।

ऋषीणां वसुना सादृँ वसोश्चाधः पुनर्गतिः ।

शब्दत्वं च प्रधानात् स्वायम्भुवमृते मनुम् ॥६३

प्रशंसा तपसश्चोक्ता युगावस्थाश्च कृत्स्नशः ।

द्वापरस्य कलेश्चापि संक्षेपेण प्रकीर्त्तनम् ॥६४

मन्वन्तरं च संख्या च मानुषेण प्रकीर्तिता ।

मन्वन्तराणां सर्वेषामेतदेव च लक्षणम् ॥६५

अतीतानागतानां च वर्त्मानं च कीर्त्यते ।

तथा मन्वन्तराणां च प्रतिसंधानलक्षणम् ॥६६

अतीतानागतानां च प्रोक्तं स्वायम्भुवे ततः ।

ऋषीणां च गतिः प्रोक्ता कालज्ञानगतिस्तथा ॥६७

दुर्गसंख्याप्रमाणं च युगवार्तप्रिवर्तनम् ।

त्रेतायां चक्रवर्तीनां लक्षणं जन्म चैव हि ॥६८

और वज्ज का प्रवर्तन है जहाँ पर सम्बाद कीर्तित किया जाता है ।

ऋषियों का वसु के साथ फिर वसु की अधोगति कही गयी है । और शब्दत्व स्वायम्भुव मनु के बिना प्रधान से है । ६३। और तपश्चर्या की प्रशंसा कही गयी है तथा पूर्णतया युगों की अवस्था बतायी है । द्वापर और कलियुग का संक्षेप से कीर्तन किया गया है । ६४। मन्वन्तर और संख्या मानुष से कीर्तित की गयी है । समस्त मन्वन्तरों का यही लक्षण है । ६५। जो भूत काल में हो चुके हैं और जो भविष्य में होने वाले हैं तथा वर्त्मान काल का कीर्तन किया जाता है । उसी भाँति मन्वन्तरों के प्रति सन्धान का लक्षण है । ६६। बीते हुए और आगतों के स्वायम्भुव के कहने पर फिर ऋषियों की गति कही गयी है तथा काल के ज्ञान की गति बतायी गयी है । दुर्गों की संख्या और प्रमाण तथा युग वार्ता का प्रवर्तन है । त्रेतायुग में जो चक्रवर्ती राजा हुए थे उनका लक्षण और जन्म कहा गया है । ६७-६८।

प्रमते श्च तथा जन्म अथो कलियुगस्य वै ।

अंगुलै ह्रासिनं चैव भूतानां यच्च चोच्यते ॥६६

शाखानां परिसंख्यानं शिष्यप्राधान्यमेव च ।

वाक्यं सप्तविधं चैव ऋषिगोत्रानुकीर्तनम् ॥१००

लक्षणं सूतपुत्राणां ब्राह्मणस्य च कृत्स्नशः ।

वेदानां व्यसनं चैव वेदव्यासैर्महात्मभिः ॥१०१

मन्वन्तरेषु देवानां प्रजेणानां च कीर्तनम् ।

मन्वन्तरक्रमशब्दो व कालज्ञानं च कीर्त्यते ॥१०२

दक्षस्य चापि दौहित्राः प्रियाया दुहितुः शुभाः ।

ब्रह्मादिभिस्ते जनिता दक्षेणैव च धीमता ॥१०३

सावणशिचाव कीर्त्यन्ते मनवो मेरुमाश्रिताः ।

ध्रुवस्यौत्तानपादस्य प्रजासर्गोपवर्णनम् ॥१०४

चाक्षुषस्य मनु सर्गः प्रजानां वीर्यवर्णनम् ।

प्रभुणा चैव वैन्येन भूमिदोहप्रवत्तता ॥१०५

प्रमति के जन्म का कीर्तन और इसके अनन्तर कलियुग के जन्म का वर्णन है। जो व्यतीत हो चुके हैं उनका अँगुली से ह्रास का होना कहा जाता है। ६६। शाखाओं की परिसंख्यों और शिष्यों की प्रधानता कही गयी है। सात प्रकार के वाक्य और ऋषियों के गोत्र का कथन है। १००। सूतपुत्रों का लक्षण और ब्राह्मण का पूर्ण लक्षण है। महान् आत्मा वाले वेदव्यासों के द्वारा वैदों का व्यसन बताया गया है। १०१। मन्वन्तरों में क्षेत्रों का और प्रजापतियों का कीर्तन किया गया है। मन्वन्तर का क्रम और काल के ज्ञान का वर्णन किया है। १०२। दक्ष-प्रजापति की प्यारी वेटी के परम शुभ देहिन (धेवते) वर्णित किये गये हैं। धीमात् दक्ष के ही द्वारा ब्रह्मादि से वे उत्पन्न किये थे। १०३। यहाँ पर मेरु गिरि पर आश्रय लेने वाले सावर्ण मनुओं का कीर्तन किया जाता है। उत्तानपाद राजा के पुत्र ध्रुव की प्रजाओं के उपसर्ग का वर्णन है। चाक्षुष मनु के सर्ग का कथन है और प्रजाओं के वीर्य—पराक्रम का कथन है। प्रभु वैन्य के द्वारा जो भूमि के दोहन करने के लिए प्रवृत्ति हुई थी उसका वर्णन है। १०४-१०५।

पात्राणां पयसां चौव वत्सानां च विशेषणम् ।

ब्रह्मादिभिः पूर्वमेव दुग्धा चेयं वसुन्धरा ॥ १०६

दशभ्यश्च प्रचेतोभ्यो मारिषायां प्रजापतेः ।

दक्षस्य कीर्त्यंते जन्म समस्याशेन धीमतः ॥ १०७

भूतभव्यभवेशत्वं महेन्द्राणां च कीर्त्यंते ।

मन्वादिका भविष्यति आख्यानैवहुंभिवृत्ताः ॥ १०८

वैवस्वतस्य च मनोः कीर्त्यंते सर्गविस्तरः ।

ब्रह्मादिकोश उत्पत्तिभृंगवादीनां च कीर्त्यंते ॥ १०९

विनिष्कृष्य प्रजासर्गे चाक्षुषस्य मनोः शुभे ।

दक्षस्य कीर्त्यंते सर्गे ध्यानाद्वैवस्वतांतरे ॥ ११०

नारदः कृतसंवादो दक्षपुत्रान्महाबलान् ।

नाशयामास शापाय मानसो ब्राह्मणः सुतः ॥ १११

ततो दक्षोऽसृजत्कन्यां वैरिणा नाम विश्रुताः ।

मरुत्प्रवाहे मरुतो दित्यां देव्यां च संभवः ॥ ११२

पात्रों का, दुध्रों का और वत्सों का विशेषण बताया गया है। पूर्व में ही ब्रह्मा आदि के द्वारा इस वसुन्धरा का दोहन किया गया था । १०६। दक्ष प्रचेताओं से मारिषा में अंश से समान धीमात् दक्ष के जन्म का कीर्त्तन किया जाता है । १०७। महेन्द्रों के भूतभव्य और शवेशत्व का कीर्त्तन किया जाता है । वहूत से आख्यानों से युक्त मन्वादिक होंगे । १०८। वैवस्वत मनु के सर्ग का विस्तार कहा जाता है और ब्रह्मादि कोश और भृगु आदि की उत्पत्ति का वर्णन किया जाता है । १०९। विनिष्कृष्टकर्णक करके चाक्षुप मनु के शुभ प्रजा के सर्ग में वैवस्वत के अन्तर में ध्यान से दक्ष के सर्ग का वर्णन किया जाता है । ११०। ब्रह्माजी के मानस अर्थात् मन से सनुत्पन्न पुत्र श्री नारद जो ने सम्बाद करके महान् बलवान् दक्ष के पुत्रों को शाप के लिए विनाश युक्त कर दिया था । १११। इसके अनन्तर प्रजापति दक्ष ने कन्याओं को समुत्पन्न किया था जो कि वैरी के द्वारा नाम विश्रुत हुए थे। मरुत् के प्रवाह में मरुत देवी दिति में समुत्पन्न हुआ था । ११२।

कीर्त्यन्ते मरुतां चात्र गणास्तो सप्त सप्तकाः ।

देवत्वमिद्रवासेन वायुस्कन्धेषु चाश्रमः ॥११३

दैत्यानां दानवानां च यक्षगंधर्वं रक्षसाम् ।

सर्वभूतपिशाचानां यक्षाणां पक्षिवीरुद्धाम् ॥११४

उत्पत्ततश्चाप्सरसां कीर्त्यते बहुविस्तरात् ।

मार्तडमण्डलं कृत्स्नं जन्मैरावतहस्तिनः ॥११५

वैनतोयसमुत्पत्तिस्तथा राज्याभिषेचनम् ।

भृगूणां विस्तरश्चोक्तस्तथा चांगिरसामपि ॥११६

कश्यपस्व पुलस्त्यस्य तथैवात्रेमहात्मनः ।

पराशरस्य च मुनेः प्रजानां यत्र विस्तरः ॥११७

तिथः कन्याः सुकीर्त्यन्ते यासु लोकाः प्रतिष्ठिताः ।

इच्छाया विस्तरश्चोक्त आदित्यस्य ततः परम् ॥११८

किकुविच्चरितं प्रोक्तं ध्रुवस्यैव निवर्हणम् ।

वृहद्वलानां संक्षेपादिक्षवाक्वाद्याः प्रकीर्तितः ॥११९

इसमें मरुतों के गणों के सात सप्तक अथवा उनचास कीत्ति किये जाते हैं। इनको इन्द्र के बास होने से देवत्व है तथा वायु के स्कन्धों में आश्रम है ॥११३। दैत्यों की—दानवों की और यक्ष—गन्धर्व तथा राक्षसों की—सब भूत और पिशाचों की—यक्षों की—पक्षियों की और वीरुद्धों की उत्पत्तियाँ हुई थीं ॥११४। इन सबकी उत्पत्तियों का और अप्सराओं की उत्पत्ति का बहुत विस्तृत कीर्त्यन्त किया जाता है। सम्पूर्ण मार्तण्ड मण्डल का और ऐरावत हस्ती का जन्म बताया गया है ॥११५। वैनतेग की उत्पत्ति और राज्य पर अभिषेक का वर्णन है। भृगुओं का और अङ्गिराओं का विस्तार कहा गया है ॥११६। जहाँ पर कश्यप—पुलस्त्य और महात्मा अन्ति का तथा पराशर मुनि की प्रजाओं का विस्तार बताया गया है ॥११७। तीन कन्याएँ बतायी जाती हैं जिनमें सबलोक प्रतिष्ठित हैं। इच्छा का विस्तार कहा गया है और इसके बाद आदित्य का विस्तृत वर्णन है ॥११८। किकुवित का चरित कहा गया है। ध्रुव का निवर्हण है। वृहद्वलों का वर्णन है और संक्षेप से इक्ष्वाकु आदि कहे गये हैं ॥११९।

निश्यादीनां क्षितीशानां पलांद्वुहरणादिभिः ।

कीर्त्यन्ते विस्तरात्सर्वोऽग्न्युतोत्ति भूपतेऽद्वैशस ॥

यदुवंशसमुद्देशो हैह्यस्य च विस्तरः ।

क्रोधादनन्तरं चोक्तस्तथा वंशस्य विस्तरः ॥१२१

ज्यामघस्य च माहात्म्यं प्रजासर्गश्च कीर्त्यते ।

देवावृधस्यांधकस्य धूषेश्चापि महात्मनः ॥१२२

अनिमित्रान्वययश्चैव विशोर्मिथ्याभिशंसनम् ।

विशोधमनुसंप्राप्तिर्मणिरत्नस्य धीमतः ॥१२३

सत्राजितः प्रजासर्गे राजर्षेऽवमीढुषः ।

शूरस्य जन्म चाप्युक्तं चरितं च महात्मनः ॥१२४

कंसस्यापि च दौरात्म्यमेकीवंश्यात्समुद्भवः ।

वासुदेवस्य देवक्यां विष्णोर्मिततोजसः ॥१२५

अनन्तरमृषेः सर्गप्रजासर्गोपवर्णनम् ।

देवासुरे समुत्पन्ने विष्णुना स्त्रीवधे कृते ॥१२६

संरक्षता शक्वधं शापः प्राप्तः पुरा भृगोः ।

भृगुश्चोत्थापयामास दिव्यां शुक्रस्य मातरम् ॥१२७

निष्यादिक नृपों का पलाण्डु हरण आदि के द्वारा भूपति यथाति का भी सर्ग विस्तार पूर्वक कहा गया है । १२०। राजा यदु के वंश का समुद्देश और हैह्य का विस्तार बताया गया है । क्रोध के अनन्तर वंश का विस्तार कहा गया है । १२१। ज्यामघ का माहात्म्य और उसकी प्रजाओं की उत्पत्ति कीत्ति की जाती है । देवा वृध—अन्धक और महान आत्मा वाले धूषि का वर्णन किया जाता है । १२२। अनिमित्र का वंश-वर्णन, तथा विशु का मिथ्या अभिशंसन और धीमान् मणिरत्न का विरोध तथा अनुसम्प्राप्ति बतायी गयी है । १२३। राजर्षि देवमीढु के प्रजा के सर्ग में सत्राजित् और शूर का भी जन्म कहा है तथा इस महात्मा का चरित भी बताया गया है । १२४। राजा कंस की दुरात्मता और एकीवंशल से समुत्पत्ति बतायी गयी है । वसुदेव का जन्म और देवकी के गर्भ से अपरिमित तेज वाले भगवान् विष्णु का आविभवि हुआ था । १२५। इसके पश्चात् ऋषि का सर्ग है और प्रजाओं के सर्ग का उपवर्णन है । देवासुर के समुत्पन्न होने पर विष्णु भगवान् के द्वारा स्त्री का वध किये जाने पर । १२६। इन्द्र के वध का संरक्षण करने वाले ने पहुँचे

भृगु का शाप प्राप्त किया था और भृगु ने शुक्र की दिव्य माला को उठाया था । १२७।

देवानां च ऋषीणां च संक्रमा द्वादशाहताः ।

नार्सिंहप्रभृतयः कीर्त्यन्ते पापनाशनाः ॥ १२८

शुक्रेणाराधनं स्थाणोर्धोरेण तपसा तथा ।

वरप्रदानकृत्तेन यत्र शर्वस्जवः कृतः ॥ १२९

अनन्तरं च निर्दिष्टं देवासुरविचेष्टितम् ।

जयन्त्या सह शक्रेण यत्र शुक्रो महात्मति ॥ १३०

असुरान्मोहयामास शक्ररूपेण बुद्धिमान् ।

बृहस्पति तं शुक्रं शशाप स महाद्युतिः ॥ १३१

उक्तं च विष्णोर्महात्म्यं विष्णोर्जन्मनि शब्द्यते ।

तुर्वसुश्चात्र दौहित्रो यवीयान्यो यदोरभूत् ॥ १३२

अनुद्रुह्यादयः सर्वे तथा तत्तनया नृपाः ।

अनुवंश्या महात्मानस्तेषां पार्थिवसत्तमाः ॥ १३३

देवों के और ऋषियों के संक्रम से द्वादश आहृत हुए थे । नार्सिंह प्रभूति पापों के नाश करने वाले कीर्त्तित किये गये हैं । १२८। अत्यन्त घोर तप के द्वारा शुक्र देव ने भगवान् शिव की आराधना की थी । फिर उसने वर के प्रदान करने वाले भगवान् शिव की स्तुति की थी । १२९। इसके उपरान्त देवों और असुरों की विशेष चेष्टा का निर्देश किया गया है जहाँ पर महात्मा में शुक्र ने जयन्ती के साथ इन्द्र ने किया था । १३०। बुद्धिमान् ने इन्द्र के रूप से असुरों को मोहित कर दिया था । और महती द्युति वाले बृहस्पति ने शुक्राचार्य को शाप दे दिया था । १३१। भगवान् विष्णु के जन्म में विष्णु का माहात्म्य कहा जाता है । वहाँ पर तुर्वसु दौहित्र या जो यदु का सब से छोटा हुआ था । १३२। अनुद्रुह्य आदि सब नृप उसके पुत्र हुए थे । उसके महात्मा श्रेष्ठ नृप उनके पीछे वंश में होने वाले हुए थे । १३३।

कीर्त्यन्ते यत्र कात्स्न्येन भूरिद्रविणतेजसः ।

आतिथ्यस्य तु विप्रबः सप्तधा धर्मसंश्रयात् ॥ १३४

बाह्यस्पत्यं सूरभिश्च यत्र शापमुपावृतम् ।

हरवंशयणः स्पर्शः शंतनोर्वीर्यशब्दनम् ॥ १३५

भविष्यतां तथा राजामुपसंहारशब्दनम् ।

अनागतानां संघानां प्रभूणां चोपवर्णनम् ॥ १३६

भौत्यस्यांते कलियुगे क्षीणे संहारवर्णनम् ।

नेमित्तिकाः प्राकृतिका यथैवात्यंतिकाः स्मृताः ॥ १३७

विविधः सर्वभूतानां कीर्त्यर्थे प्रतिसंचरः ।

अनादृष्टभस्करस्य धोरः संवर्त्तकानलः ॥ १३८

सांख्ये लक्षणमुद्दिष्टं ततो ब्रह्म विशेषतः ।

भुवादीनां च लोकानां सप्तानां चोपवर्णनम् ॥ १३९

अपाराद्वपि रश्वे व लक्षणं परिकीर्त्यते ।

ब्रह्मणो योजनाभ्रेण परिमाणविनिर्णयः ॥ १४०

कीर्त्यन्ते चात्र निरयाः पापानां रौरवादयः ।

सर्वेषां चैव सत्त्वानां परिणामविनिर्णयः ॥ १४१

जहाँ पर पूर्णरूप से अधिक द्रव्य और तेज वाले विप्रषि के धर्म के संश्रय से आतिथ्य का कीर्त्तन किया जाता है । १३४। जहाँ पर सूरियों ने वृहस्पति के शाप को प्राप्त किया था । हर वंश के यश का स्पर्श है और राजा शन्तनु के वीर्य पराक्रम का कथन है । १३५। आगे भविष्य में होने वाले राजाओं के उपसंहार का कथन है । जो अनागत संघ है और प्रभु हैं उनका उपवर्णन है । १३६। भौत्य के अन्त में कलियुग के क्षोण हो जाने पर संहार का वर्णन है । जो भी किसी निमित्त के कारण होने वाले थे, प्राकृतिक थे और जो आत्यन्तिक कहे गये हैं । १३७। समस्त प्राणियों का अनेक प्रकार का प्रति सञ्चरण था उसका कीर्त्तन किया जाता है । भगवान् भास्कर का हष्टि में न आने वाला परम धोर संवर्त्तक अनल था । १३८। सांख्य में लक्षण उद्दिष्ट है इसके बाद विशेष रूप से ब्रह्म का वर्णन है । ध्रुव आदि सात लोकों का उप वर्णन है । १३९। अपराद्वपरों के द्वारा लक्षण का परिकीर्त्तन किया जाता है । योजनाभ्र से ब्रह्म के परिमाण का विशेष निर्णय किया गया है । १४०। रौरव आदि नरकों का तथा सभी प्राणियों के पापों का निर्णय का वर्णन किया गया है । ४१।

ब्रह्मणः प्रतिसंसर्गात्सर्वसंसारवर्णनम् ।

गतिस्थृत्वमधश्चोक्ता धर्माधर्मसमाश्रया ॥ १४२ ॥

कल्पे कल्पे च भूतानां महतामपि संक्षयम् ।

असंख्यया च दुःखानि ब्रह्मणश्चाप्यनित्या ॥ १४३ ॥

दौरात्म्यं चैव भोगानां संहारस्य च कष्टता ।

दुर्लभत्वं च मोक्षस्य नैराग्यादोषदर्शनात् ॥ १४४ ॥

व्यक्ताव्यक्तं परित्यज्य सत्त्वं ब्रह्मणि संस्थितम् ।

नानात्वदर्शनाच्छुद्धस्तवस्तव निवर्त्तते ॥ १४५ ॥

ततस्तापत्रयाद् भीतो रूपार्थो हि निरंजनः ।

आनन्दं ब्रह्मणः प्राप्य न विभेति कुश्चन् ॥ १४६ ॥

कीर्त्यन्ते च पुनः सर्गो ब्रह्मणोऽन्यस्य पूर्ववत् ।

कीर्त्यन्ते जगतश्चात्र सर्गप्रलयविक्रियाः ॥ १४७ ॥

ब्रह्मा के प्रति संसर्ग से सब संसार का वर्णन होता है । धर्म और अधर्म के समाश्रय वाली ऊर्ध्वंगति और अधोगति कही गयी है । १४२। कल्प कल्प में महात् भूतों का भी संक्षय होता है और असंख्य दुःख होते हैं तथा ब्रह्मा की भी नित्यता नहीं है अर्थात् ब्रह्मा का भी विनाश होता है । १४३। भोगों की दुरात्मता है अर्थात् भोगी का बुरा प्रभाव होता है और संहार के समय में बड़ा कष्ट होता है । दोषों के देखने से जो वैराग्य उत्पन्न होता है वह बहुत कठिन है और मोक्ष होना महान् दुर्लभ है । १४४। व्यक्त और अव्यक्त का पूर्ण सत्त्व ब्रह्म में संस्थित हो जाता है । नाना रूपता के दर्शन से वहाँ पर शुद्ध स्तव निवृत्त हो जाया करता है । १४५। इसके अनन्तर तीनों (आधिभौतिक-आधिदैविक आध्यात्मिक) तापों से भयभीत होता हुआ रूपार्थ निरञ्जन ब्रह्म के आनन्द को प्राप्त करके फिर कही से भी नहीं डरता है । १४६। फिर पूर्व की ही भाँति अन्य ब्रह्मा के सर्ग का कीर्त्तन किया जाता है । इसमें जगत की सृष्टि-प्रलय और विक्रिया का कीर्त्तन किया जाता है । १४७।

प्रवृत्तयश्च भूतानां प्रसूतानां फलानि च ।

प्रादुभवो वसिष्ठस्य शक्तोर्जन्म तथैव च ।

सौदासास्थग्रहश्चास्य विश्वामित्रकृतोन् तु ॥१४६

पराशरस्य चोत्पत्तिरहश्यत्यां तथा विभोः ।

संज्ञे पितृकन्यायां व्यासश्चापि महामुनिः ॥१५०

शुकस्य च तथा जन्म सह पुत्रस्य धीमतः ।

पराशरस्य प्रद्वेषो विश्वामित्रकृषि प्रति ॥१५१

वसिष्ठसंभृतिश्चीग्नेविश्वामित्रजिधांसया ।

देवोन विधिना विप्र विश्वामित्रहितैषिणा ॥१५२

संतानहेतोविभुना गीर्णस्कंधेन धीमता ।

एकं गोदं चतुष्पादं चतुर्द्वा पुनरीश्वरः ॥१५३

तथा विभेद भगवान् व्यासः शावद्दिनुग्रहात् ।

तस्य शिष्यप्रशिष्यश्च शाखा वेदायुताः कृताः ॥१५४

भूतगणों की प्रवृत्तियां और प्रसूत भूतों के फल कहे जाते हैं ।

ऋषियों के समुदाय के पापों का नाश कर देने वाला सर्व कहा जाता है ।

१४८। वसिष्ठ मुनि का प्रादुभव और शक्ति का जन्म उसी प्रकार से बतलाया गया है । विश्वामित्र के द्वारा किया हुआ इस सौदान की अस्थियों का

ग्रहण कहा गया है । १४९। अहश्यन्ती में विभु पराशर की उत्पत्ति कहा गयी है । अपने पिता की कन्या के उदर से महामुनि व्यासदेव ने जन्म ग्रहण

किया था । १५०। धीमान् सह पुत्र शुकदेव मुनि का जन्म कहा गया है ।

पराशर ऋषि का विश्वामित्र मुनि को प्रति प्रकृष्ट विद्वेष होता है । १५१।

विश्वामित्र मुनि की हिंसा की इच्छा से अग्नि की वसिष्ठ सभृति का कथन है । विप्र विश्वामित्र के हित की इच्छा वाले देव विधाता ने ऐसा किया था । १५२। विभु बुद्धिमान् गीर्ण स्कन्ध ने सन्तान के हेतु से एक वेद के चार

पाद किये थे और फिर ईश्वर ने चार प्रकार से किया था । १५३। भगवान् शिव के अनुग्रह से भगवान् व्यासदेव ने उसी भाँति भेद किया था । उस वेद के शिष्यों और प्रविष्टों ने वेद को अयुत शाखायें की थी । १५४।

प्रयोगे प्रह्वला नैव यथा इष्टः स्वयंभुवा ।

पृष्ठवन्तो विशिष्टास्ते मुनयो धर्मकांक्षिणः ॥१५५

देशं पुण्यमभीप्सतो विभुना तद्वितैषिणा ।

सुनाभं दिव्यरूपाभं सप्तांगं शुभशंसनम् ॥ १५६

आनौपम्यमिदं चक्रं वत्तंमानमतंद्रिता ।

पृष्ठतो यात निष्टास्ततः प्राप्स्यथ पाटितम् ॥ १५७

गच्छतस्तस्य चक्रस्य यत्र नेमिविशीर्यते ।

पुण्यः स देशो मंतव्यः प्रत्युवाच तदा प्रभुः ॥ १५८

उक्त्वा चैवमृषीन्सवनिदृश्यत्वमुपागमत् ।

गंगा गर्भं यवाहारा नेमिषेयास्तथैव च ॥ १५९

ईशिरे चैव सत्रेथ मुनयो नेमिषे तदा ॥ १६०

मृते शरद्विति तथा तस्य चोत्थापनं कृतम् ।

ऋषयो नेमिषेयाश्च दयया परया युताः ॥ १६१

प्रयोग में प्रह्लादा नहीं है जैसा कि स्वयम्भू ने देखा है। धर्म की आकांक्षा रखने वाले उन विशिष्ट मुनियों ने पूछा था । १५५। जो कि पुण्य देश की इच्छा रखने वाले थे और विभु उनके हित की इच्छा रखने वाले थे। सुनाभ-दिव्यरूप और आभा से युक्त-सात अङ्गों वाला और शुभ को बताने वाला था । १५६। यह उपमा से रहित वत्तंमान चक्र था। पीछे से अतन्द्रित होकर नियत वे गमन करें फिर पाटित को प्राप्त हो जायेंगे । १५७। गमन करते हुए उस चक्र की जहाँ पर ही नेमि विशीर्ण हो जाती है—उस समय में प्रभु ने यही उत्तर दिया था कि उसी देश को पुण्यमत मानना चाहिए । १५८। इस रीति से उन सब ऋषियों से कहकर वे अदृश्य हो गये थे। गङ्गा के गर्भ में वे नेमिषेय यवों का आहार करने वाले रहे थे । १५९। उस समय में नेमिष में मुनियों ने सब के द्वारा उपासना की थी । १६०। यश्वीन् के समाप्त हो जाने पर उसका उत्पादन किया था। वे नेमिषेय ऋषिगत परमाधिक दया से समन्वित थे । १६१।

निःसीमां गामिमां कृत्वा कृष्णं राजानमाहरत् ।

प्रीतिं चैव कृतातिथ्यं राजानं विधिवत्तदा ॥ १६२

अंतः सर्गगतः कूरः स्वभन्तुरसुरो हरत् ।

द्रुते राजनि राजानु मद्रते मुनयस्ततः ॥ १६३

गंधर्वरक्षितं हृष्ट् वा कलापग्रामकेतनम् ।

सन्निपातः पुनस्तस्य तथा यज्ञे महर्षिभिः ॥ १६४

हृष्ट् वा हिरण्यमयं सर्वं विवादस्तस्य तैरभूत् ।

तदा वै नैमिषोयानां सत्रे द्वादशवार्षिके ॥ १६५

तथा विवदमानेश्च यदुः संस्थापितश्च तैः ।

जनयित्वा त्वरण्यं वै यदुपुत्रमथायुतम् ॥ १६६

समापयित्वा तत्सत्रं वायुं ते पयुः पासत ।

इति कृत्यसमुद्देशः पुराणांशोपवर्णितः ॥ १६७

अनेनानुक्रमेणैव पुराणं संप्रकाशते ।

सुखमर्थः सदासेन महानप्युपलक्ष्यते ॥ १६८

इस भूमि को सीमा से रहित करके उन्होंने राजा कृष्ण का आहरण किया था । उस समय में उन्होंने विधि के साथ प्रीति को प्रदर्शित किया था और उनका भली-भौति आतिथ्य भी किया था ॥ १६२ । अन्दर से कूर और सब जगह जाने वाले स्वर्भानु असुर ने हरण किया था । राजा के शीघ्र जाने पर मुनि राजा के ही पोछे मद्रित हो गये थे ॥ १६३ । कलाप ग्राम केतन को गन्धर्वों के द्वारा सुरक्षित देखकर फिर उसका सन्निपात दुआ था । उसी प्रकार से यज्ञ में महर्षियों ने देखा था ॥ १६४ । वहाँ पर सभी कुछ सुवर्णमय उन्होंने देखा था और उनका उसके साथ विवाद हुआ था । उस अवसर पर नैमिषेयों का वह सत्र (यज्ञ) बारह वर्ष का था उस यज्ञ में ॥ १६५ । उस भौति परस्पर में विवाह करने वाले उन्होंने यदु को संस्थापित किया था । इसके अन्तर अमृत यदु के पुत्रों वाले उस अरण्य को बचा दिया था ॥ १६६ । उस यज्ञ की परिसमाप्ति करके उन्होंने वासुदेव की उपासना की थी । यह कृत्यों का समुद्देश है जो पुराण के इस अंश में उपवर्णित किया गया है ॥ १६७ । इसी अनुक्रम से यह पुराण संप्रकाशित होता है समाप्त से सुख अर्थ होता है और इससे महान् भी उपलक्षित होता है ॥ १६८ ।

तस्मात्समाप्तमुद्दिश्य वक्ष्यामि तव विस्तरम् ।

पादमाद्यमिदं सम्यग् योऽवीते विजितेद्वियः ॥ १६९

तेनाधीतं पुराणं स्यात्सर्वं नास्त्यत्र सशयः ।

यो विद्याच्चतुरो वेदान् सांगोपनिषदान् द्विजाः ॥ १७०

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपवृं हयेत् ।
 विभेत्यल्पश्रुताद्वे दो मामयं प्रहरिष्यति ॥ १७१
 अभ्यसग्निममध्यायं साक्षात्प्रोक्तं स्वयंभुवा ।
 नापदं प्राप्य मुहूर्येत् यथेष्टां प्राप्नुयादगतिम् ॥ १७२
 यस्मात्पुरा ह्यभूच्छौतत्पुराणं तेन तत्स्मृतम् ।
 निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १७३
 अतश्च संक्षेपमिमं शृणुष्व नारायणः सर्वमिदं पुराणम् ।
 संसर्गकालेऽपि करोति सर्गं संहारकाले च न
 वास्ति भूयः ॥ १७४

इस कारण से समाप्ति का उद्देश्य करके आपको विस्तार से कहूँगा । जो अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर लेने वाला पुरुष इस आद्य पाद का भली-भाँति से अध्ययन किया करता है । १६६। उसने इस सम्पूर्ण पुराण का ही मानों अध्ययन कर लिया है—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है । द्विज-गणों ! अङ्गों और उपनिषदों के सहित जिसने चारों वेदों का ज्ञान प्राप्त कर लिया है । १७०। इतिहास पुराणों से वेद को समुपवृंहित करना चाहिए । जो बहुत ही कम पढ़ा लिखा पुरुष है उससे वेद भी भय खाता है कि यह मेरे ऊपर प्रहार करेगा । १७१। साक्षात् स्वयम्भू ने स्वयं कहा है कि इस अध्याय के अध्याप्ति करने वाला पुरुष आपदा को प्राप्त करके भी कभी मोह को प्राप्त नहीं हुआ करता है और अपनी अभीष्ट गति को प्राप्त कर लिया करता है । १७२। कारण यह है कि यह पुराण प्राचीन काल में हुआ था और उनने यह कहा था कि जो इसके निरुक्त जानता है वह सब प्रकार के पापों से प्रमुक्त हो जाया करता है । १७३। इसलिए इसके संक्षेप का शब्दण करो । यह सम्पूर्ण पुराण साक्षात् भगवान् नारायण का ही स्वरूप है । संसर्ग काल में भी संग करता है और संहार के काल में फिर नहीं होता है । १७४।

नैमित्याख्यान वर्णनम्

प्रत्यवोचन्पुनः सूतमृषयस्ते तपोधनाः ।

कुरु तत्रं समाप्तत्वे गामते गुरुकर्मणाम् ॥ १८

कियन्तं चैव तत्कालं कथं च समवर्त्तत ।
 आचचक्षे पुराणं च कथं तत्सप्रभंजनः ॥२
 आचक्षयो विस्तरेणैव परं कौतूहलं हि नः ।
 इति संचोदितः सूतः प्रत्युवाच शुभं वचः ॥३
 शृणुध्वं यत्र ते धीरा मेनिरे सञ्च्रमुत्तमम् ।
 यावन्तं चाभवत्कालं यथा च समवर्तत ॥४
 सिसृक्षमाणो विश्वं हि यजते विसृजत्पुरा ।
 सत्रं हि तेऽतिपुण्यं च सहस्रपरिवत्सरान् ॥५
 तपोगृहपतेर्यत्र ब्रह्मा चैवाभवत्स्वयम् ।
 इडाया यत्र पत्नीत्वं शामित्रं यत्र बुद्धिमान् ॥६
 मृत्युश्चके महातेजास्तस्मिन्सत्रे महात्मनाम् ।
 विबुधाश्चोषिरे तत्र सहस्रपरिवत्सरान् ॥७

तपश्चयों के धन बाले उन कृषियों ने श्रीसूतजी से फिर कहा था कि उन अद्भुत कर्मों के करने वालों का वह यज्ञ कहाँ पर हुआ था ।१। वह समय जिसमें यज्ञ का यजन हुआ था कितना था और वह किस प्रकार से सम्पन्न हुआ था ? । वायुदेव ने पुराण की किस रीति से कहा था ? ।२। उन्होंने बहुत विस्तार के साथ इस पुराण का कथन किया था—इसमें हम सबके हृदय में बड़ा भारी कौतूहल हो रहा है । इस प्रकार से जब प्रेरित किया गया था तो श्री सूतजी ने परम शुभ वचन से उत्तर दिया था ।३। हे मुनियो ! आप लोग श्रवण कीजिए । जहाँ पर उन धीरों ने उस उत्तम सत्र को किया था । और जितने समय पर्यन्त वह वहाँ पर हुआ था और जिस रीति से हुआ था ।४। इस विशाल विश्व का सृजन करने की इच्छा बाला यजन करता है तब पहिले विसृजन करता है । यह सत्र अत्यधिक पृण्य मय है जो कि एक सहस्र परिवत्सरों तक हुआ था ।५। जहाँ पर गृहृपति का ज्ञात्या तप स्वयं ही हुआ था और जिसमें पत्नीत्व इडा का था और जहाँ बुद्धिमान् शामित्र था ।६। उन महात् आत्माओं वालों के यज्ञ में महातेज बाले मृत्यु ने सब किया था । सहस्र परिवत्सरों तक वहाँ पर देवगणों ने निवास किया था ।७।

भ्रमतो धर्मचक्रस्य यत्र नैमित्यशीर्यत ।

कर्मणा तेन विष्यातं नैमिष मुनिपजितम् ॥८
 यत्र सा गोमती पुण्या सिद्धचारणसेविता ।
 रोहिणी ससुता तत्र गोमती साभवत् क्षणात् ॥९
 शक्तिज्येष्ठा समभवद्विसिष्टस्य महात्मनः ।
 अरुन्धत्याः सुतायात्रादानमुत्तमतेजसः ॥१०
 कल्माषपादो नृपतिर्यन्त्र शक्तिश्च शक्तिना ।
 यत्र वैरं समभवद्विश्वामित्रवसिष्ठयोः ॥११
 अदृश्यत्यां समभवन्मुनिर्यन्त्र पराशरः ।
 पराभवो वसिष्ठस्य यस्य जाने ह्यवर्त्तयत् ॥१२
 तत्र ते मेनिरे शैलं नैमिषे ब्रह्मवादिनः ।
 नैमिषं जज्ञिरे यस्मान्नैमिषीयास्ततः स्मृताः ॥१३
 तत्सत्रमभवत्तेषां समा द्वादश धीमताम् ।
 पुरुरवसि विक्राते प्रशासति वसुन्धराम् ॥१४

भ्रमण करते हुए धर्म चक्र की नैमि जहाँ पर गीण हो गयी थी । उस कर्म से मुनियों के द्वारा समचित नैमिष विष्यात हुआ था ।८। जहाँ परम पुण्यमयी गोमती नदी है जो कि सिद्धों और चारणों के द्वारा सदा सेवित रहा करती है । वहाँ पर ससुता रोहिणी एक ही क्षणमात्र में वह गोमती हो गयी थी ।९। महात्मा वसिष्ठ की शक्ति ज्येष्ठा हुई थी जो उत्तम तेज वाली अरुन्धती की सुता का यात्रा दान था ।१०। कल्माषपाद नृह और शक्ति के सहित इन्द्रदेव ये जहाँ पर विश्वामित्र और वसिष्ठ मुनि का वैर हुआ था ।११। जिस स्थल पर अदृश्यत्ती में पराशर मुनि ने जन्म ग्रहण किया था । जिसके ज्ञान में वसिष्ठ मुनि का पराभव हुआ था ।१२। वहाँ पर उन ब्रह्मवादियों ने उस शैल को नैमिष माना था । क्योंकि वहाँ पर नैमिष यज्ञ किया था अतएव तभी से वे सब नैमिष कहे गये थे ।१३। वह सत्र उन बुद्धिमानों का द्वादश वर्षों तक हुआ था जबकि विक्रमी पुरुरवा नृप इस वसुन्धरा पर शासन कर रहा था ।१४।

अष्टादश सयुद्रस्य द्वीपानश्नन् पुरुरवाः ।

तुतोष नैव रत्नानां लोभादिति हि नः श्रुतम् ॥१५॥

उर्बशी चकमे तं च देवदूतप्रचोदिता ।

आजहार च तत्सत्रमुर्वश्या सह संगतः ॥१६

तस्मिन्नरपतौ सत्रे नैमिषीयाः प्रचक्रिरे ।

यं गर्भं सुषुवे गङ्गा पावकादीप्ततेजसम् ॥१७

तत्तुल्यं पर्वते न्यस्तं हिरण्यं समपद्यत ।

हिरण्मयं ततश्चके यज्ञवाटं महात्मनाम् ॥१८

विश्वकर्मा स्वयं देवो भावनो लोकभावनः ।

स प्रविश्य ततः सत्रे तोषामसिततेजसाम् ॥१९

ऐडः पुरुरवा भेजे तं देशं मृगयां चरन् ।

तं दृष्ट्वा महदाश्चर्यं यज्ञवाटं हिरण्मयम् ॥२०

लोभेन हतविज्ञानस्तदादातुमुपाक्रमत् ।

नैमिषोयास्ततस्तस्य चुक्रुधुर्नृपति भृणम् ॥२१

अद्भारह समुद्र के द्वीपों का अशन करते हुए भी पुरुरवा लोभ से रत्नों से सन्तुष्ट न हुआ था—ऐसा हमने सुना है । १५। देवदूतों के द्वारा प्रेरित हुई उर्बशी ने उसको अपना पति बनाने की कामना की थी । उर्बशी के साथ संगत होकर उसने उस सत्र का आहरण किया था । १६। उस नर पति के होने पर नैमिषीयों ने सत्र किया था । गंगा ने पावक से दीप्त तेज बाले जिस गर्भ का प्रसव किया था । १७। उसके तुल्य पर्वत में व्यस्त किया हुआ हिरण्य (सुवर्ण) हो गया था । इसके अनन्तर उन महात्म्याओं को हिरण्मय कर दिया था । १८। लोकों को प्रसन्न करने वाले परम आवुक विश्वकर्मा स्वयं देव था । उन अपरिमित तेज वालों के सत्र में फिर उस विश्वकर्मा ने प्रवेश किया था । ऐड पुरुरवा ने शिकार करते हुए उस देश का सेवन किया था । उसने जब देखा था कि वह यज्ञ का स्थल एकदम सुवर्णमय है तो उसको महान् आश्चर्य हुआ था । १९-२०। लोभ के कारण उस राजा का सब ज्ञान नष्ट हो गया था और उसने उसको स्वयं ग्रहण करने का उपक्रम किया था । तब तो जी नैमिषीय मुनिगण वहाँ पर थे वे उस राजा पर बहुत कुछ हुए थे । २१।

निजधनुश्चापि सं क्रुद्धाः कुणवज्ज्ञर्भनीषिणः ।

तपोनिष्ठाश्च राजानं मुनयो देवचोदिताः ॥२२

कुशबज्ज्विनिष्पष्टः स राजा व्यजहात्तनुम् ।
 और्वेशोयैस्ततस्तस्य युद्धं चक्रे नुपो भुवि ॥२३
 नहुषस्य महात्मानं पितरं यं प्रचक्षते ।
 स तेष्ववभृथेष्वेव धर्मशीलो महीपतिः ॥२४
 आयुरायभवायाग्र यमस्मिन् सत्रे नरोत्तमः ।
 शान्तयित्वा तु राजानं तदा ब्रह्मविदस्तथा ॥२५
 सत्रमारेभिरे कर्तुं पृथ्वीवत्सात्ममूर्तयः ।
 बभूव सत्रे तोषां तु ब्रह्मचर्य महात्मनाम् ॥२६
 विश्वं सिसृक्षमाणानां पुरा विश्वसृजामिव ।
 वैखानसैः प्रियसखैवलिखिल्यर्मरीचिभिः ॥२७
 अजैश्च मुनिभिजतिं सूर्यवैश्वानरप्रभः ।
 पितृदेवाप्सरः सिद्धगंधर्वोरगचारणः ॥२८

उन मनीषियों ने बहुत क्रोधित होते हुए कुश के वज्रों से उसका हनन किया था क्योंकि वे मुनिगण तपश्चर्या में निष्ठा रखने वाले और दैव के द्वारा प्रेरित थे ।२२। कुशाओं के वज्रों से पिसकर उस राजा ने अपना शरीर त्याग दिया था । उसके अनन्तर भूमि में उसके उवंशी के पुत्रों के साथ तृप ने युद्ध किया था ।२३। नहुष के जिसको महात्मा पिता कहते हैं । उन अव-भृथों में ही वह महीपति बहुत ही धर्मशील था ।२४। इस सत्र में वह नर-शेष आयुराय और जन्म से बहुत श्वेष्ठ था । उस समय में ब्रह्म वेत्ताओं ने राजा को शान्त किया था ।२५। आत्म मूर्ति वाले उन्होंने पृथ्वी के समान सत्र करने का आरम्भ कर दिया था उनके सत्र में उन महात्माओं का ब्रह्म-चर्य हुआ था ।२६। विश्व के सृजन करने की इच्छा वाले का प्राचीनकाल में विश्व के लष्टाओं की भाँति वैखानस-प्रियसखा-बालखिल्य-मरीचियों-अज और मुनिगण-पितृगण-देव-अप्सरा-सिद्ध-गन्धर्व-उरग और चारण के साथ वह सूर्य तथा वैश्वानर के समान प्रभा वाला हुआ था ।२७-२८।

भारतौः शुशुभे राजा देवौरिन्द्रसमो यथा ।

स्तोत्रशस्त्रैगृहैदेवान्पितृन्पिश्यघ कर्मभिः ॥२९

शान्तर्क्षस्त्रायान्ति संभविति गथाचिति ।

आराधने स स्मार ततः कमन्तिरेषु च ॥३०

जगुः सामानि गन्धवीं ननु श्चाप्सरोगणः ।

व्याजहुमुं नयो वाचं चित्राक्षरपदां शुभाम् ॥३१

मन्त्रादि तत्र विद्वांसो जजपुश्च परस्परम् ।

वित्तंडावचनैश्चौव निजघ्नुः प्रतिवादिनः ॥३२

ऋषयश्चौव विद्वांसः शब्दार्थन्यायकोविदाः ।

न तत्र हारितं किञ्चिद्विविशुब्रं ह्यराक्षसाः ॥३३

नैव यज्ञहरा देत्या नैव वाजमुखास्त्रिणः ।

प्रायश्चित्तं दरिद्रं च न तत्र समजायत । ३४

शक्तिप्रजाक्रियायोगैविधिराशीष्वनुष्ठितः ।

एवं च ववृथे सत्रं द्वादशाब्दं मनीषिणाम् ॥३५

भारतीयों के द्वारा राजा देवगणों से इन्द्र के समान शोभायुक्त हुआ था । शस्त्रों-स्तोत्रों और गृहों से देवगणों का तथा पित्र्य कमों से पितृगणों का और गन्धवं आदि का जाति के अनुसार विधिपूर्वक किया करते थे । उसने आराधना में और फिर अन्य कमों में स्मरण किया था । २६-३०। गन्धर्वगण सामवेद के मन्त्रों का गान कर रहे थे परम शुभ और विचित्र अश्ररों और पदों से युक्त वाणी का उच्चारण कर रहे थे जो परम शुभ थी । ३१। वहाँ पर विद्वान् लोग परस्पर में मन्त्रों का जप करते थे । प्रतिवादी गण वित्तंडावाद के वचनों के द्वारा निहनन कर रहे थे । ३२। ऋषिगण और शब्दार्थ तथा न्याय के जाता वहाँ पर थे । वहाँ पर कुछ भी हारित नहीं था और ब्रह्मराक्षसों ने प्रवेश किया था । ३३। देत्यगण यज्ञ के हरण करने वाले नहीं थे और वाजमुख अस्त्र आदि थे । प्रायश्चित्त और दरिद्रता वहाँ पर नहीं थे । ३४। शक्ति-प्रजा और क्रिया के योगों से आशिषों में विधि अनुष्ठित की गयी थी । इस रीति से वह यज्ञ मनीषिणों का बारह वर्षं पर्यन्त वृद्धि पुक्त हुआ था । ३५।

ऋषीणां नैमित्यीयाणां तदभूदिव वज्रिणः ।

वृद्धाद्या ऋत्विजो वीरा ज्योतिष्टोमान् पृथक्पृथक् ॥३६

चक्रिरे पृष्ठगमनाः सर्वनियुतदक्षिणान् ।

समाप्तयज्ञो यत्रास्ते वासुदेवं महाधिपम् ॥३७

पत्रच्छुरमितात्मानं भवदिभर्यदहं द्विजः ।

प्रचोदितः स्ववंशार्थं स च तानब्रवीत्प्रभुः ॥३८

शिष्यः स्वयंभुवो देवः सर्वं प्रत्यक्षटग्वशी ।

अणिमादिभिरष्टाभिः सूक्ष्मेरंगीः समन्वितः ॥३९

तिर्यग्वातादिभिर्वर्षेः सर्वाल्लोकान्विभति यः ।

सप्तस्कन्धा भूताः शाखाः सर्वतोयाजराजराज् ॥४०

विषयैर्मरुतो यस्य संस्थिताः सप्तसप्तकाः ।

व्यूहत्रयाणां सूतानां कुर्वन् सत्रं महाबलः ॥४१

तेजसश्चाप्युयानां दधातीह शरीरिणः ।

प्राणाद्या वृत्तयः पञ्च धारणानां स्ववृत्तिभिः ॥४२

ऋषियों का जो कि नैमित्तिय थे वह सत्र इन्द्र के समान हुआ था । वृद्धाच्य-ऋतिवज और बीर पीछे की ओर गमन करने वाले होते हुए ज्योतिष्ठोमों को पृथक् २ सबको अयुत दक्षिणा वाले कर रहे थे । जहाँ पर यज्ञ समाप्त हुआ था वहाँ पर महान् आधिप भगवान् वासुदेव से जो कि अमित भात्मा वाले थे पूछा था कि आपने मुझ ब्राह्मण को ब्रेरित किया था कि अपने वंश के लिए यह करो । और उन प्रभु ने उनसे कहा था । ३६-३८। यिष्य वशी देव स्वयंभुव है जो प्रत्यक्ष रूप से देखने वाला है और अणिमा आदि आठों सूक्ष्म अङ्गों से समन्वित रहते हैं । ३९। जोकि तिर्यग्वात आदि वर्षों से समस्त लोकों का भरण किया करते हैं । सात स्कन्धशाखाओं से भूत थे और विषयों से सर्वं तो या जराजर युक्त थे जिसके मरुत् सप्त सप्तक संस्थित महाबल सूत तीनों व्यूहों का सत्र कर रहा था । ४०-४१। उपायों के शरीर धारी तेज का यहां पर धारण करता है । धारणाओं की प्राणाद्य पांच वृत्तियां अपनी वृत्तियों से युक्त थी । ४२।

पूर्णमाणः शरीराणां धारणं यस्य कुर्वते ।

आकाशयोनिर्द्विगुणः शब्दस्पर्शसमन्वितः ॥४३

वाचोरणिः समाख्याता शब्दशास्त्रविचक्षणः ।

भारत्या श्लक्षण्या सर्वन्मुनीन्प्रह्लादयन्विव ॥४४

पुराणजाः सुमनसः पुराणाश्रययुक्तया ।

पुराणनियता विप्राः कथामकथद्विभुः ॥४५

एतत्सर्वं यथावृत्तमाख्यानं द्विजसत्तमाः ।

ऋषीणां च परं चौतल्लोकतत्त्वमनुत्तमम् ॥४६

ब्रह्मणा यत्पुरा प्रोक्तं पुराणं ज्ञानमुत्तमम् ।

देवतानामृषीणां च सर्वपापप्रमोचनम् ॥४७

विस्तरेणानुपूर्व्या च तस्य वक्ष्याम्यनुक्रमम् ॥४८

जिसका शरीरों का धारण को पूर्वमाण होता हुआ करता है । आकाश जिसकी योनि है वह द्विगुण है और शब्द तथा स्पर्श समन्वित । ४३। शब्द शास्त्र अर्थात् व्याकरण के विद्वानों के द्वारा वाचोरणि कही गयी है । परम नम्र और मधुर वाणी से सभी मुनिगणों को आनन्दित करते हुए ही ऐसा किया था । ४४। सुन्दर मन वाले जो पुराणों के ज्ञाता थे उन्होंने पुराणों के समाश्रय के युक्त होकर जो पुराणों के प्रबन्धन करने में नियत थे उनसे विभु ने कहा कही थी । ४५। हे द्विजश्रेष्ठो । यह सब आख्यान जैसा भी हुआ था । ऋषियों का यह परम सर्वोत्तम लोक तत्त्व है । ४६। प्राचीन काल में ग्रह्याजी ने उत्तम ज्ञान पुराण कहा था वह देवताओं से और ऋषियों के सभी प्रकार के पापों का मोचन करने वाला है अब पूर्ण विस्तार से और आनुपूर्वी अर्थात् आरम्भ से अन्त तक क्रम से मैं अनुक्रम से बतलाऊंगा । ४७-४८।

—४८—

सर्ग-वर्णनस्

शृणु तेषां कथां दिव्या सर्वपापप्रमोचनीम् ।

कथ्यमानां मया चित्रां बहवयां श्रुतिसंमताम् ॥१

य इमां धारयेन्नित्यं शृणुयादाप्यभीक्षणशः ।

स्ववंशं धारणं कुत्वा स्वर्गलोके महीयते ॥२

विश्वतारा याच्च पञ्चायथावृत्तं यथाश्रुतम् ।

कोत्यमानं निधोवार्थं पूर्वोषां कीर्तिवद्दं नम् ॥३

धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्गं शत्रुभ्नमेव च ।
 कीर्त्तनं स्थिरकीर्तीनां सर्वेषां पुण्यकर्मणाम् ॥४
 यस्मात्कल्पायते कल्पः समग्रं शुचये शुचिः ।
 तस्मै हिरण्यगर्भयि पुरुषायेश्वराय च ॥५
 अजाय प्रथमायैव वरिष्ठाय प्रजासृजे ।
 ब्रह्मणे लोकतन्त्राय नमस्कृत्य स्वयंभुवे ॥६
 महदाद्यं विशेषांतं सर्वरूप्यं सलक्षणम् ।
 पञ्चप्रमाणं षट्श्रान्तः पुरुषाधिष्ठितं च यत् ॥७

श्री सूतजी ने कहा—समस्त पापों का प्रमोचन कर देने वाली उनकी परम विद्य कथा का आप अब श्रवण कीजिए जो कि मेरे द्वारा कही जा रही है । यह कथा बहुत ही विचित्र है और श्रुति के समत है । इसका प्रचुर अर्थ भी है । १। जो पुरुष इस कथा को नित्य धारण किया करता है और बारम्बार इसका श्रवण किया करता है वह अपने वंश को धारण करके अम्त में स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है । २। जिस प्रकार से हुआ है और जैसा सुना गया है जो यह पंच विश्व तारा है । ज्ञान प्राप्त करने के लिए कीर्तित किया हुआ यह पूर्व में होने वालों की कीर्ति का बढ़ाने वाला है । ३। यह परम धन्यपश देने वाला—आयु के बढ़ाने वाला—स्वर्गलोक प्राप्त करने वाला और शत्रुओं का नाशक है । स्थिर कीर्ति से युक्त-पुण्य कर्मों वाले सबका कीर्तन करना इन उपर्युक्त सभी के देने वाला होता है । ४। जिसके कल्प भी कल्प का रूप धारण किया करता है और सम्पूर्ण शुचि के लिए भी शुचि है उन पुरुषों के स्वामी हिरण्यगर्भ के लिए जो अजन्मा है—सबसे प्रथम है—सबमें परमश्रेष्ठ है और प्रजाओं का सृजन करने वाले हैं उन लोह तन्त्र स्वयम्भू ब्रह्माजी के लिए नमस्कार है । ५-६। जो महत का आदि में होने वाला है, जो विशेष के अन्त वाला है जो वेरूप्य से युक्त है—जो लक्षण वाला है—जो पांच प्रणामों वाला है—जो षट् श्रान्त है और पुरुषाधिष्ठित है । ७।

आसंयमात्प्रवक्ष्यामि युतसर्गमनुत्तमम् ।

अव्यक्तं कारणं यत्तन्तित्वं सदसदात्मकम् ॥८

प्राप्तं प्रकृतिं ज्ञेत् यस्माहस्तात्मित्वाका ।

गन्धरुपरसैर्हीनं शब्दस्पर्शविवर्जितम् ॥६
जगत्तोनिम्महाभूतं परं ब्रह्म सनातनम् ।
विग्रहं सर्वभूतानामव्यक्तमभवत्किल ॥१०
अनार्द्धतमजं सूक्ष्मं त्रिगुणं प्रभवोद्ययम् ।
असाप्रतिकमजेर्यं ब्रह्म यत्सदसत्परम् ॥११
तस्यात्मना सर्वमिदं व्याप्तमासीत्तमोमयम् ।
गुणसाम्ये तदा तस्मिन्नविभातं तमोमयम् ॥१२
सर्गकाले प्रधानस्य क्षेत्रजाधिष्ठितस्य वै ।
गुणभावादभासमाने महातत्वं बभूव ह ॥१३
सूक्ष्म स तु महानग्रे अव्यक्तेन समावृतः ।
सत्त्वोद्रेको महानग्रे सत्त्वमात्रप्रकाशकः ॥१४

इस परमोत्तम भूतों के सर्ग को संयम से आरम्भ करने में बतला-ऊँगा । जो अव्यक्त कारण है वह नित्य है और उसको स्वरूप सत् एवं जगत् दोनों ही प्रकार का है । दा तत्वों का विस्तृत करने वाले विचारक लोग उस अध्यावक को प्रधान तथा प्रकृति कहा करते हैं जो कि गन्ध-स्पर्श और रस से रहित है तथा शब्द से भी विवर्जित है ॥६। इस सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति स्थान, महाभूत सनातन परब्रह्म तथा समस्त भूतों का विग्रह निश्चित रूप से अव्यक्त हो गया था ॥१०। आदि और अन्त से रहित अजन्मा, सूक्ष्म रूप वाला सत्त्व-रज और तम-इन तीन गुणों से युक्त अर्थात् त्रिगुणात्मक, सबका प्रभाव भी यह है जो असाम्प्रतिक, न जानने के योग्य, सत् और असत् स्वरूप वाला, पर ब्रह्म है । जो सभी भूतों का निग्रह है वही अव्यक्त हो गया है । ॥११। उसी को आत्मा से यह सम्पूर्ण विश्व व्याप्त है तम से परिपूर्ण है । उस समय में उस गुणों (तीनों गुणों) के साध्य होने पर यह तमोमय विभात नहीं होता है ॥११। जब सृजन का समय होता है उस काल में क्षेत्र के जाता के द्वारा अधिष्ठित प्रधान के गुणों के भय से भासमान होने पर यह महातत्व होगया था ॥१३। आगे वह सूक्ष्म रूप वाला महान् अव्यक्त से समावृत था । सत्त्व गुण की अधिकता से युक्त महान् केवल सत्त्व का ही प्रकाश करने वाला था ॥१४।

सत्त्वान्महान्स विज्ञेय एकस्तत्कारणः स्मृतः ।

लिंगमात्रं समुत्पन्नं क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं महत् ॥१५
 संकल्पोऽध्यवसायश्च तस्य वृत्तिद्वयं स्मृतम् ।
 महासृष्टि च कुरुते वीतमानः सिसृक्षया ॥१६
 धर्मदीनि च भूतानि लोकतत्वार्थहेतवः ।
 मनो महात्मनि ब्रह्म दुर्बुद्धियातिरीश्वरात् ॥१७
 प्रज्ञासंधिश्च सर्वस्वं संख्यायतनरशिमभिः ।
 मनुते सर्वभूतानां तस्माच्चेष्टफलो विभुः ॥१८
 भोक्ता व्राता विभक्तात्मा वर्त्तनं मन उच्यते ।
 तत्त्वानां संग्रहे यस्मान्महांश्च परिमाणतः ॥१९
 शेषेभ्यो गुणतत्वेभ्यो महानिव तनुः स्मृतः ।
 विभक्तिमानं मनुते विभागं मन्यतेऽपि वा ॥२०
 पुरुषो भोगसंबंधात्तेन चासौ संति स्मृतः ।

वृहत्वादृहणत्वाच्च भावानामखिलाश्रयात् ॥२१

सत्र से वह महान् एक जानने के योग्य है। और एक ही कारण कहा गया है क्षेत्रज्ञ से अधिष्ठित महत् के बल लिङ्ग ही समुत्पन्न हुआ था ।१५। उसकी छै प्रकार की वृत्ति बतायी गयी है—एक तो सङ्कल्प और दूसरी वृत्ति अध्यवसाय है । सृजन करने की इच्छा से वीतमान वह इस महती सृष्टि को दिया करता है ।१६। और धर्म आदि भूत लोकतत्वार्थ के हेतु हैं । महान् आत्मा में मन ही ब्रह्म है और ईश्वर से इसकी दुर्बुद्धि यह रुप्याति है ।१७। संख्यायत रशिमयों से सब भूतों की प्रज्ञा संन्धि सर्वस्व मानता है । इस कारण से विभु चेष्टा के बाला होता है ।१८। भोक्ता (भोगने वाला) परिवार करने वाला—विभक्त आत्मा वाला बरतने वाला जो है वही मन कहा जाता है । जिसमें तत्वों के संग्रह में है और परिणाम से महान् है ।१९। शेष जो गुणों के तत्व हैं उनके महान की ही भाँति तनु कहा गया है । विभक्ति स युक्त को मानता है अथवा विभाग को मानता है ।२०। यह पुरुष उसके द्वारा अर्थात् शरीर के द्वारा भोगों का सम्बन्ध होने से सत् में कहा गया है । वृहत् होने से और वृहणत्व होने से और भावों का पूर्ण आश्रय होने से पैदा होता है ।२१।

यस्माद्बुद्ध्यते भावान् ब्रह्मा तेन निरुच्यते ।

आपूर्यति यस्माच्च सर्वान् देहाननुग्रहः ॥२२

बुद्ध्यते पुरुषश्चात्र सर्वान् भावान्पृथक् पृथक् ।

तस्मिस्तु कार्यकरणं संसिद्धं ब्रह्माणः पुरा ॥२३

प्राकृतां देवि वर्ता माँ क्षेत्रज्ञो ब्रह्मासंमितः ।

स वौ शरीरी प्रथमः पुरा पुरुष उच्यते ॥२४

आदिकर्ता स भूतानां ब्रह्माणे समवत्तिनाम् ॥२५

हिरण्यगर्भः सोऽण्डेऽस्मिन्प्रादुर्भूतश्चतुर्मुखः ।

सर्गं च प्रतिसर्गं च क्षेत्रज्ञो ब्रह्म समितः ॥२६

करणः सह पृच्छते प्रत्याहारैस्त्यजंति च ।

भजंते च पुनर्देहांस्ते समाहारसंधिषु ॥२७

हिरण्मयस्तु यो मेरुस्तस्योद्धर्तुर्मंहात्मनः ।

गत्तौदकं संबुदास्तु हरेयुश्चापि पञ्चताः ॥२८

जिससे भावों का बृहण करना है उसी से ब्रह्मा—इस नाम से कहा जाया करता है । और जिस कारण से समस्त देवों को अनुग्रहों के द्वारा आपूरित करता है ॥२२। यहाँ पर पुरुष सब भावों को पृथक् पृथक् जानता है । उसमें तो पहले ब्रह्मा का कावं और करण से सिद्ध हुआ है ॥२३। ह देवि ! मुक्तको प्राकृत संसज्जकर बतलाया करो । जो क्षेत्रज्ञ है वह ब्रह्म से समित है । वह शरीर धारी निश्चय ही पहिले पुरुष कहा जाया करता है ॥२४। ब्रह्मा के आगे समवर्ती भूतों का वह आदि कर्ता है ॥२५। वह हिरण्यगर्भ इस थण्ड में चार मुखों वाला प्रादुर्भूत हुआ था । सर्ग और प्रतिसर्ग में क्षेत्रज्ञ ब्रह्मा संमित है ॥२६। करणों के साथ पूछते हैं और प्रत्याहारों से त्याग करते और वे पुनः समाहार संन्धियों में देहों का सेवन करते हैं ॥२७। हिरण्मय जो मेरु गिरि है उस महान आत्मा वाले के गत्तौदक का उद्धार करने के लिये संबुद पञ्जला का भी हरण करते हैं ॥२८।

यस्मिन्नन्ड इमे लोकाः सप्त वै संप्रतिष्ठिताः ।

पृथिवी सप्तभिर्द्विष्टिः संमुद्रैः सह सप्तभिः ॥२९

पर्वतैः सुमहदिभश्च नदीभिश्च सहस्रशः ।

अन्तः स्थस्य त्विमे लोका अंतर्विश्वमिदं जगत् ॥३०

चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रौ संग्रहः सह वायुना ।

लोकालोक च यत् किञ्चिदण्डे तस्मिन्प्रतिष्ठितम् ॥३१

आपो दशगुणे नैव तेजसा वाह्यतो वृत्तः ।

तेजो दशगुणेनैव वाह्यतो वायुना वृत्तम् ॥३२

वायुर्दशगुणेनैव वाह्यतो नभसा वृत्तः ।

आकाशमावृतं सर्वं बहिर्भूतादिना तथा ॥३३

भूतादिर्महता चैव प्रधानेनावृत्तो महान् ।

एभिरावरणेरडं सप्तभिः प्राकृतैर्वृत्तम् ॥३४

इच्छया वृत्य चान्योन्यमरणे प्रकृतयः स्थिताः ।

प्रसर्गकाले स्थित्वा च ग्रसंतश्च परस्परम् ॥३५

जिस अणु में ये सात लोक संप्रतिष्ठित हैं । इनमें पृथिवी है जो सात द्वीपों से और सात समुद्रों से युक्त हैं इस पृथ्वी में महान् पर्वत है और सहस्रों नदियाँ भी विद्यमान हैं । अन्दर स्थित इसके ये सब लोक हैं और अन्दर में रहने विश्व में यह जगत रहता है । २६-३०। समस्त नक्षत्रों के साथ चन्द्रमा और सूर्य है तथा वायु के साथ संग्रह है । और लोकालोक है । जो कुछ भी है । वह सब उस अण्ड में प्रतिष्ठित हैं अर्थात् विद्यमान रहा करता है । ३१। दश गुणे तेज के साथ बाहिर की ओर जल आवृत रहते हैं । इश गुणित वायु के द्वारा वह तेज भी आवृत रहता है । ३२। दश गुणे नभ (आकाश) से वह वायु वृत रहता है जोकि बाहिर की ओर है । फिर वह आकाश सम्पूर्ण बाहिर भूतादि से आवृत है । ३३। भूतादिक महान से समावृत है और महान प्रधान के द्वारा आवृत है । इन सात प्राकृत आवरणों के द्वारा यह अण्ड आवृत रहा करता है । ३४। एक दूसरे के मरण में परस्पर में इच्छा से आवृत प्रकृतियाँ स्थित हैं और प्रसर्ग के अर्थात् प्रसृजन के समय में स्थित होकर परस्पर में ग्रसन किया करती हैं । ३५।

एवं परस्परैश्चैव धारयन्ति परस्परम् ।

आधाराधीयभावेन विकारास्ते विकारिषु ॥३६

अव्यक्तं लेत्रभित्युक्तं ब्रह्म क्षेत्रज्ञमुच्यते ।

इत्येवं प्राकृत सर्गं शेषजाग्रिष्ठितस्तुम् ॥३७

अबुद्धिपूर्वः प्रथमः प्रादुभूतस्तडिष्यथा ।

एतद्धिरण्यगर्भस्य जन्म यो वेत्ति तत्वतः ।

आयुष्मान्कीतिमान्धन्यः प्रज्ञावांशच न संशयः ॥३५

इस प्रकार से परस्थिर में एक दूसरे को धारण किया करते हैं । वे विकार वालों में आधार और आधेय के भाव से वे सब विकार होते हैं । ३६। इस अव्यक्त को ही क्षेत्र कहा जाता है और अस्त्र क्षेत्र कहा जाया करता है । इस रीति से यह प्राकृत सर्ग है और वह क्षेत्र से अधिष्ठित होता है । ३७। प्रथम अबुद्धि पूर्वक होता है जिस तरह से तडित होती है । हिरण्यगर्भ का जन्म तो तात्त्विक रूप से जानता है वह आयु वाला—कीति से सम्बित-धन्य और प्रज्ञा वाला होता है—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है । ३८।

॥ लोक-वर्णन (१) ॥

सूत उवाच—आत्मन्यवस्थिते व्यर्थे विकारे प्रतिसंहृते ।

साधम्येणावतिष्ठेते प्रधानपुरुषो तदा ॥१

तमः सत्त्वगुणावेतौ समत्वेन व्यवस्थितौ ।

अनुद्रिक्तावनुचरी तेन प्रोक्ती परस्परम् ॥२

गुणसाम्ये लयो ज्ञेय आधिक्ये सृष्टिरूच्यते ।

सत्त्ववृढो स्थितिरभूद् ध्रुवं रथशिखास्थितम् ॥३

यदा तमसि सत्त्वे च रजोप्यनुगतं स्थितम् ।

रजः प्रवर्तक तच्च वीजेष्विव यथा जलम् ॥४

गुणावैषम्यमासाद्य प्रसगेन प्रतिष्ठिताः ।

गुणेभ्यः क्षोभ्यमाणेभ्यस्त्रयो ज्ञेया हि सादरे ॥५

शाश्वताः परमा गुह्याः सर्वात्मानः शरीरिणः ।

सत्त्वं विष्णु रजो भ्रह्मा तेभो रुद्रः प्रजापतिः ॥६

रजः प्रकाशको विष्णु ब्रह्मान्नष्टुत्यमाप्नुयात् ।

जायते च यतश्चित्रा लोकसृष्टिर्हीजसः ॥७

श्रीसूतजी ने कहा—व्यक्त के आत्मा में अवस्थित होने पर और विकार के प्रति सहृद हो जाने पर उस समय में प्रधान और पुरुष सहकर्मता के साथ अवस्थित हुआ करते हैं । १। तमोगुण और सत्त्वगुण ये दोनों समता से व्यवस्थित हुआ करते हैं । उसके साथ ये उद्विक्त नहीं होते हैं और परस्पर से उसके अनुगमी रहा करते हैं । २। जब इन गुणों की समता होती है तो उस समय में लय जान लेना चाहिए और जब इनमें किसी भी अधिकता अर्थात् परस्पर में विषमता होती है तो उस अवस्था में सृष्टि कही जाया करती है सत्त्व की वृद्धि में स्थिति हुई थी और ध्रुव पद्म शिखा में होता है और वह बीजों में जल के ही समान प्रवत्त क होता है । ३। ये गुण विषमता की दशा को प्राप्त करके प्रसङ्ग से प्रतिष्ठित होते हैं । गुणों के क्षेत्रमाण होने से ये तीनों गुण बड़े आदर में जानने के योग्य होते हैं । ४। ये शाश्वल अर्थात् नित्य रहने वाले हैं—परमग्रह्य है—सबकी आत्मा है और शरीरधारी है । सत्त्वगुण विष्णु हैं—रजोगुण प्रजापति ब्रह्मा है और तमोगुण साक्षात् रुद्र देव हैं । ५। रजोगुण के प्रकाशक विष्णु ब्रह्मा के स्थानों की अवस्था को प्राप्त किया करते हैं । जिस महान् ओज वाले से यह विचित्र प्रकार की सृष्टि समुत्पन्न हुआ करती है । ६।

तमः प्रकाशको विष्णुः कालत्वेन व्यवस्थितः ।

सत्त्वप्रकाशको विष्णुः स्थितित्वेन व्यवस्थितः ॥५

एत एव त्रयो लोका एत एव त्रयो गुणाः ।

एत एव त्रयो वेदा एत एव त्रयोऽग्नयः ॥६

परस्परान्वया ह्येते परस्परमनुव्रताः ।

परस्परेण वर्तते प्ररथति परस्परम् ॥७०

अन्योन्यं मिथुनं ह्येते अन्योन्यमुपजीविनः ।

क्षणं वियोगो न ह्येषां न त्यजन्ति परस्परम् ॥११

प्रधानगुणवंषम्यात्सर्गकाले प्रवर्तते ।

अट्टाऽधिष्ठितात्पूर्वे तस्मात्सदसदात्मकात् ॥१२

ब्रह्मा बुद्धित्वमिथुनं युगपत्संबभूव ह ।

तस्मात्तमौव्यक्तमयं क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंजकः ॥१३

अर्थों के तत्त्वों का ज्ञाता होगा । ४८। वह अपने पितरों के गौरव से सुसमन्वित होगा और महान् यत्न से परम घोर तप करके निश्चय ही स्वर्ग से यहाँ पर गङ्गा को लावेगा । ४९।

तदंभसा पावितेषु तेषां गात्रास्थभस्मसु ।

प्राप्नुवति गति स्वर्गं भवतः पितरोऽखिला ॥५०

तथेति तस्या माहात्म्यं गंगाया नृपनन्दन ।

भागीरथीति लोकेऽस्मिन्सा विख्यातिमुपेष्यति ॥५१

यतोयप्लावितेष्वस्थभस्मलोमनखेष्वपि ।

निरयादपि संयाति देही स्वर्लोकमक्षयम् ॥५२

तस्मात्वं गच्छ भद्रं ते न शोकं कर्तुं मर्हसि ।

पितामहाय चैवैनमश्वं संप्रतिपादय ॥५३

जैमिनिरुचाच—

ततः प्रणम्य तं भक्त्या तथेत्युक्त् वा महामतिः ।

यथौ तेनाभ्यनुज्ञातः साकेतनगरं प्रति ॥५४

सगरं स समासाद्य तं प्रणम्य यथाक्रमम् ।

न्यवेदयच्च वृत्तांतं मुनेस्तेषां तथात्मनः ॥५५

प्रददौ तुरगं चापि समानीतं प्रयत्नतः ।

अतः परमनुष्ठेयमद्रवीर्तिं मयेति च ॥५६

उस पतित पावनी गङ्गा के पुनीत जल से उन सबके गात्र-अस्थि और भस्म के पवित्र हो जाने पर वे समस्त आपके पितृगण स्वर्ग में गति को प्राप्त करेंगे । ५०। हे नृपनन्दन उस गङ्गा का माहात्म्य ही ऐसा अद्भुत है। राजा भगीरथ के द्वारा यहाँ लाने से इस लोक में उसका नाम भागीरथी प्रसिद्ध होगा । ५१। गङ्गा का बड़ा अद्भुत माहात्म्य होता है कि उसके जल में किसी भी प्राणी की अस्थि-भस्म-नख आदि कोई भी भाग जब प्लावित हो जाता है तो वह प्राणी नरक की यातनाओं से भी मुक्त होकर अक्षय स्वर्गलोक में चला जाया करता है । ५२। इस कारण से अब आप यहाँ से चले जाइए—आपका कल्याण होगा—आपको कुछ भी शोक नहीं करना चाहिए। अपने पितामह को यह अश्व ले जाकर दे दो । ५३। जैमिनि मुनि

एकधा स द्विधा चैव त्रिधा च बहुधा पुनः ।

योगीश्वरः शरीराणि करोति विकरोति च ॥२१

वह प्रथम ही शरीर था जो कि धारणत्व से व्यवस्थित था । यहाँ पर अनुपम ज्ञान से और वेराग्य से सप्तति था । इसके अव्यक्तता के लिए उस मन से वह जो-जो भी इच्छा करता था वही करता था क्योंकि इसके तीनों गुण वश में किये हुए थे और भाव से वे एक दूसरे की अपेक्षा करने वाले थे । १५-१६। चतुमुख ब्रह्मात्व को प्राप्त किया था और अन्त करनेवाले पुरुष हुए । इस प्रकार से स्वयम्भू की ही ये तीन अवस्थाएँ थीं । १७। ब्रह्मात्व की दशा में सब रजोगुण हैं और काल की अवस्था में रजोगुण और तमो-गुण होता है । जब पुरुष की दशा में यह होते हैं तो तत्वगुण के युक्त होते हैं । इस प्रकार से स्वयम्भू में गुणों की वृत्ति होती है । १८। जब ब्रह्मा की दशा में यह रहते हैं तो यह लोकों का सृजन किया करते हैं । जब काल का स्वरूप धारण किया करते हैं तो उन सभी लोकों का सक्षय करते हैं । जब केवल पुरुष की दशा में होते हैं तो यह उदासीन रहते हैं । ऐसे स्वयम्भू की ही ये यीन भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ हुआ करती हैं । १९। ब्रह्मा कमल के दलों के समान नेत्रों वाले होते हैं और काल का जब उनका स्वरूप होता है तो अञ्जन के समान कृष्ण वर्ण होता है । जब उदासीन पुरुष के रूप में होते हैं तो यह परमात्मा के स्वरूप से पुण्डरीकाश होते हैं । २०। एक प्रकार से—दो प्रकार से—तीन प्रकार से फिर बहुत प्रकार से योगीश्वर प्रभु अनेक शरीरों को बनाया करते हैं और बदलते रहा करते हैं । २१।

नानाकृतिक्रियारूपमाश्रयंति स्वलीलया ।

त्रिधा यद्वर्तते लोके तस्मात्त्रिगुण उच्यते ॥२२

चतुर्द्वा प्रविभक्तत्वाच्चतुर्व्यूहः प्रकीर्तिः ।

यदा शेते तदाधर्ते यद्भक्ते विषयान्प्रभुः ॥२३

यत्स्वस्थाः सततं भावस्तस्मादात्मा निरुच्यते ।

ऋषिः सर्वगतश्चात्र शरीरे सोऽभ्ययात्प्रभुः ॥२४

स्वामी सर्वस्य यत्सर्वं विष्णुः सर्वप्रवेशनात् ।

भगवान्प्रसद्भावान्नागो नागस्वसंश्रयात् ॥२५

परमः संपद्भक्तात् तत्त्वो मिति स्मृतिः ।

सर्वज्ञः सर्वविज्ञानात्सर्वः सर्वं यतस्ततः ॥२६

नराणां स्वापनं ब्रह्मा तस्मान्नारायणः स्मृतः ।

त्रिधा विभज्य चात्मानं सकलः संप्रवर्त्तते ॥२७

सृजते ग्रसते चैव पाल्यते च त्रिभिः स्वयम् ।

सोऽग्ने हिरण्यगर्भः सन् । द्रुभूर्तः स्वयं भुः ॥२८

अनेक क्रिया-आकार और स्वरूप का आश्रय ग्रहण किया करते हैं और यह सब अपनी ही लीला से करते रहा करते हैं । लोक में यह तीन प्रकार बाले होकर रहते हैं इसी कारण से इनको त्रिगुण कहा जाता है । २२। चार प्रकार से प्रविभवत होने से यह चतुर्भूर्ह कहा गया है । जिस समय में यह शयन किया करते हैं उस समय में वह अधर्वन्ति होते हैं प्रभु विषयों का भोग किया करते हैं । २३। जो स्वस्थ होते हैं तब निरन्तर भाव होता है । इसी से आत्मा कहा जाता है और ऋषि इसमें सर्वगत हैं । वह शरीर में आते हैं । २४। भगवान् विष्णु सबके स्वामी हैं क्योंकि विष्णु का सभी में प्रवेश होता है । भगवान् अप्रसदभाव से नाग हैं और नाग का संशय नहीं होता है । २५। संप्रहृष्ट होने से परम है और देवता होने से ओम् यह स्मृति है । सबके विज्ञान होने से यह सर्वज्ञ हैं क्योंकि यह सबमें हैं अतएव यह सर्व कहा जाता है । २६। नरों में अर्थात् जलों में यह स्वपन किया करते हैं इस कारण से ब्रह्माजी नारायण कहे गये हैं और अपने आपके स्वरूप को तीन प्रकार से विभक्त करके यह सकल से संप्रवृत्त हुआ करते हैं । २७। इन तीनों स्वरूपों से यह लोकों का सृजन पालन और क्रम से गसन किया करते हैं । वही सबसे आगे हिरण्यगर्भ होते हुए स्वयं प्रादुर्भूत हुए हैं । २८।

आद्यो हि स्ववशशच्चैव अजातत्वादजः स्मृतः ।

तस्माद्दिरण्यगर्भश्च पुराणेषु निरुच्यते ॥२९

स्वयंभुवो निवृत्तस्य कालो वण्गितस्तु यः ।

न शक्यः परिसंख्यातुं मनुवर्षशतैरपि ॥३०

कल्पसंख्यानिवृत्तस्तु पराधर्मो ब्रह्मणः स्मृतः ।

तावत्त्वे सोऽस्य कालोऽन्यस्तस्यांते प्रतिबुद्धयते ॥३१

कोटिवर्षसहस्राणि गृहभूतानि यानि च ।

समतीतानि कल्पानां तावच्छेषात्परे तु ये ॥३२

यत्स्वयं वर्तते कल्पो वाराहस्तन्निबोधत ।

प्रथमं सांप्रतस्तेषां कल्पो वै वर्तते च यः ॥३३॥

पूर्णे युगसहस्रे तु परिपालयं नरेश्वरैः ॥३४॥

क्योंकि यह सबसे आदि काल में होने वाले हैं । अतएव यह स्ववशी हैं अर्थात् अपने ही वश में रहने वाले हैं ऐसा ही कहा गया है । उसी कारण से पुराणों में इनको हिरण्यगर्भ कहा जाया करता है । २६। जो स्वयम्भुव है वह निवृत्त का वर्णों में अग्रकाल है । इसकी परिसंख्या मनु के सेकड़ों वर्षों में भी नहीं की जा सकती है । ३०। कल्पों की संख्या से निवृत्त ब्रह्मा का परार्थ कहा गया है । उतने ही में इसका वह काल है उसके अन्त में अन्य काल प्रतिबुद्ध होता है । ३१। करोड़ों सहस्र वर्षों जो कि इसके गृहभूत हैं । उतने कल्पों के समतीत हैं और जो शेष हैं वे दूसरे हैं । ३२। जो स्वयं कल्प है वह वाराह कल्प है—ऐसा ही समझ लो । प्रथम उनमें साम्प्रत है और जो कल्प होता है । ३३। एक सहस्र युगों के पूर्ण हो जाने पर नरेश्वरों के द्वारा परिपालन के योग्य है । ३४।

— X —

॥ लोककल्पनम् (२) ॥

सूत उवाच—आपोऽग्रे सर्वगा आसन्नेतस्मन्पृथिवीतले ।

गांतवातेः प्रलीनेऽस्मन्न प्राज्ञायत किञ्चन ॥१॥

एकार्णवे तदा तस्मन्बद्धे स्थावरजङ्गमे ।

विभुर्भवति स ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥२॥

सहस्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णो ह्यतींद्रियः ।

ब्रह्म नारायणाख्यस्तु सुष्वाप सलिले तदा ॥३॥

सत्त्वोद्वेकान्निषिद्धस्तु शून्यं लोकमवैक्षत ।

इमं चोदाहरत्यन्न श्लोकं नारायणं प्रति ॥४॥

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूतवः ।

अयनं तस्य ताः प्रोक्तास्तेन नारायणः स्मृतः ॥५॥

तुल्यं युगसहस्रस्य वसन्कालमुपास्यतः ।

स्वर्णपत्रे प्रकुरुते ब्रह्मत्वादर्शकारणात् ॥६

ब्रह्मा तु सलिले तस्मिन्नवाग् भूत्वा तदा चरत् ।

निशायामिव खद्योतः प्रावृट्काले ततस्ततः ॥७

श्रीसूतजी ने कहा—इस पृथिवी तत्व में सबसे पूर्वे जल ही जल सर्वत्र था और यह शील तथा प्रलीन था । इसमें उस समय कुछ भी नहीं जाना जाता था । १। केवल एक समुद्र ही था और उस सागर में सभी स्थावर (अचर) और जङ्गम (चर) नष्ट हो गये थे । विभु (व्यापक) वह ब्रह्मा जी उस समय में सहस्रों पादों और नेत्रों वाले हो जाया करते हैं । २। सहस्रों शीषों वाले, सुवर्ण के समान जिनका वर्ण था और जो इन्द्रियों की पहुँच से परे थे अर्थात् अप्रत्यक्ष थे ऐसे पुरुष नारायण नाम वाले ब्रह्म उस समय में समुद्र में शयन कर रहे थे । ३। सत्त्व के उद्गेक से निषिद्ध होते हुए उन्होंने उस समय में इस लोक को शून्य देखा था । यहाँ पर भगवान् नारायण के विषय में इन निम्न लिखित श्लोक को उदाहृत किया करते हैं । ४। जलों को नारा कहा गया है और ये जल ही नर के आत्मज हैं । वे जल ही उन नारायण प्रभु के निवास स्थान हैं अतएव प्रभु का नाम नारायण कहा गया है । ५। सहस्रों युगों के तुल्य काल तक वे प्रभु वहाँ पर निवास करते हुए स्थित रहे थे । ब्रह्मत्व के अदर्शन के कारण से वे स्वर्ण पत्र किया करते हैं । ६। उस जल में ब्रह्माजी अवाक् होकर उस समय में विचरण कर रहे थे जिस तरह से वर्षा ऋतु में रात्रि में खद्योत चकमता हुआ यहाँ से वहाँ घूमा करता है । ७।

ततस्तु सलिले तस्मिन् विजायांतर्गते महत् ।

अनुमानादसंमूढो भूमेरुद्धरणं प्रति ॥८

ॐकाराष्टतनुं त्वन्यां कल्पादिषु यथा पुरा ।

ततो महात्मा मनसा विव्यरुपमन्तितयत् ॥९

सलिलेऽवप्लुतां भूमि दृष्ट्वा स समन्तितयत् ।

किं तु रूपमहं कृत्वा सलिलादुद्धरे महीम् ॥१०

जलक्रीडासमुचितं वाराहं रूपमस्मरत् ।

अदृश्यं सर्वभूतानां वाङ्मयं ब्रह्मसंज्ञितम् ॥११

दशयोजनविस्तीर्णमायतं शतयोजनम् ।

नीलमेघप्रतीकाशं मेघस्तनितनिः स्वनम् ॥१२

महापर्वतबृहमणिं प्रवेततीक्ष्णोग्रदंष्ट्रिणम् ।

विद्युदग्निप्रतीकाशमादित्यसमतेजसम् ॥१३

पीनवृत्तायतस्कन्धं विष्णुविक्रमगामि च ।

पीनोन्नतकटीदेशं वृषलक्षणपूजितम् ॥१४

इसके उपरान्त उस जल में अन्तर्गत में महत् का ज्ञान प्राप्त किया था भूमिका उद्धारण करने के विषय में मूढ़ता से रहित उन्होंने अनुमान किया था । ८। इसके पश्चात् अन्य ओंकारात् तनु का जैसे पहिले कल्पों के बादि में था उन महात्मा ने मन में ही उस दिव्य स्वरूप का चिन्तन किया था । ९। उस विशाल जल की राशि में उन्होंने ढूबी हुई भूमि को देखकर भली भाँति चिन्तन किया था कि क्या स्वरूप धारण करके मैं इस भूमि का जल से उद्धार करूँ । १०। जल में क्रीड़ा करना बहुत हो उचित है । इस तरह से उन्होंने बाराह के रूप का स्मरण किया था । जो कि समस्त प्राणियों के द्वारा न देखने के योग्य है और बाह्य ब्रह्म की संज्ञा वाला है । ११। उसका विस्तार दश योजन का था उसकी चौड़ाई अर्थात् फैलाव सौ योजन था । नीले मेघ के समान उसका वर्ण था और मेघ के गजंन के सदृश हवनि थी । १२। एक विशाल पर्वत के तुल्य उसका शरीर था और उसकी दाढ़े श्वेत एवं उग्र और तीक्ष्ण थी । विजली की अग्नि जैसी होती है उसी प्रकार चमक थी तथा सूर्य के समान उसमें तेज था । १३। मोटे और चोड़े स्कन्ध थे और भगवान् विष्णु के विक्रम से गमनशील थे । उसकी कटि का भाग स्थूल और कोंचा था । वह वृष के लक्षणों से पूजित था । १४।

आस्थाय रूपमतुलं बाराहमितं हरिः ।

पृथिव्युद्धरणाथधि प्रविवेश रसातलम् ॥१५

दीक्षासमाप्तीष्टिदंष्ट्रः क्रतुदंतो जुहुमुखः ।

अग्निजिह्वो दर्भरोमा ब्रह्मशीर्षो महात्पा: ॥१६

वेदस्कन्धो हविर्गन्धिर्हव्यक्त्यादिवेगवान् ।

प्रापन्तकाये लुप्तिमान् नानुभीक्षाभिरकिर्त्त ॥१७

दक्षिणा हृदयो तोगी श्रद्धासत्त्वमयो विभुः ।

उपाकर्मरुचिश्चैव प्रवर्ग्यविर्तभूषणः ॥१८

नानाछन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासनः ।

मायापत्नीसहायो वै गिरिश्चञ्जलिमिवोच्छ्रुयः ॥१९

अहोरात्रेक्षणधरो वेदांगश्रुतिभूषणः ।

आज्यगंधः स्तुवस्तुङ्डः सामघोषस्वनो महान् ॥२०

सत्यधर्ममयः श्रीमान् कर्मविकमसत्कृतः ।

प्रायशिच्चत्तनखो घोरः पशुजानुर्महामखः ॥२१

हरि भगवान् ने अभित वाराह के रूप को धारण किया था जो अतुल था और पृथिवी के जल से उद्धरण करने के लिए उन्होंने रसातल में प्रवेश किया था । अब वाराह भगवान के स्वरूप को यज्ञ का रूप देते हुए बताया जाता है दीक्षा की समाप्ति इष्टि के दाढ़ों वाले थे । उनके दाँत क्रतु था और मुख में आहुति थी । जिह्वा अग्नि थी और उनके रोम दर्भों के समान थे । महान् तपस्वी ब्रह्म शीर्ष था । १५-१६। वेदों के स्कन्धों वाले तथा हवि की गन्ध से युक्त और हृव्य-कठ्य आदि के वेग से संयुत है । प्राग्वंश के शरीर वाले—चूति से युक्त हैं और नाना प्रकार की शिक्षाओं से समन्वित है । १७। हृदय दक्षिणा है तथा श्रद्धा सत्त्व से परिपूर्ण विभु योगी हैं । उपाकर्म की रुचि वाले और प्रवर्ग्यविर्त भूषण वाले हैं । १८। अनेक छन्द गति पथ हैं और गुह्य उपनिषद आसन है । मायारूपिणी पत्नी की सहायता वाले तथा पर्वत की शिखर के समान उच्च है । १९। अहोरात्र अथति दिन और रात्रि रूपी नेत्रों के धारण करने वाले हैं तथा वेदों के अञ्ज श्रुति वाले हैं । घृत गन्ध वाले हैं—तुण्ड ही खब है तथा सामवेद का घोष ही छवनि है जो कि महान् है । २०। श्रीमान् सत्यधर्म से परिपूर्ण है और कर्मों के विक्रम से सत्कृत है । प्रायशिच्चत्तों के नखों वाले हैं और घोर पशु जानु हैं ऐसा यह महामख है । २१।

उद्गातांत्रो होमलिंगः फलबीजमहीधषधीः ।

वाद्यतरात्मसत्रस्य नास्मिकासोमशोणितः ॥२२

भक्ता यज्ञराहांताश्चापः संवादिशत्पुनः ।

अग्निसंछादितां भूमि समामिच्छन्नजापतिम् ॥२३

उपगम्या जुहावैता सद्यश्चाद्यसमन्यसत् ।
 सामुद्राश्च समुद्रेषु नादेयाश्च नदीषु च ।
 पृथक् तास्तु समीकृत्य पृथिव्यां सोऽचिनोदिगरीन् ॥२४
 प्राक्सर्गे दद्यमानास्तु तदा संवर्तकाग्निना ।
 तेनाग्निना विलीनास्ते पर्वता भुवि सर्वशः ॥२५
 सत्यादेकार्णवे तस्मिन् वायुना यत् संहिताः ।
 निषिक्ता यत्रयत्रासंस्तत्रत्राचलोऽभवत् ॥२६
 ततस्तेषु प्रकीर्णेषु लोकोदधिगिरींस्तथा ।
 विश्वकर्मा विभजते कल्पादिषु पुनः पुनः ॥२७
 ससमुद्रामिमां पृथ्वी सप्तद्वीपां सपर्वताम् ।
 भूराद्यांश्चतुरो लोकान्पुनः पुनरकल्पयत् ॥२८

अन्त्र ही उद्गान्त है—होमलिङ्ग और फलों के बीज महीषधि हैं । वाचन्तर आत्मसत्र के हैं तथा नास्मिका सोमशोणित है । २२। यज्ञवराहान्त भक्त हैं और फिर जलों में प्रवेश किया था । अग्नि से संचालित भूमि को समा चाहते हुए प्रजापति को प्राप्त हुए और वहाँ पहुँच कर इनका हवन किया था तथा मध्य का अद्य सन्यास किया था और सामुद्र समुद्रों में तथा जो नादेय थे वे नदियों ने उन सबको पृथक् सभी कृत करके उन्होंने पृथिवी में गिरियों को चुना था । २३-२४। पहिले सर्ग में प्रलय काल की संवर्तक अग्नि से जो उस समय में दद्यमान थे । उस अग्नि से सभी ओर भूमि में वे विलीन हो गये थे । २५। उस एक मात्र रहने वाले समुद्र में सत्य से जो वायु के द्वारा संहित थे । जहाँ-जहाँ पर निषिक्त थे वहाँ-वहाँ पर अचल हो गया था । २६। उसके अनन्तर उनके प्रकीर्ण होने पर लोक तथा अधि गिरियों को विश्वकर्मा ने कल्पादि में बार-बार विभाजित किया है । २७। समुद्र से इस पृथ्वी को जो सातों द्वीपों जे युक्त और पर्वतों के सहित है । भू आदि चारों लोकों को बार-बार कल्पित किया था । २८।

लोकान्प्रकल्पयित्वा च प्रजासर्गं ससर्ज ह ।

ऋग्या स्वयं भूर्भूगवान् सिसृक्षुविविधा प्रजाः ॥२९

ससर्ज सृष्टं तद्रूपं कल्पादिषु यथा पुरा ।

तस्याभिष्यायतः सर्गं तदा च बुद्धिपूर्वकम् ॥३०

प्रधानसमकाले च प्रादुर्भूतस्तमोमयः ।

तमो मोहो महामोहस्तामिस्तो द्युधसंज्ञितः ॥३१

अविद्या पञ्चपर्वेषा प्रादुर्भूतम् महात्मनः ।

पञ्चधावस्थित चैव बीजकुम्भलतावृताः ॥३२

सर्वतस्तमसा चैव बीजकुम्भलतावृताः ।

बहिरंतश्चाप्रकाशस्तथानि संज्ञ एव च ॥३३

यस्मात्तोषां कृता बुद्धिदुर्खानि करणानि च ।

तस्माच्च संवृतात्मानो नगा मुख्याः प्रकीर्तिताः ॥३४

मुख्यसर्गे तदोद्भूतं हष्ट्वा ब्रह्मात्मसंभवः ।

अप्रतीतमनाः सोऽय तदोत्पत्तिमयन्मतः ॥३५

अनेक प्रकार की प्रजाओं का सृजन करने की इच्छा वाले ब्रह्माजी ने जो स्वयम्भू भगवान् हैं अनेक लोकों की कल्पना करके उन्होंने प्रजाओं का सृजन किया था । २६। पहिले कल्प आदि में जो स्वरूप था उसी रूप की मृष्टि का सृजन किया था । उस सृजन का अभिष्यान करते हुए उन्होंने बुद्धि पूर्वक ही सर्ग किया था । ३०। प्रधान के समकाल में तम से पूर्ण प्रादुर्भूत हुआ था । उस तम का मोह-महामोह-तामिस्तो और अन्ध—ये सज्जाएँ थीं । ३१। उन भहान आत्मा वाले को पञ्च पर्वा अविद्या प्रादुर्भूत हुई थीं अतएव उन आभिष्मानी और द्यान करने वाले ब्रह्माजी का वह सर्ग भी पाँच प्रकार का व्यवस्थित हुआ था । ३२। सभी ओर बीज-कुम्भ और लताएँ तम ने आवृत थे और बाहिर तथा अन्दर प्रकाश नहीं था तथा सब निःसंज्ञ था । ३३। जिसमें उनकी बुद्धि की गयी थी और दुख तथा करण हुए थे और उससे संवृत आत्मा वाले नगर मुख्य कहे गये हैं । ३४। अपने थाप ही समुत्पन्न हुए ब्रह्माजी ने उस समय में मुख्य सर्ग में उद्वृत को देखा था और अपने यन में अप्रतीति करने वाले उन्होंने उस समय में उत्पत्ति ही मान लिया था । ३५।

तस्याभिष्यायतश्चान्यस्तिर्यवस्त्रोतोऽश्यवतंतः ।

यस्मात्तिर्यग्विवर्त्तेत तिर्यक्स्रोतस्ततः स्मृतः ॥३६

तमोबहुत्वात् सर्वे ह्यज्ञानबहुलाः स्मृताः ।

उत्पाद्यग्राहिणश्चैव तेऽज्ञाने ज्ञानमानिनः ॥३७

अहंकृता अहंमाना अष्टाविंशद्द्विधात्मिकाः ।

एकादशेऽद्विद्विधात्मादयस्तथा ॥३८

अष्टी तु तारकाद्याश्च तेषां शक्तिविधाः स्मृताः ।

अंतः प्रकाशास्ते सर्वे आवृताश्च बहिः पुनः ॥३९

तिर्यक् स्रोतस उच्यन्ते वश्यात्मानस्त्रिसंज्ञकाः ॥४०

तिर्यक् स्रोतस्तु वै द्वितीयं विश्वमीश्वरः ।

अभिप्रायमथोद्भूतं दृष्ट्वा सर्गं तथाविधम् ॥४१

तस्याभिध्यायतो योन्त्यः सात्त्विकः समजायतः ।

ऊद्भूतस्रोतस्तृतीयस्तु तद्वै चोद्भूवं व्यवस्थितम् ॥४२

अभिध्यान करने वाले उनका अन्य एक तिर्यक् स्रोत हुआ था । जिससे तिर्यक् विवरित होते थे इस कारण से वह फिर तिर्यक् स्रोत कहा गया था । ३६। उस तिर्यक् स्रोत में तमोगुण की अधिकता थी इस कारण से वे सभी बहुत अधिक अज्ञान से समन्वित कहे गये हैं । वे सब उत्पाद्य के ग्राही थे और उस अज्ञान में ही ज्ञान के मानने वाले थे । ३७। वे अहङ्कार से युक्त थे और आत्माहङ्कारी थे । ऐसे वे अट्ठाईस प्रकार के थे । इन द्वादश इन्द्रियों के भेद थे जो कि नेत्र, कान, नासिका, जिह्वा और त्वक्—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं और हाथ, पद, गुदा उपस्थ और जिह्वा—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं और एक मन है । तथा नौ प्रकार के आत्मा हैं । ३८। और आठ तारकादि हैं और उनकी शक्ति के प्रकार कहे गये हैं । वे सब अन्दर में प्रकाश वाले हैं फिर वे बाहिर से समावृत हैं । ३९। तिर्यक् स्रोत कहे जाया करते हैं और वश्यात्मा तीन संज्ञा वाले हैं । ४०। तिर्यक् स्रोत का सृजन करके ईश्वर ने दूसरे विश्व की रचना की थी । इसके अनन्तर उद्भूत अभिप्राय को देखकर अर्थात् उस प्रकार के सर्ग का अवलोकन किया था । ४१। इस तरह से अभिध्यान करने वाले उनके जो अन्त्य सात्त्विक सर्ग समुत्पन्न हुआ था । तीसरा तो ऊद्भूवं स्रोत था और वह निश्चित रूप से ऊपर की ही ओर व्यवस्थित था । ४२।

ताः सुखं प्रीतिबहुला बहिरंतश्च वावृताः ॥४३
 प्रकाशा बहिरंतश्च उद्धर्वस्रोतः प्रजाः स्मृताः ।
 नवधातादयस्ते वै तुष्टात्मानो बुधाः स्मृताः ॥४४
 ऊद्धर्वस्रोतस्त्रृतीयो यः स्मृतः सर्वः सदैविकः ।
 उद्धर्वस्रोतः सु सृष्टेषु देवेषु स तदा प्रभुः ॥४५
 प्रीतिमानभवद्ब्रह्मा ततोऽन्यं नाभिमन्यत ।
 सर्गमन्यं सिसृक्षुस्तं साधकं पुनरीश्वरः ॥४६
 तस्याभिध्यायतः सर्गं सत्याभिध्यायिनस्तदा ।
 प्रादुर्बंधौ भौतसर्गः सोऽवकिं स्रोतस्तु साधकः ॥४७
 यस्मात्तेवकिप्रवत्तंते ततोवकिंस्रोतसस्तु ते ।
 ते च प्रकाशबहुलास्तमस्पृष्टरजोधिकाः ॥४८
 तस्मात्ते दुःखबहुला भूयोभूयश्च कारिणः ।
 प्रकाशा बहिरंतश्च मनुष्याः साधकाश्च ते ॥४९

कारण यह है कि यह ऊर्ध्वं में रहा था । इसीलिए उसकी ऊर्ध्वं स्रोत संज्ञा होती है । वे सुख पूर्वक बहुत प्रीति पूर्ण थे और बाहर भीतर आवृत थे ।४३। बाहिर भीतर रहने वाले प्रकाश ऊर्ध्वं स्रोत प्रजा कहे गये थे । जो नौ धाता आदिक थे वे तुष्ट आत्मा वाले बुध कहे गये हैं ।४४। जो ऊर्ध्वंस्रोत तीसरा कहा गया है वह सब सदैविक है । उस समय में ऊर्ध्वं स्रोतों के सृजन किये जाने पर वह प्रभु प्रसन्न हुए थे ।४५। ब्रह्माजी का मन बहुत प्रीतियुक्त हो गया था और फिर अन्य को नहीं माना था । फिर ईश्वर ने अन्य साधक सर्ग के सृजन की इच्छा की थी ।४६। सर्ग की रचना का अभिध्यान करने वाले और उस समय में स्रोत अवकिं साधक था ।४७। कारण यह है कि वे अवकिं प्रवृत्त हुआ करते हैं इसी से वे अवकिं स्रोत होते हैं इसी से वे अवकिं स्रोत होते हैं और उनमें प्रकाश की बहुलता हुआ करती है और तप में स्पर्श किये हुए रजोगुण को अधिकता से युक्त होते हैं ।४८। इस कारण उनमें दुःखों की अधिकता है और पुनः पुनः करने वाले हैं । बाहिर और अन्दर प्रकाश होते हैं और वे मनुष्य साधना करने वाले हैं ।४९।

लक्षणीनारकाद्यस्तैरष्टथा च व्यवस्थिताः ।

सिद्धात्मानो मनुष्यास्ते गन्धवैः सह धर्मिणः ॥५०

पञ्चमोऽनुग्रहः सर्गंश्चतुद्वा स व्यवस्थितः ।

विपर्ययेण शक्त्या च सिद्धमुख्यास्तथैव च ॥५१

निवृत्ता वर्तमानाश्च प्रजायते पुनः पुनः ।

भूतादिकानां सत्त्वानां षष्ठः सर्गः स उच्यते ॥५२

स्वादनाश्चाव्यशीलाश्च ज्ञेया भूदादिकाश्च ते ।

प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो ब्रह्मणस्तु सः ॥५३

तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गः स उच्यते ।

वैकारिकस्तृतीयस्तु चैद्वियः सर्ग उच्यते ॥५४

इत्येते प्राकृताः सर्ग उत्पन्ना बुद्धिपूर्वकाः ।

मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः ॥५५

तिर्यक्स्रोतः सर्गस्तु तैर्यग्रोत्यस्तु पञ्चमः ।

तथोद्धर्वस्रोतसां सर्गः षष्ठो दैवत उच्यते ॥५६

वे नारक आदि लक्षणों से आठ प्रकार से व्यवस्थित होते हैं। वे मनुष्य गन्धवैके साथ धर्म वाले होते हुए सिद्ध आत्मा वाले हैं ॥५०। पाँचवाँ अनुग्रह नामक सर्ग है जो चार प्रकार का व्यवस्थित है। विपर्यय से और शक्ति से और शक्ति से उसी भाँति सिद्ध मुख्य है ॥५१। निवृत्त और वर्तमान वार-बार उत्पन्न हुआ करते हैं। भूतादिक सत्त्वों का जो सर्ग है वह छठा सर्ग कहा जाता है ॥५२। और भूतादिक स्वादन और आया शील जानने के योग्य हैं। प्रथम महत का सर्ग है वह ब्रह्मा का सर्ग तन्मात्राओं का होता है और भूतसर्ग कहा जाया करता है और भूतसर्ग कहा जाया करता है। तीसरा सर्ग वैकारिक है जो इन्द्रिय सर्ग के नाम से पुकारा जाता है ॥५४। ये सभी प्राकृत सर्ग हैं जो बुद्धि पूर्वक समुत्पन्न हुए हैं। प्रमुख सर्ग चौथा है और निष्ठव्य ही स्थावर मुख्य कहे गये हैं ॥५५। त्रियक्स्रोत तो तिर्यग्र्योनियों वाला पाँचवाँ होता है। उसी भाँति ऊर्ध्व स्रोतों का सर्ग छठा है जो दैवत सर्ग के नाम से कहा जाया करता है ॥५६।

तत्रोद्धर्वस्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः ।

अष्टमोनुग्रहः सर्गः सात्त्विकस्तामसश्च सः ॥५७

पंचते वैकृताः सर्गः प्राकृताद्यास्त्रयः स्मृताः ।

प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमः स्मृतः ॥५८

प्राकृता बुद्धिपूर्वास्तु त्रयः सर्गस्तु वैकृताः ।

बुद्धिपूर्वाः प्रवर्तेयुस्तद्वर्गा ब्राह्मणास्तु वै ॥५९

विस्तराच्च यथा सर्वे कीर्त्यमानं निबोधत ।

चतुर्द्वा च स्थितस्सोऽपि सर्वभूतेषु कृत्स्नशः ॥६०

विपर्ययेण शक्तया च बुद्ध्या सिद्ध्या तथैव च ।

स्थावरेषु विपर्यासस्तिर्यग्योनिषु शक्तिः ॥६१

सिद्धात्मानो मनुष्यास्तु पुष्टिर्वेषु कृत्स्नशः ।

अथो ससर्ज वै ब्रह्मा मानसानात्मनः समान् ॥६२

वैवर्त्येन तु जानेन निवृत्तास्ते महोजसः ।

संबुद्ध्य चैव नामाथो अपवृत्तास्त्रयस्तु ते ॥६३

वहीं पर ऊर्ध्वं स्रोतों का सातवाँ सर्ग है वह मानुष सर्ग होता है । आठवाँ अनुग्रह नाम वाला सर्ग हैं और वह दो प्रकार का होता है—एक सात्त्विक सर्ग है और दूसरा तामस है ।५७। ये पाँच वैकृत अर्थात् विकार से युक्त सर्ग होते हैं और जो प्राकृत सर्ग हैं वे तीन कहे गये हैं । प्राकृत और वैकृत दोनों प्रकार का जो सर्ग है वह नवम कौमार होता है ।५८। प्राकृत तीनों सर्ग बुद्धि पूर्वक हैं । वैकृत सर्ग बुद्धि पूर्वं प्रवृत्त होते हैं और उसके बर्ग ब्राह्मण हैं ।५९। जिस प्रकार से ये सब हैं वे सब विस्तार से कीर्तित होने वाले हैं उनको समझ लीजिए । वह भी चार प्रकार से स्थित है और पूर्णरूप से समस्त भूतों में है ।६०। विपरीतता से शक्ति से बुद्धि से और सिद्धि से होते हैं । स्थावरों में तो विपर्यास होता है—तिर्यग् योनियों में सूक्ति से होता है ।६१। सिद्धात्मा मनुष्य पूर्णतया देवों में पुष्टि है । इसके उपरान्त ब्रह्माजी ने अपनी आत्मा के ही समान मानस अर्थात् मन से समुत्पन्नों का सृजन किया था ।६२। ये वैवर्त्य ज्ञान के द्वारा महान ओज वाले प्रवृत्ति के अर्थात् सृजन के कार्य से निवृत्त हो गये थे । नाम को भली भाँति जानकर वे तीनों अपवृत्त हो गये थे ।६३।

असृष्टवेव प्रजासगं प्रतिसर्गं सतस्ततः ।

ब्रह्मा तेषु व्यरक्ते षु ततोऽन्यान्साधकान्सृजत् ॥६४

स्थानाभिमानिनो देवाः पुनब्रह्मानुशासनम् ।

अभूतसृष्टयवस्था ये स्थानिनस्तान्निबोध मे ॥६५

आपोऽग्निः पृथिवी वायुरन्तरिक्षो दिवं तथा ।

स्वर्गो दिशः समुद्राश्च नद्यश्चौव वनस्पतीन् ॥६६

ओषधीनां तथात्मानो ह्यात्मनो वृक्षवीरुधाम् ।

लताः काष्ठाः कलाश्चौव मुहूर्ताः संधिरात्र्यहाः ॥६७

अर्द्धमासाश्च मासाश्च अयनाब्दयुगानि च ।

स्थाने स्रोतः स्वभीमानाः स्थानाख्याश्चौव ते स्मृताः ॥६८

स्थानात्मनः स सृष्ट्वा तु ततोऽन्यास तदाऽसृजत् ।

देवांश्चौव पितृश्चौव यैरिमा वर्द्धिताः प्रजाः ॥६९

भृगवंगिरा मरीचिष्ठ पुलस्त्यः पुलहः करुः ।

दक्षोऽत्रिश्च वसिष्ठश्च सोऽसृजन्नव मानसान् ॥७०

प्रजा की सृष्टि को न देखकर ही फिर ब्रह्माजी ने अनन्तर में प्रतिसर्ग की रचना की थी । उनके विरक्त हो जाने पर उन्होंने अन्य साधकों का सृजन किया था । ६१। देवगण अपने स्थान के अभिमान रखने वाले थे । ब्रह्माजी का अनुशासन हुआ । न ही सृष्टि की अवस्था वाले जो स्थानी थे उनकी ज्ञान आप लोग मुझसे प्राप्त कर लेवे । ६५। जल-अग्नि—पृथिवी—वायु—अन्तरिक्ष—दिव—स्वर्ग—दिशा—समुद्र—नदियाँ—वनस्पति—ओषधियों की आत्मायें—वृक्षों और वीरुधों की आत्मायें—लता—काष्ठा—कला—मुहूर्त—सन्धि—रात्रि—दिन—अर्धमास—मास अयन—अब्द—युग—ये स्थान में स्रोतों में अभिमान वाले हैं और वे स्थान नाम से कहे गये हैं । ६६-६८। उन ब्रह्माजी ने स्थानात्मा देखा तो ऐसा सेवलोकन करके उनका सृजन करके फिर उस समय में उन्होंने अन्नों का सृजन किया था । उन्होंने देवों की और पितृगणों की सृष्टि की थी जिनके द्वारा ये प्रजायें परिवर्धित हुई थीं । ६९। उन ब्रह्माजी ने अपने मन के द्वारा नी पुत्रों की सृष्टि की थी । वे नी ये हैं—भृगु—मरीचि—पुलस्त्य—पुलह—करु—दक्ष—अत्रि और वसिष्ठ । नी समय में इनका सृजन किया था । ७०।

न व ब्राह्मण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः ।

ब्रह्मा यथात्मकानां तु सर्वेषां ब्रह्मयोगिनाम् ॥७१

ततोऽसृजत्पुनर्ब्रह्मा रुद्रं रोषात्मसंभवम् ।

संकल्पं चौव धर्मं च सर्वेषामेव पर्वतान् ॥७२

सोऽसृजद्वयवसायं तु ब्रह्मा भूतं सुखात्मकम् ।

संकल्पाच्चैव संकल्पो जज्ञे सोऽव्यक्तयोनिनः ॥७३

प्राणाद्वक्षोऽसृजद्वाचां चक्षुभ्यां च मरीचिनम् ।

भृगुश्च हृदयाज्जज्ञे ऋषिः सलिलयोनिनः ॥७४

शिरसश्चांगिराश्चैव श्रोत्रादत्रिस्तथैव च ।

पुलस्त्यश्च तथोदानाद्यानात्तु पुलहस्तथा ॥७५

समानतो वसिष्ठश्च हृथपानान्निर्ममे क्रतुम् ।

इत्येते ब्रह्मण श्रेष्ठाः पुत्रा वै द्वादश स्मृताः ॥७६

धर्मदियः प्रथमजा विज्ञेया ब्रह्मणः स्मृताः ।

भृगवादयस्तु ये सृष्टा न च ते ब्रह्मवादिनः ॥७७

गृहमेधिपुराणास्ते विज्ञेया ब्रह्मणः सुताः ।

द्वादशैते प्रसूयंते सह रुद्रेण च द्विजाः ॥७८

ये नो ब्रह्मा ही हैं—ऐसा पुराण में निश्चय को प्राप्त हुए थे । इन सब ब्रह्मयोगी आत्मकों का ब्रह्मा के ही समान प्रभाव था । ७१। इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने रोष रूपी अपने आत्मज रुद्रदेव का सृजन किया था । सङ्कूल्प और धर्म का सृजन किया था और सभी के पर्वतों की रचना की थी । ७२। उन ब्रह्माजों ने व्यवसाय की सृष्टि की थी और ब्रह्मा ने सुखात्मक भूत की रचना की थी । उन्होंने अव्यक्त योगी सङ्कूल्प से सङ्कूल्प को जन्म दिया था । ७३। दक्ष ने प्राण वाक् का सृजन किया था और चक्षुओं से मरीचि को उत्पन्न किया था । सलिल योगी के हृदय से भृगु ऋषि उत्पन्न हुए थे । ७४। शिर से अञ्जिरा ने जन्म ग्रहण किया था । उदान वायु से पुलस्त्य उत्पन्न हुए व्यान से पुलह का उद्भव हुआ था । ७५। समान नामक वायु से वसिष्ठ ऋषि की उत्पत्ति हुई थी, अपान वायु से क्रतु ने जन्म ग्रहण किया था । ये इतने ब्रह्माजी के परमश्रेष्ठ बारह पुत्र समुत्पन्न हुए थे । हे-

द्विजगणो ! ये ब्रह्माजी के द्वादश पुत्र परमश्रेष्ठ हुए थे । ७६। धर्म आदिक प्रथम उत्पन्न होने वाले ब्रह्माजी के पुत्र कहे गये जानसे चाहिए । जो भृगु आदि की सृष्टि की गयी थी वे ब्रह्मवादी नहीं थे । ७७। वे गृहमेधी पुराण ब्रह्माजी के पुत्र समझने चाहिए । ये द्वादश रुद्र के माथ प्रसूत होते हैं । ७८।

क्रतुः सनत्कुमारश्च द्वादशतावृद्धर्वरेतसौ ।

पूर्वोत्पन्नो तुरा ह्य तौ सर्वेषामपि पूर्वजो ॥७९

व्यतीतौ सप्तमे कल्पे पुराणौ लोकसाधकौ ।

विरजेतेऽत्र वै लोके तेजसाक्षिप्त्य चात्मनः ॥८०

तावुभौ योगधर्माणावारोप्यात्मानमात्मना ।

प्रजाधर्मं च कामं च वर्तयेते महीजसौ ॥८१

यथोत्पन्नस्तथैवेह कुमार इति चोच्यते ।

ततः सनत्कुमारेति नाम तस्य तिष्ठितप् ॥८२

तेषां द्वादश ते वंशा दिव्या देवगणान्विताः ।

क्रियावन्तः प्रजावन्तो महर्षिभिरलंकृताः ॥८३

तणजांस्तु स दृष्ट्या वै ब्रह्मा द्वादश सात्त्विकान् ।

ततोऽसुरान्पितृ न्देवान्मनुष्याश्चासृजत शु ॥८४

क्रतु और सनत्कुमार ये दो ब्रह्माजी के पुत्र ऊर्ध्वरेता थे । पूर्व की उत्पत्ति में प्राचीन काल में ये दोनों सबके पूर्व में जन्म ग्रहण करने वाले हुए थे । ७९। प्रथम कल्प में लोक साधक पुराण व्यतीत हो गये थे और इस लोक में आत्मा के तेज से आक्षिप्त होकर विरेजित होते हैं । ८०। योग के धर्म वाले वे दोनों आत्मा से आत्मा का आरोप करके दोनों महात् ओज वाले प्रजा के धर्म को और काम को वर्तित करते हैं । ८१। जैसे ही उत्पन्न हुआ या वैसे ही यहाँ पर कुमार—यह कहा जाया करता है । इसके अनन्तर उसका नाम सनत्कुमार—यह प्रतिष्ठित हुआ था । ८२। उनके द्वादश वंश ये जो परम दिव्य और देवगणों से समन्वित थे । वे सब क्रिया वाले ये और महर्षियों से अलंकृत थे । ८३। उन ब्रह्माजी ने उन बारह सात्त्विक प्राणजों को देख कर फिर प्रभु ने असुरों को—पितृगणों को—इवों को और मनुष्यों को सृजित किया था । ८४।

मुखादेवान जनयत् पितृश्चौवाथ वक्षसः ।

प्रजननान्मनुष्यान्वै जगनान्निर्ममेऽसुरान् ॥८५

नक्तं सृजन्पुनर्ब्रह्मा ज्योत्स्नाया मानुषात्मनः ।

मुद्धायाश्च पितृश्चौव देवदेवः ससर्ज ह ॥८६

मुख्यामुख्यान् सृजन्देवान सुरांश्च ततः पुनः ।

मनसश्च मनुष्यांश्च पितृवन्महतः पितृन् ॥८७

विद्युतोऽशनिमेघांश्च लोहिते न्द्रधनूषि च ।

ऋचो यजूषि सामानि निर्ममे यज्ञसिद्धये ॥८८

उच्चावचानि भूतानि महसस्तस्य जज्ञिरे ।

ब्रह्मणस्तु प्रजासर्ग देवषिपितृमानवम् ॥८९

पुनः सृजति भूतानि चराणि स्थावराणि च ।

यक्षान्पिण्डाचान् गन्धर्वान्सर्वशोऽप्सरसस्तथा ॥९०

नरकिन्नररक्षांसि वयः पशुमृगोरगान् ।

अव्ययं वा व्यमङ्गचैव द्वयं स्थावरजङ्गमम् ॥९१

ब्रह्माजी ने अपने मुख से देवगणों को उत्पन्न किया था, अपने वक्षः स्थल से पितृगणों को जन्म ग्रहण कराया था—प्रजनन से मनुष्यों को और जघन से असुरों को निर्मित किया था । ८५। फिर देवताओं के भी देव ब्रह्मा जी ने मानुषात्मा की ज्योत्स्ना से रात्रि का सृजन किया था—सुधा की और पितृगणों की सृष्टि की थी । ८६। मुख्य और अमुख्य देवों का और असुरों का सृजन करते हुए इसके अधन्तर मन से मनुष्यों का और पिता के ही समान महान् पितृगणों का सृजन किया था । ८७। विद्युत् की—वज्र की—मेघों की और लोहित इन्द्रधनुषों की—ऋचाओं की अथर्ति ऋग्वेद की—यजुर्वेद की और सामवेद की—यज्ञ की सिद्धि के लिये निर्मित की थी अथर्ति रचना की थी अथर्ति रचना की थी । ८८। ब्रह्मा के तेज से उच्च और अवच प्राणी उत्पन्न हुए थे । प्रजा के सर्ग में देव ऋषि-पितृगण और मानव सभी हुए थे । ८९। फिर उन्होंने प्राणियों का—बरों का और स्थावरों का सृजन किया था यक्ष-पिण्डाच गन्धर्व और सब प्रकार की अप्सराओं का सृजन करते हैं । ९०। नर-किन्नर-राक्षस-पक्षी-पशु-मृग और उरगों का सृजन किया करते हैं । अव्यय अथवा व्यय दोनों स्थावरों जंगमों का सृजन करते हैं । ९१।

तेषां ते यांति कर्माणि प्राक् सृष्टानि स्वयंभुवा ।

तान्येव प्रतिपद्यांते सृज्यमानाः पुनः पुनः ॥६२

हिस्त्राहिस्त्रे मृदुकूरे धर्मधिभौं कृताकृते ।

तेषामेव पृथक् सूतमविभक्तं त्रयं विदुः ॥६३

एतदेवं च नैवं च न चोभे नानुभे तथा ।

कर्म स्वविषयं प्राहुः सत्वस्थाः समदर्शिनः ॥६४

नामात्मपञ्चभूतानां कृतानां च प्रपञ्चताम् ।

दिवशब्देन पञ्चैते निर्मने स महेश्वरः ॥६५

आर्षाणि चैव नामानि याश्च देवेषु सृष्टयः ।

शर्वर्या न प्रसूयन्ते पुनस्तेभ्यो दधत्प्रभुः ॥६६

इत्येवं कारणाद्भूतो लोकसर्गः स्वयंभुवः ।

महदाद्या विशेषान्ता विकाराः प्राकृताः स्वयम् ॥६७

चन्द्रसूर्यप्रभो लोको ग्रहनक्षत्रमण्डितः ।

नदीभिश्च समुद्रैश्च पर्वतैश्च सहस्रशः ॥६८

वे सब उनके कर्मों को प्राप्त होते हैं जिनका कि स्वयदम्भुने पूर्व में ही सृजन कर दिया था । बार-बार सृजन को प्राप्त होते हुए उन्हीं कर्मों को प्रतिपन्न हुआ करते हैं । ६२। हिस्त्र और अहिसा वाले, मृदु और क्रूर-धर्म और अधर्म ओर कृत तथा अकृत उनके ही पृथक् उत्पन्न हुए थे । यह अविभक्त तीन जान लीजिए । ६३। यह इस प्रकार से है और इस प्रकार से नहीं है—दोनों ही नहीं हैं और दोनों हैं । सत्त्व में स्थित समदर्शी अर्थात् सबको एक ही समान देखने वाले अपने विषय को कर्म कहते हैं । ६४। नामात्म पञ्चभूतों की और कृतों की प्रपञ्चता को बनाया था । उन महेश्वर ने दिन शब्द से ये ही पाँच हैं जिसका निर्माण किया था । ६५। देवों में जो सृष्टियाँ हैं और आर्ष नाम हैं शर्वरी में प्रसूत नहीं होते हैं—फिर प्रभु ने उनके लिए धारण किया था । ६६। यह इसी रीति से स्वयम्भू का कारण से लोकों का सर्ग हुआ था । महत् जिनके आदि में होने वाला है तथा विशेष के अन्त पर्यन्त विकार स्वयं प्राकृत हैं । ६७। चन्द्रमा और सूर्य की प्रभा वाला लोक जो ग्रहों और नक्षत्रों से मण्डित है । जहाँ बहुत नदियाँ हैं—समुद्र है और

पुरे शब्द विविधं रम्यं स्फीतैर्जीनपदैदस्तथा ।

अस्मिन् ब्रह्मवनेऽव्यो ब्रह्मा चरति सर्ववित् ॥६६

अव्यक्तवीजप्रभवस्तस्यैवानुग्रहे स्थितः ।

बुद्धिस्कन्धमयश्चैव इन्द्रियान्तरकोटरः ॥१००

महाभूतप्रकाशश्च विशेषैः पत्रवास्तु सः ।

धर्मधर्मसुपुष्पस्तु सुखदुःखफलोदयः ॥१०१

आजीवः सर्वभूतानां ब्रह्मवृक्षः सनातनः ।

एतद्ब्रह्मवनं चौब्रह्मवृक्षस्य तस्य तत् ॥१०२

अव्यक्तं कारणं यत्र नित्यं सदसदात्मकम् ।

धानं कृति मायां चौवाहुस्तत्वचितकाः ॥१०३

इत्येषोऽनुग्रहः सर्गो ब्रह्मनैमित्तिकः स्मृतः ।

अबुद्धिपूर्वकाः सर्गा ब्रह्मणः कृतास्त्रयः ॥१०४

मुख्यादयस्तु षट् सर्गा वैकृता बुद्धिपूर्वकाः ।

वैकल्पात्संप्रवर्तते ब्रह्मणस्तेभिमन्यवः ॥१०५

अनेक सुरम्य पुरों से तथा परम स्फीत जनपदों से समलकृत हैं—इस ब्रह्मवन में सबके जाता अव्यक्त ब्रह्माजी सञ्चरण किया करते हैं । ६६। अव्यक्त के बीज से जो समुत्पत्ति है वह अनेक ही अनुग्रह में स्थित होता है । यह एक वृक्ष है—ऐसा ही रूपक यहाँ पर दिया जाता है—इसकी बृद्धि ही स्कन्धों से परिपूर्ण है और अन्य इन्द्रियाँ कोटर हैं । १००। महाभूतों का प्रकाश है और विशेषों से वह पत्रों वाला है । इसके धर्म और अधर्म पुष्प हैं तथा उनका परिणाम रूप सुख और दुःख इसके फलों का उदय है । १०१। यह सनातन अर्थात् सर्वदा से चला जाने वाला ब्रह्म वृक्ष समस्त प्राणियों की आजीव होता है । उस ब्रह्म वृक्ष का यह ब्रह्मवन है । १०२। यहाँ पर सत् और असत् स्वरूप वाला नित्य अव्यक्त ही कारण है । तत्वों के चिन्तन करने वाले मनीषी इसको प्रधान-प्रकृति और माया कहा करते हैं । १०३। कृपा से होने वाला इस रीति से यह अनुग्रह सर्व ब्रह्म के निमित्त वाला कहा गया है । अबुद्धि पूर्वक ब्रह्माजी के तीन सर्ग हैं जो प्राकृत कहे गये हैं । १०४। मुख्य आदिक छे सर्ग हैं जो प्राकृत न होकर वैकृत कहे जाते हैं और बुद्धि

के योग से किये जाते हैं। ब्रह्मा के अभियन्यु वे वैकल्प से संप्रवृत्त होते हैं। १०५।

इत्येते प्राकृताश्चौब वैकृताश्च नव स्मृताः ।

सर्गः परस्परोत्पन्नाः कारणं तु बुधैः स्मृतम् ॥ १०६ ॥

मूढानिं वै यस्य वेदा वदंति वियन्नाभिश्चन्द्रसूर्योँ च नेत्रे ।

दिशः श्रोत्रे विद्धि पादौ क्षिंति च सोऽचित्यात्मा

सर्वभूत-णेता ॥ १०७ ॥

वक्षत्राद्यस्य ब्राह्मणाः संप्रसूता वक्षसश्चौब क्षत्रियाः पूर्वभागे

वैश्या ऊरुभ्यां यस्य पदभ्यां च शूद्राः सर्वे वर्णा गात्रतः

संप्रसूताः ॥ १०८ ॥

नारायणात्परोव्यक्तादंडमव्यक्तसंजितम् ।

अंडजस्तु स्वयं ब्रह्मा लोकास्तेन कृताः स्वयम् ॥ १०९ ॥

तत्र कल्पात् दण स्थित्वा सत्यं गच्छन्ति ते पुनः ।

ते लोका ब्रह्मलोकं वै अपरावर्तिनीं गतिम् ॥ ११० ॥

आधिपत्यं विना ते वै ऐश्वर्येण तु तत्समाः ।

भवन्ति ब्रह्मणा तुल्या रूपेण विषयेण च ॥ १११ ॥

तत्र ते ह्यवितिष्ठन्ते प्रीतियुक्ताः स्वसंयुताः ।

अश्वयं भाविनार्थेन प्राकृतं तनुते स्वयम् ॥ ११२ ॥

ये इस प्रकार से प्राकृत और वैकृत नौ सर्ग कहे गये हैं। ये सर्ग परस्पर में ही समुत्पन्न हुए हैं और बुधजनों ने तो कारण बताया है। १०६। वेद जिसके मूर्धा को कहते हैं—वियत इसकी नाभि है और चन्द्र तथा सूर्य जिसके दोनों नेत्र हैं। दिशाये इसके श्रोत्र हैं, भूमिको इसके चरण समक्षिए—वह न चिन्तन करने के योग्य आत्मा वाला और समस्त भूतों का प्रणेता है। १०७। जिसके मुखसे ब्राह्मण समुत्पन्न हुए हैं और जिसके वक्षःस्थल से पूर्वभाग में क्षत्रियों की समुत्पत्ति हुई है। जिसके ऊरुओं से वैश्य और पदों से शूद्र समुदभूत हुए हैं। सभी चारों वर्ण उसी के शरीर से उत्पन्न हुए हैं। १०८। व्यक्त नारायण से पर अण्ड है जो अव्यक्त संज्ञा वाला है। इस अण्ड से जन्म ग्रहण करने वाला स्वयं ब्रह्मा है और उसी के द्वारा स्वयं लोकों की

रखना की गयी है । १०९। वहाँ पर दश कल्पों तक स्थित होकर वे फिर सत्य को चले जाया करते हैं । वे लोक ब्रह्मलोक को जाते हैं जो कि गति अपरा-वस्तिनी होती है । ११०। विना आधिपत्य के वे निश्चय ही ऐश्वर्य के द्वारा उसके समान होते हैं । वे सभी स्वरूप से और विषय से ब्रह्मा के ही तुल्य होते हैं । वहाँ पर वे स्वयंयुत प्रीति से युक्त होते हुए अवस्थित रहा करते हैं । अवश्यम्मावी अर्ध में वे प्राकृत को स्वयं विस्तृत किया करते हैं । १११-११२।

नानात्वेन।भिसंबंध्यास्तदा तत्कालभाविताः ।

स्वतोऽबुद्धिपूर्वं हि बोधो भवति ती यथा ॥११३॥

तत्कालभाविते तोषां तथा ज्ञानं प्रवर्त्तते ।

प्रत्याहारैस्तु भेदानां तेषां हि न तु शुद्धिमणाम् ॥११४॥

तैश्चा साध्यं वर्तते कायाणि कारणानि च ।

नानात्वदर्शिनां तेषां ब्रह्मलोकनिवासिनाम् ॥११५॥

विनिवृत्तविकाराणां स्वेन धर्मेण तिष्ठताम् ।

तुल्यलक्षणसिद्धास्तु शुभात्मानो निरञ्जनाः ॥११५॥

प्राकृते करणोपेताः स्वात्मन्येव व्यवस्थिताः ।

प्रस्थापयित्वा ज्ञात्मानं प्रकृतिस्त्वेष तत्त्वतः ॥११७॥

पुरुषान्यवहृत्वेन प्रतीता न प्रवर्त्तते ।

प्रवर्त्तते पुनः सर्गस्तेषां साकारणात्मनाम् ॥११८॥

संयोगः प्रकृतिज्ञेया युक्तानां तत्वदर्शिनाम् ।

तत्रोपवर्गिणी तेषामपुनभरिगामिनाम् ॥११९॥

उस समय में उस काल से भावित होते हुए नानात्व से अभि संबंध्य होते हैं । अबुद्धि पूर्वक शयन करते हुए जैसे ही निश्चित बोध होता है ।

११३। उस काल से भाषित होने पर उनको उस प्रकार का ज्ञान प्रवृत्त होता है । उन भेदों के प्रत्याहारों से ही होता, शुद्धियों का नहीं होता है । ११४। और उनके साथ ही कार्य तथा कारण प्रवृत्त हुआ करते हैं । नानात्व के दर्शी ब्रह्मलोक के निवासी उनका जो अपने धर्म से विषेष रूप से निवृत विकारों वाले हैं और स्थित हैं तुल्य लक्षण वाले सिद्ध-शुभात्मा और

निरञ्जन हैं । ११५-११६। प्राकृत सर्ग में कारणों से उपेत है और अपनी आत्मा में ही व्यवस्थित है । और आत्मा को प्रख्यापित करके तत्त्व से यह प्रकृति है । १७। पुरुषान्य से यह प्रतीत प्रवृत्त नहीं होती है । फिर उन साकारणात्माओं का सर्ग प्रवृत्त होता है । १८। युक्त तत्त्व दशियों का संयोग प्रकृति जाननी चाहिए । अपुनभरिगामी उनकी वह उपर्गिणी है । १९।

अभावतः पुनः सत्यं शांतानामचिषामिव ।

ततस्तेषु गतेषु द्वं त्रैलोक्यात् मुदात्मसु ॥ १२० ॥

ते सार्द्धं यैर्महल्लोकस्तदानासादितस्तु वै ।

तच्छिष्या ये ह तिष्ठन्ति कल्पदाह उपस्थिते ॥ १२१ ॥

गन्धवद्याः पिशाचाश्च मानुषा ब्राह्मणादयः ।

पशवः पक्षिणश्चैव स्थावराः ससरीसृपाः ॥ १२२ ॥

तिष्ठसु तेषु तत्कालं पृथिवीतलवासिषु ।

सहस्रं यत्तु रश्मीनां सूर्यस्येह विनश्यति ॥ १२३ ॥

ते सप्त रश्मयो भूत्वा एकैको जायते रविः ।

क्रमेण शतमानास्ते त्रीलोकान्प्रदहंत्युत ॥ १२४ ॥

जङ्गमान्स्थावरांश्चैव नदीः सर्वाश्च पर्वतान् ।

शुष्केपूर्वानुष्टुच्या यैस्तैश्चैव प्रतापिताः ॥ १२५ ॥

तदा ते विवशाः सर्वे निर्दग्धाः सूर्यरशिमभिः ।

जङ्गमाः स्थावराश्चैव धर्मधिर्मादिकास्तु वै ॥ १२६ ॥

अचियों की भाँति शान्तों के अभाव से फिर सत्य है । इसके अनन्तर मुदात्मा उनके त्रैलोक्य से ऊपर गत हो जाने पर वे जिनके द्वारा उस समय में महल्लोक अनासादित है । कल्पदाह के उपस्थित होने पर जो उनके शिष्य हैं स्थित रहा करते हैं । १२०-१२१। गन्धवं आदिक-पिशाच-मानुष और ब्राह्मण आदि पशु-पक्षो-स्थावर-सरीसृप उस समय में पृथिवीतल वाली उनके स्थित रहने पर यहाँ पर सूर्य की सहज रशिमयाँ विनष्ट हो जाती हैं । १२२-१२३। वे सब सूर्य की किरणें सात रशिमयाँ होकर एक-एक सूर्य हो जाया करता है वे क्रम से शत स्वरूप होकर तीनों लोकों को प्रदान किया करते हैं । रश्म जानी वाली तीनों लोकों को दूरी में की

वृष्टि के न होने से शुष्क हो रहे थे और जिनके द्वारा वे शुष्क थे उन्हीं के द्वारा बहुत तापित किये गये थे अर्थात् शुष्क वे एकदम प्राप्त हो गये थे । १२५। इस समय में कहीं पर भी परिव्राण नहीं था और वे सब विषम होकर सूर्य के प्रखर प्रतस किरणों से निःशेष रूप से दग्ध हो गये थे । इनमें सभी स्थावर-ज़म और धर्म तथा अधर्म आदि थे । १२६।

दग्धदेहास्तदा ते तु धूतपापा युगात्यये ।

ख्यातातपा विनिर्मुक्ताः शुभया चातिबंधया ॥ १२७ ॥

ततस्ते ह्युपपद्यते तुल्यरूपैर्जनैर्जनाः ।

उषित्वा रजनीं ते च ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ १२८ ॥

पुनः सर्गे भवन्तीह मानस्यो ब्रह्मणः प्रजाः ।

ततस्ते षु प्रपन्नेषु जनैस्त्रै लोकयवासिषु ॥ १२९ ॥

निर्दर्शेषु च लोकेषु तदा सूर्येस्तु सप्तभिः ।

वृष्टया क्षितौ प्लावितायां विजनेष्वर्णवेषु वा ॥ १३० ॥

समुद्राश्वचैव मेघाश्च आपश्वचैवाथ पार्थिवाः ।

शरमाणा व्रजन्त्येव सलिलाख्यास्तथाचलाः ॥ १३१ ॥

आगतागतिकं चैव यदा तु सलिलं बहु ।

संछाद्येमां स्थितां भूमिमर्णवाख्यं तदाऽभवत् ॥ १३२ ॥

आभाति यस्माच्चाभासादभाशब्दः कांतिदीप्तिषु ।

स सर्वः समनुप्राप्ता मासां भाष्यो विभाव्यते ॥ १३३ ॥

उस अवसर पर युग के अत्यय में वे देहों के दग्ध हो जाने पर निष्पाप हो गये थे तथा ख्यातातप और शुभ बन्धा से विनिर्मुक्त थे । १२७। इसके उपरान्त वे तुल्यरूप वाले जनों के स्वाका जन उत्पन्न होते हैं । और वे अव्यक्त जन्म वाले ब्रह्मा की रात्रि में बहुं निवास करके फिर सृजन की वेला में ब्रह्माजी की मानसी प्रजा होती हैं । फिर जनों के साथ त्रैलोक्य वासी उनके प्रयत्न होने पर तथा संतस सूर्य की प्रखर किरणों से उस समय में लोकों के निर्दंश हो जाने पर वृष्टि के द्वारा सम्पात से भूमि के प्लावित होने पर तथा विजन अण्विं में निमग्न हो जाने पर समुद्र-मेघ-जल और पार्थिव सब शरमाण होते तथा अचल सलिल से ज्ञान वाले होकर सब ही गमन कर जाया करते हैं अर्थात् विनष्ट हो जाते हैं । १२८-१३१। जिस समय

में आभास गतिक जल प्रचुर मात्रा में हो जाता है तो वह इस भूमि को संच्छादित करके सभी समुद्र नाम वाला हो जाता है । १३२। भी शब्द जिस आभास से कान्ति-वीरियों में आभास होता है । वह सभी भाओं को समनुप्राप्त हुए जो कि भाओं से विभावित होता है । १३३।

तदंतस्तनुते यस्मात्सर्वा पृथ्वी समंततः ।

धातुस्तनोति विस्तारं ततोपतनवः स्मृताः ॥ १३४ ॥

शार इत्येव जीर्णं तु नानार्थो धातुरुच्यते ।

एकार्णवे भवत्यापो न जीर्णस्तेन ता नराः ॥ १३५ ॥

तस्मिन् युगसहस्राते संस्थिते ब्रह्मणोऽहनि ।

तावत्कालं रजन्यां च वर्तन्यां सलिलात्मनः ॥ १३६ ॥

ततस्ते सलिले तस्मिन् नष्टाग्नौ पृथिवीतले ।

प्रशांतवातेऽन्धकारे निरालोके समंततः ॥ १३७ ॥

येनैवाद्विष्टितं हीदं ब्रह्मणः पुरुषः प्रभुः ।

विभागमस्य लोकस्य प्रकर्तुं पुनरैच्छत ॥ १३८ ॥

एकार्णवे ततस्तस्मिन्नष्टे स्थावरजङ्गमे ।

तदा भवति स ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ १३९ ॥

सहस्रीष्ठा पुरुषो रुक्मिवर्णो ह्यतीद्रियः ।

ब्रह्मा नारायणारुद्धस्तु सुष्वाप सलिले तदा ॥ १४० ॥

सत्त्वोद्वेकात्प्रबुद्धस्तु स शून्यं लोकमैक्षत ।

अनेनाद्येन पादेन पुराणं परिकीर्तितम् ॥ १४१ ॥

उसके अन्दर जिससे सभी ओर से इस पृथ्वी का विस्तार किया करता है । धातु विस्तार को फैलाता है उसके पश्चात् उपतनु कहे गये हैं । १३४। यार यही ही जीर्ण हो जाने पर अनेक अर्थे धातु कहा जाता करता है । एकमात्र समुद्र में जल ही होते हैं । उससे वे नर जीर्ण नहीं होते हैं । १३५। उस एक सहस्र युगों के अन्त में ब्रह्मा के दिन के संस्थित होने पर तब तक के ममय में मलिलात्मा की रात्रि के बसने पर रजनी ही रहती है । १३६। इसके उपरान्त उस जलमें विनष्ट अग्नि वाले पृथ्वी तत्र में-वायु के एक दम प्रशान्त होने पर एक दम अन्धकार रहता है और सभी और आलोक

का अभाव होता है । १३७। जिसके द्वारा यह अविष्ट है ब्रह्मा के पर पुरप्रभु ने इस लोक के विभाग करने की इच्छा की थी । १३८। उस समय में केवल एक ही समुद्र था और सभी वर तथा अचर जगत् एकदम विनष्ट ही गया था । तब वह ब्रह्मा सहस्रों पादों वाले होते हैं । १३९। वह पुरुष सहस्रों शीर्षों वाले हैं जिनका वर्ण सुर्खण के समान है और जो इन्द्रियों की पहुँच से परे है । उस समय में नारायण नाभिधारी ब्रह्मजी जन्म में जन्मन कर रहे थे । १४०। सत्त्व के उद्रेक से प्रकृति जान वाले उन्होंने सम्पूर्ण लोक को शून्य देखा था । इस आख पाद ने पुराण को परिकीर्तित किया था । १४१।

कल्प प्रतिसंधि वर्णनम्

सूत उवाच—इत्येवं प्रथमं पादं प्रकृत्यर्थं प्रकीर्तितम् ।

श्रुत्वा तु संहृष्टमनाः काषेयः संशयायति ॥१॥

आराध्य अचसा सूतं तस्यार्थं त्वपरा कथाम् ।

अथ प्रभृति कल्पज् प्रतिसंधिः प्रचक्षते ॥२॥

समनीतस्य कल्पस्य वर्तमानस्य चानयोः ।

कल्पयोरंतरं यत्र प्रतिसंधिश्च यस्तयोः ।

एतद्देदिनुभिल्लामि यथावत्कुण्डलो ह्यसि ॥३॥

काषेयेनैवमुक्तस्तु सूतः प्रवदतां वरः ।

श्रैलोक्यस्योदिभवं कृत्स्नदाख्यातुमुपचक्रमे ॥४॥

सूत उवाच—अत्र वै वर्णदिव्यामि याथातथ्येन सुव्रताः ।

कल्पं भूतं भविष्यं च प्रतिसंधिश्च यस्तयोः ॥५॥

मन्वंलराणि कल्पेषु यानि यानि छ सुव्रताः ।

यज्ञाय वर्तन्ते कल्पो वाराहः सांप्रतः शुभः ॥६॥

अस्मात्कल्पात् यः पूर्वः कल्पोऽतीतः सनातनः ।

तस्य चास्य च कल्पस्य मध्यावस्थां नियोधत ॥७॥

श्री सूतजी ने कहा—यह प्रकीर्ति के लिए प्रथम पाद कीर्तित किया है । इसका अवण करके काषेय के मन में बहुत ही संहर्ष हुआ था किन्तु उसके मन में संशय भी होता है ॥१। उन्होंने वाणी के द्वारा सूतजी की

आराधना की थी और उसका अर्थ तथा दूसरी कथा को अवण करने की इच्छा की थी। आज से लेकर कल्पज्ञ प्रति सन्धि कहा जाता है । २। बीत हुए कल्प का और वर्तमान कल्प की इन दोनों का अन्तर और जहाँ पर उन दोनों की प्रतिसन्धि है। यह मैं जानना चाहता हूँ क्योंकि आप ठीक प्रकार से यह बताने के लिए परम कुण्डल हैं । ३। कापेय के द्वारा इस प्रकार से पूछे जाने पर प्रवचन करने वालों में श्रेष्ठ सूतजी ने यह सम्पूर्ण ही करने का उपक्रम किया था । ४। श्री सूतजी ने कहा था—हे मुन्द्र व्रतों वालो ! इस विषय में जो कुछ भी है वह सभी यथार्थ रूप से वर्णन करूँगा । कल्प जो हो गये हैं और आगे होने वाले हैं तथा इन दोनों की जो प्रति सन्धि है—इसको भी बताऊँगा । ५। इन कल्पों में जो-जो भी मन्वन्तर है और जो यह कल्प वर्तमान है वह इस समय कल्प परम शुभ वाराह है । ६। इस कल्प से पूर्व में होने वाला जो कल्प था जो कि सनातन व्यतीत हो गया है उसकी और इस कल्प की जो मध्य में होने वाली अवस्था है उसका ज्ञान अब प्राप्त करलो । ७।

प्रत्यागते पूर्वकल्पे प्रतिसंधि विनाऽनधाः ।

अन्यः प्रवर्त्तते कल्पो जनलोकादयः पुनः ॥८

व्युच्छिन्नप्रतिसंधिस्तु कल्पात्कल्पः परस्परम् ।

व्युच्छिद्यन्ते प्रजाः सर्वाः कल्पांते सर्वशस्तदा ॥९

तस्मात्कल्पात् कल्पस्य प्रतिसंधिर्विद्यते ।

मन्वंतरे युगाख्यानामविच्छिन्नास्तु संधयः ॥१०

परस्परात् प्रवर्तते मन्वतरयुर्गः सह ।

उक्ता ये प्रक्रियार्थेन पूर्वकल्पाः समासतः ॥११

तेषां पराद्वकल्पानां पूत्रो यस्मात् यः परः ।

आसीत्कल्पे व्यतीते वे पराद्वत्परमस्तु यः ॥१२

कल्पास्त्वन्ये भविष्या ये ह्यपराद्वगुणीकृताः ।

प्रथमः सांप्रतस्तेषां कल्पो यो वर्तते द्विजाः ॥१३

अस्मिन्पूर्वे पराद्वे तु द्वितीयः पर उच्यते ।

तथा संतिविवरणात् प्रत्यवहुरवदात् समृद्धा ॥१४

हे अनधी ! प्रतिसन्धि के बिना पूर्वकल्प के प्रत्यागत होने पर अन्य कल्प प्रवृत्त होता है और फिर जन लोकादिक होते हैं । ८। व्युच्छिन्न प्रति-सन्धि वाला कल्प से परस्पर में होता है । उस अवसर पर सभी ओर से कल्प के अन्त में सम्पूर्ण प्रजा व्युच्छिन्न हुआ करती है । ९। उस कल्प से कल्प की प्रतिसन्धि नहीं होती है । मन्वन्तर में युगाख्यों की सन्धियाँ अविच्छिन्न होती हैं । १०। मन्वन्तर युगों के साथ परस्पर से प्रवृत्त होता है । जो सक्षेप से प्रक्रियार्थ के द्वारा पूर्व कल्प कहे हैं । ११। उन पराधी कल्पों के पूर्व जिससे जो पर है । पूर्व कल्प के व्यतीत होने पर पराधी से परम जो था । १२। जो अन्य भविष्य में होने वाले कल्प हैं वे अपराधी गुणी कृत हैं । हे द्विजगणो ! उनमें अब होने वाला कल्प है जो कि इस समय में वर्तमान है । १३। इसमें पूर्व पराधी में जो द्वितीय है वह पर कहा जाता है । यह संस्थित काल वाला है और फिर प्रत्याहार कहा गया है । १४।

अस्मात्कल्पात्ततः पूर्वं कल्पोऽतीतः पुरातनः ।

चतुर्युंगसहस्रांते सह मन्वंतरैः पुरा ॥ १५

क्षीणे कल्पे ततस्नस्मिन् दाहुकाल उपस्थिते ।

तस्मन्काले तदा देवा आसन्वैमानिकास्तु ये ॥ १६

नक्षत्रग्रहताराष्ट्रच चन्द्रसूर्यादियस्तु ते ।

अष्टाविंशतिरेवैताः कोट्यस्तु सुकृतात्मनाम् ॥ १७

मन्वंतरे यथैकस्मिन् चतुर्दशसु वै तथा ।

श्रीणि कोटिणातान्यासन् कोटयो द्विनवतिस्तथा ॥ १८

अथाधिकासप्ततिश्च सहस्राणां पुरा स्मृता ।

एकैकस्मिस्तु कल्पे वै देवा वैमानिकाः स्मृताः ॥ १९

अथ मन्वंतरेष्वासंश्चतुर्दशसु खे दिवि ।

देवाश्च पितरश्चैव ऋषयोऽमृतपास्तथा ॥ २०

तेषामनुचराश्चैव पत्न्यः पुत्रास्तथैव च ।

वर्णश्रिमातिरिक्ताश्च तस्मन्काले तु खे सुराः ॥ २१

तैस्तैः सायुज्यगैः साढ़े प्राप्ते वस्तुमये तदा ।

तुल्यनिष्ठाभवन्सर्वे प्राप्ते ह्याभूतसंप्लवे ॥ २२

फिर इस कल्प से पूर्वी में होने वाला अतीत पुरातन कल्प है जो पहिले एक जहसू चारों युगों की चौकड़ी के अन्त में मन्वन्तरों के साथ है । १५। फिर उस कल्प के क्षीण हो जाने पर और दाह काल के उपस्थित होता है । उस समय में तब जो भौमानिक देव हैं वे ये । १६। वे नक्षत्र-ग्रह और नारायण तथा चन्द्र सूर्य आदिक हैं । वे सब अट्ठाईस हैं । सुकृतात्माओं की करोड़ों की संख्या है अर्थात् जिन्होंने सुकृत किया है उन्हीं की करोड़ों संख्या है । १७। जिस प्रकार से एक मन्वन्तर में तथा चौदहों में वे तीन करोड़ ये तथा बानवे करोड़ थे । १८। इसके अनन्तर अर्थात् विमानों में रहने वाले देवगण कहे गये हैं । १९। इसके अनन्तर आकाश में दिवलोक में चौदह मन्वन्तरों में थे । उनमें देवगण-पितृगण-ऋषिगण तथा अमृत के पान करने वाले थे । २०। उनके अनुचर हैं, उनकी पत्नियाँ हैं और उनके पुत्र भी होते हैं । उस काल में आकाश में सुरगण वर्णों और आश्रमों से अतिरिक्त थे । २१। उस काल में वस्तुओं से परिपूर्ण प्राप्ति होने पर उन-उन सायुज्य में गमन करने वालों के साथ में थे । आभूत संप्लव अर्थात् महा प्रलय के प्राप्ति होने पर वे तुल्य निष्ठा वाले हुए थे । २२।

ततस्तेऽवश्यभावित्वाद् बुद्ध्याः पर्यायमात्मनः ।

त्रैलोक्यवासिनो देवा इह तानाभिमानिकः ॥२३॥

स्थितिकाले तदा पूर्ण आसन्ने पश्चिमोत्तरे ।

कल्पावसानिका देवास्तस्मिन्प्राप्ते ह्युपप्लवे ॥२४॥

तदोत्सुका विषादेन त्यक्तस्थानानि भागशः ।

महर्लोकाय संविग्नास्ततस्ते दधिरे मनः ॥२५॥

ते युक्तानुपपद्यांते महतीं च शरीरिके ।

विशुद्धिवद्वलाः सर्वे मानसीं सिद्धिमास्थिताः ॥२६॥

तै कल्पवासिभिः साद्धूं महानासादितस्तदा ।

ब्राह्मणः क्षत्रियवैश्यैस्तद्भूवैश्चापरर्जनैः ॥२७॥

गत्वा तु ते महर्लोकं देवसंघाश्चतुर्दश ।

ततस्ते जनलोकाय सोद्वेगा दधिरे मनः ॥२८॥

इसके उपरान्त वे तान के अभिमानी देवगण जो त्रैलोक्य के निवासी थे यहाँ पर आत्मा की बुद्धि के अवश्य भावी होने से थे । २९। उस काल में

स्थिति का समय पूर्ण हो चुका था और पश्चिमोत्तर में आसन्न था। जो देव कल्प में अवसान प्राप्त होने वाले थे वे उस उपप्लव को प्राप्त हुआ देखने वाले थे। २४। उस अवसर में उत्सुक हुए और विषाद से भागों में स्थानों को व्यक्त करके फिर उन्होंने मविग्न होते हुए अयन भाग महलोंक के लिए बनाया था। २५। वे युक्तों को उपपन्न होते हैं और शरीर में महती को प्राप्त होते हैं वे सब प्रचर विशुद्धि से समन्वित थे तथा मानसी सिद्धि में समाप्ति हुए थे। २६। उस समय में उन कल्पवासियों के साथ महान आसादित हुआ था। उनके साथ में गमन करने वाले ब्रह्मण—क्षत्रिय—वैश्य और अपरजन भी थे। वे चौदह देवों के संघ महलोंक में प्राप्त हो गये थे। फिर उस महलोंक से गमन करके बड़े उद्घेग के सहित उन्होंने अपना मन जनलोक में जाने के लिए किया था। २७-२८।

एतेन क्रमयोगेन ययुस्ते कल्पवासिनः ।

एवं देवयुगानां तु सहस्राणि परस्परम् ॥२९॥

विशुद्धिवहुलाः सर्वे मानसीं सिद्धिमास्थिताः ।

तैः कल्पवासिभिः साढ़ जन आसादितम्तु वै ॥३०॥

तत्र कल्पान्दश स्थित्वा सत्यं गच्छन्ति वै पुनः ।

गत्वा ते ब्रह्मलोकं वै अपरावर्तिनीं गतिम् ॥३१॥

आधिपत्यं विमाने वै ऐश्वर्येण तु तत्समाः ।

भवन्ति ब्रह्मणा तुल्या रूपेण विषयेण च ॥३२॥

तत्र ते ह्यवर्तिष्ठन्ते प्रीतियुक्ताश्च संयमान् ।

आनन्दं ब्रह्मणः प्राप्य मुच्यन्ते ब्रह्मणा सह ॥३३॥

अवश्यभाविनार्थेन प्राकृतोन्तेव ते स्वयम् ।

मानाच्चनाभिः संबद्धास्तदा तत्कालभाविताः ॥३४॥

स्वपतो बुद्धिपूर्वं तु बोधो भवति वै यथा ।

तथा तु भावितो सेवां तथानन्दः प्रवर्तते ॥३५॥

इसी क्रम के योग से वे कल्पवासी चले गये थे। इस प्रकार से सहस्रों ही देवों के युग थे। २९। सभी विशुद्धि की प्रचुरता वाले थे और अतएव वे सब मानसों सिद्धि में समाप्ति हुए। उनने कल्प वासियों के साथ जनलोक

को प्राप्त किया था । ३०। वहाँ जनलोक में दण कल्पों तक स्थित होकर फिर सत्य लोक को चले जाते हैं । वे ब्रह्मलोक को प्राप्त करके अपरावर्त्तिनी गति को प्राप्त हो जाते हैं । ३१। वे विमान में आधिपत्य पाकर ऐश्वर्य से उनके ही समान हो जाया करते हैं । फिर वे ब्रह्माजी के ही तुल्य हो जाया करते हैं और रूप तथा विषय के द्वारा ब्रह्मा के समान हैं । ३२। वहाँ पर वे प्रीति से युक्त होते हुए संयमों को अवस्थित हुआ करते हैं । वहाँ पर ब्रह्मा का आनन्द प्राप्त करके ब्रह्माजी के ही साथ मुक्ति को प्राप्त हो जाया करते हैं । ३३। प्राकृत अवश्य भावी अर्थ से वे स्वयं उस समय में उसका से भावित होते हुए सम्मान और अचेन आदि के द्वारा सम्बद्ध होते हैं । ३४। जिस प्रकार से बुद्धिपूर्वक स्वप्न करते हुए बोध होता है उसी भाँति सेवा के भावित होने पर जैसा ही आनन्द प्रवृत्त होता है । ३५।

प्रत्याहारैस्तु भेदानां येषां भिन्नानि शुभ्मिणाम् ।

तैः साद्व वद्धते तेषां कार्याणि करणानि च ॥ ३६ ॥

नानात्वदशिनां तेषां ब्रह्मलोकनिवासिनाम् ।

विनिवृत्ताधिकाराणां स्वेन धर्मेण तिष्ठताम् ॥ ३७ ॥

ते तुल्यलक्षणाः सिद्धाः शुद्धात्मानो निरंजनाः ।

प्राकृते करणोपेताः स्वात्मन्येव व्यवस्थिताः ॥ ३८ ॥

प्रख्यापयित्वा चात्मानं प्रकृतिस्त्वेषु तत्त्वतः ।

पुरुषान्यबहुत्वेन प्रतीता तत्प्रवर्तते ॥ ३९ ॥

प्रवर्तिते पुनः सर्गे तेषां साकारणात्मनाम् ।

संयोगे प्रकृतिज्ञेया मुक्तानां तत्त्वदशिनाम् ॥ ४० ॥

तत्रोपवर्गिणां तेषां न पुनर्मार्गाभिनाम् ।

अभावः पुनरुत्पन्नः शांतानामचिषामिव ॥ ४१ ॥

ततस्तेषु गतेषूर्ध्वं त्रैलोक्येषु महात्मसु ।

एतेः साद्व महलोकस्तदानासादितस्तु वै ॥ ४२ ॥

जिन शुभ्मियों के भेदों के प्रत्याहारों से भिन्न हैं उनके कार्य और करण वधित होते हैं । ३६। वे नानात्व के देखने वाले और ब्रह्मलोक के सिकायत करने वाले हैं । निष्ठुत अधिकारों वाले और अपार्थित स्थानों में स्थित

रहने वाले हैं । ३७। वे समान लक्षणों वाले सिद्ध हैं शुद्ध आत्माओं वाले तथा निरञ्जन हैं । प्राकृत में वे करणों से उपेत हैं और अपनी आत्मा में ही व्यवस्थित हैं । ३८। और आत्मा को प्रख्यापित करके तात्त्विक रूप से यह प्रकृति अन्य पुरुषों के बहुत्व होने से प्रतीत होती हुई प्रवृत्त होती है । ३९। साकारणात्मा उनके फिर सर्ग के प्रवर्त्तित होने पर मुक्त तत्व दर्शियों के संयोग में प्रवृत्ति जाननी चाहिए । ४०। वहाँ पर उपवर्गी और फिर मागंगामी न होने वाले इनका पुनः शान्त अचियों के ही समान अभाव उत्पन्न हो गया है । ४१। इसके अनन्तर उन महान् आत्मा वाले त्रैलोकों के ऊपर की ओर गत होने पर उस समय में इनके साथ महलोक निश्चय ही आसादित नहीं हुआ था । ४२।

तच्छब्द्या वै भविष्यन्ति कल्पदाह उपस्थिते ।

गंधवद्याः पिशाचाश्च मानुषा ब्राह्मणादयः ॥४३

पशवः पक्षिणश्चैव स्थावराश्च सरीसृपाः ।

तिष्ठत्सु तेषु तत्कालं पृथिवीतलवासिषु ॥४४

सहस्रं यत्तु रश्मीनां स्वयमेव विभाव्यते ।

तत्सप्तरश्मयो भूत्वा एकेको जायते रविः ॥४५

क्रमेणोत्तिष्ठमानास्ते त्रील्लोकान्प्रदहन्त्युत ।

जङ्गमाः स्थावराश्चैव नद्याः सर्वे च पर्वताः ॥४६

शुष्काः पूर्वमनावृष्ट्या सूर्येस्ते च प्रधूपिताः ।

तदा तु विवशाः सर्वे निर्दग्धाः सूर्यरश्मिभिः ॥४७

जङ्गमाः स्थावराश्चैव धर्माधिर्मात्मकास्तु वै ।

दग्धदेहास्तदा ते तु धूतपापा युगांतरे ॥४८

ख्यातातपा विनिर्मुक्ताः शुभया चातिबंधया ।

ततस्ते हयुपपद्यते तुल्यरूपैर्जनैर्जनाः ॥४९

कल्पदाह के उपस्थित हो जाने पर उनके शिष्य होंगे । जो कि गन्धर्व आदि पिशाच—मानुष और ब्राह्मणादिक हैं । ४३। पशु-पक्षी-स्थावर और सरीसृप हैं । उस समय में पृथ्वी तल में निवास करने वाले उनके स्थित होने पर जो सहस्र किरणें हैं वे स्वयं ही विभावित हो जाया करती हैं । वे

सहस्रों किरणों सात किरणें होंकर एक-एक किरण एक-एक सूर्यं हो जाता है । ४४-४५। वे सबसे उत्थित होते हुए तीनों लोकों को प्रदग्ध कर देते हैं । उस दाह में चर प्राणी-स्थावर अथवि अचर और सब नदियाँ तथा समस्त पर्वत दग्ध होते हैं । ४६। पहिले वृष्टि के अभाव से सभी शुष्क हो जाते हैं और सरसता नाम मात्र को भी कहीं पर नहीं रहती है । इसके पश्चात् वे सब उक्त सूर्यों से जो अतीव प्रखर हैं प्रधूपित होते हैं । उस काल से सभी विवश होकर निर्दग्ध हो जाते हैं और सूर्यों की किरण से जल भून जाया करते हैं । ४७। जड़म और स्थावर जो भी धर्म और अधर्म के स्वरूप वाले हैं, उस समय में उन सके देह प्रदाध होते हैं और अन्युयुग में उनके पाप विनष्ट होकर वे निष्पाप एवं शुद्ध हो जाते हैं । ४८। शुभ अतिवन्ध से वे रुयातातप विनिर्मुक्त हो जाते हैं । इसके उपरान्त वे जन सब तुल्य रूप वाले जनों के ही साथ में उपरन्त हो जाते हैं । ४९।

उषित्वा रजनीं तत्र ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।

पुनः सर्गे भवंतीह मानसा ब्रह्मणः सुताः ॥५०॥

ततस्तेषूपपन्नेषु जनैस्त्रैलोक्यदासिषु ।

निर्दंग्धेषु च लोकेषु तदा सूर्यस्तु सप्तभिः ॥५१॥

वृष्ट्या क्षितौ प्लावितायां विजनेष्वर्णवेषु च ।

सामुद्राश्चैव मेघाश्च आपः सर्वाश्च पाथिवाः ॥५२॥

शरमाणा व्रजंत्येव सलिलाख्यास्तथानुगाः ।

आगतागतिकं चैव यदा तत्सलिलं बहु ॥५३॥

संछाद्येमां स्थितां भूमिमर्णवाख्यं तदाभवत् ।

आभाति यस्मात् स्वाभासो भाशब्दो व्याप्तिदीप्तिषु ॥५४॥

सर्वतः समनुप्राप्त्या तासां चाम्भो विभाव्यते ।

तदंस्तनुते यस्मात्सर्वी पृथ्वीं समंततः ॥५५॥

धातुस्तनोति विस्तारे न चैतास्तनवः स्मृताः ।

शर इत्येष शीर्णे तु नानार्थो धातुरुच्यते ॥५६॥

फिर अव्यक्त जन्म वाले ब्रह्माजी की एक रात्रिक वहाँ निवास करके फिर जब सृष्टि की रचना होती है उसमें वहाँ पर ब्रह्माजी के मानस

अथात् मन से ही समुत्पन्न पुत्र होते हैं । ५०। इसके अनन्तर जनों के साथ श्रेष्ठोव्य के निवासी उनके उत्पन्न होने पर और उस समय में उन प्रखरतम सात सूर्यों के द्वारा समस्त लोकों के निर्दग्ध हो जाने पर । ५१। वृष्टि के धारा सम्पात से इस पृथ्वीतल के पूर्णतया प्लावित हो जाने पर, सब समुद्रों के विजन हो जाने पर सब समुद्र-मेघ और सम्पूर्ण जल और सब पार्थिव शीर्ण होते हुए सलिल के नाम पर अनुग होकर गमन किया करते हैं और आगतागतिक जिस समय में बहुत वह जल हो गया था । ५२-५३। उस समय में इस सम्पूर्ण भूमि को संचालित करके जो यहाँ पर स्थित थी सभी कुछ एक अर्णव नामधारी हो गया था । जिससे स्व से आभास होने वाला भी शब्द दीप्तियों में व्याप्ति आभात होती है । ५४। सभी और उनकी समनुप्राप्ति से जल ही विभावित होता है । उसके अन्दर जिस कारण से सभी और से सम्पूर्ण पृथ्वी को विस्तृत करता है । ५५। विस्तार में धातु विस्तार किया करती है और ये तनु नहीं कहे गये हैं । शीर्ण होने पर शर यह नाना अर्थों वाला धातु कहा जाया करता है । ५६।

एकार्णवे भवत्यापो न शीघ्रास्तेन ते नराः ।

तस्मिन् युगसहस्रान्ते संस्थिते ब्रह्मणोऽहनि ॥५७

तावत्काले रजन्यां च वर्त्तत्यां सलिलात्मना ।

ततस्तु सलिले तस्मिन्नष्टाग्नौ पृथ्वीतले ॥५८

प्रशांतवातेऽन्धकारे निरालोके समंततः ।

एतेनाधिष्ठितं हीदं ब्रह्मा स पुरुषः प्रभुः ॥५९

विभागमस्य लौकस्य प्रकर्तुं पुनरेच्छत् ।

एकार्णवे तदा तस्मिन्नष्टे स्थावरजंगमे ॥६०

तदा भवति स ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ।

सहस्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णो जितेऽद्रियः ।

इमं चोदाहरंत्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति ॥६१

आपो नारास्तत्तनव इत्यर्था अनुशुश्रुम ।

आपूर्यमाणास्तत्रास्तो तेन नारायणः स्मृतः ॥६२

सहस्रशीर्षा सुमनाः सहस्रपात् सहश्रचक्षुर्वदनः सहस्रकृत ।

सहस्रबाहुः प्रथमः प्रजापतिसत्रयीमयोऽयं पुरुषो निश्च्यते ॥६३

एकमात्र अर्णव के होने पर आप शीघ्र नहीं हैं उससे वे नर हैं । उस एक सहस्र युगों के अन्त में जबकि ब्रह्माजी का दिन संस्थित होता है । ५७। उतने समय में सलिल के स्वरूप से रजनी के वत्मान होने का अवसर रहता है । फिर उस जल में इस पृथ्वी तल में अग्नि तल में अग्नि बिल्कुल नष्ट हो जाया करती है । ५८। उस समय में वायु एकदम प्रशान्त होती है और सभी ओर घोर अन्धकार रहता है तथा सभी ओर आलोक का अभाव रहता है । यह सब इसके ही द्वारा अधिष्ठित रहता है और ब्रह्माजी ही वह प्रभु पुरुष होते हैं । ५९। फिर उन्होंने इस लोक के विभाग करने की इच्छा की थी जिस समय में सभी ज़ज्ज्ञम और स्थावर विनष्ट होनुके थे और केवल एक ही अर्णव सभी ओर था । ६०। उस अवसर से वे ब्रह्माजी सहस्रों शिरों वाले और सहस्रों पादों वाले होते हैं । वे सहस्रों शिरों वाले पुरुष सुवर्ण के समान वर्ण वाले थे और सब इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने वाले थे । भगवान् नारायण के प्रति यहाँ पर इस श्लोक का उदाहरण दिया करते हैं । ६१। आप (जल) जो उसके तनु है—यह अर्थ सुनते हैं । वहाँ पर वे आपूर्य माण हैं—इसलिए नारायण कहे गये हैं । ६२। सहस्र शीषों से संयुत सुन्दर मन वाले—सहस्र चरणों से युक्त—सहस्र चक्षु और गुखों वाले सहस्र कृत हैं । सहस्र बाहुओं वाले हैं—ऐसे प्रथम प्रजापति हैं । यह पुरुष त्रयी से परिपूर्ण है—ऐसा कहा जाता है । ६३।

आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता एको ह्यमूर्तः प्रथमस्त्वसौ विराट् ।

हिरण्यगर्भः पुरुषो महात्मा संपद्यते वै मनसः परस्तात् ॥६४

कल्पादौ रजसोद्रिक्तो ब्रह्मा भूत्वाऽसृजतप्रभुः ।

कल्पांते तमसोद्रिक्तः कालो भूत्वाग्रसत्पुनः ॥६५

स वै नारायणो भूत्वा सत्त्वोद्रिक्तो जलाशये ।

विधा विभज्य चात्मानं त्रैलोक्ये संप्रवर्त्तते ॥६६

सृजति ग्रसते चैव वीक्ष्यते च त्रिभिः स्वयम् ।

एकार्णवे तदा तस्मिन्नष्टे स्थावरजंगमे ॥६७

चतुर्युगसहस्रान्ते सर्वतः स जलावृते ।

ब्रह्मा नारायणार्घस्तु म काषे च भवे स्वयम् ॥६८

चतुर्विधाः प्रजाः सर्वा ब्रह्मशक्तया तमोवृताः ।

पश्यन्ति तं महर्लोके कालं सुप्तं महर्षयः ॥६६

भृगवादयो यथोद्दिष्टास्तस्मिन् काले महर्षयः ।

सत्यादयस्तथा त्वष्टौ कल्पे लीने महर्षयः ।

तदा विवर्त्य मानैस्तैर्महत्परिगतं पराम् ॥७०

आदित्य के समान वर्ण से युक्त—इस भुवन के रक्षक एक—अमूर्त अर्थात् मूर्ति से शून्य यह प्रथम विराट हैं। हिरण्यगर्भ—महान् आत्मा वासा पुरुष मन से परे सम्पन्न होता है । ६४। कल्प के आदि में रजो गुण से उद्विक्त होकर प्रभु ब्रह्मा ने सृजन किया था। कल्प का जब अवसान होता है तो उस समय में तमोगुण के उद्वेक से समन्वित काल होकर फिर इस सम्पूर्ण सृष्टि का ग्रसन किया था । ६५। वही फिर भगवान् सत्त्व के उद्वेक से युक्त नारायण होकर जलाशय में विराजमान रहते हैं। आपने आपको तीन स्वरूपों में विभक्त करके भगवान् तीनों लोकों में सम्प्रवृत्त हुआ करते हैं । ६६। सृजन करते हैं—ग्रसन करते हैं और स्वयं ही तीन रूपों से वीक्षण करते हैं। उस समय में समस्त स्थावर और जड़म के नष्ट हो जाने पर जब एकमात्र अर्णव ही विद्यमान रहा करता है । ६७। एक सहस्र चारों युगों की चौकड़ियों का जब अन्त होता है उस समय में वह सभी ओर जल से समावृत होते हैं। उस समय में नारायण नामक वह ब्रह्मा इससे सार में स्वयं प्रकाशित रहते हैं । ६८। सब चारों प्रकार की प्रजा ब्रह्मा की शक्ति से तम से आवृत होती है। महर्षिगण उसको महर्लोक में सोये हुए काल को देखते हैं । ६९। उस काल में यथोद्दिष्ट भृगु आदि महर्षिगण हैं। उस समय में उनके विवर्त्य मानों के द्वारा महत परिगत होता है । ७०।

गत्यर्थाद्विषतेर्धातोनर्मिनिष्पत्तिरुच्यते ।

यस्माद्विषति सत्त्वेन महत्तस्मान्महर्षयः ॥७१

महर्लोकस्थितैर्द्वृष्टः कालः सुप्तस्तदा च तः ।

सत्त्वाद्याः सप्त ये त्वासन्कल्पेऽतीते महर्षयः ॥७२

एवं ब्रह्मा तासु तासु रजनीषु सहस्रशः ।

दृष्टवन्तस्तदानीताः कालं सुप्तं महर्षयः ॥७३

कल्पस्यादौ सुबहुला यस्मात्संस्थाश्चतुर्दश ।

कल्पयामास वै ब्रह्मा तस्मात्कल्पो निरुच्यते ॥७४

स सृष्टा सर्वभूतानां कल्पादिषु पुनः पुनः ।

व्यक्ताव्यक्तो महादेवस्यस्य सर्वमिदं जगत् ॥७५

इत्येष प्रतिसंबन्धः कीर्तिः कल्पयोर्द्वयोः ।

सांप्रतं हि तयोर्मध्ये प्रागवस्था बभूव ह ॥७६

कीर्तितस्तु समासेन पूर्वकल्पे यथातथम् ।

सांप्रतं संप्रवक्ष्यामि कल्पमेतां निबोधतः ॥७७

गति के अर्थ वाली ऋषिति धातु नाम की निष्पत्ति होती है—ऐसा कहा जाता है। जिससे ऋषिति के सत्त्व होने से उससे महत है अतएव महर्षि होते हैं । ७१। अहलोंक में स्थित होते हुए उन्होंने उस समय में सोये हुए काल को देखा था। जो कल्प के व्यतीत होने पर सत्त्वादि सात महर्षि थे । ७२। इस प्रकार से उन-उन सहस्रों रजनीयों में उस समय में आनीत महर्षियों ने सुप्तकाल को देखा था । ७३। कल्प के आदि में जिससे सुबहुल चौदह संस्था हैं। ब्रह्माजी ने क्योंकि कल्पन किया था इसी कारण से कल्प कहा जाता है । ७४। कल्पों के आदि काल में पुनः पुनः वही समस्त भूतों का सृजन करने वाला है। महादेव व्यक्त है। इसका ही यह सम्पूर्ण जगत है । ७५। वह दोनों कल्पों का प्रति सम्बन्ध कर दिया गया है। इस समय में उन दोनों के मध्य में पूर्व की अवस्था हुई थी । ७६। पूर्व में होने वाले कल्प में ठीक-ठीक कह दिया गया है। इस समय में हस कल्प के विषय में बतलाऊँगा, उसको समझ लीजिए । ७७।

—X—

॥ पृथ्वी व्यायाम विस्तरः ॥

सूत उवाच—एवं प्रजासन्निवेशं श्रुत्वा वै शांशपायनिः ।

प्रच्छ नियतं सूतं पृथिव्युदधिविस्तरम् ॥१

कति द्वीपा समुद्रा वा पर्वता वा कति स्मृताः ।

कियंति चैव वर्षाणि तेषु नद्यश्च काः स्मृताः ॥२

महाभूतप्रमाणं च लोकालोकं तथैव च ।

पर्यायं परिमाणं च गति चन्द्राकंयोस्तथा । १३
 एतत्प्रब्रूहि नः सर्वं विस्तरेण यथार्थतः ॥३
 सूत उवाच—हंत वोऽहं प्रवक्ष्यामि पृथिव्यायामविस्तरम् ॥४
 संख्यां चैव समुद्राणां द्वीपानां चैव विस्तरम् ।
 द्वीपभेदसहस्राणि सप्तस्वन्तर्गतानि च ॥५
 न शब्दयंते क्रमेणोह वक्तुं यैः सततं जगत् ।
 सप्त द्वीपान्प्रवक्ष्यामि चन्द्रादित्यग्रहैः सहः ॥६
 तेषां मनुष्यास्तर्केण प्रमाणानि प्रचक्षते ।
 अचित्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण साधयेत् ॥७

श्री सूतजी ने कहा—इस रीति से शांशपायनि ने प्रजा के सन्निवेश का श्रवण करके फिर उसने श्री सूतजी ने नियत रूप से पृथिवी और उदधि के विस्तार के विषय में पूछा था । १। द्वीप कितने हैं, समुद्र अथवा पर्वत कितने बताये गये हैं? कितने वर्षे हैं और उन वर्षों में नदियों कीन-कीन बतायी गयी हैं? २। महाभूतों का क्या प्रमाण है तथा लोकालोक प्रमाण क्या है? चन्द्र और सूर्य का पर्याय-परिमाण और गति क्या हैं? हे भगवान्! यह सब आप विस्तार पूर्वक यथार्थ रूप से हमको बतलाइए । ३। श्री सूतजी ने कहा—हर्ष की बात है, मैं आपके सामने पृथ्वी का आयाम और विस्तार बतलाऊँगा । ४। समुद्रों की संख्या और द्वीपों का विस्तार भी बतलाऊँगा । यों तो द्वीपों के सहस्रों भेद होते हैं किन्तु वे भेद सात द्वीपों के सहस्रों भेद होते हैं किन्तु वे सभी भेद सात द्वीपों के ही अन्तर्गत हैं । ५। जिनके द्वारा निरन्तर यह जगत् है वे सब क्रम से यहाँ पर नहीं बताये जा सकते हैं । मैं इस समय में तो आपके समक्ष मैं सात द्वीपों को ही बताऊँगा और उनके साथ चन्द्र-सूर्य और ग्रहों का वर्णन करूँगा । ६। मानव उनका प्रमाण तक के द्वारा कहा करते हैं । किन्तु निश्चित रूप से जो भाव चिन्तन करने के योग्य नहीं हैं उनका तक के सहारे साधन कभी नहीं करना चाहिए । ७।

प्रकृतिभ्यः परं यच्च तदचिन्त्यं प्रचक्षते ।
 नववर्जं प्रवक्ष्यामि जंबूद्वीपं यथातथम् ॥८

विस्तरान्मण्डलाच्चैव योजनैस्तन्निबोधत ।

शतमेकं सहस्राणां योजनाग्रात्समंततः ॥६

नानाजनपदाकीर्णः पुरेश्च विविधैश्शुभेः ।

सिद्धचारणसंकीर्णः पर्वतैरूपशोभितः ॥१०

सर्वधातुनिबद्धैश्च शिलाजालसमुद्भवैः ।

पर्वतप्रभवाभिष्ठ नदीभिः सर्वतस्ततः ॥११

जंबूद्वीपः पृथुः श्रीमान् सर्वतः पृथुमण्डलः ।

नवभिष्ठचावृतः सर्वो भुवनैर्भूतभावनैः ॥१२

लवणेन समुद्रेण सर्वतः परिवारितः ।

जंबूद्वीपस्य विस्तारात् समेन तु समंततः ॥१३

प्रागायताः सुपर्वणः षडिमे वर्षपर्वताः ।

अवगाढा ह्युभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ ॥१४

जो प्रकृतियों से परे हैं वही चिन्तन न करने के योग्य नहीं है—ऐसा कहते हैं। नीचे वर्षों से समन्वित जम्बू द्वीप को यथार्थं रूप से बतलाऊँगा। उसको विस्तार से और मण्डल से योजनों के द्वारा समझ लीजिए। योजनाग्र से सभी ओर एक सौ सहस्र है। यह अनेक जनपदों से घिरा हुआ है और विविध परम शुभ नगरों से समन्वित है। यह सिद्धगण और चारणों से समाकीर्ण है और अनेक पर्वतों से उपशोभित है। १०-१४। शिलाओं के समुदायों से समुत्पन्न समस्त धातुओं से निबद्ध यह द्वीप है। इसके सभी ओर अनेक नदियाँ हैं जो पर्वत से उद्भूत हुई हैं। ११। यह जम्बूद्वीप बहुत विशाल है। श्री सम्पन्न है तथा इसका मण्डल भी महान् है। भूरों के करने वाले नीचे भुवनों से यह सम्पूर्ण समावृत है। १२। इसके चारों ओर क्षार समुद्र है जिसका भी विस्तार जम्बू द्वीप के विस्तार के ही समान है। १३। प्रागायत सुपर्वा ये छँगे पर्वत हैं जो दोनों ओर पूर्व और पश्चिम समुद्रों से अवगाढ़ हैं। १४।

हिमप्रायश्च हिमवान् हेमकूटश्च हेमवान् ।

सर्वत्तुंषु सुखश्चापि निषधः पर्वतो महान् ॥१५

द्वार्त्रिशच्च सहस्राणि विस्तीर्णः स च मूढ्नि ॥१६
 वृत्ताकृतिप्रमाणश्च चतुरसः समुच्छ्रुतः ।
 नानावणस्तु पाश्वेषु प्रजापतिगुणान्वितः ॥१७
 नाभिवंधनसंभूतो ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
 पूर्वतः श्वेतवर्णश्च ब्राह्मणस्तस्य तेन तत् ॥१८
 पाश्वमुत्तरतस्तस्य रक्तवर्णः स्वभावतः ।
 तेनास्य क्षत्रभावस्तु मेरोननिर्णयकारणात् ॥१९
 पीतश्च दक्षिणेनासौ तेन वैश्यत्वमिष्यते ।
 भृंगपत्रनिभश्चापि पश्चिमेन समाचितः ॥२०
 तेनास्य शूद्रभावः स्यादिति वर्णः प्रकार्तिताः ।
 वृत्तः स्वभावतः प्रोक्तो वर्णतः परिमाणतः ॥२१

हिमवान् गिरि में प्रायः हिम समूह होता है और हेमकूट पर्वत हेम से संयुत है । निष्ठ एक महान् पर्वत है जो सभी ऋतुओं में सुखदायी होता है । १५। मरु पर्वत चार वर्णों वाला है और सुवर्ण से युक्त है यह अधिक सुन्दर कहा गया है और मूर्धा में बत्तीस सहस्र योजनों के विस्तार वाला है । १६। यह वृत्त आकृति और प्रमाण वाला है तथा चौकोर और समुच्छ्रुत अर्थात् ऊँचा है । इसके पाश्व भागों में अनेक वर्ण हैं तथा यह प्रजापति के गुणों से संयुत है । १७। अव्यक्त जन्म वाले ब्रह्माजी के नाभिवंधन से यह समुत्पन्न हुआ है । उसके पूर्व की ओर यह श्वेत वर्ण वाला है इससे ब्राह्मण है । १८। उत्तर की ओर पाश्वभाग उसका स्वभाव से ही रक्तवर्ण है । इस कारण से मेरु के अनेक अर्थ कारण से इसका क्षत्र भाव है । १९। यह दक्षिण दिशा की ओर पीत है इससे इसका वैश्यभाव अभीष्ट होता है । पश्चिम की ओर पीत है इससे इसका वैश्यभाव अभीष्ट होता है । पश्चिम की ओर यह भृङ्गपत्र के सहश समाचित है । २०। इस कारण से इसका शूद्रभाव होता है—इस तरह से इसके चार वर्ण कहे गये हैं । यह स्वभाव से वृत्त कहा है और वर्ण तथा परिमाण में भी बताया गया है । २१।

नीलश्च वैदूर्यमयः श्वेतः शुक्लो हिरण्मयः ।
 मयूरबहूवर्णस्तु शातकोऽभश्च शृंगवाच् ॥२२

एते पर्वतराजानः सिद्धचारणसेविताः ।

तेषामंतरविष्कंभो नवसाहस्र उच्यते ॥२३

मध्ये त्विलावृतं नाम महामेरोः समंततः ।

नवैवं तु सहस्राणि विस्तीर्णं सर्वतस्तु तत् ॥२४

मध्ये तस्य महामेरुविघूम इव पावकः ।

वैद्यद्वं दक्षिणं मेरोरुत्तराद्वं तथोत्तरम् ॥२५

वर्षाणि यानि पट्ट चैव तेषां ये वर्षपर्वताः ।

द्वे द्वे सहस्रे विस्तीर्णा योजनानां समुच्छ्रयात् ॥२६

जंबूद्वीपस्य विस्तारात्तेषामायाम उच्यते ।

योजनानां सहस्राणि शतं द्वावायतो गिरी ॥२७

नीलश्च निषधश्चैव ताभ्यां हीनास्तु ये परे ।

श्वेतश्च हेमकूटश्च हिमवाञ्छृंगवांस्तथा ॥२८

नील—बैदूर्यमय—श्वेत—हिरण्यमय—मोर के वर्ण वाला और शातकीमध्य तथा शृङ्खवान् है । २२। ये सब पर्वतों के शिरोमणि राजा पर्वत हैं जो कि सिद्धों और चारणों के द्वारा सेवित रहा करते हैं अर्थात् इनमें सिद्ध और चारण निवास किया करते हैं । उनका अन्तर निष्कम्भ नौ सहस्र योजन कहा जाता है । २३। मध्य में इलावृत नाम वाला गिरि है जो महामेरु के समंतम है । यह भी इसी प्रकार से नौ सहस्र ही सब ओर से विस्तार वाला है । २४। इसके मध्य में महा है जो धूम से रहित अग्नि के समान देवीष्यमान है । मेरु के वेदी का अर्ध दक्षिण है तथा उत्तर अर्ध भाग उत्तर है । २५। जंबूद्वीप के विस्तार से उनका आयाम कहा जाता है । दो गिरि सौ सहस्र योजन आयत हैं । २६। नील और निषध उन दोनों से जो दूसरे हैं वे हीन हैं । श्वेत—हेमकूट—हिमवान् तथा शृङ्खवान् हैं । २८।

नवती द्वे अणीती द्वे सहस्राण्यायतास्तु तैः ।

तेषां मध्ये जनपदास्तानि वर्षाणि सप्त वै ॥२९

प्रपाताविषमैस्तैस्तु पर्वतैरावृतानि तु ।

संततानि नदीभेदेरगम्यानि परस्परम् ॥३०

वसंति तेषु सत्त्वानि नानाजातीनि सर्वंशः ।

इदं हैमवतं वर्षं भारतं नाम विश्रुतम् ॥३१

हेमकूटं परं ह्यस्मान्नाम्ना किंपुरुषं स्मृतय् ।

नैषधं हेमकूटात् हरिवर्षं तदुच्यते ॥३२

हरिवर्षात्परं चापि मेरोश्च तदिलावृतम् ।

इलावृतात्परं नीलं रम्यकं नाम विश्रुतम् ॥३३

रम्यकात्परतः श्वेतं विश्रुतं तद्विरण्मयम् ।

हिरण्मयात्परं चंव शृङ्गवत्तः कुरु स्मृतम् ॥३४

धनुः संस्थे तु विज्ञेये द्वे वर्षे दक्षिणोत्तरे ।

दीर्घाणि तत्र चत्वारि मध्यमं तदिलावृतम् ॥३५

उनसे दो सहस्र नद्ये और दो सहस्र अस्सी आयत हैं। उनके मध्य में जनपद हैं जो सात वर्ष है । २६। उन प्रपातों से विषम पर्वतों से जो हैं। निरन्तर वहने वाली नदियों के बहुत से भेदों से जो परस्पर में गमन करने के अयोग्य है । ३०। उनमें अनेक जातियों वाले जीव निवास करते हैं और सभी और जो वहाँ रहा करते हैं। यह हैमवत वर्ष है जो भारत—इस नाम से प्रसिद्ध है । ३१। इससे आगे हेमकूट है जो नाम से किम्पुरुष कहा गया है। हेमकूट से आगे नैषध है जो हरि वर्ष कहा जाया करता है । ३२। हरिवर्ष से परे मेरु का वह इलावृत है। इलावृत से आगे नील है जो रम्यक नाम से विख्यात है । ३३। रम्यक से आगे श्वेत है जो हिरण्मय नाम से विश्रुत है । हिरण्मय से आगे शृङ्गवत् है जो कुरु कहा गया है । ३४। दक्षिण और उत्तर दिशा में धनुःसंस्थ दो वर्ष जानने चाहिए। वहाँ पर चार दीर्घ हैं जो मध्यम है वह इलावृत है । ३५।

अवर्कि च निषधस्याथ वेद्यद्वं दक्षिणं स्मृतम् ।

परं नीलवतो यच्च वेद्यद्वं तु तदुत्तरम् ॥३६

वेद्यद्वं दक्षिणे त्रीणि त्रीणि वर्षाणि चोत्तरे ।

तयोर्मध्ये तु विज्ञेयो मेरुमध्य इलावृतम् ॥३७

दक्षिणे तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु ।

उदगायतो महाशैलो माल्यवान्नाम नामतः ॥३५

योजनानां सहस्रं तु आनील निषधायतः ।

आयामतश्चतुस्त्रिगत्सहस्राणि प्रकोर्तितः ॥३६

तस्य प्रतीच्यां विज्ञेयः पर्वतो गंधमादनः ।

आयातमतोऽथ विस्तारात्माल्यवानिति विश्रुतः ॥४०

परिमण्डलयोर्मेघमंध्ये कनकपर्वतः ।

चतुर्वर्णः स सौवर्णः चतुरस्रः समुच्छ्रूतः ॥४१

सुमेरुः शुशुभे शुभ्रो राजवत्समधिष्ठितः ।

तरुणादित्यवणीभो विधूम इव पावकः ॥४२

इसके अनन्तर निषध के नीचे गोदी के अर्धभाग दक्षिण कहा गया है । नीलवान् है और जो बेदार्थ है वह उत्तर है । ३६। बेदार्थ दक्षिण और उत्तर में तीन-तीन वर्ष है । उन दोनों के मध्य में मेरु जानना चाहिए और मध्य में इलावृत है । ३७। नील के दक्षिण दिशा की ओर और निषध की उत्तर की ओर—उत्तर की ओर आयत एक महान् शैल है जो नाम से माल्यवान् कहा जाता है । ३८। एक सहस्र योजन नील और निषध तक आयत है और आयाम से यह चौबीस सहस्र योजन कहा गया है । ३९। इसके पश्चिम में गन्धमादन नामक पर्वत जानने के योग्य है । आयाम (चौड़ाई) और विस्तार से माल्यवान्—इस नाम से यह प्रसिद्ध है । ४०। परिमण्डलों के मध्य में मेरु पर्वत है जो कनक पर्वत है । वह चार वर्णों वाला और सुवर्ण का तथा चतुरस्र अर्थात् चौकोर समुच्छ्रूत है । ४१। सुमेरु जो भाशाली होता था जो पास शुभ्र है और एक राजा के ही समान समधिष्ठित रहता है । इसके बारे की आभा तरुण सूर्य के ही समान है तथा बिना धुआ वाली अग्नि के तुल्य है । ४२।

योजनानां सहस्राणि चतुरशीतिरुच्छ्रूतः ।

प्रविष्टः षोडशाधस्ताद्विस्तृतः षोडशैव तु ॥४३

शरावसंस्थितत्वात् द्वात्रिशन्मूर्धिन विस्तृतः ।

विस्तारात्रिगुणस्तस्य परिणाहः समंततः ॥४४

मंडजेन प्रवागेन इयम् गन्धमादन त्रिष्यते ।

चत्वारिंशतसहस्राणि योजनानां समंततः ॥४५

अष्टाभिरधिकानि स्युस्त्रयस् मानं प्रकीर्तितम् ।

चतुरस्रेण मानेन परिणाहः समंततः ॥४६

चतुःषट्सहस्राणि योजनानां विधीयते ।

स पर्वतो महादिव्यो दिव्योषधिसमन्वितः ॥४७

भुवनैरावृतः सर्वो जातरूपमयैः शुभैः ।

तत्र देवगणाः सर्वे गंधर्वोरगराक्षसाः ॥४८

शैलराजे प्रदृश्यन्ते शुभाश्चाप्सरसां गणाः ।

स तु मेरुः परिवृतो भुवनैर्भूतभावनैः ॥४९

वह चौरासी सहस्र योजन ऊँचा है । एक योजन चार कोस का होता है । सोलह योजन नीचे की ओर प्रविष्ट है और सोलह ही भोजन विस्तार वाला है । ४३। शराव संस्थित होने से बसीस योजन मूर्धा में विस्तृत है । विस्तार में सभी ओर उसका तिगुना परिणाम है । ४४। मण्डल प्रमाण से उसका मान अथवा अभीष्ट होता है । सब ओर चौवालीस सहस्र योजन है । ४५। अथवा में अर्थात् तीनों ओर में उसका मान आठ अधिक योजन कहा गया है । सभी ओर चतुरस्र मान से परिणाम होता है । ४६। चौसठ सहस्र योजन कहा जाता है । वह पर्वत बहुत ही अधिक दिव्य है और दिव्य औषधियों से समन्वित है । ४७। यह सम्पूर्ण सुवर्णमय परम शुभ भुवनों से घिरा हुआ है । वहाँ पर ममस्त देवों के गण—गन्धर्व—और राक्षस निवास दिया करते हैं । ४८। उस शैलों के राजा के ऊपर शुभ अप्सराओं के समुदाय भी दिखलाई दिया करते हैं । वह मेरु पर्वत भूतों के भावन भुवनों से परिवृत रहा करता है । ४९।

चत्वारो यस्य देशा वै चतुः पाश्वेष्वधिष्ठिताः ।

भद्राश्वा भरताश्चैव केतुभालाश्च पञ्चिमाः ॥५०

उत्तरा कुरबश्चैव कृतपुण्यप्रतिश्रयाः ।

गंधमादनपाश्वेऽत् परैषाऽपरगंडिका ॥५१

सर्वत्तुरमणीया च नित्यं प्रमुदिता शिवा ।

द्वात्रिशत् सहस्राणि योजनैः पूर्वपञ्चिमात् ॥५२

आयामतश्चतुस्त्रिशत्सहस्राणि प्रमाणतः ।

तत्र ते शुभकर्मणः केतुमाला: प्रतिष्ठिताः ॥५३

तत्र काला नराः सर्वे महासत्त्वा महाबलाः ।

स्त्रियश्चोत्पलपत्राभाः सवस्त्ताः प्रियदर्शनाः ॥५४

तत्र दिव्यो महावृक्षः पनसः सङ्ग्रसाश्रयः ।

ईश्वरो ब्रह्मणः पुत्रः कामचारी मनोजवः ॥५५

तस्य पीत्वा फलरसं जीवन्ति च समायुतम् ।

पाश्वे माल्यवतश्चापि पूर्वोपूर्वा तु गण्डिका ॥५६

जिसके चार देश हैं जो चारों पाश्वों में समधिष्ठित हैं । जिनके नाम भद्राश्व—भरत—केतुपाल और पश्चिम हैं ॥५०। उत्तर और कुरु कृतपुण्य प्रतिश्रय हैं । गन्धमादन के पाश्व में तो यह पर अपर गण्डिका है ॥५१। ये सभी ऋतुओं में परम रमणीय हैं और नित्य ही प्रमुदित तथा शिव हैं । पूर्व और पश्चिम से बत्तीस सहस्र योजनों से युक्त हैं ॥५२। प्रमाण से इनका आयाम चौतीस सहस्र योजनों वाला है । वहाँ पर वे परम शुभ कर्मों वाले केतुमाल देश प्रतिष्ठित हैं ॥५३। वहाँ पर जब नर काल हैं जो महान् सत्त्व वाले और महान् बल से सम्पन्न हैं और वहाँ की स्त्रियाँ कमलदल की आभा वाली तथा देखने में बहुत प्रिय लगती हैं ॥५४। वहाँ पर एक बहुत ही उत्तम पनस का महान् वृक्ष है जिसमें छैरस विद्यमान रहा करते हैं । उसकी स्वामी ब्रह्मा का पुत्र कामना से चरण करने वाले मनोजव हैं ॥५५। वहाँ पर समायुत काल पर्यन्त उसके फलों का रस का पान करके प्राणी जीवित रहा करते हैं । पूर्व में माल्यवान् के पाश्व में एक अपूर्व गण्डिका है ॥५६।

—X—

॥ भारतदेश ॥

सूत उवाच—एवमेव तिसर्गो वै वर्णणां भारते शुभे ।

हष्टः परमतत्त्वज्ञभूय कि वर्णयामि वः ॥१

ऋषिरुवाच—यदिदं भारतो वर्णं यस्मिन्स्वायंभुवादयः ।

चतुर्दशीते मनवः प्रसासर्गोऽभवन्पुनः ॥२

एतद्वेदितुमिच्छामस्तन्नो निगद सत्तम ।

एतच्छ्रुतवचस्तेषामन्नवीद्रोमहर्षणः ॥३

अत्र वो वर्णयिष्यामि वर्षेऽस्मिन् भारते प्रजाः ।

इदं तु मध्यमं चित्रं शुभाशुभफलोदयम् ॥४

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमवद्दक्षिणं च यत् ।

वर्षं तद्भारतं नाम यत्रैवं भारती प्रजा ॥५

भरणाच्च प्रजानां वै मनुभरत उच्यते ।

निरुक्तवचनाच्चैवं वर्षं तद्भारतं स्मृतम् ॥६

इतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यश्चांतश्च गम्यते ।

न खल्वन्यत्र मत्यनां भूमौ कर्म विधीयते ॥७

श्रीसूतजी ने कहा—इस प्रकार से ही परम शुभ भारत में वर्षों का निसर्ग है जो कि परम तत्वों के ज्ञाताओं के द्वारा देखा गया है । अब फिर आपके सामने मैं क्या वर्णन करूँ ? ।१। कृष्ण ने कहा—जो यह भारतवर्ष है जिसमें ये चौदह स्वायम्भूत आदि मनुगण फिर प्रजा के सृजन करने में थे ।२। हे श्रेष्ठ पुरुषों में परमोत्तम ! हम लोग यहीं जानने की इच्छा करते हैं । वही आप हमारे समक्ष मैं वर्णन कीजिए । रोम हर्षणजी ने उन कृष्णियों के इस वचन का व्यवरण करके कहा था ।३। यहाँ पर इस भारतवर्ष में आप लोगों के सामने जो प्रजा हुई थी उनका मैं वर्णन करूँगा । यह तो मध्यम चित्र है जो शुभ और अशुभ फलों के उदय वाला है ।४। समुद्र के उत्तर में और हिमवान् के दक्षिण में है वह भारत नाम वाला वर्ष है जहाँ पर यह भारत की प्रजा है ।५। प्रजाओं के भरण करने से भरत मनु कहा जाया करते हैं । इसी निरुक्ति के वचन से यह वर्ष भारत—इस नाम से कहे गया है । यहाँ से स्वर्ग होता है और यहाँ से ही बारम्बार जीवन-मरण के आवागमन से मुक्त हुआ करता है और मध्य तथा अन्त का ज्ञान मनुष्यों का कर्म करने का क्षेत्र नहीं है अर्थात् कर्म करने की भूमि यही देश है ।६-७।

भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदान्निवोधत ।

समुद्रांतरिता ज्ञेयास्ते त्वगम्याः परस्परम् ॥८

इन्द्रद्वीपः कशेष्मांस्ताम्रवर्णो गमस्तिभावः ।

नागद्वीपस्तथा सौम्यो गांधवंस्त्वय वारुणः ॥६

अयं तु नवप्रस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ।

योजनानां सहस्रं तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरात् ॥७०

आयतो ह्याकुमार्या वै चागंगाप्रभवाच्च वै ।

तिर्यगुत्तरविस्तीर्णः सहस्राणि नवैव तु ॥११

द्वीपो ह्युपनिविष्टोऽयं म्लेच्छेरतेषु सर्वशः ।

पूर्वे किराता ह्यस्याने पश्चिमे यवनाः स्मृताः ॥१२

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागशः ।

इज्यायुधवणिज्याभिवर्त्तयन्तो व्यवस्थिताः ॥१३

तेषां संव्यवहारोऽत्र वर्त्तते वै परस्परम् ।

धर्मार्थकामसंयुक्तो वर्णनां तु स्वकर्मसु ॥१४

इस भारत वर्ण के नौ भेद हैं उनको आप लोग भली-भाँति समझ लीजिए ? वे सब समुद्र से अन्तरित हैं—ऐसे ही जान लेने चाहिए और परस्पर में वे सब अगम्य हैं अर्थात् अज्ञय एवं गमन न करने के योग्य हैं । इनके नाम ये हैं—इन्द्रद्वीप—कशेष्मान्—ताम्रवर्ण—गमस्तिमान्—नागद्वीप—सौम्य—गच्छर्व—वारुण ॥६। यह नौवाँ उन द्वीपों में है जो सागर से संवृत है । यह द्वीप दक्षिण-उत्तर से एक सहस्र योजन है ॥१०। भागीरथी गङ्गा के उदगम स्थान से कन्या कुमारी तक यह आयत है । नौ सहस्र योजन तिरछा अत्तर की ओर विस्तीर्ण है ॥११। यह द्वीप अन्तों में सभी ओर म्लेच्छों द्वारा उपनिविष्ट है । इसके अन्त में पूर्व में किरात रहा करते हैं और पश्चिम में यवन लोग बाले बताये गये हैं ॥१२। मध्य के भागों में ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य और शूद्र निवास करते हैं । जो यज्ञार्चन—शस्त्र—प्रयोग—वाणिज्य में अभिवर्त्तन करते हुए व्यवस्थित हैं ॥१३। यहाँ पर इन चारों वर्णों में परस्पर में समानीन व्यवहार रहा करता है । अपने वर्ण के अनुसार जो इनके अपने कर्म हैं उन्हीं में यह व्यवहार धर्म अर्थ और काम

संकल्पः पंचमाना च ह्याश्रमाणां यथादिवि ।

इह स्वर्गपिवगर्थं प्रवृत्तिर्येषु मानुषी ॥१५

यस्त्वयं नवमो द्वीपस्तिर्यगायाम उच्यते ।

कृत्स्नं जयति यो ह्येनं सम्भ्राडित्यभिधीयते ॥१६

अयं लोकस्तु वै सम्भ्राडंतरिक्षं विराट् स्मृतम् ।

स्वराडसौ स्मृतो लोकः पुनर्वंक्ष्यामि विस्तरात् ॥१७

सप्तेवास्मिन्सुपर्वणो विश्रुताः कुलपर्वताः ।

तेषां सहस्रशच्चान्ये पर्वतास्तु समीपगाः ॥१८

अविजाता यारवंतो विपुलाश्चित्रसानवः ।

मन्दरः पर्वतश्रेष्ठो वैहारो दुदुरस्तथा ॥२०

कोलाहलः ससुरसो मैनाको वैद्युतस्तथा ।

वातंधमो नागगिरिस्तथा पाण्डुरपर्वतः ॥२१

पंचमान इस आश्रमों के सङ्कल्प विधि के ही अनुसार होता है । वहाँ पर जिनमें स्वर्ग प्राप्ति और मोक्ष के लिये मानुषी प्रवृत्ति रहा करती है । १५। जो यह नवम द्वीप है वह तिर्यग् आयाम वाला कहा जाता है । इस सम्पूर्ण द्वीप पर अपने बल-विक्रम के द्वारा विजय प्राप्त कर लेता है वह यहाँ का सम्भ्राड चक्रवर्ती राजा के नाम से कहा जाया करता है । १६। यह लोक तो सम्भ्राड है और अन्तरिक्ष विराट् कहा गया है । यह लोक स्वराड कहा गया है । मैं फिर विस्तार के साथ बतलाऊँगा । १७। इस द्वीप में सुपर्व सात ही कुल पर्वत प्रसिद्ध हैं । महेन्द्र—मलय—सह्य—शुक्तिमान—शृक्ष पर्वत—विन्ध्य और पारियात्र ये ही सात कुश पर्वत हैं । १८-१९। बहुत से पर्वतों का ज्ञान ही नहीं है और वे मार सम्पन्न तथा विचित्र शिखरों वाले हैं । पर्वतों में परम श्रेष्ठ मन्दर—बैहार—दुदुर—कोलाहल—समुरस—मैनाक—बैद्युत—वातंधम—नागगिरि और पाण्डुर पर्वत हैं । २०-२१।

तुंगप्रस्थः कृष्णगिरिगोधनो गिरिरेव च ।

पुष्पगिर्युज्जयंतो च शैलो रेवतकस्तथा ॥२२

श्रीपर्वतश्चित्रकूटः कूटशैलो गिरिस्तथा ।

अन्ये तेभ्योऽपरिज्ञाता हृस्वाः स्वल्योपजीविनः ॥२३
 तैविमिश्रा जनपदा आर्या म्लेच्छाश्च भागशः ।
 पीयंते यंरिमा नद्यो गंगा सिंधुः सरस्वती ॥२४
 शतद्रुष्टचंद्रभागा च यमुना सरयूस्तथा ।
 इरावती वितस्ता च विपाशा देविका कुहूः ॥२५
 गोमती धूतपापा च बुद्धुदा च हृषद्वती ।
 कौशिकी त्रिदिवा चैत्र निष्ठीवी गण्डकी तथा ॥२६
 चक्षुलोहित इत्येता हिमवत्पादनिस्मृताः ।
 वेदस्मृतिर्गेदवती वृत्रघ्नी सिंधुरेव ॥२७
 कणशा नंदना चंव सदानीरा महानदी ।
 पाशा चर्मण्वतीनूपा विदिशा वेत्रवत्यषि ॥२८

तुङ्गप्रस्थ—कृष्णागिरि—गोधनगिरि—पुष्प गिरि—उज्जयन्त तथा
 स्वेतक शेल है । २१। श्री पर्वत—चित्रकूट—कूट शेलगिरि हैं । उनसे भी अन्य
 छोटे-छोटे गिरि हैं जो भली-भली परिज्ञात नहीं हैं और स्वल्पोपजीवी हैं । २३। उन शेलों से मिले-जुले जनपद यह भी हैं जिनके भागों में आर्य तथा
 म्लेच्छ निवास किया करते हैं जिनके द्वारा इन नदियों का पान किया जाया
 करता है । उन नदियों के कुछ नामों का परिगणन किया जाता है जैसे—
 गङ्गा—सिंधु—और सरस्वती हैं । २४। शतद्रु—वन्द्रभागा—जमुना—सरयू—
 इरावती—वितस्ता—विपाशा—देविका—कुहू है । २५। गोमती—धूतपापा—बुद्धुदा—
 हृषद्वती—कौशिकी—त्रिदिवा—निष्ठीवी—गण्डकी—चक्षु—लोहित—ये सब नदियाँ
 हिमवान् महाशेल के पाद से निकली हैं । वेदस्मृति—वेदवती—वृत्रघ्नी और
 सिंधु है । वणशा—नंदना—सदानीरा—महानदी—पाशा—चर्मण्वती—नूपा—
 विदिशा—वेत्रवती है । २६-२८।

क्षिप्रा ह्यवंति च तथा पारियात्राश्रयाः स्मृताः ।
 शोणो महानदश्चैव नर्मदा सुरसा क्रिया ॥२९
 मंदाकिनी दशाणी च चित्रकूटा तथैव च ।
 तमसा पिष्पला श्येना करमोदा पिण्डाचिका ॥३०
 चित्रोपला विशाला च बंजुला वास्तुवाहिनी ।

सनेरुजा शुक्तिमती मंकुती त्रिदिवा क्रतुः ॥३१
 ऋक्षवत्सप्रसूतास्ता नद्यो मणिजलाः शिवाः ।
 तापी पयोष्णी निविष्ट्या सृपा च निषधा नदी ॥३२
 वेणी वौतरणी चैव क्षिप्रा वाला कुमुद्धती ।
 तोया चैव महागौरी दुर्गा वान्नशिला तथा ॥३३
 विष्ट्यपादप्रसूतास्ता नद्यः पुण्यजलाः शुभाः ।
 गोदावरी भीमरथी कृष्णवेणाथ बंजुला ॥३४
 तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा वाह्या कावेर्यथापि च ।
 दक्षिणप्रवहा नद्यः सह्यपादाद्विनिः स्मृताः ॥३५

क्षिप्रा और अबन्ति ये नदियाँ पारिमात्र के समाश्रय वाली हैं—ऐसा कहा गया है—शोण महानन्द हैं। सुरसा—नर्मदा—क्रिया—मन्दाकिनी दशाणी—चित्रकूटा—नमसा—पिप्पला—श्येना—करमोदा और पिशाचिका—ये नदियाँ हैं । २९-३०। चित्रोपला—विशाला—बंजुला—वास्तुवाहिनी—सनेरुजा—शुक्तिमती—मंकुती—त्रिदिवा—क्रतु नदियाँ हैं । ३१। ये सब ऋक्ष वत्स पर्वत से संभूत होने वाली हैं जिनका जल मणि के समान परम स्वच्छ और शिव है । तापी—पयोष्णी—निविष्ट्या—सृपा और निषधा नदी हैं । ३२। वेणी—वौतरणी—वाला—कुमुद्धती—तोया—महागौरी—दुर्गा—वान्नशिला नदियाँ हैं । ३३। ये सब नदियाँ विष्ट्य गिरि के पाद से प्रसूत होने वाली हैं जिनका जल परम पुण्यमय है और जो बहुत ही शुभ है । गोदावरी—भीमरथी—कृष्णवेणा—बंजुला—तुङ्गभद्रा—सुप्रयोगा—वाह्या—कावेरी—ये नदियाँ दक्षिणा की ओर प्रवाह करने वाली हैं और महा गिरि के पाद से निकलने वाली हैं । ३४-३५।

कृतमाला ताघपणी पुष्पजात्युत्पलावती ।
 नद्योऽभिजाता मलयात्सर्वाः शीतजलाः शुभाः ॥३६
 त्रिसामा ऋषिकुल्या च बंजुला त्रिदिवावला ।
 लांगूलिनी वंगधरा महेन्द्रतनयाः स्मृताः ॥३७
 ऋषिकुल्या कुमारी च मंदगा मंदगामिनी ।
 कृपा पलाशिनी चैव शुक्तिमत्प्रभवाः स्मृताः ॥३८

तास्तु नद्यः सरस्वत्यः सर्वा गंगाः समुद्रगाः ।

विश्वस्य मातरः सर्वा जगत्पापहराः स्मृताः ॥३६

तासां नद्युपनद्योऽन्याः शतशोऽथ सहस्राः ।

तास्त्विमे कुरुपांचालाः शाम्वा माद्रेयजांगलाः ॥४०

शूरसेना भद्रकारा बोधाः सहपटच्चराः ।

मतस्याः कुशल्याः सौशल्याः कुंतलाः काशिकोशलाः ॥४१

गोधा भद्राः कलिगाश्च मागधाश्चोत्कलैः सह ।

मध्यदेश्या जनपदाः प्रायशस्तत्र कीर्तिताः ॥४२

कृतमाला-ताम्रहर्णी-पुष्पजाती-उत्पलावती—ये जब नदियाँ मलय पर्वत से अभिजात हुई हैं जिनका जल बहुत ही शीतल और शुभ है । ३६। त्रिसामा-ऋषिकुल्या-बंजुला-त्रिदिवा-बला-लांगूलिनी-बंशधरा-ये सब महेन्द्र-गिरि की तनया कही गयी हैं । ३७। ऋषिकुल्या-मन्दगा-मन्द गामिनी-कृपा-पलाशिनी—ये नदियाँ शुक्तिमान् पर्वत से समुत्पत्ति पाने वाली हैं । ३८। ये सब नदियाँ सरस्वती हैं और सब समुद्र में गमन करने वाली गङ्गा है । ये सभी इस विश्व की मालायें हैं और जगत् के समस्त पापों के हरण करने वाली कही गयी हैं । ३९। इन सब नदियों की अन्य सेंकड़ों और हजारों ही उप नदियाँ हैं । उनमें ये कुरु पाञ्चाल-शालव-माद्रेय-जांगल-शूरसेन-भद्रकार-बोध-सहपटच्चर-मतस्य कुशल्य-कुन्तल-काणि-कोशल-गोध-भद्र-कलिग-मागध-उत्कल-मध्य देश में होने वाले जनपद प्रायः करके वहाँ पर कीर्तित किये गये हैं । ४०-४२।

सह्यस्य चोत्तरांतेषु यत्र गोदावरी नदी ।

पृथिव्याभपि कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः ॥४३

तत्र गोवद्धूनं नाम पुरं रामेण निर्मितम् ।

रामप्रियाश्च स्वर्गीया द्रुक्षा दिव्यास्तथौषधीः ॥४४

भरद्वाजेन मुनिना तत्प्रियार्थेऽवरोपिताः ।

अतः पुरवरोद्देशस्तेन जज्ञे मनोरमः ॥४५

वाह्लीका वाटधानाश्च आभीरा कालतोयकाः ।

भास्त्रांतराश्च मुद्रापञ्च मान्त्रजापाचर्मसंडला ॥४६

पंडिताश्च केरलाश्चैव चोलाः कुलयास्तथैव च ।

सेतुका मूषिकाश्चैव क्षपणा वनवासिकाः ॥५६

अत्रिगण-भरद्वाज-प्रस्थल-दशेरक-लमक-तालशाल-भूषिक-ईजिक-ये सब उत्तर दिशा में हैं । अब जो पूर्व दिशा में देश हैं उनका भी आप ज्ञान प्राप्त कर लीजिए । अङ्ग-दङ्ग-चोल भद्र-किरातों की जातियाँ-तोमर-हङ्सभंग-काष्मीर-तंगण-झिलिक-आहुक-हणदर्व-अन्धगक-मुद्गर अन्तिगिरि-बहिगिरि —इसके अनन्तर प्लवङ्गव-मलद और मलवत्तिक जानने के योग्य हैं । ५०-५३। समंतर-प्रावृष्टेय-भार्गव-गोपपाणिव-प्रागज्यो तिष-पुण्ड्र-विदेह-ताङ्ग लिप्तिक-मल्ल-मगध और गोनदे —ये जनपद पूर्व दिशा में हैं ऐसा कहा गया है । इसके उपरान्त दूसरे दक्षिणा पथवासी जनपद हैं । ५३-५८। पण्ड्य-केरल-चोल-कुल्य-सेतुक-मूषिक-क्षपण और वनवासिक देश हैं । ५८।

माहाराष्ट्रा महिषिकाः कलिगाश्चैव सर्वशः ।

आभीराश्च सहैषीका आटव्या सारवास्तथा ॥५७

पुलिदा विघ्यमौलीया वैदर्भा दंडकेत सह ।

पौरिका मौलिकाश्चैव अश्मका भोगवर्धनाः ॥५८

कौंकणाः कंतलाश्चांध्राः पुलिन्दाङ्गारमारिषाः ।

दक्षिणाश्चैव ये देशा अपरांस्तान्निबोधत ॥५९

सूर्य्यीरकाः कलिवना दुर्गालाः कुन्तलैः ।

पौलेयाश्च किराताश्च रूपकास्तापकैः सह ॥६०

तथा करीतयश्चैव सर्वे चैव करंधराः ।

नासिकाश्चैव ये चान्ये ये चैवांतरनमंदाः ॥६१

सहकच्छाः समाहेयाः सह सारस्वतैरपि ।

कच्छिपाश्च मुराष्ट्राश्च आनतश्चार्बुदै सह ॥६२

इत्येते अपरांताश्च शृणुष्व विघ्यवासिनः ।

मलदाश्च करुषाश्च मेकलाश्चोत्कलैः सह ॥६३

माहराष्ट्र-महिषिक-कलिङ्ग-सब और आभीर-सहैषीक-आटव्य-साख-पुलिन्द-विन्ध्य मौलीय-ठोदर-दण्डक-पौरिक-मौलिक-अश्मक-भोग वर्धन-कोङ्कण-कन्तल-आन्ध्र-पुलिन्द-अंगार-मारिष-ये सब देश दक्षिणा पथ वासी

गांधारा यवनाश्चैव सिंधुसौबीरमण्डलः ।

चीनाश्चैव तुषाराश्च पल्लवा गिरिगट्वरा: ॥४७

शका भद्राः कुलिदाश्च पारदा विन्ध्यचूलिकाः ।

अभीषाहा उलूताश्च केकया दशभालिकाः ॥४८

ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्यशूद्रकुलानि तु ।

कांबोजा दरदाश्चैव बर्बरा अंगलौहिकाः ॥४९

सह्य गिरि के उत्तरान्तों में जहाँ पर गोदावरी नदी वहती है इस सम्पूर्ण पृथिवी में वह प्रदेश परम सुन्दर है । ४३। वहाँ पुर है जिसका गोवर्धन नाम है और इसका निर्माण श्रीराम ने किया था । वहाँ पर श्रीराम के प्रिय स्वर्गीय और अत्युत्तम वृक्ष तथा औषधियाँ हैं । ४४। इन सबका अब रोपण श्रीराम की प्रोति के लिए भरद्वाज मुनि ने किया था । अतएव उन्होंने इस पुरवर का मनोरम उद्देश्य किया था वाट्लीक-वाटधान-आमीर-कालतोयक-अपरान्त-सुह्य-पाञ्चाल-चर्ममण्डल-गान्धार-यवन-सिंधु सौबीर मण्डल-चीन-तुषार-पल्लव-गिरि गट्वरशक-भद्र-कुलिन्द-पारद-विन्ध्यचूलिका-अभी-षाहू-उलूत-केकय-दशभालिक ये सब देश तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के कुल, काम्बोज-दरद-उर्वर और अङ्गलौहिक ये सब देश हैं । ४६-४९।

अन्यः सभरद्वाजाः प्रस्थलाश्च दशेरकाः ।

लमकास्तालशालाश्च भूषिका ईजिकैः सह ॥५०

एते देशा उदीच्या वै प्राच्यान्देशान्निबोधत ।

अंगवंगाश्चोलभद्राः किरातानां च जातयः ।

तोमरा हंसभंगाश्च काश्मीरास्तंगणास्तथा ॥५१

झिलिकाश्चाहुकाश्चैव हूणदवस्तथैव च ॥५२

अंध्रवाका मुद्गरका अंतर्गिरिबहिर्गिराः ।

ततः प्लवंगवो ज्येया मलदा मलवर्तिकाः ॥५३

समंतराः प्रावृषेया भार्गवा गोपपाथिवाः ।

प्रारज्योतिषाश्च पुङ्ड्राश्च विदेहास्ताम्रलिप्तकाः ॥५४

मल्ला मगधगोनर्दा� प्राच्यां जनपदां स्मृताः ।

अथापरे जन पदा दक्षिणापथवासिनः ॥५५

हैं। और जो दक्षिण में होने वाले दूसरे जनपद हैं उनका भी ज्ञान प्राप्त करलो । ५७-५८। सूर्यार्क-कलिवन-गुगलि-कुन्तल-पौलेय-किरात-रूपक-तापक-करीति और सब करन्धर और नासिक तथा जो अन्य नर्मदा के अन्तर में हैं । ६०-६१। सहकच्छ-समाहेय-सारस्वत-कच्छिप-सुराष्ट्र-आनंद-अबुंद—ये सब और अपरान्त जो विन्ध्य के बास करने वाले हैं उनको आप सुनिये । मलद-करुण-मेकल-उत्कल-ये जनपद विन्ध्य के बास करने वाले हैं । ६२-६३।

उत्तमानां दशाणश्च भोजाः किञ्चिकधक्तः सह ।

तोशलाः कोशलाश्चौव त्रैपुरा वैदिशास्तथा ॥ ६४

तुहुण्डा वर्वराश्चैव षट्पुरा नैषधे- सह ।

अनूपास्तु डिकेराश्च वीतिहोत्रा ह्यवंतयः ॥ ६५

एते जनपदाः सर्वे विष्ण्यपृष्ठनिवासिनः ।

अतो देशान्प्रवक्ष्यामि पर्वताश्रयिणश्च ये ॥ ६६

निहीरा हंसमार्गश्च कुपथास्तंगणा शका ।

खपप्रावरणाश्चैव ऊर्णी दर्वीः सहृदुकाः ॥ ६७

त्रिगत्ती मंडलाश्चैव किरातास्तामरैः सह ।

चत्वारि भारते वर्षे युगानि ऋषयोऽब्रुवन् ॥ ६८

कृतं त्रेतायुगं चैव द्वापरं तिष्यमेव च ।

तेषां निसर्गं वक्ष्यामि उपरिष्टादशेषतः ॥ ६९

उत्तमों के दशार्ण-भोज-किञ्चिकन्धक-तोशल-कोशप—त्रैपुर—वैदिश—तुहुण्ड—वर्वर—षट्पुर—नैषध—अनूप—तुण्डिकेर—वीतिहोत्र—अबन्ति—ये सब जनपद विन्ध्य गिरि के ऊपर निवास करने वाले हैं। इसके आगे मैं उन देशों का वर्णन करूँगा जो पर्वतों का आश्रय ग्रहण करके निवास किया करते हैं । ६४-६६। निहीर-हंसमार्ग-कुपथ-तञ्जण-शक-अप-प्रावरण-ऊर्ण-दर्व-सहृदीक-त्रिगत-मण्डल-किरात-तामर-ये समस्त देश पर्वतों के ऊपर समाश्रय लेने वाले हैं। ऋषियों ने भारतवर्षे में चार युगों का होना बतलाया था। प्रथम कृतयुग अर्थात् सत्ययुग है—दूसरा त्रेता, तीसरा द्वापर और चौथा तिष्य है। इन सबका निसर्ग ऊपर से ही सम्पूर्ण में आपको बतलाऊँगा । ६७-६९।

युग संख्यावर्त

ऋषिरुचा—चतुर्युगानि यान्यासन्पूर्वं स्वायंभुवेऽन्तरे ।

तेषां निसर्गं तत्त्वं च श्रोतुमिच्छामि विस्तरात् ॥१॥

सूत उच्चाच—पृथिव्यादिप्रसंगेन यन्मया प्रागुदीरितम् ।

तेषां चतुर्युगं ह्येतत्तद्वक्ष्यामि निबोधत ॥२॥

संख्ययेह प्रसंख्याय विस्तराच्चैव सर्वशः ।

युगं च युगभेदश्च युगधर्मस्तथैव च ॥३॥

युगसंध्यांशकश्चैव युगसंधानमेव च ।

षट्प्रकाशयुगाख्यैषा तां प्रवक्ष्यामि वत्वतः ॥४॥

लौकिकेन प्रमाणेन निष्पाद्याब्दं तु मानुषम् ।

तेनाशब्देन प्रसंख्यायै वक्ष्यामीह चतुर्युगम् ।

निमेषकालतुल्यं हि विद्याललङ्घवक्षरं च यत् ॥५॥

काष्ठा निमेषा दण पञ्च चैव त्रिष्णच्च काष्ठा गणयेत्कलां तु ।

त्रिष्णत्कलाश्चापि भवेत्मुहूर्तस्तैस्त्रिष्णता रात्र्यहनी समेते ॥६॥

अहोरात्री विभजते सूर्यो मानुषलौकिको ॥७॥

ऋषि ने कहा—जो चार युग हैं और पूर्व में स्वायम्भुव मन्वन्तर में थे । हे भगवन् ! उनका जिसर्ग कैसे हुआ और उनका क्या तत्त्व है—यह मैं विस्तार के साथ श्रवण करना चाहता हूँ ॥१॥ श्रीसूत जी ने कहा—पृथिवी आदि के प्रसंग से जो मैंने पूर्व में कहा था उनके चारों युगों के विषय में मैं अब बतलाऊँगा । उसको आप भली-भाँति समझ लीजिए ॥२॥ यहाँ पर संख्या के द्वारा प्रसंख्यान करके और सब प्रकार से विस्तृत मैं कहूँगा । युग-युग का भेद-युग का धर्म-युग सन्धि का अंश-युग संधान-यह षट् प्रकाश युग की आळया है । उन सबको मैं तात्त्विक रूप से आपको बतलाऊँगा ॥३-४॥ लौकिक प्रमाण मनुष्य के वर्ष का निष्पादन करके उसी शब्द से प्रसंख्यान करके यहाँ पर मैं चारों युगों को बतलाऊँगा । निमेष काल उसे ही जानना चाहिए जो कि लघु अक्षर के तुल्य होता है ॥५॥ पन्द्रहनिमेषों का जितना काल होता है वहाँ चार युग होते हैं । तो आपका यहाँ को साध्य नहीं

कला गिनना चाहिए। तीस कलाओं का एक मुहूर्त होता है। तीस मुहूर्तों के सम रात्रि और दिन हुआ करते हैं। ६। दिन और रात्रि का विभाग सूर्य किया करता है जो कि मनुष्य का लौकिक होता है। ७।

तत्राहः कर्मचेष्टायां रात्रिः स्वप्नाय कल्पते ।

पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तयोः पुनः ॥८

कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषां शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ।

त्रिशब्दे मानुषा मासाः पित्र्यो मासस्तु सः स्मृतः ॥९

शतानि त्रीणि मासानां षष्ठ्या चाप्यधिकानि वै ।

पित्र्यः संवत्सरो ह्येष मानुषोण विभाव्यते ॥१०

मानुषोणेव मानेन वर्षणां यच्छतं भवेत् ।

पितृणां त्रीणि वर्षाणि संख्यातानीह तानि वै ॥११

दश चैवाधिका मासाः पितृसंख्येह संज्ञिताः ।

लौकिकेनैव मानेन ह्यव्वदो यो मानुषः स्मृतः ॥१२

एतद्विष्यमहोरात्र शास्त्रे स्यान्निश्चयो गतः ।

दिव्ये रात्र्यहनी वर्ष प्रविभागस्तयोः पुनः ॥१३

अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्यादक्षिणायनम् ।

ये ते रात्र्यहनी दिव्ये प्रसंख्यानं तयोः पुनः ॥१४

उनमें दिन तो कर्मों के करने की चेष्टा में लगाया जाता है और रात्रि का समय सोने के लिए कहा जाता है। दिव्य रात्रि और दिन मास होता है। उन दोनों या प्रविभाग फिर होता है। ८। उनका कृष्ण पक्ष उनकी रात्रि होती है। मनुष्यों के जो तीस मास होते हैं वही पितृगणों का मास कहा गया है। ९। तीन सौ साठ मासों का पितृगणों का एक वर्ष होता है। यह संख्या मनुष्यों के मासों से विभावित हुआ करती है। १०। मनुष्यों के मास से जो सौ वर्ष होते हैं वे पितृगणों के तीन वर्ष संख्यात किये गये हैं। ११। यहाँ पर दश मास अधिक पितृ गणों की संख्या सज्जा बाली हुई है। लौकिक मान से ही जो मनुष्यों का शब्द कहा गया है। १२। यह विष्य अर्थात् देवों का अहोरात्र अवधि एक दिन और रात है जो शास्त्र निश्चय को प्राप्त हुआ है। दिव्य रात्रि और दिन वर्ष है और उन दोनों का फिर

प्रविभाग है । १३। वहाँ पर जो दिन है वह उत्तरायण होता है और जो रात्रि है वह दक्षिणायन होता है जो वे दिव्य रात्रि और दिन हैं उनका पुनः प्रसंख्यान है । १४।

त्रिशद्यानि तु वर्षाणि दिव्यो मासस्तु स स्मृतः ।

यन्मानुषं शतं विद्धि दिव्या मासास्त्रयस्तु ते ॥ १५ ॥

दश चंद्रं तथाऽहानि दिव्यो ह्येष विधिः स्मृतः ।

त्रीत्रि वर्षं गतान्येव षष्ठिवर्षाणि यानि तु ।

दिव्यः संवत्सरो ह्येष मानुषेण प्रकीर्तिः ॥ १६ ॥

त्रीणि वर्षं सहस्राणि मानुषाणि प्रमाणतः ।

त्रिशदन्यानि वर्षाणि मतः सप्तशिवत्सरः ॥ १७ ॥

नव यानि सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि तु ।

अन्यानि नवतिश्चैव ध्रुवः संवत्सरः स्मृतः ॥ १८ ॥

षष्ठिवर्षतिसहस्राणि वर्षाणि मानुषाणि तु ।

वर्षाणि तु शतं जेयं दिव्यो ह्येष विधिः स्मृतः ॥ १९ ॥

त्रीण्येव नियुतान्याहुर्वर्षाणां मानुषाणि तु ॥ २० ॥

षष्ठिश्चैव सहस्राणि संख्यातानि तु संख्यया ।

दिव्यवर्षांसहस्रं तु प्राहुः संख्याविदो जनाः ॥ २१ ॥

मनुष्यों के जो तीस वर्ष होते हैं उतने समय का देवों का दिव्य मास कहा गया है । जो मानवों के एक सौ वर्ष हैं उतने समय का दिव्य तीन मास हुआ करते हैं । १५। तथा दश दिन हैं—यही दिव्य विधि कही गयी है । तीन सौ साठ जो वर्ष मनुष्यों के होते हैं यह एक दिव्य सम्वत्सर कहा गया है । १६। मनुष्यों के तीन हजार वर्ष प्रमाण से होते हैं और अन्य वर्ष हैं इतने समय का सप्तशिवियों का एक वत्सर होता है । १७। मानवों के जो नौ हजार वर्ष होते हैं और अन्य नववै वर्ष हैं—इतने समय का ध्रुव सम्वत्सर हुआ करता है । मनुष्यों के छब्बीस हजार वर्षों का जो समय होता है वह समय होता है वह समय देवों का अर्थात् दिव्य सौ वर्ष हुआ करते हैं—यह विधि कही गयी है । १८-१९। तीन नियुत ही मनुष्यों के वर्ष कहे जाते हैं । २०। संख्या के द्वारा साठ सहस्र वर्ष हो संख्यात किये गये हैं । संख्या के ज्ञाता मनीषी गण दिव्य सहस्र वर्ष कहते हैं । २१।

इत्येवमृषिभिर्गीतं दिव्यया संख्यया त्विह ।

दिव्येनैव माणेन युगसंख्याप्रकल्पनम् ॥२२

चत्वारि भारते वर्षे युगानि कवयोऽप्नुवन् ।

कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्थ्यम् ॥२३

पूर्वं कृतयुगं नाम तत्स्त्रेता विद्धीयते ।

द्वापरं च कलिष्वैव युगान्येतानि कल्पयेद् ॥२४

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां च कृतं युगम् ।

तस्य बावचलती संध्या संध्ययाः संध्यया समः ॥२५

इतरेषु संध्येषु संध्यांशेषु च त्रिषु ।

एकन्यायेन वर्तन्ते सहस्राणि यातानि च ॥२६

त्रीणि द्वे च सहस्राणि त्रेताद्वापरयोः क्रमात् ।

त्रिणती द्विशती संध्ये संध्यांशौ चापि तत्समी ॥२७

कलि वर्षसहस्रं तु युगमाहुद्विजोत्तमाः ।

तस्यैकशतिका संध्या संध्यांशं संध्याय समः ॥२८

ऋषियों ने यह इस प्रकार से दिव्य संख्या के साथ गान किया है और दिव्य प्रमाण के ही द्वारा युगों की प्रकृष्ट संख्या की कल्पना की जाया करती है । २२। कविगणों ने भारत वर्ष में चार युग बताये थे । कृतयुग-त्रेता-द्वापर और कलियुग ये चार युगों की चौकड़ी है । २३। सबसे प्रथम जो युग है उसका कृतयुग अर्थात् सत्ययुग है । इसके उपरान्त त्रेता युग का विद्यान किया जाता है । फिर द्वापर और इसके बाद कलियुग आता है—इन चार युगों की कल्पना की जाती है । २४। कृतयुग के बरतने का काल चार सहस्र दिव्य वर्षों का होता है । उस युग की उतने ही सौ वर्षों की सन्ध्या होती है ही और सन्ध्या का अंश सन्ध्या के ही समान होता है । २५। सन्ध्या के सहित और सन्ध्यांशों के सहित अन्य तीनों में एक ही न्याय से सहस्र और तीन बरता करते हैं । २६। त्रेता और द्वापर में क्रम से तीन और दो सहस्र होते हैं । तीन सौ और दो सौ सन्ध्याये और सन्ध्यांश भी उनके ही समान कुछा करते हैं । २७। द्विजोत्तम कलियुग एक सहस्र वर्ष कहते हैं । उसकी एक सौ वर्षों बालों सन्ध्या होती है और सन्ध्या के ही समान सन्ध्या का अंश हुआ करता है । २८।

तेषां द्वादशसाहस्री युगसंख्या प्रकीर्तिता ।

कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चैव चतुष्टयम् ॥२६

अत्र संवत्सरा हषा मानुषेण प्रमाणतः ।

कृतस्य तावद्विद्यामि वर्णणि च निबोधत ॥३०

सहस्राणां शतान्याहुश्चतुर्दशं हि संख्यया ।

चत्वारिंशत्सहस्राणि तथान्यानि कृतं युगम् ॥३१

तथा शतसहस्राणि वर्णणि दण्डसंख्या ।

अतीतिश्च सहस्राणि कालस्त्रेतायुगस्य सः ॥३२

सप्ततैव नियुतान्याहुर्बर्णणां मानुषेण तु ।

विशतिश्च सहस्राणि कालः स द्वापरस्य च ॥३३

तथा शतसहस्राणि वर्णणि त्रीणि संख्या ।

षष्ठिश्चैव सहस्राणि कालः कलियुगस्य तु ॥३४

एवं चतुर्युगे काल अहसी संध्यांशकैः समृद्धः ।

नियुतान्येव षड्विशान्निरसानि युगानि वै ॥३५

चत्वारिंशत्सर्वानि त्रीणि नियुतानीह संख्यया ।

विशतिश्च सहस्राणि स संध्यांशशत्चतुर्युगः ॥३६

एवं चतुर्युगाभ्यानां साविका ह्येकसप्ततिः ।

कृतत्रेतादियुक्तानां मनोरंतरमुच्यते ॥३७

उनकी बारह सहस्रों वाली युगों की संख्या की गयी है ।

इस प्रकार से कृतयुग-त्रेता-द्वापर और कलियुग इन चार युगों की चौकड़ी है । २६। यहाँ पर मानुष प्रमाण से सम्बत्सर देखे गये हैं । अब कृत युग के वर्षों को बतलाऊंगा । उनको भली भौति समझ लीजिए । ३०। संख्या के द्वारा चौदह सौ सहस्र कहे गये हैं । तथा अन्य चालीस सहस्र कृतयुग है । ३१। दश की संख्या से सौ सहस्र वर्ष हैं । वह अस्सी सहस्र काल त्रेतायुग का होता है । ३२। मानुष प्रमाण से सात ही विषुल वर्ष कहे गये हैं । और द्वापर युग का काल बीस सहस्र वर्ष होता है । ३३। संख्या से तीन शत सहस्र वर्ष कलियुग का ज्ञात है । यहाँ से इन कालों का मुकुट संख्याओं

के सहित काल कहा गया है। युग निरस छन्दोंस नियुत ही है। ३५। इन चारों युगों का संख्या से तीतालीस नियुत और बीस हजार वह सन्ध्यांश होता है। ३६। इस प्रकार से कृत से लेकर ब्रेता आदि चारों युगों की साधिका इकहस्तर होती है। इसी को एक मन्वस्तर कहा जाता है अर्थात् इकहस्तर चारों युगों को चौकड़ियाँ जब समाप्त हो जाती हैं तभी एक मनु के प्रासन का समय पूर्ण होकर दूसरा मन्वस्तर आता है। ३७।

अंतरिक्षे समुद्रे च पाताले पर्वतेषु च ।

इज्या दानं तपः सत्यं त्रेतायां धर्मं उच्यते ॥ ३८ ॥

तदा प्रवर्त्तते धर्मो वणश्चिमविभागः ।

मयदिवस्थापनार्थं च दडनोति प्रवर्त्तते ॥ ३९ ॥

हृष्टपष्टः प्रजाः सर्वी अरोगाः पूर्णमानसाः ।

एको वेदश्चतुष्पादस्त्रेतायुगविधी स्मृतः ॥ ४० ॥

त्रीणि वर्षसहस्राणि तदा जीवन्ति मानवाः ।

पुत्रपौत्रसमाकीर्णि भ्रियन्ते च क्रमेण तु ॥ ४१ ॥

एष त्रेतायुगे भ्रमस्त्रेतासंघ्यां निवोधत ।

त्रेतायुगस्वभावानां संघ्यापादेन वर्तते ।

संघ्यापादः स्वभावस्तु सोऽशपादेन लिष्ठति ॥ ४२ ॥

अन्तरिक्ष में—समुद्र में—पाताल में और पर्वतों में इज्या-दान, तप और सत्य का समाचरण ही त्रेतायुग में धर्म कहा जाया करता है। ३८। उस समय में वर्षों और आश्रमों के विभाग के अनुसार व्रम की प्रवृत्ति हुआ करती है। मयदिव की स्थापना करने के लिए दण्ड देने की तीति भी उस समय में प्रवृत्त होती है। ३९। उस समय में समस्त प्रजा के जन समुदाय हृष्ट-पुष्ट, रोगों से रहित और पूर्ण मानस वाले होते हैं। त्रेतायुग की विधि में चार पादों वाला एक ही वेद कहा गया है। ४०। उस समय में मानवों की आयु बड़ी होती थी और वे तीन हजार वर्षों तक जीवित करते रहा थे। ने सब अपने पुत्रों—पीत्रों से घिरे हुए रहा करते थे तथा उनकी मृत्यु भी आयु के अनुसार क्रम से ही हुआ करती थी। ४१। त्रेतायुग में इसी प्रकार से धर्म होता था। अब त्रेता की सन्ध्या का भी शान प्राप्त कर लीजिए। त्रेता

युग के जो स्वभाव हैं उनकी सन्ध्या पाद से भरता करती है। सन्ध्यापादका स्वभाव जो है वह अंग पाद से स्थित होता है ॥२॥

—४—

चतुर्पुर्णगाल्यान् वर्णनम्

सूत उवाच—अत ऊद्गवं प्रवद्यामि द्वाहरस्य विधि पुनः ।
 तत्र त्रेतायुगे क्षीणे द्वापरं प्रतिपद्धते ॥१
 द्वापरादौ प्रजानां तु सिद्धिस्त्रेतायुगे तु या ।
 परिवृत्ते युगे तस्मिंस्ततस्ताभिः प्रणश्यति ॥२
 ततः वत्तते तासां प्रजानां द्वापरे पुनः ।
 संभेदश्चेव वर्णनां कार्याणां च विपर्ययः ॥३
 यज्ञावधारणं रुदंडो मदो दंभः क्षमा बलम् ।
 एषा रजस्तमोयुक्ता प्रवृत्तिद्विपरे स्मृता ॥४
 आद्ये कृते यो धर्मोऽस्ति स त्रेतायां प्रवर्त्तते ।
 द्वापरे व्याकुलीभूत्वा प्रणश्यति कलो युगे ॥५
 वर्णनां विपरिष्ठवं सः संकीर्णते तथाक्षमाः ।
 द्वैविष्यं प्रतिपद्यते युगे तस्मिन्छतिस्मृती ॥६
 द्वैधात्तथा श्रुतिस्मृत्योनिष्ठत्यो नाधिगम्यते ।
 अनिष्टव्याधिगमनाद्भृत्तत्वं न विद्यते ॥७

श्री सूनजी ने कहा—उसके आगे फिर द्वापर युग की विधि का वर्णन करूँगा। वहीं पर त्रेता युग के क्षीण होने पर द्वापर युग प्रतिपन्न होता है ॥१॥ द्वापर युग के आदि में प्रजाओं की वहीं सिद्धि भी जो कि त्रेतायुग में थी। उस युग के परिवर्तित हो जाने पर इसके पश्चात् उन सिद्धियों से बिनष्ट हो जाता है ॥२॥ फिर द्वापर में उस प्रजाओं का संभेद प्रवृत्त हो जाता है और समस्त वर्णों का और कार्यों का विपर्यय हो जाया करता है ॥३॥ यज्ञों का अवधारण, दण्ड, दम्भ, क्षमा और बल द्वापर में यह प्रवृत्ति जो भी भी वह रजोयुग और तमोयुग से युक्त कही गयी है ॥४॥ सबसे आदि में होने वाले कृतयुग में जो धर्म है वह त्रेतायुग में प्रवृत्त होता है। द्वापर युग में वह धर्म व्याकुलिल होकर कलियुग में बिनष्ट ही जाता है ॥५॥ सभी वर्णों का विशेष रूप से परिष्ठव स होता है तथा सब आश्रम भी बिगड़ जाया करते

हैं । उस युग में श्रुतियाँ और स्मृतियाँ दो प्रकारों को प्राप्त कर लिया करती हैं । श्रुति-स्मृतियों के दो प्रकार के स्वरूप हो जाने से किसी निश्चय का अधिगम नहीं हुआ करता है और अनिश्चय के अधिगम से धर्म का वास्तविक तत्त्व नहीं रहता है । ६७।

धर्मसित्वेन मित्राणां मतिभेदो भवेन्नुणाम् ।

परस्परविभिन्नैस्तं हृषीनां विभ्रमेण च ॥६

अयं धर्मौ ह्ययं नेति निश्चयो नाधिगम्यते ।

कारणानां च वैकल्प्यात्कार्याणां चाप्यनिश्चयात् ॥६

मतिभेदेन तेषां वै हृषीनां विभ्रमो भवेत् ।

ततो हृषिविभिन्नैस्तु कृतं शास्त्राकुलं त्विदम् ॥१०

एको वेदश्चतुष्पाद्वि त्रेतास्त्रिवह विधीयते ।

संक्षयादायुषश्चैव व्यस्यते द्वापरेषु च ॥११

ऋषिमंत्रात्पुनर्भेदादिभव्यते हृषिविभ्रमः ।

मंत्रब्राह्मणविन्यासैः स्वरवर्णविपर्ययैः ॥१२

संहिता ऋग्यजुः साम्नां संपठथ तो महार्षिभिः ।

सामान्या वैकृताश्चैव हृषिभिन्ने क्वचित्क्वचित् ॥१३

ब्राह्मणं कल्पसूत्राणि मंत्रप्रवचनानि च ।

अन्येऽपि प्रस्थितास्तान्वै केचित्सान्प्रत्यवस्थिताः ॥१४

धार्मिकता के न रहने से मित्र मनुष्यों की मति का भेद हो जाया करता है । वे सब आपस को भी किसी के साथ सहानुभूति नहीं होती है । सब की सृष्टि में विभ्रम हो जाया करता है । ८। यह धर्म है अथवा यह अधर्म है—इसका कोई भी निश्चय नहीं हुआ करता है । कारणों के विकल्प होने से और कार्यों के निश्चय नहीं होने से धर्मधर्म का कोई निश्चय नहीं हुआ करता है । ९। उन मनुष्यों की मति के विभेद होने से उनकी हृषियों का भी विभ्रम हो जाता है । किर विभिन्न हृषियों वाले मनुष्यों के द्वारा शास्त्रों को भी आकुलित कर दिया या । १०। वेद एक ही था उसको त्रेतायुग में चार पादों वाला किया जाता है । आयु के संक्षय होने से द्वापरयुग में यह व्यवस्थित हो जाता है । ११। ऋषियों ने और मन्त्रों के किर भेद-

होने से यह हृषि के विभिन्नों में युक्त हो जाता है। जिस मूँ भन्न भाग और आहुण भाग का विन्यास होता है और भवरी तथा वर्णों का विपर्यय होता है। १२। महूषियों के द्वारा ऋस्केद-यजुर्वेद और सामवेद की संहितायें पढ़ी जाया करती हैं। कहीं पर सामान्य और कहीं-कहीं पर हृषि की भिन्नता होने पर वैकृत ये पक्षी जाया है। १३। आहुण-कल्प सूत्र और भन्न प्रवचन और अन्य भी प्रसिद्ध हैं और कुछ उनके प्रति अवस्थित हैं। १४।

द्वापरेषु प्रवर्त्तते निवर्त्तते कलौ युगे ।

एकमाध्वर्यं त्यासीत्पुनर्द्वैधमजायत ॥ १५

सामान्यविपरीतार्थः कृतशास्त्राकुलं त्विदम् ।

आध्वर्यवस्य प्रस्थानैर्वहुधा व्याकुलीकृतः ॥ १६

तथैवाथर्वश्चक्साम्नां विकल्पैश्चापि संअया ।

व्याकुले द्वापरे नित्यं कियते भिन्नदर्शनैः ॥ १७

तोषां भेदाः प्रतीभेदा विकल्पाश्चापि संरूप्यया ।

द्वापरे संप्रवर्त्तते विनश्यन्ति ततः कलौ ॥ १८

तोषां विपर्ययोत्पन्ना भवन्ति द्वापरे पुनः ।

अवृष्टिर्घरणं चैव तथैव व्याध्युपद्रवाः ॥ १९

वाड्मनः कर्मजंदुःखेतिवैदो जायते पुनः ।

निवेदजजायते तोषां दुःखमोक्षविचारणा ॥ २०

विचारणाच्च वैराग्यं वैराग्यादोषदर्शनम् ।

दोषदर्शनतश्चैव द्वापरेऽज्ञानसंभवः ॥ २१

यह सब कुछ द्वापर युग में प्रवृत्त होते हैं और कलियुग में भी सभी भेद-प्रभेद निवृत्त हो जाते हैं। एक आध्वर्यं वा और फिर दो प्रकार हो गये थे। १५। साधारण और विपरित अर्थों के द्वारा यह शास्त्र आकुल कर दिया गया था यह बहुधा आध्वर्यं के व्याकुली कृत प्रस्थानों के द्वारा ही हुआ था। १६। तथा अर्थात् उसी प्रकार से संज्ञा के द्वारा अर्थ-शृङ् और सामों के विकल्पों से भी हुआ था। नित्य ही इस तरह से व्याकुल द्वापर में विभिन्न दर्शन गास्त्रों के द्वारा किया जाता है। १७। संरूप्या से उनके भेद-प्रतीभेद-और विकल्प द्वापर युग में भली-भाँति प्रवृत्त होते हैं और फिर जब कलियुग आता है तो सभी किरण से जामा होते हैं। शास्त्र द्वापर ऐसा

उनके विपरीत समृद्धिन हो जाते हैं । दृष्टि का अभाव-व्याधि-उष्मद्व-मरण-ये सब होते हैं । १६। कायिक, वाचिक और मानसिक सभी प्रकार के दुःख होते हैं और उन दुःखों के समुदाय से फिर मनो निर्बोद्ध उत्पन्न हो जाता है । यह सभी निस्सार है—ऐसा जब निर्बोद्ध हृदयों में होता है तो फिर उन प्राणियों के हृदयों में इन सब दुःखों से छुटकारा पाने का विचार होता है । १७। ऐसी जब विचारणा होती है तो उससे सबके प्रति विरागता हो जाया करती है और उस वौद्धगत्य से भोगोपभोगों में दोषों का दर्शन होने लगता है । दोषों के देखने से ही द्वापर में अज्ञान की उत्पत्ति हो जाती है । १८।

तेषामज्ञानिनां पूर्वमाद्ये स्वायंभुवेऽन्तरे ।

उत्पद्यंते हि शास्त्राणां द्वापरे परिपञ्चितः ॥२२

आयुर्वेदविकल्पश्च ह्यज्ञानां ज्योतिषस्य च ।

अर्थशास्त्रविकल्पाश्च हेतुशास्त्रविकल्पनम् ॥२३

प्रक्रियाकल्पसूत्राणां भाव्यविद्याविकल्पनम् ।

स्मृतिशास्त्रप्रभेदश्च प्रस्थानानि पृथक्पृथक् ॥२४

द्वापरेष्वभिवत्तंते मतिभेदाश्रयान्तुणाम् ।

मनसा कर्मणा वाचा कृच्छ्राद्वार्ता प्रसिद्ध्यति ॥२५

द्वापरे सर्वभूतानां कायवलेशपुरस्कृता ।

लोभो द्रुतिवंणिकृपूर्वा तस्थानामविनिश्चयः ॥२६

वेदशास्त्रप्रणयनं धर्मणां संकरस्तथा ।

वणश्रिमपरिष्वंसः कामकोष्ठो तथैव च ॥२७

द्वापरेषु प्रवर्त्तन्ते रोगो लोभो वधस्तथा ।

वेदं व्यासश्चतुर्द्वा तु व्यस्यते द्वापरादिषु ॥२८

उन ज्ञान से रहित मानवों से पहिले स्वायम्भुव मन्वन्तर में जो कि सबसे पहिला है उस द्वापर में सभी शास्त्रों के परिपन्थो अर्थात् विरोध करने वाले लोग समृद्धिन हो जाया करते हैं । १९। रोगों के विषय में आयुर्वेद शास्त्र का विकल्प और ज्योतिष शास्त्र का विकल्प-अर्थशास्त्र के विषय में विकल्प और हेतु शास्त्र का विकल्प है । २०। कल्पसूत्रों की प्रक्रिया, भाव्य विद्या का विकल्प और स्मृति शास्त्रों के प्रभेद ऐसे अलग-अलग प्रस्थान हैं

१२४। ये सभी द्वापर युग में मनुष्यों की बुद्धियों के भेद होने से अभिवर्तित हैं । मन से-वचन से और कर्म से बड़ी कठिनाई से बात्ता प्रसिद्ध होती है । १२५। द्वापर में समस्त प्राणियों के कार्य शारीरिक क्लेश के साथ ही होते हैं । सबकी वृत्ति होती है जैसी कि वणिजों की हुआ करती है और किसी को भी तत्त्वों का निश्चय नहीं होता है । १२६। लोग स्वयं ही वेदों और लास्त्रों का प्रणयन किया करते हैं और धर्म सब मिलकर एकमेक जाते हैं और धर्मों की सङ्करता हो जाती है । चारों वर्णों और चारों आश्रमों का पूर्णतया विवरण हो जाता है और प्राणियों में प्रायः काम और क्रोध उत्पन्न हो जाया करते हैं । १२७। द्वापर युग में लोगों के मनों में राग-लोभ और वध करने की भावनायें उत्पन्न हो जाया करती हैं । द्वापर के आदि में व्यासदेव जी ने वेद के भार भाग किये थे । १२८।

निःशेषे द्वापरे तस्मिमस्तस्य संध्या तु यादशी ।

प्रतिष्ठितगुणीर्हीनो धर्मोऽसौ द्वापरस्य तु ॥२६॥

तथैव संध्या पादेन ह्यं गः संध्या इतीज्यते ।

द्वापरस्यावशेषेण तिष्यस्य तु निबोधत ॥३०॥

द्वापरस्यांशेषेण प्रतिपत्तिः कलेरपि ।

हिसायूयानृतं माया वधश्चैव लपस्विनाम् ॥३१॥

एते स्वभावास्तिष्यस्य साधयन्ति च वै प्रजाः ।

एष धर्मः कृतः कृत्स्नो धर्मश्च परिहीयते ॥३२॥

मनसा कर्मणा स्तुत्या बातीं सिद्ध्यति वा न वा ।

कलौ प्रमारको रोगः सततं कूदभयानि च ॥३३॥

अनादृष्टभयं घोरं देणानां च विपर्ययः ।

न प्रमाणं स्मृतेरस्ति तिष्ये लोकेषु वै युगे ॥३४॥

मर्भस्थो भ्रियते कश्चिद्द्वौबनस्थस्तथापरः ।

स्थविराः केऽपि कौमारे भ्रियन्ते वै कलौ प्रजाः ॥३५॥

द्वापरयुग के निःशेष होने पर उसकी सन्ध्या का काल भी जैसा ही था । द्वापर का यह धर्म गुणों से हीन प्रतिष्ठित होता है । १२६। उसी धौति की पाद से सन्ध्या होती है । अङ्ग-ही सन्ध्या अभीष्ट हुआ करती है । द्वापर

के अवशेष से अब तिष्ठ के विषय में समझ लो । ३०। जब द्वापर युग का अंश शेष रहता है तभी कलियुग की भी प्रतिपत्ति हो जाया करती है। जो तपश्चर्याकास समाचरण करने वाले हैं उनमें भी युग के प्रभाव से हिंसा—असूया—अनृत—माया और वध की भावनायें उत्पन्न हो जाती हैं । ३१। ये तिष्ठ (कलि) के स्वभाव हैं जिनका साधन प्रजा के जन किया करते हैं। यह ही किया गया पूर्ण धर्म है और वास्तविक जो भी धर्म है वह परिहीण हो जाया करता है । ३२। मन से-कर्म से और स्तुति से वास्ति सिद्ध होती है अथवा नहीं होती है। कलियुग में रोग प्रकृष्ट रूप से मारक होता है और क्षुधा तथा भय होते हैं । ३३। कलि में वृष्टि के समय पर न होने को व्योम भय होता है तथा देशों का विपर्यय हो जाता है। कलियुग में लोगों में स्मृति का कोई भी प्रमाण नहीं माना जाता है। कोई तो माता के गर्भ में ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, कोई युवावस्था में ही मर जाया करता है, कोई-कोई वृद्ध होकर मर जाते हैं। इस कलियुग में प्रजाजन कुमारावस्था में ही परलोक में चले जाया करते हैं । ३४-३५।

दुरिष्टेदुरधीतैश्च दुष्कृतैश्च दुरागमैः ।

विप्राणां कर्मदोषेस्तैः प्रजानां जायते भयम् ॥ ३६ ॥

हिंसा माया तथेष्यी च क्रोधोऽसूयाक्षमा नुषु ।

तिष्ठे भवन्ति जंतूना रोगा लोभश्च सर्वशः ॥ ३७ ॥

संक्षोभो जायतोऽत्यर्थं कलिमासाद्य वै युगम् ।

पूर्णे वर्षसहस्रे वै परमायुस्तदा नुणाम् ॥ ३८ ॥

नाधीयंते तदा वेदान्तं यजंते द्विजातयः ।

उत्सीदंति न राश्चेव क्षत्रियाश्च विशः क्रमात् ॥ ३९ ॥

शूद्राणां मत्ययोनेस्तु संबंधा ब्राह्मणः सह ।

भवंतीह कलौ तस्मिन्छयनासनभोजनैः ॥ ४० ॥

राजानः शूद्रभूयिष्ठाः पाखंडानां प्रवर्त्तकाः ।

गुणहीनाः प्रजाश्चेव तदा वै संप्रवर्त्तते ॥ ४१ ॥

आयुर्मेधा बलं रूपं कुलं चौब प्रणश्यति ।

शूद्राश्च ब्राह्मणाचारा शूद्राचाराश्च ब्राह्मणाः ॥ ४२ ॥

बुरे मनोरथ-असद् विषयों का अध्ययन-बुरे पाप कर्म-बुरे शास्त्र और प्रजाओं के कृतिसत कर्मों के दोषों से ही भय उत्पन्न हो जाया करता है । ३६। हिंसा-माया-ईच्छा-क्रोध-निनदा और अक्षमा—राग और सब प्रकार लोभ कलियुग में जन्तुओं में और मनुष्यों में होते हैं । ३७। अत्यधिक संक्षोभ कलियुग के प्राप्त होने पर समुत्पन्न हो जाता है । उस समय में मानवों की परमायु पूरे सहस्र वर्षों की होती है । ३८। उस समय में द्विजातिगण वेदों का अध्ययन नहीं किया करते हैं और न वे यजन ही किया करते हैं । सभी नर-क्षत्रिय और वैश्य क्रम से उत्पन्न हो जाया करते हैं । ३९। शूद्रों के ब्राह्मणों साथ अन्त्यजों से सम्बन्ध होते हैं और उस कलियुग में शय-आसर और भोजन का सब परस्पर में सम्बन्ध किया करते हैं । ४०। राजाओं में बहुधा शूद्र वर्ण वालों की अधिकता होती है जो कि पाखण्डों के प्रवर्त्तक ही हुआ करते हैं । उस समय में प्रजाजनों में भी गुणों की हीनता संप्रवृत्त होती है । ४१। न तो मानवों में मेधा होती है और न उनकी कुछ आयु ही होती है । बल-रूप और कुल सभी विनष्ट हो जाया करते हैं । जो शूद्र वर्ण वाले मानव हैं उनके आचार तो ब्राह्मणों के समान होते हैं और ब्राह्मण शूद्रों के तुल्य आचरण किया करते हैं । ४२।

राजवृत्ताः स्थिताश्चोराश्चोराचाराश्च पार्थिवाः ।

भृत्या एते ह्यसुभृतो युगांते समवस्थिते ॥४३ ।

अशीलिन्योऽनृताश्चैव स्त्रियो मद्यामिषप्रियाः ।

मायाविन्यो भवियन्ति युगांते मुनिसत्तम ॥४४ ।

एकपत्न्यो न शिष्यन्ति युगांते मुनिसत्तम ।

श्वापदप्रबलत्वं च गवा चैव ह्युपक्षयः ॥४५ ।

साधूनां विनिवृत्तिं च विद्यास्तस्मिन्युगक्षये ।

तदा धर्मो महोदको दुलंभो दानमूलवाद ॥४६ ।

चातुराश्रमशीथिल्यो धर्मः प्रविचरिष्यति ।

तदा ह्यल्पफला भूमिः क्वचिच्च्वापि महाफला ॥४७ ।

न रक्षितारो भोक्तरो वलिभागस्य पार्थिवाः ।

युगान्ते च भविष्यन्ति श्वापदप्रायाः ॥४८ ।

अरक्षितारो राजानो विप्राः शूद्रोपजीवितः ।

शूद्राभिवादिनः सर्वे युगान्ते द्विजसत्तमाः ॥४६

चौर्मं कर्म करने वाले पुरुष राजाओं के समान आचरण वाले हैं और जो पाथिव हैं वे चोरों के समान आचरण करने वाले हैं । इस युग के अन्त समय के उपस्थित होने पर भूत्यगण प्राणों का भरण करने वाले हैं । ४३। नारियाँ शील से शून्य-मिथ्याचार वाली तथा मदिरा और मास से प्रेम करने वाली होती हैं । हे मुनि श्रेष्ठ ! इस युग के अन्त में सभी स्त्रियाँ माया रचने वाली होती हैं । ४४। पुरुष भी एक ही पत्नी रखने के लक्ष वाले नहीं होते हैं । हे मुनिसत्तम ! युग के अन्त समय में सबंध ऐसा ही दिखलाई देता है । सब जगह अन्य पशुओं की प्रबलता होती है और मौओं के कुल का क्षय होता है । ४५। उस युग के क्षय में साक्षुजनों की विशेष रूप से निवृत्ति होती है । ऐसा ही जान लेना चाहिए । उस समय में अपने आपका बहुत ऊँचा उठाना ही धर्म है और दान के मूल वाला धर्म परम दुर्लभ होता है । ४६। बहुचर्यं गार्हस्थ्य-वानप्रस्थ और संस्थान—इन चारों आश्रमों की शिथिलता वाला धर्म ही सब जगह चलेगा । उस समय में भूमि भी अल्प फल देने वाली होती है और कहीं पर महान् फल वाली होगी । ४७। राजा लोग केवल अपनी बलि का भोग करने वाले होंगे और ग्रजा की रक्षा करने वाले नहीं होंगे । और युग के अन्त में ये वृपगण अपनी ही रक्षा करने में तत्पर रहा करेंगे । राजा लोग संरक्षण नहीं करने वाले और विद्रोगण शूद्रों से उपजीविका चलाने वाले हो जायेंगे । और युग के अन्त में श्रेष्ठ द्विजगण भी शूद्रों के अभियादन करने वाले हो जायेंगे । ४८-४९।

अट्टशूला जनपदाः शिवशूला द्विजास्तथा ।

प्रमदाः केशशूलाश्च युगान्ते समुपस्थितो ॥५०

तपोशज्जलानां च विक्रेतारो द्विजोत्तमाः ।

यतयश्च भविष्यन्ति बहवोऽस्मिन्कलौ युगे ॥५१

त्रिव्रवर्षी यदा देवसतदा प्राहुर्युगक्षयम् ।

सर्वे वाणिजकाश्चापि भविष्यन्त्यध्यमे युगे ॥५२

भूयिष्ठं कूटमानेश्च पर्यं विक्रीणतो जनाः ।

कुशीलचर्यपिण्डैव्यधिरूपः समावृत्य ॥५३

पुरुषाल्पं बहुस्त्रीकं युगान्तो समुपस्थिते ।

बाहुयाचनकी लोको भविष्यति परस्परम् ॥५४

अव्याकर्ता क्रूरवाक्या नार्जंबो नानसूयकः ।

न कृतो प्रतिकर्ता च युगे क्षीणे भविष्यति ॥५५

अशंका चैव पतितो युगान्ते तस्य लक्षणम् ।

ततः शून्या वसुमती भविष्यति वसुन्धरा ॥५६

सभी जनपद अट्टालिकाओं के शूल वाले हैं और शिव के शूल वाले सब द्विजातिगण हैं। इस युगान्त से समुपस्थित होने पर सभी प्रमदायें केशों के शूल वाली हैं । ५०। श्रेष्ठ द्विज भी अपनी तपस्या और यज्ञों के फल को द्रव्य लेकर बेच देने वाले हो जायेंगे। इस कलियुग में काषाय वस्त्रों के धारण करने वाले बहुत से यतिगथ हो जायेंगे । ५१। जिस समय में विचित्र ढंग से इन्द्रदेव वर्षी करने वाले हो जायेंगे उस समय में इस युग की क्षय कहते हैं। इस आधार युग में सभी वर्णों के मातव वाणिज्य व्यवसाय करने वाले हो जायेंगे । ५२। मनुष्य कूटमानों के द्वारा अधिक पण्य वस्तुओं का विक्रय किया करते हैं वह पण्य कुशील चर्या-पाखण्ड-ईश्वरी और अन्धों से समावृत होगा । ५३। पुरुष के रूप से युक्त मनुष्य बहुत स्त्रियों वाला इस युग के अन्त के उपस्थित होने पर होगे। लोग परस्पर में बहुत बाचना करने वाले होंगे । ५४। इस युग के क्षीण होने पर मनुष्य प्रायः अव्याकर्ता-क्रूर वाक्य बोलने वाला-कुटिल-निन्दक और किए हुए उपकार का प्रत्युपकार न करते वाला होगा । ५५। इस युग के अन्त में यही उसका लक्षण है कि पतित में कोई भी शंका नहीं होती है अर्थात् निश्चाङ्क होकर पतित व्यक्ति से सम्बन्ध स्थापित रखा करते हैं। इसके पश्चात् यह वसुमती वसुन्धरा शून्य हो जायगी । ५६।

गोप्तारश्चाप्यगोप्तारः प्रभविष्यन्ति शासकाः ।

हत्तरः पररत्नानां परदारविमर्शकाः ॥५७

कामात्मानो दुरात्मानो ह्यधमाः साहस्रियाः ।

प्रनष्टचेतना धूर्ता मुक्तकेशास्त्वेशूलिनः ॥५८

ऊनघोडशवषश्च प्रजायन्ते युगक्षये ।

शुक्लदंता जिताक्षाश्च मुण्डाः काषायवाससः ॥५९

शूद्रा धर्मं चरिष्यन्ति युगान्तो समुपस्थिते ।
 सस्यचोरा भविष्यन्ति तथा चैलापहारिणः ॥६०
 चोराच्चोराश्च हस्तीरो हस्तु हस्ती तथापरः ।
 ज्ञानकर्मण्युपरते लोके निष्क्रियतां गते ॥६१
 कीटमूषकसपर्विच धर्वयिष्यन्ति मानवान् ।
 अभीक्षणं क्षेममारोग्यं सामर्थ्यं दुर्लभं तथा ॥६२
 कौशिकान्प्रतिवत्स्यन्ति देशाः क्षुद्रभयपीडिताः ।
 दुखेनाभिष्टुतानां च परमायुः यतं तदा ॥६३

जो रक्षक हैं वे भी रक्षा नहीं करने वाले शुसक हो जायेंगे । ये दूसरों के रत्नों का हरण करने वाले तथा दूसरों की स्त्रियों से विमर्श करने वाले हो जायेंगे । ५५। सभी लोग काम वासना से परिपूर्ण—दुष्ट भावों वाले—बहुत अशूम और दुस्साहस से प्रेम करने वाले—नष्ट चेष्टा वाले—धूत—अमूली केशों को खुले हुए रखने वाले होंगे । ५६। इस युग के लघु में सोलह वर्ष से भी छोटी उम्र वाले सम्मान का प्रजानन किया करते हैं । शुक्ल दन्तों वाले—जिताक्ष—मुष्टित शिर वाले और काषाय रङ्ग के वस्त्रों के धारण करने वाले होंगे । ५७। युगान्त के उपस्थित होने पर शूद्र लोग धर्म का आवरण करेंगे । लोग धान तथा फसल की चोरी करने वाले और वस्त्रों का अपहरण करने वाले होंगे । ५८। चोर से हरण करने वाले चोर तथा हरणकर्ता से दूसरे हरण करने वाले हो जायेंगे । ज्ञान पूर्वक कर्मों के उपरत हो जाने पर समस्त लोक निष्क्रियता को प्राप्त हो जायगा । ५९। कीड़े-मूषक और सर्व मानवों को प्रधर्षित करेंगे । उसी प्रकार से ब्राह्मण क्षेम कुशल-आरोग्य और सामर्थ्य सभी बहुत दुर्लभ हो जायेंगे । भूख के भय से पीड़ित मनुष्यों के देश कौशिकों को प्रति वास दिया करेंगे । इस प्रकार से दुखों से जब मनुष्य पूर्ण रूप से अभिष्टुत होंगे तो उनकी उस समय से परमायु सौ वर्ष की ही रह जायगी । ६०-६३।

इश्यन्ते च न दृश्यन्ते वेदा कलियुगेऽखिलाः ।
 तत्सीदन्तो तथा यज्ञाः केवलाधर्मपीडिताः ॥६४
 वेदविक्रियणश्चान्ये तीर्थविक्रियणोऽपरे ॥६५

वर्णीथमाणां ये चान्ये पाखण्डाः परिपंथिनः ।

उत्पद्यन्ते तदा ते वै संप्राप्ते तु कलौ युगे ॥६६

अधीयन्ते तदा वेदाङ्गूद्रां धर्मीर्थकोविदाः ।

यजंते चास्वमेधेन राजानः शूद्रयोनयः ॥६७

स्त्रीबालगोवधं कृत्वा हृत्वान्ये च परस्परम् ।

अपहृत्य तथाऽन्योन्यं साध्यन्ति तदा प्रजाः ॥६८

दुःखप्रवचनाल्पायुर्देहाल्पायुश्च रोगतः ।

अधर्माभिनिवेशित्वात्तमोवृत्तं कलौ स्मृतम् ॥६९

प्रजासु भूणहृत्या च तदा वैरात्प्रवर्तते ।

तस्मादायुर्बंलं रूपं कलि प्राप्य प्रहीयते ॥७०

इस कलियुग में समस्त वेद दिखाई दिया करते हैं अर्थात् नहीं दिखाई देते हैं । उसी प्रकार से इसलिए यज्ञ अधर्म से पीड़ित होकर दुःखित होते हैं । ६४। इस घोर कलियुग के सम्प्राप्त होने पर इस जगती तल में कषाय वर्ण को वस्त्र धारण करने वाले सन्यासी के वेषधारी—निर्गम्य तथा कापालक लोग बहुत दिखाई दिया करते हैं । कुछ अन्य वेदों का विकल्प करने वाले हैं अर्थात् धन लेकर वेद के मन्त्रों को पढ़ने वाले हैं और दूसरे तीर्थों को बैचते वाले हैं और अन्य लोग ऐसे हैं जो वर्णों और आश्रमों का कोश पाखण्ड दिखाया करते हैं और वास्तव में इन वर्णश्रिमों के विरोधी शत्रु होते हैं । ऐसे ही लोग बहुधा उत्पन्न हो जाता करते हैं । ६५-६६। धर्म के अर्थ के पण्डित बनने वाले शूद्र लोग उस समय में वेदों का अध्ययन किया करते हैं जिनको वेदों के पढ़ने का शास्त्रानुसार कभी भी अधिकार नहीं होता है । शूद्र योनि वाले अश्वमेध यज्ञ का यजन किया करते हैं । ६७। वह ऐसा महात् घोर समय होगा कि उसमें स्त्रियों का—गौओं का और छोटे-छोटे निरीह बालकों का वध करके और आपस में ही एक दूसरे का वध दूसरे लोग किया करते हैं तथा पारस्परिक वध करके ही प्रजा का साधन किया करते हैं । ६८। दुखों के तथा मिथ्या प्रवचनों के होने से अल्प आयु हो जाती है और रोगों के कारण भी उम्र छोटी हो जाया करती है । सबके हृदयों में अधर्म का ही विशेष अभिनिवेश होने से इस कलियुग में सर्वात्मकों का ही वो नाश जेता जाता है ।

में प्रजाओं में शूणों की अथवा गर्भस्थ शिशुओं की हृत्याएँ और के कारण हुआ करेती । इसी कारण से कलियुग को प्राप्त करके लोगों की आयु-बल विक्रम तथा रूप का सौन्दर्य सभी नष्ट हो जाया करते हैं । ७०।

तदा चालपेन कालेन सिद्धि गच्छति मानवाः ।

धन्या धर्मं चरिष्यन्ति युगान्तो द्विजसत्तमाः ॥७१॥

श्रुतिस्मृत्युदितां धर्मं ये चरन्त्यनसूयकाः ।

त्रेतायामाब्दिको धर्मो द्वापरे मासिकः स्मृतः ॥७२॥

यथाशक्ति चरन्प्राज्ञस्तदहा प्राप्नुयात्कलौ ।

एषा कलियुगावस्था संध्यांशं तु निबोधत ॥७३॥

युगे युगे तु हीयते त्रित्रिपादास्तु सिद्धयः ।

युगस्वभावात्संध्यासु तिष्ठन्तीह तु यादृशः ॥७४॥

संध्यास्वभावाः स्वांशेषु पादशेषाः प्रतिष्ठिताः ।

एवं संध्यांशके काले संप्राप्ते तु युगांसिके ॥७५॥

तेषां यास्ता ह्यसाधूनां भृगुणां निधनोत्तिथतः ।

गोत्रेण वै चन्द्रमसो नाम्ना प्रमसिरुच्यते ॥७६॥

माधवस्य तु सांशेन पूर्वं स्वायंभुवेऽन्तरे ।

समाः स विगतिः पूर्णः पर्यटन्वै वसुधराम् ॥७७॥

उस कलियुग में मनुष्य थोड़े समय में सिद्धि को प्राप्त कर लिया करते हैं—इस युग की विशेषता है । इस युग के अन्त में वे मानव और श्रेष्ठ द्विज धर्म धन्य हैं जो धैर्य का समाचरण किया करते हैं । ७१। जो अनिन्दित मानव श्रुति और स्मृतियों में कहे हुए धर्म का समाचरण किया करते हैं । ऐसा धर्म त्रेतायुग में एक वर्ष में बलवान् एवं पूर्ण होता है वही धर्म द्वापर में एक मास में साङ्ग सफल होता है और वही धर्म इस कलियुग में अपनी शक्ति के अनुसार समाचरित होने पर एक ही दिन में प्राज्ञ प्राप्त कर लिया करता है । यह कलियुग के समय की अवस्था है अब इस कलि के सम्भवा का अंग समझ लो । ७२-७३। युग-युग में सिद्धियाँ तीन-तीन पाद कीण हुआ करती हैं जैसा भी युग-स्वभाव से सन्याओं में यहाँ पर स्थित रहा करती हैं जैसा भी युग का स्वभाव हो । ७४। उनके अपने अंशों में संध्या के

स्वभाव पाद शेष प्रतिष्ठित होते हैं। इसी प्रकार से युगान्तिक काल के सम्प्राप्त होने पर सन्ध्या के अंश में होता है । ७५। उन असाधु भृगुओं का शासन करने वाला निधनोत्थित है। वह चन्द्रमा के गोत्र से है और नाम से प्रमति कहा जाया करता है । ७६। वह पूर्व स्वायम्भुव अन्तर में साध्यव के अंश से पूर्ण बीस पर्यंत इस वसुन्धरा पर पर्यटन करता था । ७७।

अनुकर्षेन्स वै सेना सवाजिरथकुर्जराम् ।

प्रधृष्टीतायुद्धिविप्रैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥७८॥

स तदा तै परिवृतो म्लेच्छान्हंति स्म सर्वेणः ।

सह वा सर्वेणश्चैव राजस्ताञ्छूलयोनिजान् ॥७९॥

पाखण्डांस्तु ततः सर्वानि निःशेषं कृतवान्विभुः ।

तात्यर्थं धार्मिका ये च तान्सवन्हंति सर्वेणः ॥८०॥

वर्णव्यत्यासजाताश्च ये च ताननुजीविनः ।

उदीच्यान्मध्यदेश्यांश्च पर्वतीयांस्तथैव च ॥८१॥

प्राच्यान्प्रतीच्यांश्च तथा विद्यपृष्ठुचरानपि ।

तथैव दाक्षिणायांश्च द्रविडान्सहलैः सह ॥८२॥

गांधाराल्पारदांश्चैव प्रह्लवान्यवनाञ्चकान् ।

कुषारान्वर्वांश्चीनाञ्छूलिकान्दरदान् खणान् ॥८३॥

लंपाकारान्सकलकान्किरातानां च जातयः ।

प्रवृत्तचक्रो बलवान्म्लेच्छानामंतकुत्प्रभुः ॥८४॥

वह धोडे-रथ और हाथियों के सहित सेना का अनुकर्षण करके संकड़ों सहस्रों की संख्या में हृषियार ग्रहण करने वाले विप्रों से समन्वित था । ७८। उस समय में इन सबसे परिवृत होते हुए उसने सभी ओर से म्लेच्छों का हनन किया था । उनके साथ ही अथवा सभी ओर से उन शूद्रयोनि में समृत्पद्म राजाओं का भी हनन कर दिया था । ७९। पाखण्ड से जो परिष्ठूर्ण थे फिर उन सबका उस विभु ने कर दिया था । जो अत्यधिक कर्म के मानने वाले नहीं थे उन सबको सभी ओर में पूर्णतया हनन करता है । ८०। जो लोग वर्णों के अव्यत्यास से समृत्पद्म हुए थे अर्थात् वर्णसङ्क्लर थे और जो उनके अनुजीवी थे । चाहे वे उत्तर दिशा में रहने वाले हों वे था

अन्य देश के होवें तथा पर्वतों में निवास करने वाले होवें । ८१। दिशा में रहने वाले हों या पश्चिम में रहते हों अथवा विन्ध्याचल के पृष्ठ पर सञ्चरण करने वाले भी होवें । उसी भाँति जो दक्षिणात्य थे, द्रविड़ थे और सिंहल थे । ८२। गान्धार-पारद-पहनव-यवन-शक-तुषार-बर्वर-चीन-शूलिक-दरद-खश । लम्पाकार-सकतक और जो भी किसातों की जातियाँ थीं । इन सभी का म्लेच्छों का वह बलशाली प्रभु चक्र ग्रहण करके अन्त कर देने वाला था । ८३-८४।

अटष्टः सर्वभूतानां चचाराथ वसुन्धराम् ।

माधवस्य तु सोऽशेन देवस्येह विजज्ञिवान् ॥८५

पूर्वजन्मनि विख्यातः प्रमतिन्नर्मि वीर्यवान् ।

गोत्रतो वै चांद्रमसः पूर्वे कलियुगे प्रभुः ॥८६

द्वात्रिशेऽभ्युदिते वष्टे प्रकांतो विशतीः समाः ।

विनिधन्नसर्वभूतानि मानवानेव सर्वेषः ॥८७

कृत्वा वीजावशेषं तु पृथ्व्यां क्रूरेण कर्मणा ।

परस्परं निमित्तेन कोपेनाकस्मिकेन तु ॥८८

सुसाध्यित्वा वृषलान्प्रायशस्तानधार्मिकान् ।

गंगायमुनयोर्मध्ये निष्ठां प्राप्तः सहानुगः ॥८९

ततो व्यतीते कल्पे तु सामान्ये सहस्रनिकः ।

उत्साद्य पार्थिवान्सर्वन्म्लेच्छांश्चौव सहस्रशः ॥९०

तत्र संध्यांशके काले संप्राप्ते तु युगांतके ।

स्थितस्वल्पावशिष्टासु प्रजास्विह वैचित्र्यवचित् ॥९१

समस्त प्राणियों के दर्शन में न आने वाला वह सम्पूर्ण वसुन्धरा पर विचरण किया करता था । वह वहाँ पर देव माधव के अंश से जाना गया था । ८५। वह पूर्व जन्म में महान् वीर्य वाला प्रमति के नाम से प्रसिद्ध था । वह प्रभु पूर्व कलियुग में चन्द्रमा के गोत्र से था । ८६। बत्तीसवें वर्ष के अभ्युदित हो जाने पर वह बीस वर्ष तक प्रकान्त हुआ था । सभी प्राणियों का और सभी ओर में मानवों का विहनन करते हुए उसने परिभ्रमण किया था । ८७। अकस्मात् परस्पर में समुत्पन्न कोप से उसने क्रूर कर्म से पृथ्वी में वीजावशेष कर दिया था । उसमें जो वृषल थे उनको और प्रायः अधार्मिक

माषबों का सुसाधित किया था उसने अपने अनुचरों के साथ गंगा और यमुना के मध्य में बड़ी निष्ठा प्राप्त करली थी । ६८-६९। इसके अनन्तर सामान्य कल्प के व्यतीत हो जाने पर अपने संनिकों के साथ रहकर सभी सहस्रों म्लेच्छों को और राजाओं का उत्पादन कर दिया था । ६०। यहाँ पर युग के अन्त कर लेने वाले सन्ध्या के अंश के सम्प्राप्त होने पर यहाँ पर कहीं-कहीं पर बहुत ही थोड़ी प्रजा अवशिष्ट रह गयी थी । ६१।

अपग्रहास्तस्ता वौ लोभाविष्टास्तु वृद्गः ।

उपहिंसति चान्योन्यं पौथयंतः परस्परम् ॥६२

अराजके युगवशात्संक्षये समुपस्थिते ।

प्रजास्ता वौ ततः सर्वाः परस्परभयाद्विताः ॥६३

व्याकुलाश्च परिभ्रांतास्त्यक्त्वा दारान्गृहाणि च ।

स्वान्प्राणाननपेक्षंतो निष्कारणसुदुःखिताः ॥६४

नष्टे श्रौते स्मृतौ धर्मे परस्परहतास्तदा ।

निर्मयदा निराकृदा निःस्नेहा निरपत्रपाः ॥६५

नष्टे धर्मे प्रतिहता ह्लस्वकाः पञ्चविंशतिम् ।

हित्वा पुत्रांश्च दारांश्च विषादव्याकुलेद्रियाः ॥६६

अनावृष्टिहताश्चौव वात्तर्मुत्सृज्य दुःखिताः ।

प्रत्यंतास्ता निषेवंते हित्वा जनपदान्स्वकान् ॥६७

सरितः सागरानूपान्सेवंते पर्वतांस्तथा ।

मांसेमूर्लफलैश्चौव वर्तयंतः सुदुःखिताः ॥६८

वे अप ग्रहण करने वाले तथा झुण्ड के झुण्ड लोभ में आविष्ट हुए परस्पर में एक दूसरे का पोथन करते हुए उपहनन किया करते हैं । ६२। जब कोई भी समुचित शासन करने वाला नहीं था और सर्वंत्र अराजकता फैली हुई थी तथा युग के प्रभाव के कारण सर्वंत्र संशय प्राप्त हो गया था । फिर वह सभी प्रजा आपस में भय से उत्पीड़ित हो गये थे । ६३। वे सब बहुत व्याकुल हो गये थे और अपनी पत्तियों तथा गृहों को भी छोड़कर इधर-उधर परिभ्रमण कर रहे थे । बिना ही किसी कारण के बहुत अधिक कुत्सित होकर आते थे जो करने मात्रे होते थे । LOVE BY Ama

और समार्त धर्म के विनष्ट हो जाने पर वे उस समय में हत हो रहे थे। उन्होंने अपनी मर्यादा का त्याग कर दिया था और वे निराक्रन्द हो गये थे उनमें किसी के प्रति भी स्नेह नहीं था तथा वे लज्जाहीन हो गये थे । १५४। धर्म के विनष्ट हो जाने पर वे छोटे पच्चीस वर्ष में ही प्रतिहत हो जाते हैं। वे अपने पुत्रों को—पत्नियों को छोड़कर विवाद से व्याकुलित इन्द्रियों वाले हो जाते हैं । १६१। वर्षा न होने के कारण बहुत हत हो जाया करते हैं और वात्स को त्याग कर परम दुःखित होते हैं। वे सम प्रजानन अपने जनपदों को त्याग कर प्रत्यन्तों का सेवन किया करते हैं । १७१। कुछ लोग नदियों का—सागरों का—अनूपों का और पर्वतों का सेवन किया करते हैं और परम दुःखित होते हुए अपनी उदरपूर्ति माँस और मूलों के द्वारा किया करते हैं । १८१।

चीरपत्राजिनधरा निष्परिग्रहाः ।

वणश्चिमपरिभ्रष्टाः संकरं घोरमास्थिताः ।

एतां काष्ठामनुप्राप्ता अल्पशेषा; प्रजास्ततः ॥ ६६ ॥

जराव्यधिक्षुधाविष्टा दुःखान्निवेदमागमन् ।

विचारणा तु निवेदात्साम्यावस्था विचारणात् ॥ १०० ॥

साम्यावस्थात्मको बोध; संबोधाद्वर्मणीलता ।

तासूपशमयुक्तासु कलिशिष्टासु वै स्वयम् ॥ १०१ ॥

अहोरात्रं तदा तासां युगान्ते परिवर्त्तिनि ।

चित्तसंमोहनं कृत्वा तासां वै सुप्तमत्तवत् ॥ १०१ ॥

भाविनोऽर्थय च बलात्ततः; कृतमवर्त्तिं ।

प्रवृत्ते तु ततस्तस्मिन्पूर्ते कृतयुगे तु वै ॥ १०३ ॥

उत्पन्ना; कलिशिष्टासु प्रजा; कार्तंयुगास्तदा ।

तिष्ठन्ति चेह ये सिद्धा अहृष्टा विचरन्ति च । १०४ ॥

सह सप्तष्पिभिश्चौव तत्र ते च व्यवस्थिता; ।

ब्रह्मक्षत्रविश; शूद्रा बीजार्थं ये स्मृता इह ॥ १०५ ॥

वस्त्रों के अभाव में सब लोग चीर, पत्र और चर्म को धारण करने वाले हैं। उनके पास कोई भी काम नहीं है अर्थात् एवं दम कर्म शून्य है।

और न उनके पास कुछ समान है। वर्णों और आश्रमों से परिभ्रष्ट हैं अर्थात् न उनका कोई वर्ण है और न कोई आश्रम ही रहा गया है। वे सब परम घोर सख्त में समाप्ति है। बहुत ही थोड़े से वचे ने प्रजाजन फिर इस दिशा में आकर प्राप्त हुए हैं । ६६। वे बृद्धपे और व्याधियों तथा भूख से समाविष्ट हैं और परमाधिक दुःख से निवैद को प्राप्त हो गये हैं। निवैद से उनको विचारणा उत्पन्न हुई और विचारणा से वे साम्य की अवस्था को प्राप्त हो गये हैं । १००। साम्यावस्था के स्वरूप वाला उनको बोध हो गया था और उस भले ज्ञान से धर्म का स्वभाव हो गया था। कलि में शिष्ट वे स्वयं उपशम से अवस्था में प्राप्त हो गये थे । १०१। उस समय में उनके अहो-रात्र (रात दिन) युगान्त के परिवर्त्तित होने पर उनके चित्त का संमोहन हो गया था और वे सब एक सोये हुए तथा प्रमन्त व्यक्ति के समान ही हो गये थे । १०२। यह सब आगे होने वाले अर्थ के ही कारण से बलात् हुआ था। इसके अनन्तर कृतयुग हुआ था। फिर उस परम पूत कृतयुग के प्रवृत्त हो जाने पर उस समय में जो कलियुग में अवशिष्ट प्रजाएँ थों उनमें सतयुग में होने वाली प्रजा ने जन्म ग्रहण किया था। जहाँ पर जो भी सिद्ध स्थित रहते हैं वे बिना किसी के द्वारा देखे गुप्त स्वरूप से विचरण किया करते हैं। वहाँ पर वे सप्तष्ठियों के साथ व्यवस्थित हैं। यहाँ पर जो बीच के लिये ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य और शूद्र कहे गये हैं । १०३-१०४-१०५।

कलिजे: सह ते संति निविशेषास्तदाभवत् ।

तेषां सप्तष्ठयो धर्मं कथयंतीतरेषु च ॥ १०६ ॥

वर्णश्रिमाचारयुक्तः: श्रौतः स्मार्तो द्विधा तु सः ।

ततस्तेषु क्रियावत्सु वर्तते वै प्रजाः कृते ॥ १०७ ॥

श्रौतस्मार्ते कृतानां च धर्मे सप्तष्ठिदर्शिते ।

केचिद्दुर्मन्यवस्थार्थं तिष्ठंतीहायुगक्षयात् ॥ १०८ ॥

मन्वन्तराधिकारेषु तिष्ठति मुनयस्तु वै ।

यथा दावप्रदग्धेषु तृणेष्विह तपेन तु ॥ १०९ ॥

वनानां प्रथमं वृष्ट्यः तेषां मूलेषु संभवः ।

तथा कार्त्युगानां तु कलिजेष्विह संभवः ॥ ११० ॥

एवं युगो युगस्येह संतानस्तु परस्परम् ।

वर्त्तंते ह्यव्यवच्छेदाद्यावन्मन्वंतरक्षयः ॥१११

सुखमायुर्बलं रूपं धर्मोऽर्थः काम एव च ।

युगेष्वेतानि हीयन्ते त्रित्रिपादाः क्रमेण च ॥११२

वे सब कलियुग में समुत्पन्न हुओं के साथ ही हैं और उस समय में विशेषता से रहित ही हैं। उनके इतरों में यहाँ पर सप्तष्ठिगण धर्म को कहते हैं । १०६। वह धर्म वर्णों और आश्रमों से आचार से युक्त वैदिक तथा स्मृतियों के द्वारा प्रतिपादित दो प्रकार का है । इसके अनन्तर कृतयुग में उन क्रियाशीलों में निष्ठय ही प्रजा होती है । १०७। कृतयुग के मनुष्यों का सप्तष्ठियों के द्वारा प्रदर्शित श्रौत और स्मातं धर्म हैं । यहाँ पर कुछ लोग धर्म की व्यवस्था के लिए युगक्षय से स्थित रहते हैं । १०८। मन्वन्तर के अधिकारों मुनिगण स्थित रहा करते हैं जिस प्रकार से ताप दावाग्नि के द्वारा प्रदग्ध तृणों में रहते हैं । १०९। प्रथम वृष्टि से उन बनों के भूतों में समुत्पत्ति होती है । ठीक उसी भाँवि कलियुग में समुत्पन्न व्यक्तियों से कृतयुग के व्यक्तियों की उत्पत्ति होती है । ११०। इसी रीति से यहाँ पर युग की ही सन्तान परस्पर में युग हुआ करता है । जब तक वर्तमान मन्वन्तर का क्षय होता है तब तक बिना किसी व्यवच्छेद के इसी प्रकार से युग से दूसरे युग की समुत्पत्ति हुआ करती है । १११। निम्न सब बातें सुख-आयु-बल रूप-धर्म-अर्थ और काम ये सभी क्रम से युगों में तीन-तीन पाद क्षीण हुआ करते हैं । ११२।

ससंध्यांशेषु हीयन्ते युगानां धर्मसिद्धयः ।

इत्येष प्रतिसंधिर्यः कीर्त्तिस्तु मया द्विजाः ॥११३

चतुर्युंगानां सर्वेषामेतेनैव प्रसाधनम् ।

एषा चतुर्युंगावृत्तिरासहस्राद्गुणीकृता ॥११४

ब्रह्मणस्तदहः प्रोक्तं रात्रिश्चेतावती स्मृता ।

अत्रार्जवं जडीभावो भूतानामायुगक्षयात् ॥११५

एतदेव तु सर्वेषां युगानां लक्षणं स्मृतम् ।

एषा चतुर्युंगानां च गुणिता हयेकसप्ततिः ॥११६

क्रमेण परिवृक्ता तु मनोरंतरमुच्यते ।

चतुर्युगे यथंकस्मिन्भवतीह् यथा तु यत् ॥ ११७

तथा चान्येषु भवति पुनस्तद्वद्यथाक्रमम् ।

सर्गे सर्गे तथा भेदा उत्पद्धांते तथैव तु ॥ ११८

पञ्चत्रिशत्परिमिता न न्यूना नाधिकाः स्मृताः ।

कथा कल्पा युगैः साद्द्वं भवन्ति सह लक्षणैः ।

मन्वंतराणां सर्वेषामेतदेव तु लक्षणम् ॥ ११९

सन्ध्यांशों में युगों की धर्म सिद्धियों का ह्रास हुआ करता है । इस प्रकार से यह जो प्रति मन्त्रित है । हे दिजो ! मैंने कीर्तित कर दी हैं ॥ ११३ । इसी से चारों युगों का सबका प्रसाधन है । यह चारों युगोंकी आवृत्ति सहस्र से लेकर गुणीकृत है ॥ ११४ । यह ब्रह्मा का दिन कहा गया है । जितना बड़ा दिन होता है उतनी ब्रह्माजी की रात्रि हुआ करती है । यहाँ पर युग क्षय से लेकर भूतों का जो सोधापन है वह जड़ी मान होता है ॥ ११५ । यही ही समस्त युगों का लक्षण कहा गया है । यह चारों युगों की चौकड़ी अब इकहत्तर हो जाया करती ॥ ११६ । जब क्रम से यह चौकड़ियाँ इकहत्तर समाप्त होकर दूसरी बदलती हैं तभी दूसरे मनु का अन्तर हुआ करता है । चारों युगों की चौकड़ी में किस प्रकार से यहाँ होती है उसी प्रकार से यह होता है ॥ ११७ । उसी भौति अन्यों में होता है और फिर उसी के समान यथा क्रम से हुआ करता है । उसों प्रकार से प्रत्येक सर्ग में भेद उत्पन्न हुआ करते हैं ॥ ११८ । ये पंतीस परिमित ही हैं और न इनसे कम हैं और न अधिक होते हैं ऐसा ही बताया गया है । उसी रीति से कल्प युगों के साथ लक्षणों के होते हैं । समस्त मन्वन्तर का यह ही लक्षण होता है ॥ ११९ ।

पथा युगानां परिवर्त्तनानि चिरप्रवृत्तानि युगस्वभावात् ।

तथा न संतिष्ठति जीवलोकः अयोदयाभ्यां परिवर्त्तमानः ॥ १२०

इत्येतत्लक्षणं प्रोक्तं युगानां वै समाप्तः ॥ १२१

अतीतानागतानां हि सर्वमन्वंतरेष्विह ।

मन्वंतरेण चैकेन सवर्ण्येवात्तराणि वै ॥ १२२

ख्यातानीह विजानीष्वं कल्पे चैव ह ।

मन्वंतरेषु सर्वेषु अतीतानागतेष्विह ।

तुल्याभिमानिनः सर्वे नामरूपं भवंत्युत ॥ १२४

देवा ह्यष्टविधा ये वा इह मन्वंतरेश्वराः ।

ऋषयो मनवश्चैव सर्वे तुल्याः प्रयोजनैः ॥ १२५

एवं वणश्चिमाणां तु प्रविभागं पुरा युगे ।

युगस्वभावांश्च तथा विधत्ते वै सदा प्रभुः ॥ १२६

वर्णश्चिमविभागाश्च युगानि युगसिद्धयः ।

अनुषंगात्समाख्याताः सृष्टिसर्गं निबोधत ।

विस्तरेणानुपूर्व्या च स्थितिं वक्ष्ये युगेष्विह ॥ १२७

जिस तरह से युगों के परिवर्तन युगों के स्वभाव से चिरप्रवृत्त होते हैं उस प्रकार से क्षय और उदय से परिवर्तन जीव लोक भली भाँति स्थित नहीं रहता है । १२०। बहुत ही संक्षेप के साथ यह इतना ही युगों का लक्षण बताया गया है । १२१। यहाँ पर मन्वन्तरों में जो बोत चुके हैं तथा जो अनागत हैं उनका सब यही है और एक मन्वन्तर के द्वारा ही समस्त अन्तर होते हैं । १२२। कल्प से कल्प जो होता है वे सब विख्यात हैं उनको जान लो । जो अभी तक नहीं आये हैं उनमें ज्ञान पुरुष के द्वारा उसी प्रकार से तकं कर लेना चाहिए । १२३। समस्त मन्वन्तरों में व्यतीत हो गये हैं और जो अनागत हैं उनमें यहाँ पर नाम और रूपों से सब तुल्य अभिमान वाले हैं । १२४। जो आठ प्रकार के देवगण हैं अथवा यहाँ पर मन्वन्तरेश्वर हैं । ऋषिगण और मनुगण सब प्रयोजनों से तुल्य हैं । १२५। इस तरह से पहले युग में वर्णों और आश्रमों के प्रकृष्ट विभाग को और युगों के स्वभावों को सदा प्रभु किया करते हैं । १२६। वर्णश्चिमाणों के विभाग युग और युगों की सिद्धियाँ अनुषंग से यह कह दिये गये हैं । अब सृष्टि के सर्गं को समझ लो । यहाँ पर युगों में विस्तार के साथ और आनुपूर्वी से अर्थात् आरम्भ से अन्त तक क्रम में से स्थिति का वर्णन करूँगा । १२७।

— X —

॥ परशुराम का संवाद ॥

वसिष्ठ उवाच—इत्थं प्रवर्त्तमानस्य जमदग्नेर्महात्मनः ।

वर्षाणि कतिचिद्राजन्व्यतीयुरमितौजसः ॥ १

रामोऽपि नृपणादूल सर्वधर्मभृतां वरः ।

वेदवेदांगतत्त्वज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः ॥२

पित्रोश्चकार शुश्रूषां विनीतात्मा महामतिः ।

प्रीतिं च निजचेष्टाभिरन्वहं पर्यवत्तयत् ॥३

इत्थं प्रवर्त्तमानस्य वषट्ठिं कृतिचिन्त्युप ।

पित्रोः शुश्रूषयानैषीद्रामो मतिमतां वरः ॥४

स कदाचिन्महाते जाः पितामहगृहं प्रति ।

गन्तुं व्यवसितो राजन्देवेन च नियोजितः ॥५

निषीड्य शिरसा पित्रोश्चरणो भृगुपुंगवः ।

उचाच प्रांजलिर्भूत्वा सप्रथयमिदं वचः ॥६

कंचिदर्थमहं तात मातरं त्वा च साम्प्रतम् ।

विज्ञापयितुमिच्छामि मम तच्छ्रोतुमर्हथः ॥७

श्री बसिष्ठजी ने कहा—हे राजन् ! अमित ओज से समन्वित महान् आत्मा वाले जमदग्नि के इस प्रकार से प्रवृत्तमान होते हुए कुछ वर्ष व्यतीत हो गये थे । १। हे नृपणादूल ! सभस्त धर्मों के धारण करने वालों में परम-श्रेष्ठ राम भी वेदांग के तत्वों के जाता और सब शास्त्रों के विशारद थे । २। महान् मति से समन्वित और विनीत आत्मा वाले उनने अपने माता-पिता की शुश्रूषा की थी और निज की चेष्टाओं से प्रतिदिन प्रीति को बढ़ा दिया था । ३। बुद्धिमानों में परम श्रेष्ठ राम ने हे नृप ! माता-पिता की शुश्रूषा के द्वारा इस तरहसे प्रवृत्त जान होते हुए कुछ वर्ष बिता दिये थे । ४। हे राजन् ! किसी समय में महान् तेज वाले पितामह ने उस परम हृषि की ओर गमन करने का निश्चय देव के द्वारा नियोजित होते हुए किया था । ५। भृगु पुंगव ने माता-पिता के चरणों में अपना शिर रखकर अपने दोनों हाथ जोड़ते हुए नग्रता पूर्णक यह वचन बोले थे । ६। हे तात ! इस समय में आपके और माता के समझ में कुछ अर्ध विज्ञापित करने की अभिलाषा रखता हूँ । आप मेरी उस अभिलाषित को अवण करने के योग्य होते हैं । ७।

पितामहमहं द्रष्टुमुत्कंठितमनाश्चिरम् ।

तस्मात्तपाश्चैमधुना गमिष्ये वामनुज्ञया ॥८

आहूतश्चासकृत्तात् सोत्कंठं प्रीयमाणया ।

पितामह्या बहुमुखेरिच्छंत्या मम दर्शनम् ॥६

पितृं न्पितामहस्यापि प्रियमेव प्रदर्शनम् ।

मदीयं तेन तत्पाश्वं गन्तुं मामनुजानत ॥१०

वसिष्ठ उवाच—इति तस्य वचः श्रुत्वा संश्रांतं समुदीरितम् ।

हर्षण महता युक्ती साश्रुनेत्री बभूवतुः ॥११

तमालिङ्गं महाभागं मूर्छन्युं पाद्राय सादरम् ।

अभिनन्द्याणिषा तात हयुभी ताविदमाहतुः ॥१२

पितामहगृहं तात प्रयाहि त्वं यथासुखम् ।

पितामहपितामह्योः प्रीतये दर्शनाय च ॥१३

तत्र गत्वा यथान्यायं तं शुश्रूषापरायणः ।

कंचित्कालं तयोर्वैत्स प्रीतये वस तदगृहे ॥१४

मैं अधिक समय से पितामह के दर्शन करने के लिए उत्कण्ठित मन वाला हो रहा हूँ। इस कारण से आप दोनों की आज्ञा से इस समय में उनके समीप में गमन करूँगा। वा हे तात ! बड़े प्रसन्न मन वाली पितामही के द्वारा मैं कितनी ही बार बुलाया गया हूँ और उनके हृदय में मुझमें मिलने की अधिक उत्कण्ठा है। बहुत लोगों के द्वारा उन्होंने यह कहलाया है कि वे मुझे देखने की अधिक इच्छा करती हैं। १०। मेरा मिलना पितृगण और पितामह जो भी प्रिय है। इस कारण से उनके समीप में जाने की आप मुझे आज्ञा प्रदान कीजिए। १०। श्री वसिष्ठजी ने कहा—इस प्रकार से उनके इस परम सम्भ्रात कहे हुए वचन का अवण करके वे दोनों माता-पिता बहुत ही प्रहृष्टि हुए थे और उनके नेत्रों में अशुद्धों के कण झलक उठे थे। ११। उन दोनों ने उस महान् भाग वाले पुत्र का आलिंगन किया था और बड़े आदर के साथ उसके मस्तक का उपाद्राण किया था। आशीर्वाद से उसका अभिनन्दन करके उन दोनों ने उससे कहा था। १२। हे तात ! पितामह के गृह को तुम सुख पूर्वक जाओ जिससे पितामह और पितामही के दर्शन प्राप्त करोगे और उनकी प्रीति भी होगी। १३। वहाँ पहुँच कर न्यायपूर्वक उनकी शुश्रूषा में तत्पर रहना। कुछ समय तक हे बत्स ! उनकी प्रीति को प्राप्त करने के लिए उनके घर में निवास करो। १४।

स्थित्वा न तिचिरं कालं तयोर्भूयोऽप्यनुज्ञया ।
 अत्रागच्छ महाभाग क्षेमेणास्मद्विद्वक्षया ॥१५
 क्षणाद्वेषपि शक्ताः स्थो न विना पुत्रदर्शनम् ।
 तस्मात्पितामहगृहे न चिरात्स्थातुमहंसि ॥१६
 तदाज्ञायाथ वा पुत्र प्रपितामहसन्निधिम् ।
 गतोऽपि शीघ्रमागच्छ क्रमेण तदनुज्ञया ॥१७
 वसिष्ठ उवाच—इत्युक्तस्तो परिकम्य प्रणम्य च महामतिः ।
 पितरावप्यनुज्ञाप्य पितामहगृहं ततः ॥१८
 स गत्वा भृगुवर्यस्य ऋचीकस्य महात्मनः ।
 प्रविवेशाश्रमं रामो मुनिशिष्योपशोभितम् ॥१९
 स्वाध्यायवोषविपुलैः सर्वतः प्रतिनादितम् ।
 प्रशान्तवैरसत्त्वाद्यं सर्वसत्वमनोहरम् ॥२०
 स प्रविश्याश्रमं रम्यमृचीकं स्थितमासने ।
 ददर्श रामो राजेन्द्र स पितामहमग्रतः ॥२१

बहुत समय तक वहाँ स्थित न रहकर फिर उन दोनों की अनुज्ञा से है महाभाग ! हम लोगों के देखने की इच्छा से कुशलता के साथ यहीं पर आ जाना । १५। अपने पुत्र के देखने के बिना हम लोग आधे क्षण भी नहीं रह सकते हैं । इसी कारण से आप पितामह के घर में अधिक लम्बे समय तक ठहरने के योग्य नहीं होते हैं । १६। पितामह के समीप में गये हुए भी है पुत्र ! उनकी ही आज्ञा प्राप्त कर उनकी अनुज्ञा से क्रम से शीघ्र ही यहाँ पर आ जाओ । १७। वसिष्ठजी ने कहा—इस प्रकार से जब उससे कहा गया तो वह महान् बुद्धिमान् था । उनने उनको प्रणाम करके परिकमा की थी और माता-पिता की आज्ञा पाकर वहाँ से वह पितामह के घर को चल दिया था । १८। वहाँ पर जाकर उस राम ने महात्मा भृगुवर्य ऋचीक के आश्रम में प्रवेश किया था जो कि अनेक मुनिगण और शिष्यों से उपशोभित था । १९। वह आश्रम सभी ओर वेदाध्ययन के बहुत बड़े उद्घोष से प्रतिष्ठविनित हो रहा था और वहाँ के सभी प्राणियों में सबंधा वैर भाव नहीं था तथा सभी जीवोंके द्वारा वहाँ अस्तित्व मृत्यु की व्याप्ति

सुन्दर आश्रम में प्रवेश करके हैं राजेन्द्र ! आसन पर विराजमान ऋचीक का दर्शन किया था और आगे स्थित पितामह को देखा था । २१।

जाज्वल्यमानं तपसा धिष्ण्यस्थभिव पावकम् ।

उपासितं सत्यवत्या यथा दक्षिणयाऽध्वरम् ॥ २२ ।

स्वसमीपमुपायांतं राममालोक्य तौ नृप ।

मुच्चिरं तं विमर्शेतां समाजापूर्वदर्शनी ॥ २३ ।

कोऽयमेष तपोराशः सर्वलक्षणपूजितः ।

बालोऽयं बलवान्भाति गांभीर्यत्प्रश्नयेण च ॥ २४ ।

एवं तयोश्चित्यतोः सहर्षा हृदि कौतुकात् ।

आससाद शनै रामः समीपे विनयान्वितः ॥ २५ ।

स्वनामगोत्रे मतिमानुक्त्वा पित्रोमुं दान्वितः ।

संस्पृशंश्चरणौ मूर्धन्या हस्ताभ्यर्था चाभ्यवादयत् ॥ २६ ।

ततस्तौ प्रीतमनसौ समुत्थाप्य च सत्तमम् ।

आशीर्भिरभिनन्देतां पृथक् पृथगुभावपि ॥ २७ ।

तमाशिलष्यांकमारोप्य हृष्टश्च प्लुतलोचनौ ।

वीक्षंतौ तन्मुखांभोजं परं हृष्टमवापतुः ॥ २८ ।

उनका स्वरूप धिष्ण्यमें स्थित पात्रके ही समान तपसे जाज्वल्यमान था । दक्षिणा के द्वारा अध्वर की ही भाँति सत्यवती के द्वारा वे उपासित थे । २२। हे नृप ! उन दोनों ने अपने समीप में समागत हुए राम को देखा था और समाजा पूर्वक देखने वाले उन दोनों ने उसके विषय में बहुत समय तक मनमें विमर्श किया था । २३। यह तपश्चर्या के राशि के ही सहश कौन है जो कि सभी लक्षणों से पूजित हैं । है तो यह बालक परन्तु गम्भीरता और विनय से युक्त बहुत बलवान् प्रतीत होता है । २४। उन दोनों के हृदय में बड़ा कुतूहल हो रहा था और वे हृष के साथ यही मन में चिन्तन कर रहे थे कि राम परम विनीत भाव से समन्वित होते हुए धीरे से उनके समीप में पहुँच गया था । २५। उस बुद्धिमान् रामने अपने नाम और गोत्र का उच्चारण करके परमानन्दित होते हुए उन दोनों के चरणों का स्पर्श मस्तक के द्वारा किया और दोनों हाथों से उनका अभिवादन किया था । २६। इसके अनन्तर परम प्रीतियुक्त मन वाले उनने उस श्रेष्ठतम को उठा लिया था

और दोनों ने अलग-अलग आशीर्वाद के द्वारा उसका अभिनन्दन किया था । १७। उसको अपने वक्षःस्थल से लगाकर आलिगन किया था और अपनी गोद में विठाकर उन दोनों के हृदय में इतना हर्ष हुआ था कि उनके नेत्र अशुद्धों से समाप्लुत हो गये थे । उस राम के मुख कमल को देखते हुए उन दोनों ने बहुत अधिक हर्ष प्राप्त किया था । २८।

ततः सुखोपविष्टैत्मात्मवंशसमुद्धहम् ।

अनामयपृच्छेतां तावुभौ दंपती तदा ॥ २९ ॥

पितरी ते कुशलिनो वत्स किञ्चातरस्तथा ।

अनायासेन ते वृत्तिवर्तते चाथ कहिचित् ॥ ३० ॥

समस्ताभ्यां ततो राजन्नाच्चक्षे यथोदितः ।

तथा स्वानुगतं पित्रोभ्रतृणां चैव चेष्टितम् ॥ ३१ ॥

एवं तयोर्महाराज सत्प्रीतिजनितर्गुणैः ।

प्रीयमाणोऽवसद्रामः पितुः पित्रोनिवेण ने ॥ ३२ ॥

स तस्मिन्सर्वभूतानां मनोनयननन्दनः ।

उवास कतिचिन्मासांस्तच्छु श्रूषापरायणः ॥ ३३ ॥

अथानुज्ञाप्य तौ राजन्भृगुवर्यो महामनाः ।

पितामहगुरोर्गतुमियेषाश्रयमाश्रमम् ॥ ३४ ॥

स ताभ्यां प्रीतियुक्ताभ्यामाशीभिरभिनंदितः ।

यथा चाभ्यां प्रदिष्टेन यथावीर्वश्रिमं प्रति ॥ ३५ ॥

इसके उपरान्त जब वह सुख पूर्वक बैठ गये तो उस आत्मवंश के समुद्धन करने वाले से उस समय में उन दोनों दम्पति ने क्षेम कुशल पूछा था । २९। उन्होंने पूछा था कि हे वत्स ! तुम्हारे माता-पिता सकुशल हैं और तुम्हारे सब भाई सानन्द तो हैं । तुम्हारी वृत्ति अनायास से ही कम हो गई हैं । ३०। इसके अनन्तर हे राजन् ! जैसा कहा गया था वह सम्पूर्ण उसने कह दिया था । अपने माता-पिता की अनुगमिता और भाइयों का जो चेष्टित था वह भी कह दिया था । ३१। हे महाराज ! इस तरह से उन दोनों की सम्प्रीति से समुत्पन्न गुणगणों से बहुत ही प्रसन्न राम पिता के, पिता के घर में रहा था । ३२। वह घर में सभी प्राणियों के मन और नेत्रों को आनन्द

देने वाला हो गया था। उनकी सुश्रुषा में तत्पर होकर उसने वहाँ पर कुछ मास तक निवास किया था। ३३। हे राजन् ! इसके पश्चात् महावृ मन वाले भृगु वर्य ने उन दोनों की आज्ञा प्राप्त करके पितामह के गुरु के निवास स्थल आश्रम में गमन करने की इच्छा की थी। ३४। परम प्रीति से संयुत उन दोनों के द्वारा उसका आशीर्वचनों से अभिनन्दन किया गया था और उन दोनों ने जिस प्रकार में औयश्रिम के प्रति प्रदर्शन कर दिया था। ३५।

तं न प्रस्कृत्य विद्विवच्यवनं च महातपाः ।

स प्रहर्षं तदाज्ञातः प्रययावश्रमं भृगोः ॥ ३६ ।

स गत्वा मुनिमुख्यस्य भृगोराश्रममंडलम् ।

ददर्श शांतचेतोभिर्मुनिभिः सर्वतो व्रुतम् ॥ ३७ ।

सुस्तिग्धशीतलच्छायैः सर्वतुर्कगुणान्वितैः ।

तरुभिः संवृतं प्रीतः फलपुष्पोत्तरान्वितैः ॥ ३८ ।

नानाखगकुलारावैर्मनः श्रोत्रसुखावहैः ।

ब्रह्मघोषैश्च विविधैः सर्वतः प्रतिनादितम् ॥ ३९ ।

समन्त्राहुतिहोमोत्थधूमगंधेन सर्वतः ।

निरस्तनिखिलाघोषं वनांतरविसर्पिणा ॥ ४० ।

समित्कुणाहरैर्दण्डमेखलाजिनमंडितैः ।

अभितः शोभितं राजन् म्यैर्मुनिकुमारकैः ॥ ४१ ।

प्रसूनजलसंपूर्णपात्रहस्ताभिरंतरा ।

शोभितं मुनिकन्याभिश्चरंतीभिरितस्ततः ॥ ४२ ।

उस महान तपस्वी ने विद्विपूर्वक च्यवन की सेवा में प्रणाम किया था और बड़े हर्षपूर्वक उनसे आज्ञा प्राप्त कर वह राम भृगु के आश्रम की ओर रवाना हो गया था। ३५। वह समस्त मुनिगणों में मुख्य भृगु के आश्रम मण्डल में जाकर देखा था कि वह आश्रम परम शान्त चित्त वाले मुनियों से सभी ओर चिरा हुआ है। ३६। अतीव धनी और शीतल छाया वाले और सभी ऋतुओं के गुणों से समन्वित तथा प्रीतिदायक फलों और पुष्पों से युक्त तस्वरों से वह आश्रम संयुत था। ३७। विविध अकार के पक्षियों को छवनियाँ पर हो रही थीं जो मन और कानों को परम सुख प्रदान करने वाली थीं।

वेद मन्त्रों के समुच्चारण के बोष से वह आश्रम सभी ओर से प्रतिष्ठनित हो रहा था । ३१। मन्त्रोच्चारण पूर्वक दी हुई आद्यतियों के द्वारा जो होम किया जाता है उसका अन्य बनों में फेलने वाले गन्ध से जो सभी ओर है उससे समस्त पापों का समूह जिससे निरस्त हो गया है ऐसा वह आश्रम है । ४०। हे राजन् ! समिधाओं और कुशाओं के आहरण करने वाले तथा दण्ड, मेखला और मृगछालाओं से विभूषित, परम सुन्दर मुनियों के कुमारों से सायने वह आश्रम शोभा युक्त है । ४१। बीच में इधर-उधर हाथों में पुष्प और जल लिए हुए सञ्चरण करने वाली कन्याओं से वह आश्रम उपशोभित है । ४२।

सपोतहरिणीयूथैविस्त्रभादविशंकिभिः ।

उटजांगणपर्यन्ततरुच्छायास्नधिष्ठितम् ॥ ४३ ॥

रोमकतः परामृष्टियूथसाक्षिकमुत्प्रदैः ।

प्रारब्धतांडवं केकीमयूरर्मधुरस्वरैः ॥ ४४ ॥

प्रविकीर्णकणोदेशं मृगशब्दैः समीपर्गः समीपर्गः ।

अनालीढातपच्छायाशुभ्यन्नीवारराशिभिः ॥ ४५ ॥

हृयमानानलं काले पूज्यमानातिथिव्रजम् ।

अभ्यस्यमानच्छंदोधं चित्यमानागमोदितम् ॥ ४६ ॥

पठ्यमानाखिलस्मार्त्त श्रीतार्थप्रविचारुणम् ।

प्रारब्धपितृदेवेज्यं सर्वभूतमनोहरम् ॥ ४७ ॥

तपस्त्विजनभूयिष्ठुमकापुरुषसेवितम् ।

तपोवृद्धिकरं पुण्यं सर्वसत्त्वसुखास्पदंम् ॥ ४८ ॥

तपोधनानन्दकरं ब्रह्मलोकमिवापरम् ।

प्रसूनसौरभञ्चाम्यन्मधुव्रातावनादितम् ॥ ४९ ॥

अर्हिसा के पूण विश्वास से शङ्का से रहित थपने छोटे-छोटे बच्चों के सहित हरिणियों के झुण्ड जिससे मुनियों कुटिओं के आँगन में लगे हुए वृक्षों की छाया में बेठे हुए हैं । ४३। रोमन्थ से परामृष्टि यूथ के साक्षिक आनन्द के प्रदान करने वाले तथा मधुर स्वर से समन्वित वाणी बोलने वाले मयरों का तृप्त जिल भारत में पारा लोगों द्वारा समीप से गमन

करने वाले मृगों के शब्दों से जहाँ पर कण कैले हुए हैं तथा अनालीढ़ आतप की छाया में नीवारों की राशि जहाँ पर सूख रही है ऐसा वह सुरम्य आस्रय आस्रय है । ४५। जिस आश्रम में समय पर अग्नि में आहुतियाँ दी जाती हैं और जहाँ पर अतिथियों के समुदाय का अचंन एवं सत्कार किया जाया करता है । जिस आश्रम में भेदों के छन्दों का अध्यास किया जाता है तथा जो कुछ भी शास्त्रों में कहा गया है उसका चिन्तन किया जाता है । ४६। पड़े जाने वाले सम्पूर्ण स्मृति प्रतिपादित तथा वैदिक अर्थ का विचार किया जाता है । जिसमें देवों और पितृगणों का यजन प्रारम्भ कर दिया गया है तथा जो आश्रम सभी प्राणियों के लिए परस सुन्दर है । ४७। जिस परम सुरम्य आश्रम में बहुत से तपस्वी गण विद्यमान हैं और जो कापुरुष नहीं हैं उन्हीं के द्वारा सेवित है यह तपश्चर्या की वृद्धि करने वाला—परम पुण्यमय और सभी जीवों के सुखों का स्थल है । ४८। जिनका एकमात्र तप ही धन है उन तापसों के आनन्द का यह आश्रय देने वाला है और यह ऐसा दिखलाई देता है मानो यह दूसरा ब्रह्मलोक ही हो । पुष्पों की सुगन्ध से भ्रमण करते हुए भ्रमरों की गुञ्जार से यह आश्रम गुञ्जित है । ४९।

सर्वतो वीज्यमानेन विविधेन नभस्वता ।

एवंविधंगुणोपेत् पश्यन्नाश्रममुत्तमम् ॥५०॥

प्रविवेश विनीतात्मा सुकृतीवामरालयम् ।

संप्रविश्याश्रमोपांतं रामः स्वप्रपितामहम् ॥५१॥

ददर्श परितो राजन्मुनिशिष्यशतावृतम् ।

व्याख्यानवेदिकामध्ये निविष्टं कुशविष्टरे ।

सितश्मश्रुजटाकूर्चब्रह्मसूत्रोपशोभितम् ॥५२॥

वामेतारोरुमध्यास्त वामजंघेन जानुना ॥५३॥

योगपट्टेन संवीतस्वदेहम् खिपुं गवम् ।

व्याख्यानमुद्वाविलसत्सव्यपाणितालाङुजम् ॥५४॥

योगपट्टोपरिन्यस्तविभ्राजद्वामपाणिकम् ।

सम्यगारण्यवाक्यानां सूक्ष्मतत्त्वार्थं संहतिम् ॥५५॥

विवृत्य मुनिमुख्येभ्यः श्रावयन्तं तपोनिधिम् ।

पितुः पितामहं हृष्ट्वा रामस्तस्य महात्मनः ॥५६॥

सभी ओर विविध प्रकार की वायु से यह वीज्यमान है अर्थात् जहाँ पर नाना भौति की वायु सर्वेत्र बहन किया करती है। इस रीति से अनेक प्रकार के गुणों से यह आश्रम समन्वित है। ऐसे आश्रम को जो बहुत ही उत्तम है उस राम ने देखा था । ५०। जिस तरह कोई सुकृत करने वाला पुरुष स्वर्ग में प्रवेश किया करता है उसी तरह से परम विनीत उस राम ने वहाँ पर आश्रम में प्रवेश किया था। उस आश्रम के उपान्त में प्रवेश करके राम ने अपने प्रपितामह का दर्शन प्राप्त किया था । ५१। हे राजन् ! वे प्रपितामह सैकड़ों ही मुनियों और शिष्यों से चारों ओर घिरे हुए थे। वे व्याख्यान करने की जो वेदिका थी उसके मध्य में एक कुशा के आसन पर विराजमान थे। उनके एमश्रु-जटा और कूचं (दाढ़ी) एकदम सफेद थे तथा ब्रह्मसूत्र से उपशोभित थे । ५२। वामजंघा और जानु से दक्षिण ऊरु से वे अद्यस्त थे । ५३। योग पट्ट से सर्वीत अपने देह वाले वे ऋषियों में परम श्रेष्ठ थे तथा व्याख्यान करने की मुद्रा से शोभित सव्य करकमल वाले थे । ५४। योग पट्ट के ऊपर रखे हुए परम शोभित वास कर वाले और भली भौति आरण्यक उपनिषद् के वाक्यों के सूक्ष्म तत्त्व के अर्थ की संहति का विशेष विवरण कर रहे थे । ५५। और उनका विवरण करके वे तपोनिधि मुख्य मुनियों को श्रवण करा रहे थे। राम ने पितामह का दर्शन किया था । ५६।

अनैरिव महाराजसभीपं समुपागमत् ।

तमागतमुपालक्ष्य तत्प्रभावप्रधर्षिताः ॥५७॥

शंकामवापुमुंनयो दूहादेवाखिलं नृप ।

तावद्भृगुरमेयात्मा तदागमनतोषितः ॥५८॥

निवृत्तान्यकथालापस्तं पश्यन्नास पाथिव ।

रामोऽपि तमुपागम्य विनयावनताननः ॥५९॥

अवंदत यथान्यायमुपेन्द्र इव वेधसम् ।

अभिवाद्य यथान्यायं छ्याति च विनयान्वितः ॥६०॥

तांश्च संभावयामास मुनीन्नरामो यथावयः ।

तैश्च सर्वेमुंदोपेतैराशीभिरभिर्भिर्द्वितः ॥६१॥

उपाविवेश मेधावी भूमी तेषामनुजया ।

उपविष्टं ततो राममाशीभिरभिनंदितम् ॥६२॥

पञ्चल कुशल शनं तमालोक्य भृगुस्तदा ।

कुशलं खलु ते वत्स पित्रोश्च किमनामयम् ॥६३

हे महाराज ! फिर वह राम उन महान आत्मा वाले के समीप में धीरे से प्राप्त हुआ था । उसको समागत हुआ देखकर वहाँ पर जो भी स्थित थे वे सभी राम के प्रबल प्रभाव से अस्तित हो गये थे । ५७। हे नृप ! समस्त मुनिगण दूर से ही शङ्का को प्राप्त हो गये थे तब तक अमेय आत्मा वाले भृगु उसके आगमन से तोषित हुए थे । ५८। हे पार्थिव ! उसको देखते हुए ही अन्य कथा की बात चीत को उन्होंने बन्द कर दिया था । राम भी उनके समीप में पहुँचकर विनय से विनम्र मुख कमल वाला हो गया था । ५९। जिस प्रकार से उपेन्द्र ब्रह्माजी की वन्दना किया करते हैं ठीक उसी तरह से न्याय पूर्वक राम ने उनकी वन्दना की थी । विनम्रता समन्वित राम ने न्याय पूर्वक सबका अभिवादन किया था । ६०। राम ने समस्त मुनियों को अवस्था के अनुसार क्रम से सम्भावित किया था । और उन सब मुनियों ने भी आनन्द से समन्वित होकर आशीर्वादों के द्वारा उस रामको परिवर्षित किया था । ६१। वह परम मेधा से सुसम्पन्न राम भी उन सबकी अनुज्ञा से भूमि पर समीप में बैठ गया था । फिर जब बैठ गया तो सबने राम को आशीर्वचनों से अभिनन्दित किया था । ६२। उस समय में भृगु ने उस राम का अवलोकन करके उससे कुशल प्रश्न पूछा था कि हे वत्स ! तुम्हारा कुशल तो है और तुम्हारे माता-पिता-पिता का स्वास्थ्य सुखमय है । ६३।

भातृ॒णां चैव भवतः पितुः पित्रोस्तथैव च ।

किमर्थं मागतोऽत्र त्वमधुना मम सन्निधिम् ॥६४

केनापि वा त्वमादिष्टः स्वयमेवाथवागतः ।

ततो रामो यथान्यायं तस्मै सर्वं मशेषतः ॥६५

कथयामास यत्पृष्ठं तदा तेन महात्मना ।

पितुमतिश्च वृत्तांतं भातृ॒णां च महात्मनाम् ॥६६

पितुः पित्रोश्च कौशल्यं दर्शनं च तयोर्नृप ।

एतदन्यच्च सकलं भृगोः सप्रश्रयं मुदा ॥६७

न्यवेदयद्यथान्यायमात्मनश्च समीहितम् ।

श्रुत्वैतदखिलं राजन्नामेण समुदीरितम् ॥६८

तं च हृष्ट्वा विशेषेण भृगुः प्रीतोऽभ्यनन्दत ।

एवं तस्य प्रियं कुर्वन्नुत्कृष्टेरात्मकर्मभिः ॥६९

तत्राश्रमेऽवसद्गामो दिनानि कतिचिन्नृप ।

ततः कदाचिदेकाते रामं मुनिवरोत्तमः ॥७०

तुम्हारे भाइयों का आपके पिता के माता-पिता का कुशल-मञ्जुल तो है ? इस समय में तुम किस प्रयोजन के लिए यहाँ पर मेरे समीप में समागत हुए हो ? ।६४। क्या किसी ने तुम को यहाँ आने की आज्ञा दी है अथवा तुम स्वयं अपनी ही इच्छा से यहाँ पर आये ? इसके पश्चात् राम ने उनकी सेवा में न्यायपूर्वक सभी कुछ पूर्णतया निवेदित कर दिया था । उन महात्मा ने उस वक्त जो भी पूछा था वह सब कह दिया था जो भी कुछ पिता-माता का और महान् आत्मा वाले भाइयों का वृत्तान्त था ।६५-६६। हे नृप ! उन दोनों पिता के माता-पिता की कुशलता से दर्शन का होना-यह और आय भृगु का नम्रता के साथ आनन्द से सब बता दिया था । और अपना जो भी कुछ अभीष्ट था उसका निवेदन कर दिया था । हे राजन् ! राम के द्वारा वर्णित यह सब श्रवण करके और विशेष रूप से उसको देखकर भृगु बहुत ही प्रसन्न हुए थे और उसका अभिनन्दन किया था । इस तरह से अतीव उत्कृष्ट अपने कर्मों के द्वारा उसका प्रिय करते हुए राम ने वहाँ निवास किया था । हे नृप ! राम उस आश्रम में कुछ दिन तक रहा था । इसके उपरान्त मुनिवर ने राम को किसी समय में एकान्त में बुलाया था । ।६७-७०।

वत्सागच्छेति तं राजन्नुपाह्वयदुपह्वरे ।

सोऽभिगम्य तमासीनमभिवाद्य कृतांजलिः ॥७१

तस्थौ तत्पुरतो रामः सुप्रीतेनांतरात्मना ।

आशीभिरभिनन्द्याथ भृगुस्तं प्रीतमानसः ॥७२

प्राह नाधिगताशंकं राममालोक्य सादरम् ।

श्रृणु वत्स वचो मह्यं यत्वां वक्ष्यामि सांप्रतम् ॥७३

हितार्थं सर्वलोकानां तव चास्माक्मेव च ।

गच्छ लुक यत्तदेवात्मिकवत्तं गत्तुग्निर्मध्य विष्णु

अधुनैवाश्रमादस्मात्पसे धृतमानसः ।

तत्र गत्वा महाभाग कृत्वाऽश्रमपदं शुभम् ॥७५

आराधय महादेवं तपसा नियमेन च ।

प्रीतिमुत्पाद्य तस्य त्वं भक्तचानन्यगयाचिरात् ॥७६

श्रेयो महदवाप्नोषि नात्र कार्या विचारणा ।

तरसा तव भक्तचा च प्रीतो भवति शङ्कुरः ॥७७

मुनि ने कहा था—हे वत्स ! उपट्वर में आओ । वह रामभी उन मुनि के समीप में जाकर अपने हाथ जोड़कर उनका उसने अभिवादन किया था । ७१। राम परम प्रसन्न आत्मा से उनके आगे स्थित हो गया था और प्रसन्न मन वाले भृगु ने आशीर्वादों के द्वारा अभिनन्दन किया था । ७२। उसने न अधिगत अंश वाले राम को आदर के साथ देखकर कहा था । हे वत्स ! आप मेरा वचन श्रवण करो जो इस समय में मैं आपको कहूँगा । ७३। यह वचन समस्त लोकों के तुम्हारे और हमारे हित के लिये है । हे पुत्र ! मेरे आवेश से अब महान् पर्वत हिमवान् को चले जाओ । ७४। तपश्चर्या करने के लिये अपने मन में निश्चय करके इसी समय इस आश्रम से चले जाओ । हे महाभाग, वहाँ जाकर उस आश्रम के स्थान को शुभ बना दो । ७५। यहाँ पर तपस्या और नियम से महादेवजी की समाराध्नना करो । चिरकाल तक अनन्य भक्ति से आप उनकी प्रीति का समुत्पादन करो । ७६। इसके करने से आप महान् श्रेय की प्राप्ति करेंगे—इस विषय में लेशमात्र भी सन्देह नहीं करना चाहिए । योद्ध ही आपकी भक्ति से भगवान् शङ्कुर परम प्रसन्न हो जायेंगे । ७७।

करिष्यति च ते सर्वे मनसा यद्यदिच्छसि ।

तुष्टे तस्मिंश्च जगन्नाथे शङ्कुरे भक्तवत्सले ॥७८

अस्त्रग्राममणेण त्वं वृणु पुत्र यथेष्पितम् ।

त्वया हितार्थं देवानां करणीयं सुदुष्करम् ॥७९

विद्यते भृश्यधिकं कर्म शस्त्रसाध्यमनेकशः ।

तस्मात्त्वं देवदेवेण समाराधय शङ्कुरम् ॥८०

भक्तचा परमया युक्तस्ततोऽभीष्टमवाप्स्यसि ॥८१

वे भगवान् शङ्कर तुम्हारा सभी कुछ कार्य पूर्ण कर देंगे जो-जो भी आप अपने मन में चाहेंगे । उन भक्तों पर प्यार करने वाले जगत् के स्वामी भगवान् शङ्कर के सम्मुष्ट हो जाने पर तुम को यह करना चाहिए । ७८। हे पुत्र ! जो भी तुम्हारा अभीप्सित हो वह समस्त अस्त्रों के समुदाय को आप उनसे वरदान में माँग लेना । तुमको समस्त देवों की भलाई के लिए इस परम दुष्कर कार्य को कर ही लेना चाहिए । ७९। शस्त्रों के द्वारा साधन करने के योग्य अनेक कर्म होते हैं और विशेष अधिक होते हैं । इस कारण से तुम देवों के भी आराध्य देव भगवान् शङ्कर की आराधना करो । परमाधिक भक्ति से जब तुम संयुत हो जाओगे तो तुम सम्पूर्ण अपना प्राप्त कर लोगे । ८०-८१।

परशुराम की तपश्चर्या

वसिष्ठ उवाच—इत्येवमुक्तो भृगुणा तथेत्युक्त्वा प्रणम्य तस्मै ।

रामस्तेनाभ्यनुज्ञातश्चकार गमने मनः ॥१॥

भृगु ख्यातिं च विधिवत्परिक्रम्य प्रणम्य च ।

परिष्वक्तस्तथा ताम्यामाशीभिरभिनंदितः ॥२॥

मुनीश्च तान्नमस्कृत्य तैः सर्वेरनुमोदितः ।

निश्चयकमाश्रमात्तस्मात्तपसे कृतनिश्चयः ॥३॥

ततो गुरुनियोगेन तदुक्तेनैव वर्त्मना ।

हिमवंतं गिरिवरं ययौ रामो महामनाः ॥४॥

सोऽतीत्य विविधान्देशान्पर्वतान्सरितस्तथा ।

वनानि मुनिप्रुख्यानामावासांश्चात्यगच्छनैः ॥५॥

तत्र तत्र निवासेषु मुनीनां निवसन्पथि ।

तीर्थेषु शेत्रमुख्येषु निवसन्वा ययौ शनैः ॥६॥

अतीत्य सुवृहून्देशान्पश्यन्नपि मनोरमान् ।

आससादाचलश्रेष्ठं हिमवंतमनुत्तमम् ॥७॥

श्री वसिष्ठ जी ने कहा—भृगु मुनि के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर मैं ऐसा ही करूँगा—यह कहकर राम ने उनको प्रणाम किया था और

राम उनके द्वारा आज्ञा प्राप्त करके वहाँ पर गमन करने का मन वाला ही गया था । १। भृगु के सुयश का गान कर तथा विधि पूर्वक उनकी परिक्रमा करते हुए प्रणाम करके राम ने प्रस्थान करने की तेयारी की थी । उन दोनों ने उसका परिष्वजन किया था और आशोबंचनों से राम का अभिनन्दन किया था । २। वहाँ पर जो भी मुनिगण थे उन सबके लिए राम ने प्रणाम किया था तथा वह उन सब के द्वारा वहाँ गमन करने के लिए अनुमोदन प्राप्त करने वाला हुआ था । फिर राम उस आश्रम के स्थल से तपश्चर्या करने के लिए मन में पूर्ण निश्चय वाला होकर निकल दिया था । ३। इसके अनन्तर गुरु देव के नियोग से और उनके द्वारा बताये हुए बताये हुए मार्ग से महान् भन वाले राम ने गिरियों में परम श्रेष्ठ हिमवान् को गमन किया था । ४। मार्ग में उसको अनेक देश—पर्वत-नदियाँ-बन और प्रमुख मुनियों के आवास-स्थल मिले थे । उन सबका उसने धीरे-धीरे अतिक्रमण किया था । ५। मार्ग में वहाँ-वहाँ पर मुनियों के निवास स्थलों में विश्राम करते हुए और जो मुख्य क्षेत्र ये तथा तीर्थ स्थल मिले थे उनमें निवास करते हुए धीरे-धीरे वह वहाँ पर चलते चला गया था । ६। मार्ग में अनेक देशों का अतिक्रमण करके और परम मनोरथ देशों का अवलोकन करते हुए अन्त में परमोत्तम और पर्वतों में थ्रेष्ठ हिमवान् पर वह पहुँच गया था । ७।

स गत्वा पर्वतवरं नानाद्रुमलतास्थितम् ।

ददर्श विपुलोः शृंगे रुल्लिखंतमिवांबरम् ॥८॥

नानाधातुविचित्रैश्च इदेशौरुपशोभितम् ।

रुत्नौषधीभिरभितः स्फुरदिभरभिशोभितम् ॥९॥

मरुत्संघट्टनावृष्टीरसांग्रिपञ्चना ।

सानिलेनानलेनोच्चर्दद्यामानं नवं कवचित् ॥१०॥

कवचिद्रविकरामशिवलदकोपलाग्निभिः ।

द्वद्विमशिलाजातुजलशांतदवानलम् ॥११॥

स्फटिकांजनदुर्वर्णस्वर्णराशिप्रभाकरैः ।

स्फुरत्परस्परच्छायाशरैर्दीप्तवनं कवचित् ॥१२॥

उपत्यकशिलापृष्ठबालातपनिषेविभिः ।

तुषारविलन्नसिद्धौषं रुदभासितवनं कवचित् ॥१३॥

क्वचिदकां शुसंभिन्नश्चामीकरणिलाश्रितेः ।

यक्षोघ्नेर्भासितोपांतं विशदिभरिव पावकम् ॥ १४

वह उस श्रेष्ठ पर्वत पर पहुँच गया था जहाँ पर अनेक प्रकार के वृक्ष और लताएँ थीं। उसने वहाँ पर देखा था कि बहुत से ऐसे ऊँचे शिखर विद्यमान हैं जो मानों अस्त्रर का स्पर्श करके उस पर कुछ लिख रहे हों। ८। वहाँ पर अनेक ऐसे प्रदेश हैं जिनमें विचित्र प्रकार की बहुत सी धातुएँ विद्यमान हैं और उनसे वह परम जो भा शाली हो रहा है। वहाँ अनेक प्रकार के रत्न तथा विद्य ओषधियाँ हैं जो निरन्तर स्फुरण किया करते हैं और उनसे उसकी अद्भुत जोधा हो रही है। ९। कहीं पर वायु के संघटन से रगड़ खाये हुए शुष्क वृक्षों से समुत्पन्न और वायु के संयोग वाले अग्नि से कहीं पर वह दाह भी करने वाला दिखाई दे रहा था। १०। कहीं पर सूर्य की किरणों के प्रखर स्पर्श से जलती हुई अकोपिलाम्बि से पिघले हुए हिम की शिलाओं के जल से वह दवानल एकदम शान्त हो गया है। ११। कहीं पर स्फटिक अञ्जन से बुरे वर्ण वाले स्वर्ण के समूह की प्रभा की किरणों के द्वारा स्फुरण करते हुए परस्पर में छाया शरों से प्रसिद्ध था। १२। उपत्यकाओं की शिलाओं के पृष्ठ भाग पर वालातप का सेवन करने वाले तुषार से किलन्न सिद्धों के समुदाय से वह वह वन कहीं पर उद्भासित हो रहा था। किसी-किसी जगह पर सूर्य की किरणों से संभिन्न सुवर्ण की शिलाओं पर समाश्रय ग्रहण करने वाले यक्षों के समुदायों से पावक में प्रवेश करने वालों की तरह उसका उपान्त भासित हो रहा था। १४।

दरीमुखविनिष्कांततरक्षूत्पतनाकुलः ।

मृगयूथार्त्तसन्नादैरापूरितगुहं क्वचित् ॥ १५

युद्धघद्वराहशादौलयूथपेरितरेतरम् ।

प्रसभोन्मृष्टकांतोरुशिलातस्तटं क्वचित् ॥ १६

कलभोन्मेषणाकृष्टकारिणीभिरनुद्रुतेः ।

गवयैः खुरसंक्षुण्णशिलाप्रस्थतटं क्वचित् ॥ १७

वासिताथेऽभिसंवृद्धमदोन्मत्तमतंगजः ।

युद्धच्छिदिभश्चूणितानेकगांडणैलवनं क्वचित् ॥ १८

त्रुहितालतपासर्वात्मातंस्त्रियात्मा ।

सिहानां चरणक्षुण्णनखभिन्नोपलं क्वचित् ॥१६

सहसा निपत्तिसहनखनिभिन्नमस्तकं ।

गजेराकदनादेन पूर्यमाणं वनं क्वचित् ॥२०

अष्टपादवलाकृष्टकेसरा दारुणाप्रवैः ।

भेद्यमानाखिलशिलागंभीरकुहरं क्वचित् ॥२१

कहीं पर दरियों के मुख से निकले हुए तरक्षुओं के उत्पत्तन ऊपर की ओर (उछाल) से समाकुल मृगों के आत्म नादों से जिसकी गुहा समापूरित हो रही थी ।१५। किसी स्थल पर एक दूसरे से परस्पर में युद्ध करते हुए वराह और शादूलों के यूथपतियों के द्वारा बलात् उन्मृष्ट मुन्दर एवं विशाल शिला एवं तटके तरवर जिसमें विद्यमान थे ।१६। कहीं पर कलभों के उन्मेषण से आकृष्ट हुई करिणियों के द्वारा भागे हुए गवयों के खुर से वहाँ के तट प्रस्थ संक्षुण्ण थे ।१७। किसी स्थान पर वासित अर्थ में विशेष बढ़े हुए मद से उन्मत्त गजों से जो कि परस्पर में युद्ध कर रहे थे गण्ड स्थलों के द्वारा अनेक शैल के बनों को वहाँ पर चूर्णित कर दिया था ।१८। कहीं पर हाथियों की ध्वनि के श्रवण से जो क्रोध हुआ उसके कारण गजों को खदेड़ते हुए सिहों के चरणों के क्षुण्ण नखों से पाषाण भिन्न हो गये थे ।१९। कहीं पर वहाँ ऐसा स्थल था कि अचानक आक्रमण करने वाले सिहों के नाखूनों से युक्त हाथियों के क्रन्दन की ध्वनि से सम्पूर्ण वन पूरित होरहा था ।२०। अष्टपादों के द्वारा बलपूर्वक जिनके केसर खींच लिए गये हैं उनके परम दारुण शब्द से कहीं कहीं पर पर्वत की गम्भोर गुफाएँ भी सब भेद्यमान थी ।२१।

संरब्धानेकशबरप्रसक्तैकृक्षयूथपैः ।

इतरेतरसंमर्द्द विप्रभग्नदृष्टव्यचित् ॥२२

गिरिकुञ्जेषु संकीड़त्करिणीमद्विपं क्वचित् ।

करेणुमाद्रबन्मत्तगजाकलितकाननम् ॥२३

स्वपर्तिसहमुखश्वासमरुत्पूर्णदरीशतम् ।

गहनेषु गुरुत्राससाशंकविहरन्मृगम् ॥२४

कंटकशिलष्टलांगूललोमन्त्रुठनकातरः ।

क्रीडितं चमरीयूथर्मदमंदविचारिभिः ॥२५

गिरिकंदरसंसक्तकिन्नरीसमुदीरितैः ।

सतालनादैरुदिते भूंताशेषदिशामुखम् ॥२६

अरण्यदेवतानां च चरंतीनामितस्ततः ।

अलक्तकरसविलन्नचरणाकितभूतलम् ॥२७

मयूरकेकिनीवृदैः संगीतमधुरस्वरैः ।

प्रवृत्तनृत्ता परितो विततोदग्रबहिभिः ॥२८

किसी स्थल पर संरब्ध बहुत से शबरों के द्वारा प्रसक्त रोछों के यूथ पतियों के आनस में एक दूसरे के साथ संमर्द में शिलाएँ भग्न हो गयी थीं । २२। कहीं पर पर्वत की कुञ्जों में करिणियाँ क्रीड़ाएँ कर रही थीं और वहाँ पर कोई करी नहीं था तब करेणु पर मत्तगज दोढ़कर चले जा रहे थे इस प्रकार से वहाँ कानन समाकलित था । २३। कहीं पर वहाँ ऐसा भी बल था जहाँ पर सोते हुए सिंहों के मुखों के श्वासों की वायु से सैकड़ों गुहाएँ पूरित हो रही थीं और बनों में बड़े भारी भय के कारण मृगगण अङ्कित होकर ही विहार कर रहे थे । २४। किसी जगह पर यह बन चमरी गौओं के द्वारा क्रीड़ा का स्थल बना हुआ था जिनके पूँछों में काटे लगे हुए थे और उनसे लोम टूट गये थे । जिसके कारण वे भयभीत होकर मन्दगति से विचरण कर रही थीं । २५। कहीं पर गिरि की कन्दराओं में से सक्त किन्नरियों के समुदाय थे और उनके द्वारा कहे हुए ताल के नादों तथा गीतों से सभी दिशाएँ पूरित थीं । २६। उस महान् गिरि पर का बन इधर-उधर विचरण करती हुईं अरण्य देवताओं के चरणों में लगे हुए महावर के रस से वह भूतल चरणों के चिह्नों से अङ्कित हो रहा था । २७। सङ्गीत के मधुर स्वरों से समन्वित-मयूर-मयूरियों के झुण्ड अपनी पंखों को फैलाकर कहीं पर आनन्द पूर्वक नृत्य कर रहे थे । २८।

रामो मतिमतां श्रेष्ठस्तपसे च मनो दधे ।

शाकमूलफलाहारो नियतं नियतेंद्रियः ॥२९

तपश्चचार देवेशं विनिवेश्यात्ममानसे ।

भृगूपदिष्टमागेण भक्तच्या परमया युतः ॥३०

पूजयामास देवेशमेकाग्रमनसा नृप ।

अनिकेतः स वर्षासु शिशिरे जलसंश्रयः ॥३१

ग्रीष्मे पंचाग्निमध्यस्थः श्चचारेवं तपश्चिरम् ।

रिपून्निजित्य कामादीनूमिषट्कं विधूय च ॥३२

द्वंद्वैरनुद्वेजितधीस्तापदोषेरनाकुलः ।

यमैः सनियमैष्वरैव शुद्धदेहः समाहितः ॥३३

वशीचकार पवनं प्राणायामेन देहगम् ।

जितपद्मासनो मौनी स्थिरचित्तो महामुनिः ॥३४

वशीचकार चाक्षाणि प्रत्याहारपरायणः ।

धारणाभिः स्थिरीचक्रे मनश्चंलमात्मवान् ॥३५

ऐसे अनेक परम मनोरथ दृश्यों से परिपूर्ण उस हिमवान् गिरि पर एक आश्रम अपना बनाकर मतिमानों में परमश्रेष्ठ राम ने तपस्या करने का मन में विचार किया था और वह तपश्चर्या करने के लिये शाकों तथा मूलों के आहार करने वाला होकर नियत इन्द्रियों वाला बन गया था ।२९। उसने देवेश भगवान् शङ्खर को अपने मन में विनिवेशित करके तपस्या की थी । भृगुमुनि ने जो भी मार्ग बताया था उसी के अनुसार वह परमाधिक भक्ति से युक्त हो गया था ।३०। ये नृप ! उसने एक निष्ठ मन से देवेश्वर की पूजा की थी । वर्षा काल में भी वह बिना कहीं पर आश्रय ग्रहण किये हुए खुले में तप करते लगा था और शिशिर ऋतु में भी जल में स्थित रहा करता ।३१। ग्रीष्म में पाँच अग्नियों के मध्य में बैठा रहता था । इस रीति से राम के तप किया था और चिरकाल वह तपश्चर्या की थी । जिसमें षट् ऊर्मियों का विधूनन करके काम क्रोध-लोभ-मोह आदि शत्रुओं को भली भाँति जीत लिया था ।३२। जितने भी शीत-उष्ण आदि द्वन्द्व हैं इनसे उसकी दुष्टि उद्देश्य नहीं होती थी और वह ताप के दोषों से कभी व्याकुल भी नहीं होता था । यमों और नियमों के द्वारा उसका देह परम शुद्ध या तथा वह बहुत ही समाहित रहता था ।३३। उसके देह में जो वायु था उसको उसने प्राणायामों के द्वारा अपने वश में कर लिया था । वह महान् मुनि मौनधारी-पदमासन को जीत लेने वाला और परम स्थिर चित्त वाला था ।३४। प्रत्याहार में तत्पर रहकर उसने अपनी समस्त इन्द्रियों को अपने वश में कर लिया था । आत्मवान् उस राम ने धारणाओं के द्वारा परम चञ्चल तथा प्रमथन शील बलवान् मन को भी स्थिर कर लिया था जो कभी भी साधारण या कावृ में नहीं आया करता है ।३५।

ध्यानेन देवदेवेशं ददर्श परमेश्वरम् ।

स्वस्थांतःकरणो मैत्रः सर्वबाधाविबर्जितः ॥३६

चितयामास देवेशं ध्याने हृष्ट्वा जगद्गुरुम् ।

ध्येयावस्थितचित्तात्मा निश्चलेन्द्रियदेहवान् ॥३७

आकालावधि सोऽतिष्ठन्निवातस्थप्रदीपवत् ।

जपंश्च देवदेवेशं ध्यायंश्च स्वमनीषया ॥३८

आराधयदमेयात्मा सर्वभावस्थमीश्वरम् ।

ततः स निष्फल रूपमेश्वरं यन्निरंजनम् ॥३९

परं ज्योतिरचित्यं यद्योगिध्येयमनुत्तमम् ।

नित्यं शुद्धं सदा शान्तमतीद्रियमनीपमम् ।

आनन्दमात्रमचलं व्याप्ताशेषचराचरम् ॥४०

चितयामास तद्रूपं देवदेवस्य भार्गवः ।

सुचिरं राजशार्दूल सोऽहंभावसमन्वितः ॥४१

ध्यान के द्वारा राम ने देवों के भी देवेश्वर भगवान् शङ्कर का दर्शन प्राप्त कर दिया था । उसका अन्तःकरण परम स्वस्थ था तथा वह सबका मित्र और समस्त बाधाओं से रहित था ॥३६॥ इन जगद्गुरु को ध्यान में देखकर उसने देवेश्वर का चिन्तन किया था । वह अपने ध्येय प्रभु में अवस्थित चित और आत्मा बाला था । उसकी इन्द्रियाँ और देह निश्चल थे ॥३७॥ वह अपने काल की अवधि तक निर्वात स्थान में दीपक के समान वही पर स्थित रहा था । वह अपनी बुद्धि से देवदेव का जप तथा ध्यान करता हुआ वही पर स्थित था ॥३८॥ उस अमेय आत्मा बाले ने सब भावों में स्थित ईश्वर की आराधना की थी । इसके अनन्तर उस प्रभु का चिन्तन किया था जो फल रहित रूप है—ईश्वर और जो निरंजन है ॥३९॥ जो परम ज्योति स्वरूप अचिन्तनीय-योगियों के द्वारा ध्यान करने के योग्य और सर्वोत्तम है । जो नित्य शुद्ध, सदा शान्त-इन्द्रियों की पहुँच से परे और उपसा से रहित है । जो केवल आनन्द के स्वरूप बाला अबल और समस्त चर और अचर में व्याप्त है ॥४०॥ ऐसे देवों के देव के उस रूप का उस भार्गव ने हे राज शार्दूल ! बहुत समय ध्यान किया था और वह सोऽहं भाव में समन्वित हो गया ॥

परशुराम परीक्षा

तपस्विनं तदा राममेकाग्रमनसं भवे ।
 रसस्येकांतनिरतं नियतं शंसितव्रतम् ॥१
 श्रुत्वा तमृष्यः सर्वे तपोनिधूतकल्मषाः ।
 ज्ञानकर्मवयोवृद्धा महांतः शंसितव्रताः ॥२
 दिव्यक्षवः समाजगमुः कुतूहलवमन्विताः ।
 छ्यापयंतस्तपः श्रेष्ठं तस्य राजन्महात्मनः ॥३
 भृगवत्रिक्रतुजावालिवामदेवमृकंडवः ।
 संभावयंतस्ते रामं मुनयो वृद्धसंमताः ॥४
 आजगमुराश्रमं तस्य रामस्य तपस्तपः ।
 दूरादेव महांतस्ते पुण्यक्षेत्रनिवासिनः ॥५
 गरीयं सर्वलोकेषु तपोऽग्रचं ज्ञानमेव च ।
 प्रशस्यं तस्य ते सर्वे प्रययुः त्वं स्वमाश्रमम् ॥६
 एवं प्रवर्त्तिस्तस्य रामस्य भगवाञ्छिष्ठवः ।
 प्रसन्नचेता नितरां बभूव नृपसत्तम ॥७

श्री वसिष्ठजी ने कहा—उस समय में भगवान् शिव में एकाग्र मन वाले—एकान्त में एक निष्ठ होकर निरत रहने वाले—नियत और शंसित व्रत से युक्त उस तपस्वी राम का श्वरण करके तप से निधूत कल्मण वाले श्रुतियों ने जो ज्ञान और कर्मों में वृद्ध महान् और शंसित व्रत वाले ये सभी दर्शन की इच्छा वाले हुए थे । १-२। देखने की इच्छा से समन्वित वे सब कुतूहल वाले वहाँ पर आये थे । हे राजन् ! वे सब महान् आत्मा वाले उस राम के परम श्रेष्ठ तप का वर्णन करने वाले थे । ३। बड़े-बड़े मुनियों के द्वारा संमत भृगु—अश्वि—क्रतु—जावालि-बामदेव और मृकण्डु सब उस राम की प्रशंसा करने वाले थे । ४। तपस्या का तपन करने वाले उस राम के आश्रय में सब समागम द्वारा हुए थे । ये सब बहुत महान् और पुण्य क्षेत्र के निवास करने वाले बहुत ही दूर से वहाँ आये थे । ५। समस्त लोकों में यह तप बहुत बड़ा उत्तम है और ज्ञान भी है । इस रीति से उन सब ने उसके तप की प्रशंसा की थी और फिर वे सभी अपने-अपने आश्रम को छले गये थे । ६। हे नृपों

में श्रेष्ठ ! इस प्रकार से तपश्चर्या में प्रवृत्त होते हुए राम के ऊपर भगवान् शिव बहुत ही प्रसन्न चित्त वाले हो गये थे । ७।

जिजासुस्तस्य भगवान् भक्तिमात्मनि शङ्करः ।

मृगव्याधवपुभूत्वा ययौ राजस्तदंतिकम् ॥८॥

भिन्नांजनचयप्रख्यो रक्तांतायतलोचनः ।

शरचापधरः प्रांशुर्वञ्चसंहननो युवा ॥९॥

उत्तुंगहनुबाह्वंसः पिंगलश्मश्रुमूर्ढ्जः ।

तांसविक्रवसागंधी सर्वप्राणिविहिसकः ॥१०॥

सकंटकुलतास्पर्शक्षतारूषितविग्रहः ।

सासृक्संचर्वमाणश्च मांसखंडमनेकशः ॥११॥

मांसभारद्वयालंविविधानानतकंधरः ।

आरूजस्तरसा वृक्षानूरुवेगेन संघशः ॥१२॥

अभ्यवर्त्तत तं देशं पादचारीव पर्वतः ।

आसाद्य सरसस्तस्य तीरं कुसुमितद्रुमम् ॥१३॥

न्यदधान्मांसभारं च स मूले कस्यचित्तरोः ।

निषसाद क्षणं तत्र तरुच्छायामुपाश्रितः ॥१४॥

हे राजन् ! भगवान् शंकर आत्मा में उसकी भक्ति के विषय में जानने की इच्छा वाले होकर पशुओं के व्याध का रूप धारण करके उस राम के समीप में गये थे । ८। तब व्याध के स्वरूप का वर्णन किया जाता है—वह पिसे हुए अङ्गजन के ढेर के समान कुछ वर्ण वाला था । उसके बड़े और लाल वर्ण के नेत्र थे—वह शर और चाप धारण किये हुए था—लम्बे कद वाला तथा वज्र के समान सख्त शरीर वाला और युवा था । ९। उस शब्द के बाहु-कन्धे और ठोड़ी ऊँचे थे तथा उसके माथे के केश और मूँछें पिङ्गल वर्ण के थे । वह मांस, विश्व और वसा (चर्वी) की गन्ध वाला था अथवा उसके शरीर से बुरी गन्ध आ रही थी । वह सभी प्राणियों की हिंसा करने वाला था । १०। काँटों के समुदाय के निरन्तर स्पर्श करते रहने से बहुत से क्षतों के होने कारण उसका शरीर रुषित था । वह रुषिर के सहित अनेक मांस के टूकड़ों को चबा रहा था । ११। मांस के भार से जो कि उसके दोनों ओर लदा हुआ था उसकी गरदन कुछ नीचे की ओर झुकी हुई थी । बहुत

बड़े वेग से युक्त तेजी के साथ चलने से वृक्षों के समूह को वह हिलाता हुआ चल रहा था । १२। वह पदों से गमन करने वाले पर्वत के समान ही उस स्थल पर उपस्थित ही गया था । वह पुष्पों से समन्वित उस सरोवर के तट पर समागत हुआ था । १३। उसने किसी वृक्ष की जड़ में उस मांस के भार को उतार कर रख दिया था और कुछ अणों के लिए वहाँ पर उसने वृक्ष की छाया का आश्रय ग्रहण किया था । १४।

तिष्ठंतं सरसस्तीरे सोऽपश्यदभृनुनंदनम् ।

ततः स शीघ्रमुत्थाय समीपमुपसृत्य च ॥ १५ ॥

रामाय सेषुचापाभ्यां कराभ्यां विदधेऽजलिम् ।

सजलांभोदसन्नादगंभीरेण स्वरेण च ॥ १६ ॥

जगाद भृगुशादूर्लं गुहांतरविसर्पिणा ।

तोषप्रवर्षव्याधोऽयं वसाम्यस्मिन्महावने ॥ १७ ॥

ईशोऽहमस्य देशस्य सप्राणितरुवीरुधः ।

चरामि समचित्तात्मा नानासत्वामिषाशनः ॥ १८ ॥

समष्ट्वा सर्वभूतेषु न च पित्रादयोऽपि मे ।

अभक्ष्यागम्यपेयादिच्छन्दवस्तुषु कुत्रचित् ॥ १९ ॥

कृत्याकृत्यविधौ चौव न विशेषितधीरहम् ।

प्रपन्नो नाभिगमनं निवासमपि कस्यचित् ॥ २० ॥

णक्रस्यापि वलेनाहमनुमन्ये न संशयः ।

जानते तद्यथा सर्वे देशोऽयं मदुपाश्रयः ॥ २१ ॥

उस महान् भयझुक स्वरूपवान शकर ने वहाँ पर सरोवर के तट पर ध्यान में बैठे हुए उस भृगु नन्दन को देखा था । इसके उपरान्त वह बहुत शीघ्र उठकर उस राम के समीप में आ गया था । १५। उसने राम के लिये वाण और चाप से युक्त करों से अञ्जलि की थी और जल से परिपूर्ण मेघ के समान परम गम्भीर स्वर से उस भृगु शादूर्ल से कहा था जो कि स्वर पर्वत की गुहाओं में फैल गया था । मैं तोष-प्रवर्ष व्याध हूँ और इसी महावन में निवास किया करता हूँ । १६-१७। इस स्थल के समस्त प्राणी और वनस्पतियों का मैं स्वामी हूँ । अनेक जीवों के मांस का भोजन करने वाला

मैं समचित और आत्मा वाला हूँ और यहाँ पर सञ्चरण किया करता हूँ। १८। मैं सब प्राणियों के साथ समान व्यवहार करने वाला हूँ और मेरे कोई भी माता-पिता आदि नहीं हैं। मैं कहीं पर भी अभक्ष्य-अगम्य और अपेय आदि वस्तुओं में स्वतन्त्रता से उनका सेवन करने वाला हूँ। १९। कृत्य और अकृत्य कायों की विश्वि में मेरी कुछ भी विशेषता वाली बुद्धि नहीं है। किसी के भी निवास स्थान पर मैं अभिगमन करने वाला नहीं हूँ। २०। इन्द्र के भी बल से मैं नहीं डरता हूँ—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है। सभी लोग इस बात को भली भाँति जानते हैं कि यह स्थल मेरे ही आश्रय वाला है अर्थात् यहाँ पर केवल मैं ही रहा करता हूँ। २१।

तस्मान् कश्चिदायाति ममात्रानुभवति विना ।

इत्येष मम वृत्तान्तः कात्स्न्येन कथितस्तव ॥२२

त्वं च मे ब्रह्मि तत्त्वेन निजवृत्तमशेषतः ।

कस्त्वं कस्मादिहायातः किमर्थमिहाधिष्ठितः ।

उद्यतोऽन्यत्र वा गंतुं कि वा तव चिकीषितम् ॥२३॥

ਵਸਿਛ ਤਵਾਚ—ਇਤ्यੈਵਮੁਕਤः ਪ੍ਰਹਸ਼ਸਤੇਨ ਰਾਮੋ ਮਹਾਦੂਤਿ� ।

तुष्णीं क्षणमिव स्थित्या दृश्यो किञ्चिदवाङ्मुखः ॥२४

कोऽयमेव दूराधर्षः सजलांभोदनिस्वनः ।

ब्रवीति च गिरोऽत्यर्थं विस्पष्टार्थं पदाक्षराः ॥२५

कि त मे महतीं शंका तनुरस्य तनोति वै ।

विजातिसंश्यत्वेन रमणीया यथा शराः ॥२६

एवं चितयतस्तस्य निमित्तानि शभानि वै ।

बभवभूवि देहे च स्वाभित्तार्थदान्यलम् ॥३७

तत्रो विसर्ज्य ब्रह्मो मनसा भगपं गवः ।

उवाच शतकेऽयधिं वृत्तं सतताक्षिम् ॥३५

इस कारण से मेरी अनुमति के बिना यहाँ पर

है। यही मेरा वृत्तान्त है जो पूर्णतया तुम्हारे सामने मैंने कह दिया

। आर अब आप अपना पूरा हाल तात्त्विक रूप से मुझ बतलाइए ।
इस द्वितीय कित्तवारण से पहाँच वापस आता है। मैं तुम्हें जीवन के लिये जान

की सिद्धि के लिये यहाँ पर समधिष्ठित हो रहे हैं ? अथवा यहाँ से किसी अन्य स्थान में जाने के समुद्यत हैं अथवा आपकी क्या करने की इच्छा है । २३। श्री वसिष्ठ जी ने कहा—जब उसके हारा इस प्रकार से कहा गया तो महान् द्युति से सम्पन्न राम ने हँसकर एक क्षण के लिए चुप होकर कुछ नीचे की ओर मुख करके चिन्तन किया था । २४। उसने अपने मन में विचार किया था कि यह दुराधर्ष कौन है जिसकी ध्वनि सजल मेघ के सदृश है और अधिक सुस्पष्ट अर्थं वाले पदों से युक्त बाणी बोलता है । २५। इसका वपु मेरे हृदय में बहुत अधिक शङ्का समुत्पन्न कर रहा है । यह विजातीय है और नीच जाति का समाश्रय पाकर भी इसका शरीर शर की ही भाँति परम रमणीय है । २६। इस तरह से चिन्तन करते हुए उसको परम शुभ निमित्त हो रहे थे जो भूमि में—देह में अपने अभोष्ट अर्थ के लिये पूर्ण रूप से प्रदान करने वाले थे । २७। इसके अनन्तर उस भृगु कुल में श्रेष्ठ ने मन से बहुत बार विचार करके धीरे से उस व्याध से सूनृत अक्षरों वाले बचन कहे थे । २८।

जामदग्न्योऽस्मि भद्रंते रामो नाम्ना तु भार्गवः ।

तपश्चतुर्मिहायातः सांप्रतं गुरुशासनात् ॥ २६ ॥

तपसा सर्वलोकेशं भक्त्या च नियमेन च ।

आराधयितुमस्मिस्तु चिरायाहं समुद्यतः ॥ ३० ॥

तस्मात्सर्वेश्वरं सर्वशश्यमभयप्रदम् ।

त्रिनेत्रं पापदमनं शङ्कुरं भक्तवत्सलम् ॥ ३१ ॥

तपसा तोषयिष्यामि सर्वज्ञं त्रिपुरांतकम् ।

आश्रमेऽस्मिन्सरस्तीरे नियमं समुपाश्रितः ॥ ३२ ॥

भक्तानुकंपी भगवान्यावत्प्रत्यक्षतां हरः ।

उर्पति तावदत्रैव स्थास्यामीति मतिर्मम ॥ ३३ ॥

तस्मादितस्त्वयाद्यैव गन्तुमन्यत्र युज्यते ।

न चेद्गुवति मे हानिः स्वकृतेनियमस्य च ॥ ३४ ॥

माननीयोऽथ वाहं ते भक्त्या देशांतरातिथिः ।

स्वनिवासमुपायातस्तपस्वी च तथा मुनिः ॥ ३५ ॥

आपका कल्याण हो—मैं जगदग्नि का पुत्र नाम से मैं भागवि राम हूँ। इस समय में मैं अपने गुरुदेव के आदेश से यहाँ पर तपश्चर्या का समाचरण करने के ही लिए आया हूँ। २६। तपस्या-भक्ति और नियम से इस पर्वत पर सर्वलोकेश्वर की आराधना करने को चिरकाल के लिये मैं समुच्छित हुआ हूँ। ३०। इस कारण से सर्वेश्वर-सबकी रक्षा करने वाले—अभय के देने वाले—समस्त पापों के दमन करने वाले—अपने भक्तों पर वात्सल्य रखने वाले तीन नेत्रों से समन्वित भगवान् शङ्कर को मैं प्रसन्न करूँगा। ३१। मैं अपने तप के द्वारा सर्वज्ञ भगवान् त्रिपुरारि को को सन्तुष्ट करूँगा मैं इस सरोवर के तट पर स्थित आश्रम में नियम से समुपाश्रित हुआ हूँ। ३२। अपने भक्तों पर अनुकम्भा करने वाले भगवान् शङ्कर जब तक प्रत्यक्ष मुझे दर्शन नहीं देते हैं तब तक मैं यहीं पर स्थित रहूँगा—यदी मेरा विचार है। ३३। इस कारण से आप यहाँ से नहीं जाते हैं तो मेरे अपने कृत्य में और नियम में हानि होती है। ३४। अथवा यों समझ लीजिए कि मैं अन्य देश से आया हुआ आपका एक अतिथि हूँ अतएव भक्ति से मैं आपका माननीय होता हूँ। मैं आपके ही अपने निवास स्थल में उपगत हो गया हूँ जो कि मैं एक तपस्वी तथा मुनि हूँ। ३५।

त्वत्संनिधौ निवासो मे भवेत्पापाय केवलम् ।

तव चाप्यसुखोदकं मत्समीपनिषेवणम् ॥ ३६ ॥

स त्वं मदाश्रमोपांते परिचंकमणादिकम् ।

परित्यज्य सुखो भूया लोकयोरुभयोरपि ॥ ३७ ॥

वसिष्ठ उवाच—इति तस्य वचः श्रुत्वा स भयो भृगुपुं गवम् ।

उवाच रोषताम्राक्षस्ताम्राक्षमिदमुत्तरम् ॥ ३८ ॥

ब्रह्मन् किमिदमत्यर्थं समीपे वसति मम ।

परिगर्हयसे येन कृतधनस्येव सांप्रतम् ॥ ३९ ॥

किं मयापकृतं लोके भवतोऽन्यस्य वा क्वचित् ।

अनागस्कारिणं दातं कोऽवमन्येत नामतः ॥ ४० ॥

सन्निधिः परिहर्त्तव्यो यदि मे विप्रपुं गव ।

दर्शनं सह संवासः संभाषणमथापि च ॥ ४१ ॥

आयुष्मताऽधुनैवास्मादपसत्त्व्यमाश्रमात् ।

स्वसंश्रयं परित्यज्य क्वाहं यास्ये बुभुक्षितः ॥४२

आपके समीप में मेरा निवास होना केवल पाप के ही लिए होगा और आपका भी मेरे निकट रहना भविष्य में असुख देने वाला ही होगा अर्थात् मेरे समीप में रहने से आपको भी कष्ट ही होगा । ३६। ऐसे आप मेरे आश्रम के समीप में इधर-उधर धूमने-फिरने के चक्र काटने को त्यागकर आप भी दोनों लोकों में सुखी होइये । ३७। वसिष्ठ जी ने कहा— उस राम के इन वचनों का श्रवण करके वह रोष से लाल नेत्रों को करके रक्त नेत्रों वाले भृगु श्रेष्ठ से यह उत्तर देते हुए कहा । ३८। हे ब्रह्मन् ! मेरे समीप में रहने की आप इननी अधिक अब क्यों बुराई कर रहे हैं जैसे कोई कृतज्ञ किया करता है । ३९। मैंने इस लोक में आपका अथवा कहीं पर अन्य किसी का क्या अपकार किया है ? जो पाप या अपराध नहीं करने वाला है उसका नाम से ही कौन अपमान किया करता है अर्थात् ऐसा तो कोई भी करता है । ४०। हे श्रेष्ठ विप्र ! यदि आपको मेरा समीप में रहना हटाना है और मेरा देखना—साथ में वास्तीलाप और एक जगह पर साथ रहना भी दूर करना है तो आयुष्मान् आपको इसी समय में इस आश्रम से अपसरण कर जाना चाहिए । मैं तो बुझित हूँ और अपने निवास स्थान का परिस्थाग करके कहीं पर जाऊँगा । ४१-४२।

स्वाधिवासं परित्यज्य भवता चोदितः कथम् ।

इतोऽन्यस्मिन् गमिष्यामि दूरे नाहं विशेषतः ॥४३॥

गम्यतां भवताऽन्यत्र स्थीयतामत्र वेच्छया ।

नाहं चालयितुं भावयः स्थानादस्मात्कथंचन ॥४४॥

वसिष्ठ उवाच—तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य किञ्चित्कोपसमन्वितः
तमुवाच पुनविनियमिदं राजन्भृगुद्वहः ॥४५॥

व्याधजातिरियं क्रूरा सर्वसत्त्वभयावहा ।

खलकर्मरता नित्यं धिककृता सर्वजंतुभिः ॥४६॥

तस्यां जातोऽसि पापीयान्सर्वप्राक्षिविहिसकः ।

स कथं न परित्याज्य सुजनैः स्यात् दुर्मते ॥४७॥

शरीरत्राणकारुण्यात्समीपं नोपसर्पसि ।

यथा त्वं कंटकादीनामसहिष्णुतया व्यथाम् ॥४६

आपने अपने स्थान को जो कि आवास का स्थल है मुझे कैसे प्रेरित किया है ? मैं तो यहाँ से विशेष दूरी पर नहीं जाऊँगा । ४३। आपको ही अन्य स्थान में चले जाना चाहिए अथवा इच्छा से यहाँ पर स्थित रहिए । मैं तो इस स्थान से किसी भी प्रकार से भेजा नहीं जा सकता हूँ । ४४। वसिष्ठ जी ने कहा—उस शब्द वेषधारी के इस वचन का अवण करके वह भृगु कुल के उद्घन करने वाले राम को कुछ क्रोध आ गया था और हे राजन् ! राम ने उससे यह वाक्य फिर कहा था । ४५। यह व्याध की जो जाति है वह बहुत ही क्रूर है और समस्त प्राणियों को भय देने वाली है । यह जाति नित्य ही दुष्ट कर्मों के करने वाली होती है और सभी जन्तुओं द्वारा यह धिकृत है । ४६। उसी व्याध जाति में तुमने जन्म ग्रहण किया है अतः आप समस्त प्राणियों की हिंसा करने वाले अधिक पापी हैं । हे दुष्ट बुद्धि वाले ! वह आप सुजनों के द्वारा कैसे नहीं परित्याग करने के योग्य होते हैं ? । ४७। इस कारण से अपने आपको विशेष हीन जाति वाला समझ कर यहाँ से शीघ्र ही अन्य किसी स्थानमें चले जाओ । इस विषय में अधिक सोच विचार करने की आवश्यकता नहीं करनी चाहिए । ४८। अपने शरीर के परित्राण करने की दया से मेरे समीप में नहीं आते हो क्योंकि आपको कण्टक आदि की व्यथा है उसको आप सहन नहीं कर रहे हैं । अपने दुःख के ही समान दूसरे प्राण धारियों का दुःख हुआ करता है । ४९।

तथाऽवेहि समस्तानां प्रियाः प्राणाः शरीरिणाम् ।

व्यथा चाभिहतानां तु विद्यते भवतोऽन्यथा ॥५०

अहिंसा सर्वभूतानिमित्ति धर्मः सनातनः ।

एतद्विरुद्धाचरणान्नित्यं सदिभर्विग्रहितः ॥५१

आत्मप्राणाभिरक्षार्थं त्वमशेषशरीरिणः ।

हनिष्यसि कथं सत्सु नाप्नोषि वचनीयताम् ॥५२

तस्माच्छीघ्रं तु भो गच्छ त्वमेव पुरुषाधम ।

त्वया मे कृत्यदोषस्य हानिश्च न भविष्यति ॥५३

अपसर्पणताबुद्धिमहमुत्पादये स्फुटम् ॥५४

क्षणाद्वंमपि ते पाप श्रेयसी नेह संस्थितः ।

विरुद्धाचरणो नित्यं धर्मद्विट् को लभेच्च शम् ॥५५

वसिष्ठ उवाच—रामस्य वचनं श्रुत्वा प्रीतोऽपि तमिदं वचः ।

उवाच संकुद्ध इव व्याधरूपी पिनाकधृक् ॥५६

उसी भाँति से समस्त प्राणधारियों को अपने प्राण परम प्रिय हुआ करते हैं—ऐसा ही अपने मन में समझ लो । आप जिनका हनन किया करते हैं उनकी भी व्यथा इसी प्रकार से हुआ करती है और अन्य प्रकार की नहीं होती है । ५०। प्राणिमात्र की हिंसा न करना ही सनातन अर्थात् सदा से चले आने वाला धर्म है । इसके विरुद्ध कार्यों का समाचरण करना ही नित्य सत्पुरुषों के द्वारा बुरा माना जाता है । ५१। अपने प्राणों की अभिरक्षा के ही लिए हम सब शरीर धारियों का हनन किया करेंगे । फिर आगे क्यों नहीं सत्पुरुषों में निन्दा को प्राप्त होंगे । ५२। हे अधम पुरुष ! इस कारण से आप बहुत शीघ्र ही यहाँ से चले जाओ । तुम्हारे द्वारा किए कृत्यों के दोष से मेरे कार्य की कोई हानि नहीं होगी । ५३। यदि आप स्वयं ही यहाँ से नहीं गमन करते हैं तो मैं बलपूर्वक भी स्पष्टतया तुम्हारे अपसर्पण की बुद्धि समुत्पन्न कर देता हूँ । ५४। हे पापात्मन ! यहाँ पर आधे क्षण भी आपकी संस्थिति अच्छी नहीं है । विरुद्ध आचरण वाला धर्म का द्वेषी ऐसा कौन है जो सदा कल्याण को प्राप्त किया करता है अर्थात् ऐसा कोई भी नहीं होता है । ५५। श्री वसिष्ठजी ने कहा—राम के ऐसे वचनों को सुनकर मन में बहुत प्रसन्न होते हुए भी वे स्वरूपधारी भगवान् शंकर कुद्ध के ही समान उस राम से यह वचन बोले थे । ५६।

सर्वमेतदहं मन्ये व्यथं व्यवसितं तव ।

कुतस्त्वं प्रथमो ज्ञानी कुतः शंभुः कुतस्तपः ॥५७

कुतस्त्वं किलश्यसे मूढ तपसा तेन तेऽधुना ।

ध्रुवं मिथ्याप्रवृत्तस्य न हि तुष्यति शङ्करः ॥५८

विरुद्धलोकाचरणः शंभुस्तस्य वितुष्ये ।

प्रतपत्यबुधो मत्यस्त्वां विना कः सुदुर्मते ॥५९

अथवा च गतं मेऽद्य युक्तमेतदसंशयम् ।

संपूज्य पूजकविद्वौ शंभोस्तव च संगमः ॥६०

त्वया पूजयितुं युक्तः स एव भुवने रतः ।

संपूजकोऽपि तस्य त्वं योग्यो नात्र विचारणा ॥६१

पितामहस्य लोकानां ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।

शिरशिष्ठत्वा पुनः शम्भुञ्ज्हाहत्यामवाप्तवान् ॥६२

ब्रह्महत्याभिभूतेन प्रायस्त्वं शंभुना द्विज ।

उपदिष्टोऽसि तत्कर्तुं नोचेदेवं कथं कृथाः ॥६३

मैं यह सब कुछ मानता हूँ तथापि आपका ऐसा निश्चय कि भगवान् शङ्खर का दर्शन प्राप्त करूँगा यह सब व्यर्थ है । कहाँ तो प्रथम जानी है—कहाँ भगवान् देवों के देव शम्भु हैं तथा कहाँ उनको प्राप्त करने के लिए यह तुम्हारी तपस्या है ? अर्थात् भगवान् शम्भु के प्रत्यक्ष करने के लिए कहीं अत्यधिक ज्ञान और विशेष तपस्या होनी चाहिए क्योंकि वे साधारण साधन से प्राप्त होने वाले नहीं हैं । आपकी साधना सर्वथा अकिञ्चित्कर है । ५७। है मूँढ ! इस समय में इस तप के द्वारा आप क्यों क्लेशित हो रहे हैं ? यह निश्चय है कि इस तरह से मिथ्याप्रवृत्ति वाले आपसे भगवान् शङ्खर कभी भी सन्तुष्ट नहीं होंगे । ५८। है सुदुर्मते ! शम्भु तो लोक के आचरण के सर्वथा विरुद्ध हैं । उनको विशेष तुष्टि के लिए तुमको छोड़कर कौन अबुद्ध ऐसी प्रकृष्ट तपस्या किया करता है अर्थात् ऐसा कोई भी नहीं करता है । ५९। और अथवा मैं आज गया और यह बिना ही संशय के युक्त है । पूज्य और पूजन की विधि में भगवान् शम्भु का और आपका सङ्गम है । ६०। आपके द्वारा उनकी पूजा करना युक्त है । वे ही समस्त भुवन में रत हैं । उनकी भली भाँति पूजा करने वाले आप भी योग्य हैं—इसमें कोई संशय नहीं है । ६१। समस्त लोकों के पिता यह परमेष्ठी ब्रह्माजी के शिर का छेदन करके शम्भु ने फिर ब्रह्म हत्या प्राप्त की थी । ६२। है द्विज ! ब्रह्महत्या से अभिभूत शम्भु ने प्रायः आपको उपदेश दिया है कि ऐसा करें । यदि ऐसा नहीं है तो आप इस रीति से कैसे कर रहे हैं । ६३।

तादात्म्यगुणसंयोगामन्ये रुद्रस्य तेऽधूना ।

तप सिद्धिरनुप्राप्ता कालेनाल्पीयसा मुने ॥६४

प्रायोऽद्य मातरं हत्वा सर्वेलोकैनिराकृतः ।

तपोव्याजेन गहने निर्जने संप्रबर्त्तसे ॥६५

गुरुस्त्रौत्रह्यहत्योत्थपातकक्षपणाय च ।

तपश्चरसि नानेन तपसा तत्प्रणश्यति ॥६६

पातकानां किलान्येषां प्रायशिच्चत्तानि सत्यपि ।

मातृद्रुहामवेहि त्वं न क्वचित्किल निष्कृतिः ॥६७

अहिंसालभणो धर्मो लोकेषु यदि ते मतः ।

स्वहस्तेन कथं राम मातरं कुत्तवानसि ॥६८

कृत्वा मातृवधं घोरं सर्वलोकविगर्हितम् ।

त्वं पुनर्धार्मिको भूत्वा कामतोऽन्यान्विनिदसि ॥६९

पश्यता हसतामोघं आत्मदोषजानता ।

अपर्याप्तमहं मन्ये परं दोषविमर्शनाम् ॥७०

मैं ऐसा मानता हूँ कि अब भगवान् रुद्र के तादाम्त्य के संयोग से सिद्धि को प्राप्त हो गये हैं । हे मुने ! यह सिद्धि की प्राप्ति बहुत ही थोड़े समय में हो जायगी । ६४। बहुधा आप आज अपनी माता का हनन करके सभी लोगों के द्वारा निरादत हो गये हैं और तपस्या के करने के बहाने से इस निर्जन वन में सबसे निरादर पाकर प्रदृष्ट हो गये हैं । ६५। गुरु-स्त्री और ब्रह्महत्या से समुत्पन्न पातक के दूर करने के लिए ही आप तपश्चर्या का समाचरण कर रहे हैं सो वह पालक इस तप से कभी भी विनष्ट नहीं होता है । ६६। अन्य प्रकार के किये हुए पातकों के निश्चित रूप से प्रायशिच्चत भी हैं । आप यह समझ लेवें कि जो माता से द्वोह करने वाले हैं कहीं भी उनके पालकों का प्रायशिच्चत नहीं है । ६७। हे राम ! यदि आपको यह सम्मत है कि अहिंसा के लक्षण वाला धर्म है जो कि सभी लोकों में माना गया है तो फिर आपने ही अपने ही हाथ से अपनी माता को कैसे काट दिया था ? ६८। समस्त लोकों में परमाधिक निन्दित घोर माता का वध करके फिर वड़े धार्मिक बनकर अपनी इच्छा से अन्य लोगों की निशेष निन्दा कर रहे हैं । ६९। इस अमोघ अपने दोष को देखते हुए भी उसको नहीं जानते हैं और हँस रहे हैं । मैं तो इस दूसरों के दोषों के विशेषना को पर्याप्त नहीं मानता हूँ । ७०।

स्वधर्मं यद्यहं त्यक्त् वा वर्त्तेयमकुतोभयम् ।

तहि गर्हय मां कामं निरूप्य मनसा स्वयम् ॥७१

मातापितृसुतादीनां भरणायैव केवलम् ।

क्रियते प्राणिहननं निजधर्मतया मया ॥७२

स्वधर्मदामिषेणाहं सकुटुम्बो दिनेदिने ।

वर्त्तमि साऽपि मे वृत्तिविधात्रा विहिता पुरा ॥७३

मांसेन यावता मे स्यान्नित्यं पित्रादि पोषणम् ।

हनिष्ये चेत्तदधिकं तहि युज्येयमेनसा ॥७४

यावत्पोषणघातेन न वयं स्याम निंदिताः ।

तदेतत्संप्रधायं त्वं वा मां प्रशंस वा ॥७५

साधु वाऽधु वा कर्म यस्य यद्विहितं पुरा ।

तदेव तेन कर्त्तव्यमापद्यपि कथंचन ॥७६

निरूप्य स्वबुद्ध्या त्वमात्मनो मम चांतरम् ।

अहं तु सर्वभावेन मित्रादिभरणे रतः ॥७७

यदि मैं अपने धर्म का त्याग कर अकुतोभय अर्थात् निर्भीकता वाला होते हुए बरताव करूँ तो स्वयं मन से निरूपण करके मुझे इच्छा पूर्वक निन्दित कहिए ।७१। मैं तो अपने माता-पिता और पुत्र आदि के भरण-पोषण के ही लिए केवल अपने धर्म के कारण ही प्राणियों का वध किया करता हूँ ।७३। अपने ही धर्म होने से प्रतिदिन अपने कुटुम्ब का भरण मांस से किया करता हूँ और यह भी मेरी वृत्ति पहिले ही विधाता ने बना दी है ।७२। जितने मांस से नित्य ही मेरे माता-पिता और पुत्र आदि का भरण हो जाता है उतने ही प्राणियों का मैं हनन किया करता हूँ । इससे भी अधिक मैं हनन करूँ तो मैं पाप से युक्त होऊँगा ।७४। जितने मांस से सबका पोषण होते उतने ही प्राणियों के घात करने से हम लोग कभी भी निन्दित नहीं होते हैं । यह सबका विचार करके ही आप मेरी निन्दा करें या प्रशंसा करें ।७५। अच्छा हो या बुरा ही जिसका जो कर्म पहिले ही विधाता ने बना दिया है वही कर्म किसी भी प्रकार से आपत्काल में भी उसे करना चाहिए

निरूपण कर लीजिए । मैं तो सब प्रकार से मिश्र आदि के भरण पोषण के ही कार्य में निरत रहा करता हूँ । ७७।

सत्यज्य पितरं वृद्धं विनिहत्य च मातरम् ।

भूत्वा तु धार्मिकस्त्वं तु तपश्चतुर्मिहागतः ॥७८

ये तु मूलविदस्तेषां विस्पष्टं यत्र दर्शनम् ।

यथाजिह्वा भवेन्नात्र वचसापि समीहितुम् ॥७९

अहं तु सम्यग्जानामि तत्र वृत्तमशेषतः ।

तस्मादलं ते तपसा निष्फलेन भृगूद्वह ॥८०

सुखमिच्छसि चेत्यक्त्वा कायक्लेशशकरं तपः ।

याहि राम त्वमन्यत्र यत्र वा न विदुर्जनाः ॥८१

अब अपने कर्मों की ओर हष्टिपात करिए । आपने अपने परम वृद्ध पिता का परित्याग कर दिया है और अपनी आपको जन्म देकर अपने स्तनों के दुर्घट से पोषण करने वाली माता का विहनन कर दिया है । यह बुरे से बुरा कर्म करके भी आप परम धार्मिक बनकर तपश्चर्या करने के लिए यहाँ पर समागत हो गये हैं । ७८। जो लोग उनके मूल के ज्ञाता हैं उनको विस्पष्ट दर्शन होता है । यह जिह्वा से कहकर वचनों के द्वारा सभी-हित करने का विषय यहाँ पर नहीं है । ७९। मैं तो आपका सम्पूर्ण आचरण भली भाँति जानता हूँ और मुझे पूर्ण उसका ज्ञान है । हे भृगुद्वह ! इस कारण से यह आपका तप निष्फल है । इसे व्यर्थ मत करो । ८०। भाई अपना सुख चाहते हो तो इस काया को बलेशित करने वाले तप का त्याग कर दीजिए । हे राम ! अब आप किसी भी अन्य स्थान में चले जाइए जहाँ पर कि कोई भी मनुष्य आपको न जान सके । ८१।

— × —

॥ शंखास्त्र की प्राप्ति ॥

वसिष्ठ उवाच—इत्युक्तस्तेन भूपाल रामो मतिमतां वरः ।

निरूप्य मनसा भूयस्तमुवाचाभिविस्मितम् ॥१

राम उवाच—कस्त्वं ब्रूहि महाभाग न वै प्राकृतपूरुषः ।

इन्द्रस्येवानुभावेन वपुरालक्ष्यते तत्र ॥२

विचित्रार्थं पद्मौदार्यगुणयां भीर्यजातिभिः ।

सर्वज्ञस्यंव ते वाणी श्रूयतेऽतिमनोहरा ॥३

इन्द्रो वहिनर्यमो धाता वरुणो वा वनाधिपः ।

ईशानस्तपनो ब्रह्मा वायुः सोमो गुरुर्गुरुः ॥४

एषामन्यतमः प्रायो मवान्भवितुमर्हति ।

अनुभावेन जातिस्ते हृदि शंका तनोति मे ॥५

मायावी भगवान्विष्णुः श्रूयते पुरुषोत्तमः ।

को वा त्वं वपुषानेन बृहि मां समुपागत ॥६

अथ वा जगतां नाथः सर्वेजः परमेश्वरः ।

परमात्मात्मसंभूतिरात्मारामः सनातनः ॥७

श्री वसिष्ठ जी ने कहा —हे भूपाल ! मतिमानों में परम श्रेष्ठ राम से जब इस प्रकार से कहा गया था तो फिर उसने मन से निष्पत्ति करके बहुत ही विस्मित होते हुए उससे कहा था । १। राम ने कहा —हे महान् भाग वाले ! आप मुझे यह बतलाइए कि आप कौन हैं ? आप कोई प्राकृत पुरुष तो हैं नहीं । आपका जरीर तो अनुभाव से इन्द्र के ही समान लक्षित हो रहा है । २। विचित्र अर्थ वाले पदों की उदारता-गुणों की गम्भीरता को जातियों से आपकी वाणी सर्वज्ञ की ही अधिक मनोहर सुनाई दे रही है । ३। आप था तो इन्द्र हैं—अग्निदेव हैं—यम-धाता—वरुण अथवा कुबेर हैं । आप या तो ईशान हैं—तपन-ब्रह्मा-वायु-सोम—गुरु और या गुह हैं । ४। इन ऊपर बताये हुओं में से ही आप कोई से भी एक हो सकते हैं—यही ब्रह्मा प्रतीत होता है । आपके अनुभाव कुछ ऐसे ही हैं कि मेरे हृदय में आपकी जाति बड़ी भारी शंका उत्पन्न कर रही है । ५। भगवान् विष्णु बहुत अधिक मायावी हैं—ऐसा पुरुषोत्तम प्रभु के विषय में थवण किया जाता है । आप वास्तव में कौन हैं जो कि इस जरीर को धारण करके यहाँ समागत हुए हैं—यह आप मुझे स्पष्टतया बतलाने की कृपा करें । अथवा समस्त भुवनों के स्वामी—सब कुछ के ज्ञाता साक्षात् परमेश्वर हैं जो परमात्मा से ही आत्मा की उत्पत्ति वाले सनातन आत्मराम हैं । ६-७।

स्वच्छुद्वारी भगवान्विष्णुः सर्वजगन्मयः ।

वपुषानेन संयुक्तो भवान्भवितुमर्हति ॥८

नान्यस्येह भवेल्लोके प्रभावानुगतं वपुः ।

जात्यर्थसौष्ठवोपेता वाणी चौदार्थशालिनी ॥६

मन्येऽहं भक्तवात्सल्याद्वानेन वपुषा हरः ।

प्रत्यक्षतामुपगतो संदेहोऽस्मत्परीक्षया ॥१०

न केवलं भवान् व्याधस्तेषां नेह विधाकृतिः ।

तस्मात् भ्यं न मस्तस्मै मुरुपं संप्रदर्शय ॥११

आविष्कुर्वन्प्रयीदात्ममहिमानुगुणं वपुः ।

ममानेकविधा शंका मुच्येत येन मानसी ॥१२

प्रसीद सर्वभावेन बुद्धिमोही ममाधुनाः ।

प्रणाशय स्वरूपस्य ग्रहणादेव केवलम् ॥१३

प्रार्थये त्वां महाभाग प्रणम्य शिरसासकृत् ।

कस्त्वं मे दर्शयात्मानं बद्धोऽयं ते मयाङ्गजलिः ॥१४

परम स्वच्छन्दता के साथ सञ्चरण करने वाले सम्पूर्ण जगत् के स्वरूप वाले आप साक्षात् भगवान् शिव हैं जो इस शबर के शरीर को धारण करके यहाँ पर स्थित हैं। मुझे तो ऐसा ही लगता है कि आप भगवान् शम्भु हो सकते हैं। इस लोक में अन्य किसी का भी ऐसा प्रभाव से अनुगत शरीर नहीं होता है। जाति का अर्थ के सौष्ठव से युक्त और उदारता की शोभा वाली आपकी वाणी है ॥६। मैं तो अब ऐसा ही समझ रहा हूँ कि भगवान् हर हा भक्त के ऊपर वात्सल्य होने के कारण से इस शरीर को धारण कर मेरी परीक्षा करने के लिए प्रत्यक्ष स्वरूप में उपागत हुए हैं—ऐसा ही कुछ सन्देह होता है ॥१०। आप केवल व्याध तो नहीं है—यह निश्चय है क्योंकि इस प्रकार की जाकृति कभी होती ही नहीं है। इस कारण से मेरा आपकी सेवा में प्रणाम निषेदित है। अब कृपया अपना वास्तविक स्वरूप प्रदर्शित कीजिए ॥११। मेरे ऊपर प्रसन्न होइए और अपनी महिमा के अनुरूप वपु को प्रकट कर दीजिए जिससे मेरे मन में जो अनेक तरह की शङ्काएँ उठ रही हैं, उनसे मेरा छुटकारा हो जावे ॥१२। आप पूर्ण रूप से प्रसन्न होइए और इस समय में जो विचलित बुद्धि हो रही है तथा उसके कारण जो मुझे महान् भोह उत्पन्न हो रहा है उसका विनाश कीजिए। यह केवल आपके सत्य स्वरूप के ग्रहण करने ही से हो जायगा

।१३। हे महाभाग ! मेरी यह विनश्च प्रार्थना है और मैं बारम्बार आपको शिर से प्रणाम करके आपसे विनती करता हूँ कि आप कौन हैं—मुझे अपना सत्य स्वरूप दिखला दीजिए—मैं आपके लिए दोनों हाथ को जोड़कर विनय कर रहा हूँ ।१४।

इत्युक्त्वा तं महाभाग ज्ञातुमिच्छन्भृगूद्वहः ।

उपविश्य ततो भूमौ ध्यानमास्ते ममाहितः ॥१५

बद्धपद्मासनो मौनी यतवाक्कायमानसः ।

निरुद्धप्राणसंचारो दध्यो चिरमुदारधीः ॥१६

सन्नियम्येद्वियग्रामं मनो हृदि निरुद्ध्य च ।

चितयामास देवेशं ध्याहृष्ट्या जगद्गुरुम् ॥१७

अपश्यच्च जगन्नाथमात्मसंधानचक्षुषा ।

स्वभक्तानुग्रहकरं मृगव्याघस्वरूपिणम् ॥१८

तत उन्मील्य नयने शीघ्रमुत्थाय भार्गवः ।

ददर्श देवं तेनैव वपुषा पुरतः स्थितम् ॥१९

आत्मनोऽनुग्रहार्थाय शरण्यं भक्तवत्सलम् ।

आविभूतं महाराज हृष्ट्वा रामः ससंभ्रमम् ॥२०

रोमाङ्गोदिभन्नसर्वांगो हर्षाश्रुप्लुतलोचनः ।

पपात पादयोभूमौ भक्त्या तस्य महामतिः ॥२१

हे महाभाग ! उस शवर के वेषधारी से यह इतना कहकर उस भृगूद्वह ने सत्य स्वरूप के ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा करते हुए भूमि पर बैठकर वह परम समाहित होकर ध्यान में संलग्न हो गया था ।१५। उस उदार बुद्धि वाले ने पद्मासन बौध लिया था और मौन होकर वाणी-शरीर और मन को संयत कर लिया था । फिर उसने प्राण वायु के सञ्चार का निरोध करके चिरकाल पर्यन्त ध्यान लगा लिया था ।१६। इन्द्रियों के समूह को भली भाँति नियमित करके हृदय में मन को निरुद्ध कर लिया और फिर ध्यान की ही हाँष्ट से जगद्गुरु देवेश्वर का चिन्तन किया था ।१७। और फिर आत्म सन्धान की चक्षु से उन जगतों के स्वामी-अपने भक्तों पर परम भनुबहु का देवतामे को मृगों के विकारी जगत के महारुपाको लक्षण करने

वाले को देखा था ।१८। इसके अनन्तर अपनी आँखें खोलकर भारंब ने शीघ्र उठकर उसी शरीरसे संयुत और सामने स्थित देव का दर्शन किया था ।४६। हे महाराज ! अपने ऊपर अनुग्रह करने के लिए—भक्तों पर प्रेम करने वाले तथा शरण में समागत के रक्षक देवेश्वर को राम ने बड़े सम्भ्रम के साथ प्रकट हुए देखा था ।२०। उस महामति के अङ्गों में रोमाञ्च उद्भिन्न हो गये थे और परमाधिक हृषि के उद्रेक से आनन्दाश्रुओं से नेत्र भर गये थे । फिर भक्तिभाव से वह उनके चरणों में भूमि पर उनके सामने गिर गया था अर्थात् उसने उनके चरण कमलों में साष्टाङ्ग प्रणाम किया था ।२१।

स गदगदभुवार्चनं संभ्रमाकुलया गिरा ।

शरणं भव शर्वेति शंकरेत्यसकृन्तृप ॥२२

ततः स्वरूपधृक् शंभुस्तद्भक्तिपरितोषितः ।

राममुत्थापयामास प्रणामावनतं भुवि ॥२३

उत्थापितो जगद्वात्रा स्वहस्ताभ्यां भृगूद्धहः ।

तुष्टाव देवदेवेण पुरः स्थित्वा कृतांजलिः ॥२४

राम उवाच—नमस्ते देवदेवाय शंकरायादिमूर्त्तये ।

नमः शर्वाय शांताय शाश्वताय नमोनमः ॥२५

नमस्ते नीलकण्ठाय नीललोहितमूर्त्तये ।

नमस्ते भूतनाथाय भूतवासाय ते नमः ॥२६

व्यक्ताव्यक्तस्वरूपाय महादेवाय मीढुषे ।

शिवाय बहुरूपाय त्रिनेत्राय नमोनमः ॥२७

शरणं भव मे शर्व त्वद्भक्तस्य जगत्पते ।

भूयोऽनन्याश्रयाणां तु त्वमेव हि परायणम् ॥२८

हे नृप ! उस राम ने सम्भ्रम से समाकुलित वाणी से गदगद कण्ठ होकर इन प्रभु से कहा था और बारम्बार हे सर्व ! आप मेरे रक्षक होइए ऐसी प्रार्थना की थी ।२१। इसके अनन्तर अपने स्वरूप को धारण करने वाले शम्भु ने राम की भक्ति के भाव से परम सन्तुष्ट होते हुए भूमि में प्रणाम करने में पड़े हुए उसको ऊपर अपने कर कमलों से उठा लिया था ।२३। जगत् के धाता के द्वारा अपने ही करों से वह भृगूद्धह ऊपर उठा लिया गया

या । फिर उस राम ने उनके समक्ष में स्थित होकर हाथ जोड़कर उन देव-देवेश्वर का स्तवन किया था । २४। राम ने कहा—देवों के भी देव आदि मूर्त्ति भगवान् गङ्गार के लिये मेरा प्रणाम स्वीकार हो । शर्व—परमशान्त और पाश्वत प्रभु शम्भु के लिए मेरा बारम्बार प्रणाम है । २५। नीलकण्ठ और नील-लोहित मूर्त्ति वाले के लिए मेरा अनेक बार प्रणाम निवेदित है । आप तो भूतों के नाथ हैं ऐसे भूतवास आपके लिए मेरा बारम्बार प्रणाम है । २६। आपका स्वरूप अवक्तु है और अवक्तु भी है ऐसे महादेव—मीढ़—शिव—त्रिनेत्र और अनेक रूप वाले देवेश की सेवा में मेरा बारम्बार प्रणाम स्वीकार हो । २७। हे जगत् के स्वामिन् ! हे शर्व ! आपके ही चरणों में भक्ति रखने वाले मेरे आप रक्षक हो जाइए । जो किसी अन्य देव का समाश्रय ग्रहण न कर आपके ही चरणों का आश्रय लेते हैं वे अनन्य भक्त होते हैं उनके लिए आप ही परायण हैं । २८।

यन्मयाऽपकृतं देव दुरुक्तं वापि शंकर ।

अजानता त्वां भगवन्मम तत्क्षंतुमर्हसि ॥ २९ ॥

अनन्यवेद्यरूपस्य सद्भावमिह कः पुमान् ।

त्वामृते तत्र सर्वेश सम्यक् शक्नोति वेदितुम् ॥ ३० ॥

तस्मात्त्वं सर्वभावेन प्रसीद मम शंकर ।

नान्यास्ति मे गतिस्तुभ्यं नमो भूयो नमो नमः ॥ ३१ ॥

वसिष्ठ उवाच—इति संस्तूयमानस्तु कृतांजलिपुटं पुरः ।

तिष्ठतमाह भगवान्प्रसन्नात्मा जगन्मयः ॥ ३२ ॥

भगवानुवाच—प्रीतोऽस्मि भवते तात तपसाऽनेन सांप्रतम् ।

भवतधा चेवानपायिन्या हृषि भार्गवसत्तम् ॥ ३३ ॥

दास्ये चाभिमतं सर्वं भवतेऽहं त्वया व्रुतम् ।

भवतो हि मे त्वमत्यर्थं नात्र कार्या विचारणा ॥ ३४ ॥

मयेवावगतं सर्वं हृदि यत्तेऽद्य वर्तते ।

तस्माद्ब्रवीमि यत्त्वाहं तत्कुरुष्वाविशंकितम् ॥ ३५ ॥

हे शङ्कर ! मैंने जो भी कुछ अपकार किया है अथवा आपके प्रति मैंने जो बुरे शब्दों का प्रयोग किया था वह मेरे अज्ञान के कारण से ऐसा

हुआ था क्योंकि मैं आपको जान नहीं पाया था । उस सबको आप क्षमा करने के योग्य होते हैं । २६। अनन्य वेद्य रूप वाले आपके सद्भाव को कौन-सा पुरुष हे सर्वेष ! और आपको भले प्रकार से जान सकता है अर्थात् कोई भी नहीं जानता है । ३०। हे गङ्गा ! इस कारण से आप सर्वभाव से मेरे ऊपर प्रसन्न हो जाइए । आपके बिना मेरी अन्य कोई भी गति नहीं है अर्थात् मेरा उद्धार केवल आप ही कर सकते हैं अतएव आपके लिए मेरा पुनः बारम्बार नमस्कार है । ३१। श्री वसिष्ठजी ने कहा—इस प्रकार से सामने स्थित होकर दोनों करों को जोड़े हुए वह स्तुति कर रहा था । जगन्मय प्रसन्न आत्मा वाले भगवान् ने उससे कहा था । ३२। भगवान् ने कहा—हे तात ! अब आपकी इस तपश्चर्या से आपके ऊपर मैं बहुत प्रसन्न हूँ । हे भार्गवों में परम श्रेष्ठ ! मैं आपकी अनपायिती भक्ति से अत्यधिक प्रसन्न हूँ । ३३। जो भी आपने अपने मन में विचार रखा है वह सभी कुछ मैं आपको दे रहा हूँगा । आप मेरे बहुत ही अधिक प्रिय भक्त हैं—इसमें कुछ भी सशय वाली बात नहीं है । ३४। इस समय में जो भी कुछ आपके हृदय में है वह मुझे सभी अवगत है अर्थात् उस सबको मैं भली भाँति जानता हूँ । इसी कारण से मैं आपको बतलाता हूँ और आप कोई भी विशेष गङ्गा न रखते हुए वही करिए । ३५।

नास्त्राणां धारणे वत्स विद्यते शक्तिरद्य ते ।

रौद्राणां तेन भूयोऽपि तपो घोरं समाचर ॥ ३६ ॥

परीत्य पृथिवीं सर्वा सर्वतीर्थेष च क्रमात् ।

स्नात्वा पवित्रदेहस्त्वं सर्वाण्यस्त्राण्यवाप्स्यसि ॥ ३७ ॥

इत्युक्तवान्तर्दधे देवस्तेनैव वपुषा विभुः ।

रामस्य पश्यतो राजन्धनेन भवभागकृत ॥ ३८ ॥

अंतर्हिते जगन्नाथे रामो नत्वा तु शंकरम् ।

परीत्य वसुधां सर्वा तीर्थस्नानेऽकरोन्मनः ॥ ३९ ॥

ततः स पृथिवीं सर्वा परिक्रम्य यथाक्रमम् ।

चकार सर्वतीर्थेषु स्नानं विधिवदात्मवान् ॥ ४० ॥

तीर्थेषु थेन्नमुद्येषु तथा देवालयेषु च ।

पितृन्देवांश्च विधिवदत्पर्यगदतंद्रितः ॥ ४१ ॥

उपवासतपोहोमजपस्नानादिसुक्रियाः ।

तीर्थेषु विधिवत्कुर्वन्परिचक्राम मेदिनीम् ॥४२

हे वत्स ! आज आपके अन्दर अस्त्रों के धारण करने की शक्ति नहीं है । ये सब रोद्र अस्त्र हैं । इससे आप फिर भी परम घोर तप का समाचरण कीजिए । ३६। इस सम्पूर्ण भूमण्डल पर भ्रमण करके क्रम से समस्त तीर्थ स्थलों में स्नान कीजिए । फिर जब आप पवित्र शरीर बाले हो जायगे तो आप सभी अस्त्रों को प्राप्त करेंगे । ३७। इतना यह कर देवेश्वर विभु उसी शरीर से वहाँ पर अन्तर्हित हो गये थे । हे राजन् ! राम यह देख ही हो गये थे । ३८। जगत् के स्वामी के अन्तर्हित हो जाने पर राम ने भगवान् शङ्कर को प्रणाम किया था और फिर सम्पूर्ण वसुधा पर भ्रमण करके तीर्थों में स्नान करने का मन में निश्चय किया था । ३९। इसके उपरान्त आत्मवान् उसने क्रमानुसार सम्पूर्ण पृथ्वी की परिक्रमा लगाकर समस्त तीर्थों में विधि-विद्यान के साथ स्नान किया था । ४०। तन्द्रा से रहित होकर उसने मुख्य क्षेत्रों में—तीर्थों में तथा देवालयों में पितृगणों का और देवों का विधि के सहित तर्पण किया था । ४१। उपवास—तप—जप—होम और स्नान आदि की सुन्दर क्रियाएँ तीर्थों में विधिपूर्वक करते हुए उसने पृथ्वी पर परिक्रमण किया था । ४२।

एवं क्रमेण तीर्थेषु स्नात्वा चैव वसुन्धराम् ।

प्रदक्षिणीकृत्य शनैः शुद्धदेहोऽभवन्तुप ॥४३

परीत्यैव वसुमतीं भार्गवः शंभुशासनात् ।

जगाम भूयस्तं देशं यत्र पूर्वमुवास सः ॥४४

गत्वा राजन्स तत्रैव स्थित्वा देवमुमापतिम् ।

भक्त्या संपूजयामास तपोभिन्नियमैरपि ॥४५

एतस्मिन्नेव काले तु देवानामसुरेः सह ।

बभूव सुचिरं राजन्संग्रामो रोमहर्षणः ॥४६

ततो देवान्पराजित्य युद्धेऽतिबलिनोऽसुराः ।

अवापुरमरैश्वर्यमशेषमकुतोभयाः ॥४७

युद्धे पराजिता देवा सकला कासवादयः ।

संकरं नारां नगर्हं तैस्त्रया लुप्तिम् ॥४८

तोषयित्वा जगन्नाथं प्रणामजयसंस्तवैः ।

प्रार्थयामासुरसुरान्हन्तुं देवाः पिनाकिनम् ॥४६

हे नृप ! इस प्रकार से क्रम से तीथों में स्नान करके और सम्पूर्ण पृथिवी की प्रदक्षिणा करके धीरे-धीरे वह शुद्ध देह वाला हो गया था । ४३। वह भार्गव राम शम्भु भगवान् के शासन से इस रीति से पृथिवी की परिक्रमा देकर फिर वह उसी भू भाग पर पहुँच गया था जहाँ पर कि वह प्रथम समय में निवास करता था । ४४। हे राजन् ! वह वहाँ पर जाकर स्थित हो गया था और तप तथा नियमों के द्वारा भक्ति-भाव से उमा के पति देवेश्वर का भले प्रकार से पूजन किया था । ४५। उसी समय में हे राजन् ! देवों का असुरोंके साथ बहुत समय तक बड़ा ही भीषण रोमहर्षण युद्ध हुआ था । ४६। इसके पश्चात् महान् बलशाली असुरों ने सब देवों को युद्ध में पराजित करके सम्पूर्ण जो देवों का ऐश्वर्य था उसको ग्रहण कर लिया था और फिर वे निर्भीक होकर रहने लगे थे । ४७। उस युद्ध में सब इन्द्र आदि देवगण पराजित हो गये थे और शत्रुओं के द्वारा अपहृत वेभव वाले सब भगवान् शंकर की शरणागति में प्राप्त हुम् थे । ४८। उन देवगणों ने जगत् के नाथ भगवान् पिनाकी को प्रणाम-जय और संस्तवनों के द्वारा प्रसन्न कर लिया था और फिर उन्होंने भगवान् शङ्कर से असुरों के हनन करने के लिए प्रार्थना की थी । ४९।

ततस्तेषां प्रतिश्रुत्य दानवानां वधं नृप ।

देवानां वरदः शंभुर्महोदरमुवाच ह ॥५०

हिमाद्रेदक्षिणे भागे रामो नाम महातपाः ।

मुनिपुत्रोऽतितेजस्वी मामुद्विश्य तपस्यति ॥५१

तत्र गत्वा त्वमद्यैव विवेद्य मम शासनम् ।

महोदर तपस्यंतं तमिहानय माचिरम् ॥५२

इत्याज्ञप्तस्तथेत्युक्त्वा प्रणम्येशं महोदरः ।

जगाम वायुवेगेन यत्र रामो व्यवस्थितः ॥५३

समासाद्य स तं देशं इष्ट्वा रामं महामुनिम् ।

तपस्यंतमिदं वाक्यमुवाच विनयान्वितः ॥५४

द्रष्टुमिच्छति शम्भुस्त्वा भृगुवर्यं तदाज्ञया ।

आगतोऽहं तदागच्छ तत्पादांबुजसन्निधिम् ॥५५

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य शीघ्रमुत्थाय भार्गवः ।

तदाज्ञां शिरसानन्द्य तथेति प्रत्यभाषत ॥५६

इसके अनन्तर है तृप ! उन दानवों के वध के लिए प्रतिज्ञा करके देवों को वरदान प्रदान करने वाले भगवान् शम्भुने महोदर से कहा था ।५०। हिमवान् पर्वत के दक्षिण भाग में एक राम नाम वाला महान तपस्वी है । वह मुनि का पुत्र बहुत ही अधिक तेजस्वी है जो कि मेरा ही उद्देश्य लेकर तप करता है ।५१। वहाँ आज ही जाकर तुम मेरे आदेश को उससे कह दो है महोदर ! उस तपश्चर्या करने वाले को यहाँ पर ले आओ और इस कार्य में विलम्ब मत करो ।५२। इस प्रकार से आजा पाया हुआ वह महोदर—मैं ऐसा ही करूँगा—यह कहकर और ईश को प्रणाम करके वायु के समान अति तीव्र वेग से वहाँ पर चला गगा था जहाँ पर राम व्यवस्थित था ।५३। उस देश पर पहुँच कर उसने महामुनि राम का दर्शन किया था । वह तपस्या कर रहा था । उससे परम विनयी होकर उसने यह वाक्य कहा था ।५४। शम्भु प्रभु आप को देखने की इच्छा करते हैं । उनकी आज्ञा से भृगुवर्य आपके समीप में मैं आया हूँ । सो अब आप उनके चरणों की सन्निधि में चलिए ।५५। भार्गव ने उस महोदर के इस वचन का श्रवण करके वह बहुत शीघ्र उठकर खड़ा हो गया था । भगवान् शम्भु की आज्ञा को शिर पर धारण करके उस आदेश का अभिनन्दन करते हुए मैं अभी चलता हूँ—यह उसको राम ने उत्तर दिया था ।५६।

ततो रामं त्वरोपेतः जम्भुपाश्वं महोदरः ।

प्रापयामास सहसा कंलासे नागसत्तमे ॥५७

सहितं सकलैभूंतैरिद्राद्यैश्च सहामरैः ।

ददर्श भार्गवश्रेष्ठः शंकरं भक्तवत्सलम् ॥५८

संस्तूयमानं मुनिभिन्नरिदाद्यैस्तपोधनैः ।

गंधर्वैरुपगायदिभर्नुत्यदिभश्चाप्सरोगणैः ॥५९

उपास्यमानं देवेणं गजचर्मधृताम्बरम् ।

भस्मोदूलितसर्वाङ्गं त्रिनेत्रं चन्द्रशेखरम् ॥६०

धूतपिंगजटाभारं नागाभरणभूषितम् । १६१
 प्रलम्बोष्ठभुजं सौम्यं प्रसन्नमुखपङ्कजम् ॥६१
 आस्थितं काञ्चने पट्टे गीर्वणिसमिती नृप ।
 उपासर्पत् देवेशं भृगुवर्यः कृतांजलिः ॥६२
 श्रीकण्ठदर्शनोद्भृतरोमांचाचितविग्रहः ।
 बाष्पात् सित्कायेन स तु गत्वा हरांतिकम् ॥६३

इसके पश्चात् महोदर ने राम को बहुत ही शीघ्रतासे शम्भु के समीप में प्राप्त कर दिया था और सहसा केलास पर्वत के परम ओष्ठ भाग में दिया था । ५७। वहाँ पर भागंव ने समस्त भूत और इन्द्र आदि देवों के सहित भक्त वत्सल शंकर का दर्शन किया था । ५८। वहाँ पर भागंव ने देखा था कि बड़े-बड़े तपोधन नारद आदि मुनिगण उनका संस्तवन कर रहे थे—गच्छर्वगण गान अथवि भगवान् के गुणों का गायन कर रहे थे तथा अप्सराएँ उनके मनोविनोद के लिए समक्ष में नृत्य कर रही थीं । ५९। सभी जन वहाँ पर देवेश्वर की उपासना में संलग्न थे । शम्भु गज के चर्म को धारण किये हुए थे और उनके समस्त अङ्गों में भस्म लगी हुई थी जिससे उनका शरीर धूलित हो रहा था । तीन नेत्रों के धारण करने वाले शिव के मस्तक में चन्द्रमा विराजमान था । ६०। भगवान् पिङ्गल वर्ण की जटाजूट का भार शिर पर धारण किये हुए थे और नागों के आभरणों से उनके अङ्ग विभूषित थे । उनका बपु परम सौम्य था तथा उनके ओष्ठ और भुजाएँ लम्बी थीं और उनका मुख कमल प्रसन्नता से खिला हुआ था । ६१। हे नृप ! उस देवों की परिषद में शम्भु सुवर्ण के पट्ट पर विराजमान थे । हाथ जोड़े हुए राम देवेश्वर के समीप में प्राप्त हुआ था । ६२। भगवान् श्री कण्ठ के दर्शन से आह्लदातिरेक से राम का सम्पूर्ण शरीर रोमाञ्चित हो गया था और आनन्दाश्रुओं से उसका शरीर सित्क हो गया था । ऐसी दशा में परमानन्दित होते हुए राम भगवान् शम्भु के समीप में उपस्थित हुआ था । ६३।

भक्त्या ससंभ्रमं वाचा हर्षगददयासकृत् ।
 नमस्ते देवदेवेति व्यालपन्नाकुलाक्षरम् ॥६४
 पपात संस्पृशन्मूर्धना चरणो पुरविद्विषः ।
 पश्यतां देववृन्दानां मध्ये भृगुकुलोद्धरम् ॥६५

तमुत्थाप्य शिवः प्रीतः प्रसन्नमुखपंकजम् ।

रामं मधुरया वाचा प्रहसन्नाह सादरम् ॥६६

इमे देत्यगणेः क्रांताः स्वाधिष्ठानात्परिच्छ्रुताः ।

अशक्नुवन्तस्तान्हंतुं गीवणा मामुपागताः ॥६७

तस्मान्ममाज्ञया राम देवानां च प्रियेषस्या ।

जहि देत्यगणान्सर्वान्समर्थस्त्वं हि मे मतः ॥६८

ततो रामोऽब्रवीच्छ्रवं प्रणिपत्य कृतांजलिः ।

शृण्वतां सर्वदेवानां सप्रश्रयमिदं वचः ॥६९

स्वामिन् विदितं कि ते सर्वज्ञस्याखिलात्मनः ।

तथापि विज्ञापयतो वचनं मेऽवधारय ॥७०

भक्ति भाव से सम्भ्रम के साथ हृष्ट से गदगद वाणी के द्वारा व्याकुल अक्षरों में शम्भु से बोले—हे देवदेव ! आपके लिए मेरा प्रणाम निवेदित है । ६४। तगवान् त्रिपुरारि प्रभु के चरण कमलों को मस्तक से स्पर्श करते हुए उसने भूमि पतित होकर साष्टांग प्रणिपात किया था । समस्त देवों के समुदाय वहाँ पर देख रहे थे । उनके मध्य में उस भृगु कुलोद्धृह ने प्रणिपात किया था । ६५। भगवान् शिव ने परम प्रसन्न होकर विकसित मुखकमल वाले उस राम को उठाया था और हँसते हुए परम मधुर वाणी से आदर पूर्वक राम से कहा था । ६६। ये सब देवों के समुदाय देत्यों के द्वारा समाक्रान्त हो रहे हैं और ये सब अपने निवास स्थान से परिच्छ्रुत कर दिये गये हैं । विचारे ये देवगण उनका हनन करने की सामर्थ्य न रखते हुए ही इस समय मेरे समीप में समागत हुए हैं । ६७। इसलिए हे राम ! मेरी आज्ञा से और सब देवों के प्रिय कार्य करने की इच्छा से समस्त देत्यगणों का आप हनन कर डालिए । आप इस कार्य के सम्पादन करने के लिए समर्थ हैं ऐसा मेरा मत है । ६८। इसके उपरान्त राम ने भगवान् शम्भु को प्रणाम करके दोनों अपने करों को जोड़कर समस्त देवों के सामने उनके श्रवण करते हुए विनय पूर्वक यह वचन भगवान् शम्भु से कहे थे । ६९। हे स्वामिन् ! आप तो सर्वज्ञ हैं और सबकी आत्मा हैं । क्या आपको यह विदित नहीं है तो भी

यदि शकादिभिर्देवेरखिलेरमरारयः ।

न शक्या हंतुमेकस्य शक्या स्युस्ते कथं मम ॥७१

अनस्त्रज्ञोऽस्मि देवेश युद्धानामप्यकोविदः ।

कथं हनिष्ये सकलान्सुरशत्रूननायुधः ॥७२

इत्युक्तस्तेन देवेशः सितं कालाग्निसप्रभम् ।

शैवमस्त्रमयं तेजो ददौ तस्मै महात्मने ॥७३

आत्मीयं परशुं दत्त्वा सर्वशस्त्राभिभावकम् ।

राममाह प्रसन्नात्मा गीवणानां तु शृण्वताम् ॥७४

मत्प्रसादेन सकलान्सुरगत्रून्विनिधनतः ।

भक्तिर्भवतु ते सौम्य समस्तारिदुरासदा ॥७५

अनेनैवायुधेन त्वं गच्छ युध्यस्व शत्रुभिः ।

स्वयमेव च वेत्सि त्वं यथावद्युद्धकीशलम् ॥७६

वसिष्ठ उवाच—एव मुक्तस्ततो रामः शंभुना तं प्रणम्य च ।

जग्राह परशुं शैवं विबुद्धारिवधोद्यतः ॥७७

यदि इन्द्र आदि समस्त देवों के द्वारा देवों के शत्रुगण देत्य लोग मारे नहीं जाते हैं तो मुझ एक के द्वारा वे सब कैसे मारे जा सकते हैं ॥७१॥ ह देवेश ! मैं तो अस्त्रों के विषय में भी अज्ञ हूँ और युद्धों के करने में भी पण्डित नहीं हूँ । बिना ही आयुधों वाला मैं किस तरह से समस्त देवों के शत्रु असुरों का अकेला हनन करूँगा ॥७२॥ उस राम के द्वारा इस रीति से कहे गये देवेश्वर शम्भु ने कालाग्नि के समान प्रभा वाले सित अब अस्त्रों से परिपूर्ण शैव तेज उस महान आत्मा वाले को दे दिया था ॥७३॥ उन्होंने सब शस्त्रों के अभिभावक अपने परशु को प्रदार कर प्रसन्न आत्मा वाले शिव ने समस्त देवगणों के सुनते हुए उस राम से कहा था ॥७४॥ हे सौम्य ! मेरे प्रसाद से समस्त देवों के शत्रुओं का हनन करते हुए तुम्हारे अन्दर ऐसी ही शक्ति हो जायेगी जो सब अरिझों को दुरासद अर्थात् अतीव असह्य होगी ॥७५॥ इसी एक भाव आयुध को ग्रहण कर तुम चले जाओ और सब शत्रुओं के साथ युद्ध करो । तुम अपने ही आप स्वयं यथा रीति से युद्ध करने के कौशल को जान जाओगे ॥७६॥ श्री वसिष्ठजी ने कहा— इस तरह से जब भगवान्

शिव के द्वारा राम से कहा गया तो उसने शम्भु को प्रणाम किया था और देवों के शत्रुओं के वध करने के लिये उच्चत होते हुए उस परशु का ग्रहण कर लिया था । ७७।

ततः स शुशुभे रामो विष्णुतेजोऽशसंभवः ।

रुद्रभक्तच्या समायुक्तो द्युत्येव सवितुर्महः ॥ ७८

सोऽनुज्ञातस्त्रिनेत्रेण देवैः सर्वैः समन्वितः ।

जगाम हंतुमसुरान्युद्धाय कृतनिश्चयः ॥ ७९

ततोऽभवत्पुनर्युद्धं देवानामसुरैः सह ।

त्रैलोक्यविजयोद्युक्तेराजन्नतिभयंकरम् ॥ ८०

अथ रामो महाबाहुस्तस्मिन्युद्धे सुदारुणे ।

क्रुद्धः परशुना तेन निजघान महासुरान् ॥ ८१

प्रहारैरणनिप्रख्यैर्निघ्नन्दैत्यान्सहस्रशः ।

चचार समरे राम; क्रुद्धः काल इवापरः ॥ ८२

हत्वा तु सकलान्दैत्यान्देवान्सर्वानहर्षयत् ।

क्षणेन नाशयामास रामः प्रहरतां वरः ॥ ८३

रामेण हन्यमानास्तु समस्ता दैत्यदानवाः ।

ददृशुः सर्वतो रामं हतशेषा भयान्विताः ॥ ८४

हतेष्वसुरसंघेषु विद्रुतेषु च कृतस्नशः ।

राममामंश्य विवृधाः प्रयुस्त्रिदिवं पुनः ॥ ८५

रामोऽपि हत्वा दितिजानम्यनुज्ञाप्यचामरान् ।

स्वमाश्रमं समापेदे तपस्यासक्तमानसः ॥ ८६

मृगव्याधप्रतिकृतिं कृत्वा शम्भोर्महामतिः ।

भक्त्या संपूजयामास स तस्मिन्नाश्रमे वशी ॥ ८७

गन्धैः पुष्पेस्तथा हृष्णेन्वैद्यरभिवन्दनैः ।

स्तोत्रैश्च विधिवद्भक्त्या परां प्रीतिमुपानयत् ॥ ८८

इसके अनन्तर भगवान् विष्णु के तेज के अंश से समुत्पन्न वह राम

बहुत ही शोभा युक्त हो गया था जो कि रुद्र की शक्ति से समन्वित था । वह सूर्य की दृति से दिन के ही समान देवोप्यमान हो गया था । ७८। वह राम त्रिनेत्र प्रभु के द्वारा अनुजा प्राप्त कर सब देवों के साथ ही युद्ध करने के लिए निश्चय करते हुए असुरों के हनन को वहाँ से चल दिया था । ७९। हे राजन् ! इसके पश्चात् सम्पूर्ण त्रिलोक्य के विजय करने के लिए समुद्दत्त उन असुरों के साथ देवगणों का महान भयङ्कर युद्ध फिर हुआ था । ८०। इसके उपरान्त महान बाहुओं वाले राम ने उस महान दारुण युद्ध में कुद्ध होकर उसी परशु से घड़े-घड़े असुरों का हनन किया था । ८१। वज्र के सहश प्रहारों से सहस्रों दैत्यों का संहार करते हुए राम ने परम क्रोधित होकर दूसरे काल के ही समान उस युद्ध क्षेत्र में सञ्चरण किया था । ८२। प्रहार करने वालों में परम श्रेष्ठ राम ने समस्त दैत्यों का हनन करके एक ही क्षण में सुर शत्रुओं का नाश कर दिया था और देवों को परम हर्षित कर दिया था । ८३। राम के द्वारा मारे जाते हुए सब दैत्यों और दानवों ने जो भी कुछ मरने से बच गये थे वहुत भय से युक्त होकर सभी ओर राम को ही देख रहे थे । ८४। समस्त असुरों के समुदायों के निहत हो जाने पर और वहाँ से पूर्णतया सबके थाग जाने पर देवगणों ने राम को आमन्त्रित किया था और वे सब फिर स्वर्गलोक को चले गये थे । ८५। राम भी दैत्यों का पूर्णतया निहनन करके सब देवों की अनुजा प्राप्त करके तपश्चर्या में आसक्त मन वाले होते हुए अपने आश्रम में प्राप्त हो गये थे । ८६। उस महामति राम ने भगवान् शम्भु की मृगों के हनन करने वाले व्याघ की ही प्रतिमूर्ति बनाकर उस वशी ने उसी आश्रम में बहुत ही भक्ति के भाव से उसकी पूजा की थी । ८७। पूजन पुष्प-गन्ध-सुन्दर नैवेद्य-अभिनन्दन और स्तोत्रों के द्वारा विष्णि पूर्वक किया यथा था और परमाधिक प्रीति की प्राप्ति का थी । ८८।

— × —

॥ परशुराम द्वारा द्विज-सुत रक्षण ॥

वसिष्ठ उवाच ततस्तद्भक्तियोगेन स प्रीतात्मा जगत्पतिः ।
 प्रत्यक्षमगमत्तस्य सर्वेः सह मरुदगणः ॥१
 तं दृष्ट्वा देवदेवेशं त्रिनेत्रं चंद्रशेखरम् ।
 वृषेऽवाहनं शम्भुं भूतकोटिसमन्वितम् ॥२
 ससंभ्रमं समुत्थाय हर्षेणाकुललोचनः ।

प्रशाममकरोदभक्तया जवायि भुवि भार्गवः ॥३

उत्थायोत्थाय देवेशं प्रगम्य शिरसासकुत् ।

कृतांजलिपुटो रामस्तुष्टाव च जगत्पतिम् ॥४

राम उवाच—नमस्ते देवदेवेश नमस्ते परमेश्वर ।

नमस्ते जगतो नाथ नमस्ते त्रिपुरातक ॥५

नमस्ते सकलाध्यक्ष नमस्ते भक्तवत्सल ।

नमस्ते सर्वभूतेश नमस्ते वृषभध्वज ॥६

नमस्ते सकलाधीश नमस्ते करुणाकर ।

नमस्ते सकलावास नमस्ते नीललोहि ॥७

श्री वसिष्ठजी ने कहा—इसके अनन्तर उसकी भक्ति भाव से प्रसन्न आत्मा वाले जगत् के स्वामी समस्त मरुदगणों के सहित उसके समक्ष में प्रत्यक्ष रूप में हो गये थे ।१। तीन नेत्रों के धारण करने वाले चन्द्रशेखर और वृषभेन्द्र के वाहन वाले और करोड़ों भूतगणों से समन्वित देवों के भी देवेश्वर भगवान् शम्भु का राम ने दर्शन किया था ।२। शम्भु का दर्शन प्राप्त होते ही अत्यन्त हृषि से समाकुलित लोचनों वाले राम ने सम्भ्रम के साथ उठकर (उस भार्गव ने) भूमि में पड़कर भक्तिभाव से भगवान् शर्व के लिए प्रणाम किया था ।३। वारम्बार उठ उठकर शिर के बल से अनेक बार प्रणाम करके उन जगत् के स्वामी देवेश्वर को हाथ जोड़कर उनकी स्तुति की थी ।४। राम ने कहा—हे परमेश्वर ! आप तो देवों के भी देव हैं । आपकी सेवा में मेरा बार-बार प्रणिपात है । आप तो जगत् के नाथ हैं । हे त्रिपुरासुर के हनन करने वाले । आपके लिए मेरा बारम्बार प्रणाम है ।५। हे भक्तों पर प्यार करने वाले ! आप तो इस सम्पूर्ण विश्व के अध्यक्ष हैं । आपकी सेवा में मेरा अनेक बार प्रणाम स्वीकृत होवे । हे सब भूतों के स्वामिन् ! हे वृषभध्वज ! आपके लिए मेरा प्रणाम है ।६। हे करुणानिधि ! आप तो सबके अधीश हैं । हे नील लोहित ! आप सबमें निवास करने वाले हैं । आपकी चरण-सेवा में मेरा बारम्बार प्रणिपात स्वीकार होवे ।७।

नमः सकलदेवारिगणनागाय शूलिने ।

कुमारिने नमस्तुभ्यं सर्वज्ञोऽस्तपात्पतिने ॥८

शमशानवासिने नित्यं नमः कैलासवासिने ।

नमोऽस्तु पाशिने तुभ्यं कालकूटविपाशिने ॥६

विभवेऽमरवंद्याय प्रभवे ते स्वयंभुवे ।

नमोऽखिलजगत्कर्मसाक्षिभूताय शंभवे ॥७०

नमस्त्रिपथगाफेनभासिताद्दैन्दुमौलिने ।

महाभोगीद्रहाराय शिवाय परमात्मने ॥११

भृत्यसंच्छन्नदेहाय नमोऽकर्णिदुचक्षुषे ।

कपर्दिने नमस्तुभ्यमंधकासुरमद्दिने ॥१२

त्रिपुरध्वंसिने दक्षयज्ञविध्वंसिते नमः ।

गिरिजाकुचकाश्मीरविरंजितमहोरसे ॥१३

महादेवाय महते नमस्ते कृत्तिवाससे ।

योगिध्येयस्वरूपाय शिवायाचित्यतेजसे ॥१४

हे शम्भो ! आप समस्त लोकों के एक ही पालन करने वाले हैं । ऐसे कपास के धारण करने वाले और समस्त देवों के शत्रुओं के विनाश के लिए शूल के धारी आपके लिए मेरा प्रणिपात स्वीकृत होवे । ६। शमशान भूमि में निवास करने वाले तथा कैलास पर रहने वाले आपके लिये नित्य ही मेरा प्रणाम है । पाश के धारी तथा महान् कालकूट विष के अशन करने वाले आपके लिए मेरा प्रणाम है । ७। विभव में देवों के द्वारा बन्धना करने के योग्य और प्रभव में स्वयंभु तथा सम्पूर्ण जगत् के कर्मों के साक्षी स्वरूप शम्भु के लिए मेरा नमस्कार है । ८। त्रिपथगा के फेनों के आभास वाले अर्धचन्द्र को मस्तक पर धारण किये हुए तथा महान् सर्पों के हार थे भूषित परमात्मा भगवान् शिव के लिए मेरा प्रणाम स्वीकृत होवे । ९। शमशान की भस्म से संछन्न देह वाले—सूर्य और चन्द्र अग्नि के धारण करने वाले चक्रुओं से समन्वित-कपर्दी और अन्धकासुर के मदंन करने वाले आपके लिए मेरा बार-बार प्रणाम स्वीकृत होगे । १०। त्रिपुरासुर के विध्वंस करने वाले तथा प्रजापति दक्ष के महान् यज्ञ ध्वंस करने वाले और गिरिराज की पुत्रों गौरी के स्तनों पर लगी हुई केशर के आश्लेष में विशेष रक्षित महान् उरस्थल वाले प्रभु के लिए मेरा नमस्कार है । ११। गज चर्म के धारी—योगि जनों के द्वारा ध्यान करने के योग्य स्वरूप वाले—न चिन्तन करने के योग्य तेज से समन्वित महादेव के लिए मेरा नमस्कार है । १२।

स्वभक्तहृदयांभोजकर्णिकामध्यवर्त्तिने ।

सकलागमसिद्धांतसाररूपाय ते नमः ॥१५

नमो निखिलयोगेद्रवोधनायामृतात्मने ।

शंकरायाखिलव्याप्तमहिम्ने परमात्मने ॥१६

नमः शर्वाय शांताय ब्रह्मणे विश्वरूपिणे ।

आदिमध्यांतहीनाय नित्यायाव्यक्तमूर्त्तये ॥१७

व्यक्ताव्यक्तस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने नमः ।

नमो वेदांतवेदाय विश्वविज्ञानरूपिणे ॥१८

नमः सुरासुरश्रेणिमौलिपुष्पार्चितांघ्रये ।

श्रीकंठाय जगद्वात्रे लोककत्रे नमोनमः ॥१९

रजोगुणात्मने तुभ्यं विश्वसृष्टिविधायिने ।

हिरण्यगर्भरूपाय हराय जगदादये ॥२०

नमो विश्वात्मने लोकस्थितिव्यापारकारिणे ।

सत्त्वविज्ञानरूपाय पराय प्रत्यगात्मने ॥२१

अपने भक्तजनों के हृदय कमलों की कर्णिकाओं के मध्य में विराज-मान रहने वाले और समस्त आगमों के सिद्धान्त स्वरूप वाले भगवान् शङ्कर के लिए प्रणिपात है । १५। समस्त योगेन्द्रों को बोध देने वाले—अमृतात्मा-सबसे व्याप्त महिमा वाले परमात्मा भगवान् शङ्कर के लिए नमस्कार है । १६। परम शान्त स्वरूप-विश्व के रूप वाले ब्रह्म-आदि मध्य और अन्त से रहित-नित्य और अव्यक्त मूर्त्ति से समन्वित भगवान् शिव के लिए मेरा अभिवादन है । १७। व्यक्त (प्रकट) और अव्यक्त (अप्रकट) स्वरूप वाले तथा स्थूल और परम सूक्ष्म रूप वाले शम्भु के लिये मेरा प्रणाम है । वेदान्त शास्त्र के द्वारा ज्ञान प्राप्त करने के योग्य और विश्व के विज्ञान रूप के धारी शिव के लिए नमस्कार है । १८। समस्त सुरगण और असुरों के मस्तकों में संलग्न पुष्पों से मस्तकों को चरण कमलों में झुकाने पर समचित पदों वाले-जगत् के ध्राता और सब लोकों को रचना करने वाले भगवान् श्रीकण्ठ के लिए बारम्बार नमस्कार निवेदित है । १९। इस सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि की रचना करने वाले रजोगुण के स्वरूप से संयुत-इस जगत् के आदि स्वरूप-

हिरण्यगर्भ रूप भगवान् हर के लिये नमस्कार है । २०। सम्पूर्ण लोकों की स्थिति के बास्ते व्यापार करने वाले-सत्त्व विज्ञान के स्वरूप से समन्वित प्रत्यगात्मा—पर और विश्वात्मा के लिए मेरा प्रणाम निवेदित है । २१।

तमोगुणविकाराय जगत्संहारकारिणे ।

कल्पान्ते रुद्ररूपाय परापरविदे नमः ॥२२॥

अविकाराय नित्याय नमः सदसदात्मने ।

बुद्धिबुद्धिप्रबोधाय बुद्धींद्रियविकारणे ॥२३॥

वस्त्वादित्यमरुद्भश्च साध्यरुद्राश्विभेदतः ।

यन्मायाभिन्नमतयो देवास्तस्मै नमोनमः ॥२४॥

अविकारमजं नित्यं सूक्ष्मरूपमनौपमम् ।

तव यत्तन्न जानन्ति योगिनोऽपि सदाऽमलाः ॥२५॥

त्वामविज्ञाय दुर्जेयं सम्यग्ब्रह्मादयोऽपि हि ।

संसरंति भवे नूनं न तत्कर्मात्मकाश्चिरम् ॥२६॥

यावन्नोपैति चरणौ तवाज्ञानविधातिनः ।

तावद्भ्रमति संसारे पण्डितोऽचेतनोऽपि वा ॥२७॥

स एव दक्षः स कृती स मुनिः स च पंडितः ।

भवतश्चरणांभोजे येन बुद्धिः स्थिरीकृता ॥२८॥

तमोगुण के विकार रूप वाले—इस जगत् के संहार कर्त्ता—कल्प के अन्त में रुद्र रूप वाले और पर तथा अपर के जाता भगवान् शङ्खर के लिए नमस्कार है । २२। विकारों से रहित-नित्य-सत् और असत् रूप वाले बुद्धि की बुद्धि के प्रबोध रूप तथा बुद्धि और इन्द्रियों में विकार करने वाले शम्भु के लिए प्रणाम है । २३। वसु-आदित्य और मगदगणों से तथा साध्य रुद्र और अश्विनीकुमार—इनके भेदों से देवगण भी जिस की माया से भिन्न मति वाले होते हैं उन परम देव शिव के लिए नमस्कार है और पुनः नमस्कार है । २४। आपके जिस विकार से रहित-अजन्मा-नित्य और अनुपम सूक्ष्म स्वरूप को सदा अमल योगीजन भी नहीं जातते हैं । २५। ब्रह्मा आदि भी दुःख से जानने के योग्य आपको न जानकर निश्चय ही इस संसाहृ में संसरण किया करते हैं और तत्कर्मक चिरकाल तक नहीं रहते हैं । २६। अज्ञान के विघात

करने वाले आपके जब तक चरण कमलों की प्राप्ति नहीं करता है अर्थात् आपके चरणों का समाश्रय नहीं ग्रहण करता है तब तक चाहे कोई पण्डित हो अथवा अज्ञानी हो इस संसार में भ्रमण किया करता है । २७। इस भूमण्डल में वह ही परम दश है—कृती है—मुनि है और वही महान् पण्डित है जिसने आपके चरण कमलों में अपनी बुद्धि को स्थिर करके लगा दिया है । २८।

सुसूक्ष्मत्वेन गहनः सद्भावस्ते त्रयीमयः ।

विदुषामपि मूढेन स मया जायते कथम् ॥ २९ ॥

अशब्दगोचरत्वेन महिनस्तव सांप्रतम् ।

स्तोतुमप्यनलं सम्यक्त्वामहं जडधीर्यतः ॥ ३० ॥

तस्मादज्ञानतो वापि मया भक्त्यैव संस्तुतः ।

प्रीतश्च भव देवेण तनु त्वं भक्तवत्सलः ॥ ३१ ॥

वसिष्ठ उवाच—इति स्तुतस्तदा तेन भक्त्या रामेण शंकरः ।

मेघगंभीर्या वाचा तमुवाच हसन्निव ॥ ३२ ॥

भगवानुवाच—रामाहं सुप्रसन्नौऽस्मि शीर्यंशालित्या तव ।

तपसा मयि भक्त्या च स्तोत्रेण च विशेषतः ॥ ३३ ॥

वरं वरय तस्मात्वं यद्यदिच्छसि चेतसा ।

तुभ्यं तत्तदशेषेण दास्याम्यहमशेषतः ॥ ३४ ॥

वसिष्ठ उवाच—इत्युक्तो देवदेवेन तं प्रणम्य भृगूद्वहः ।

कृतांजलिपुटो भूत्वा राजन्निदमुवाच ह ॥ ३५ ॥

आपका त्रयीमय सद्भाव परम सूक्ष्म होने से अत्यन्त गहन है और बड़े-बड़े विद्वानों के लिए भी अतीव गहन होता है वह आपका सद्भाव महामूढ़ मेरे द्वारा कंसे जाना जाता है । २९। इस समय में आपकी महिमा शब्दों के द्वारा गोचर न होने के कारण जड़ बुद्धि वाला आपकी भली भाँति से स्तुति करने में भी असमर्थ है । ३०। इससे अज्ञान से मैंने केवल भक्ति के भाव से ही आपकी संस्तुति की है । हे देवेश्वर ! आप मुझ पर प्रीतिमान् हो जाइए क्योंकि आप तो अपने भक्तों पर प्यार करने वाले हैं । ३१। श्री वसिष्ठजी ने इस प्रकार से उत्तर किया कि भवत्वा से उस

समय में स्तुति की गयी थी। तब भगवान् शङ्कर हँसते हुए मेघ के समान परम गम्भीर वाणी से उससे बोले थे। ३२। भगवान् ने कहा—हे राम! आपकी शौयशालिता से मैं आप पर बहुत ही प्रसन्न हो गया हूँ। आपकी तपश्चर्या से—मेरे अन्दर अनन्य भक्ति के भाव से और विशेष रूप से आपके द्वारा किये गये स्तोत्र से मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ हूँ। ३३। इस कारण से आप किसी वरदान का वरण कर लो जो-जो भी आप अपने चित्त से चाहते हो। वही मैं आपकी पूर्ण रूप से सभी कुछ दे दूँगा। ३४। वसिष्ठ जी ने कहा—जब देवों के देवेश्वर ने उस राम से इस रीति से कहा था तो उस भृगुकुल के उद्धृत करने वाले ने उनके चरणों में प्रणाम किया था और हे राजन्! उसने दोनों करों को जोड़कर प्रभु से यह कहा था। ३५।

यदि देव प्रसन्नस्त्वं वराहोऽस्मि च यद्यहम् ।

भवतस्तदभीप्सामि हेतुमस्त्राण्यशेषतः ॥३६॥

अस्त्रे शस्त्रे च जास्त्रे च न मत्तोऽध्यधिको भवेत् ।

लोकेषु मां रणे जेता न भवेत्वत्प्रसादतः ॥३७॥

वसिष्ठ उवाच—तथेत्युक्त् वा ततः शंभूरस्त्रशस्त्राण्यशेषतः ।

ददौ रामाय सुप्रीतः समंत्राणि क्रमान्त्रुप ॥३८॥

सप्रयोगं ससंहारमस्त्रग्रामं चतुर्विधम् ।

प्रसादाभिमुखो रामं ग्राहयामास शंकरः ॥३९॥

असंगवेगं शुभ्राश्वं सुध्वजं च रथोत्तमम् ।

इषुधी चाक्षयशरी ददौ रामाय शंकरः ॥४०॥

अभेद्यमजरं दिव्यं हृष्टज्यं विजयं धनुः ।

सर्वशस्त्रसहं चित्रं कवचं च महाधनम् ॥४१॥

अजेयत्वं च युद्धेषु शौयं चापतिमां भृवि ।

स्वैर्च्छया धारणे शक्ति प्राणानां च नराधिप ॥४२॥

हे देवेश्वर! यदि आप मेरे ऊपर परम प्रसन्न हैं और यदि मैं आपके द्वारा वरदान देने के योग्य हूँ तो मैं आपसे उस हेतु को और सम्पूर्ण अस्त्रों को चाहता हूँ। ३६। मैं यही चाहता हूँ कि अस्त्र विद्या में—शास्त्रों के ज्ञान में और शास्त्रों की जानकारी में कोई भी मुझसे अधिक ज्ञाता न होवे मैं यह भी चाहता हूँ कि आपके प्रसाद से लोकों में युद्ध में कोई भी जीतने

वाला न होवे । ३७। वसिष्ठ जी ने कहा—भगवान् शंकर ने कहा था कि जो भी तुमने चाहा है, सभी तुम्हारी इच्छा पूरी हो जायगी । इसके उपरान्त उन्होंने पूर्ण अस्त्र और शस्त्र भी है नृप ! मन्त्रों के सहित क्रम से परम प्रसन्न होते हुए राम के लिये प्रदान कर दिये थे । ३८। भगवान् शंकर ने प्रयोग करने के और संहार करने के साथ चार प्रकार के अस्त्रों के समुदाय को प्रसाद से परिपूर्ण होकर राम को ग्रहण करा दिया था । ३९। भगवान् शंकर ने असङ्ग वेग से समन्वित—शुभ्र रङ्ग वाले अश्वों से युक्त और सुन्दर छवजा वाले उत्तम रथ-धनुष और अक्षर शर राम के लिए दिये थे । ४०। एक ऐसा धनुष भी दिया था जो भेदन करने के अयोग्य-जीर्ण न होने वाला-परम सुदृढ़ ज्या (प्रत्यञ्चा) वाला और विजय करने वाला था । तथा सभी प्रकार के शस्त्रों के घात को सहन करने वाला-परम अद्भुत महाधन सम्पन्न एक कवच भी प्रदान किया था । ४१। हे नराधिप ! इसके अतिरिक्त भगवान् शंकर ने उस अपने परम भक्त राम के लिए युद्धों में अजेय होना-भूलोक में अनुपम शूर वीरता और अपनो ही इच्छा से प्राणों के धारण करने में जक्ति भी प्रदान की थी । ४२।

ख्यार्ति च बोजमन्त्रेण तन्नाम्नां सर्वलीकिकीम् ।

तपःप्रभावं च महत्प्रददौ भागेवाय सः ॥४३॥

भक्ति चात्मनि रामाय दत्वा राजन्यथोचिताम् ।

सहितः सकलं भू आमरैश्च द्रशेखरः ॥४४॥

तेनैव वपुषा शंभुः क्षिप्रमंतरधाद्वरः ।

कृतकृत्यस्ततो रामो लब्धवा सर्वमभीप्सितम् ॥४५॥

अहश्यतां गते शर्वे महोदरमुवाच ह ।

महोदर मदर्थे त्वमिदं सर्वमशेषतः ॥४६॥

रथचापादिकं तावत्परिरक्षितुमर्हसि ।

यदा कृत्यं ममैतेन तदानीं त्वं मया स्मृतः ।

रथचापादिकं सर्वे प्रहिणु त्वं मदंतिकम् ॥४७॥

वसिष्ठ उवाच—तथेत्युक्त्वा गते तस्मिन्भूगुवर्यो महोदरे ।

कृतकृत्यो गुरुजनं द्रष्टुं गंतुमियेष सः ॥४८॥

गच्छन्नथं तदासौ तु हिमाद्रिवनगट्वरे ।

विवेश कंदरं रामो भाविकमंप्रचोदितः ॥४६॥

उन प्रभु शिव ने भार्गव के लिए उसके नाम बीजमन्त्र के द्वारा सम्पूर्ण लोक में होने वाली रुयाति और महात् तप का प्रभाव दिया था । ४३। समस्त भूतगण और देवगण के सहित भगवान् चन्द्रशेखर ने हे राजन् ! अपने में यथोचित होने वाली भक्ति भी राम को प्रदान की थी । ४४। फिर उसी शरीर के द्वारा ही भगवान् शिव शीघ्र ही अन्तर्हित हो गये थे । फिर वह राम भी अपना सम्पूर्ण अभीप्सित प्राप्त करके कृतकृत्य हो गया था । ४५। भगवान् शंकर के अदृश्य हो जाने पर राम ने महोदर से कहा था । हे महोदर ! इन वस्तुओं को पूर्ण रूप से आप मेरे लिये अपने अधिकार में रखिए । ४६। आप ही इन रथ और चाप आदि की परीक्षा करने के लिए परम योग्य होते हैं । जिस समय में इन समस्त सामग्रियों से मुझे कार्य होगा उसी समय में मेरे द्वारा आप का स्मरण किया जायगा । तब रथ और चाप आदि सब सामान आप मेरे समीप में भेज दीजिएगा । ४७। वसिष्ठ जी ने कहा—महोदर ने कहा था कि मैं इसी प्रकार से सब कार्य करूँगा—यह कहकर उस महोदर के बहाँ से चले जाने पर भृगुवर राम कृत कृत्य हो मर्या था और फिर उसने अपने गुरुजन के दर्शन प्राप्त करने की इच्छा की थी । ४८। उस समय में गमन करते हुए आगे आने वाले कमाँ के करने के लिए प्रेरित होकर परम गहन हिमवान् के वन में एक कन्दरा थी उस में राम ने प्रवेश किया था । ४९।

स तत्र दद्शे बालं धृतप्राणमनुद्रुतम् ।

व्याघ्रेण विप्रतनयं रुदंतं भीतभीतवत् ॥५०॥

दृष्ट्वानुकंपहृदयस्तत्परित्राणकातरः ।

तिष्ठतिष्ठेति तं व्याघ्रं वदन्नुच्चैरथान्वयात् ॥५१॥

तमनुद्रुत्य वेगेन चिरादिव भृगूद्वहः ।

आससाद वने घोरं शादूलमतिभीषणम् ॥५२॥

व्याघ्रेणानुद्रुतः सोऽपि पलावन्वनगट्वरे ।

निपपात द्विजसुतस्त्रस्तः प्राणभयातुरः ॥५३॥

रामोऽपि क्रोधरक्ताक्षो विप्रपुत्रपरीप्सया ।

तृणमलं समादाय कुशास्त्रेणाभ्यमंत्रयत् ॥५४

तावत्तरक्षुलवानाद्रवत्पतितं द्विजम् ।

दृष्ट्वा ननाद रुभृशं रोदसी कम्पयन्निव ॥५५

दग्धवा त्वस्त्राग्निना व्याघ्रं प्रहरन्तं नखांकुरैः ।

अकृतत्रणमेवाशु मोक्षयामास तं द्विजम् ॥५६

वहाँ पर उस राम ने एक ब्राह्मण के पुत्र को देखा था जो बालक अवस्था का था और एक व्याघ्र उसके पीछे आते हुए खदेढ़ रहा था जिसके कारण वह प्राण तो धारण किये हुए था किन्तु अत्यन्त डरे हुए की भाँति रुदन कर रहा था ।५। अपने हृदय में दया का भाव रखने वाला राम उसके परित्राण करने के लिए बहुत ही कातर हो गया था । उसने उस बालक के पीछे दौड़कर आते हुए व्याघ्र से बहुत ऊँची आवाज में 'ठहर जा-ठहर जा'—यह कहते हुए वह उस व्याघ्र के पीछे चल दिया था ।५। बड़े ही बेग से उसके पीछे प्रभावित होकर उस भृगुकुल के उद्धवन करने वाले राम ने जैसे कुछ विलम्ब हो गया हो उस बन में अत्यन्त भयानक और घोर उस शार्दूल के पास अपनी पहुँच कर ली थी ।५। उस परम गहन-गम्भीर बन में जिसके पीछे व्याघ्र दौड़ा चला आ रहा था वह ब्राह्मण का पुत्र अपने प्राणों की हानि के भय से बहुत ही आतुर होता हुआ अत्यधिक डरा हुआ था और दौड़ते हुए वह वहाँ पर भूमि में गिर गया था ।५। राम भी ब्राह्मण के पुत्र की रक्षा की इच्छा से कोध से लाल नेत्रों वाला हो गया था और फिर उसने तृण मूल को ग्रहण कर कुशास्त्र से अभिमन्त्रित किया था ।५। उसी समय के बीच में उस बलवान् व्याघ्र ने उस गिरे हुए द्विज पुत्र पर आक्रमण कर दिया था । उस दृश्य को देखकर राम ने अत्यन्त अधिक छवनि भूमि और आकाश को कैंगाते हुए की थी अर्थात् घोरगर्जना की थी जिससे मानो भूमि और अन्तरिक्ष भी कम्पित हो गये थे ।५। अपने नखों के अंकुरों द्वारा प्रहार करते हुए व्याघ्र को अस्त्राग्नि से भस्मीभूत करके उस विश्रुत को छुड़ा दिया था जिसके शरीर में शीघ्रता से कोई नाष्ठ के नखों से ब्रण नहीं हो पाये थे ।५।

सोऽपि ब्रह्माग्निर्दग्धदेहः पाप्मा नभस्तले ।

गान्धर्वं वगुरास्थाय राममाहेति सादरम् ॥५७

विश्वापेन भो पर्वमहं प्राप्तस्तरक्ष ताम् ।

गच्छामि मोचितः शापात्वयाऽहमधुना दिवम् ॥५८
 इत्युक्तवा तु गते तस्मिन्नामो वेगेन विस्मितः ।
 पतितं द्विजपुत्रं तं कृपया व्यवपद्यत ॥५९
 माभैरेवं वदन्वाणीमारादेव द्विजात्मजम् ।
 परामृशत्तदंगानि शर्नरुज्जीवयन्त्रुप ॥६०
 रामेणोत्थापितश्चैवं स तदोन्मील्य लोचने ।
 विलोक्यन्ददण्डग्रे भृगुश्रेष्ठमवस्थितम् ॥६१
 भस्मीकृतं च शादूँलं दृष्ट्वा विस्मयमागतः ।
 गतभीराह कस्त्वं भोः कथं वेह समागतः ॥६२
 केन वायं निहंतुं मामुद्यतो भस्मसात्कृतः ।
 तरक्षुभीषणाकारः साक्षान्मृत्युरिवापरः ॥६३

वह व्याघ्र भी महा पापी ब्रह्माग्नि से दग्ध शरीर वाला आकाश में एक गन्धर्व का शरीर धारण करके बड़े ही आदर के साथ राम से बोला था । ५७। हे राम ! एक विप्र के णाप से पूर्व में इस तरक्षु के स्वरूप को प्राप्त करने वाला हुआ था । इस समय में आपके द्वारा उस णाप से छुड़ाया गया में अब स्वर्गलोक में गमन कर रहा है । ५८। इतना ही कहकर बड़े वेग से उसके चले जाने पर राम को बड़ा विस्मय हुआ था और फिर दया के वशी-भूत होकर वह उस भूमि पर पड़े हुए द्विज पुत्र के पास पहुँचा था । ५९। हे नृप ! समीप में ही उस द्विज के पुत्र से 'डरो मत'—यह बाणी बोलते हुए धीरे-धीरे उसको उज्जीवित करते हुए उस बालक के अङ्गों को सयलाया । ६०। इस प्रकार से राम के द्वारा उठाये हुए उसने उस समय में अपने लेत्रों को खोला था । इधर-उधर अवलोकन करते हुए उसने अपने सामने अवस्थित भृगुकुल में परम श्रेष्ठ राम को देखा था । ६१। और अपने समीप में ही भस्मीभूत शादूँल को देखकर उस बालक को बड़ा भारी विस्मय हुआ था । जब उसका भय विलकुल समाप्त हो गया था तो उसने राम से कहा था—आप कौन हैं अथवा यहाँ पर आप कैसे समागत हुए हैं ? । ६२। और मुझको मारने के लिए उद्यत यह शादूँल किसके द्वारा निर्दग्ध करके भस्मी-भूत कर दिया गया है ? यह तरक्षु तो महा भीषण आकार वाला साक्षात् दूसरे काल के ही सहश था । ६३।

भयसंमूढमनसो ममाद्यापि महामते ।

हतेऽपि तस्मिन्नखिला भान्ति वै तन्मया दिशः ॥६४

त्वामेव मन्ये सकलं पिता माता सुहृदगुरु ।

परमापदमापन्नं त्वं मां समुपजीवयन् ॥६५

आसीन्मुनिवरः कश्चिच्छांतो नाम महातपाः ।

पुत्रस्तस्यास्तिर्थार्थी शालग्राममयासिषम् ॥६६

तस्मात्संप्रस्थितश्शीलं दिव्यकुर्गंधमादनम् ।

नानामुनिगणेज्ञुष्टं पुण्यं बदरिकाश्रमम् ॥६७

गंतुकामोऽपहायाहं पंथानं तु हिमाचले ।

प्रविशन्नगहनं रम्यं प्रदेशालोककाकुलम् ॥६८

दिशं प्राचीं समुद्दिश्य क्रोशमात्रमयासिषम् ।

ततो दिष्टवशेनाहं प्राद्रवं भयपीडितः ॥६९

पतितश्च त्वया भूयो भूमेस्तथापितोऽधुना ।

पित्रेव नितरा पुत्रः प्रेम्णात्यर्थं दयालुना ।

इत्येष मम वृत्तांतः साकल्येनोदितस्तव ॥७०

हे महती मति वाले ! अधिक भय के कारण संमूढ मन वाले मुझे अभी भी उसके मृत हो जाने पर भी समस्त दिशाएँ उसी से परिपूर्ण प्रतीत हो रही हैं अर्थात् सभी ओर मुझे वह ही दिखलाई दे रहा है । ६४। मुझे तो इस समय में ऐसा भान हो रहा है और मैं आपको ही अपना माता-पिता-सुहृद और गुरु सब कुछ मानता हूँ क्योंकि मैं तो परमाधिक आपदा में फैस चुका था और आपने ही मुझको भली-भाँति जीवन दान दिया है । ६५। कोई एक महान तपस्वी शान्त नामधारी श्रेष्ठ मुनि थे । मैं उनका ही पुत्र हूँ । मैं तीर्थाटन के प्रयोजन वाला शालग्राम के लिए गया था । ६६। वहाँ से मैंने फिर प्रस्थान किया था और मैं गन्धामादन पर्वत के देखने की इच्छा वाला हो गया था । अनेक महामुनियों के समुदायों के द्वारा सेवित परम पुनीत बदरिकाश्रम को गमन करने की कामना वाला मैं हो गया था । फिर हिमवान् जैसे महा विशाल पर्वत में समुचित मार्ग को छोड़कर परम रम्य और प्रदेश के आलोकन में आकुल गहन वन में प्रवेश कर रहा था । ६७-६८। पूर्व

दिशा कर उद्देश्य करके एक कोण भर हो गया था । वहाँ पर भाग्य के बशीभूत होकर मैं भय से उत्पीड़ित होकर भाग दिया था ॥६६। मैं फिर भूमि पर गिर गया था । आपने कृपा करके इस समय मैं फिर मुझे भूमि से उठाया था । दयालु आपने पिता की ही भाँति मेरे पर कृपा की थी जैसे पिता अपने पुत्र पर अत्यधिक प्रेम किया करता है । मेरा यही इतना वृत्तान्त है जो कि मेरे द्वारा पूर्ण रूप से आपके समक्ष मैं कह दिया गया है ॥७०।

वसिष्ठ उवाच—इति पृष्ठस्तदा तेन स्ववृत्तांतमशेषतः ।

कथयामास राजेंद्र रामस्तस्मै यथाक्रमम् ॥७१

ततस्ती प्रीतिसंयुक्तो कथयन्तो परस्परम् ।

स्थित्वा नाति चिरं कालमथ गंतुमियेष सः ॥७२

अन्वीयमानस्तेनाथ रामस्तस्मादगुहामुखात् ।

निष्क्रम्यावस्थं पित्रोः स तस्ये मुदान्वितः ॥७३

अकृतव्रण एवासौ व्याघ्रेण भुवि पातितः ।

रामेण रक्षितश्चाभूद्यस्माद्वघांघ्रं विनिधनता ॥७४

तस्मात्तदेव नामास्य वभूव प्रथितं भुवि ।

विप्रपुत्रस्य राजेंद्र तदेतत्सोऽकृतव्रणः ॥७५

तदा प्रभृति रामस्य च्छायेवातपगा भृवि ।

वभूव मित्रमत्यर्थं सर्वविस्थासु पार्थिव ॥७६

स तेनानुगतो राजन्भूगोरासाद्य सन्निधिम् ।

हष्ट्वा छ्याति च सोऽस्येत्य विनयेनाभ्यवादयत् ॥७७

श्री वसिष्ठजी ने कहा—हे राजेन्द्र ! उस समय में इस प्रकार से उस विप्रसुत के द्वारा पूछे गये रामने कहकर सुना दिया था ॥७१। इसके अनन्तर वे दोनों परस्पर में प्रीति से समन्वित होकर वात्तलाप करते रहे थे । अत्यधिक कालतक नहीं न ठहरकर उसने गमन करने की इच्छा की थी ॥७२। राम भी उसके पश्चात् उसी के पीछे गमन करने वाला हो गया था और उस गुफा के मुख से निकलकर बड़े आनन्द के साथ अपने माता-पिता के निवास स्थान की ओर उसने भी प्रस्थान कर दिया था ॥७३। व्याघ्र के द्वारा भूमि में गिरा भी दिया गया था तो भी उसके देह में कोई भी कहीं

पर व्रण नहीं हुआ था । उस विनिहनन करने वाले व्याघ्र से वह राम के द्वारा सुरक्षित हुआ था । ७४। हे राजेन्द्र ! इसी कारण से इसका नाम भूमण्डल में प्रथित हो गया था फिर उस विप्र के पुत्र का अकृत व्रण ही नाम पड़ गया था । ७५। हे पाथिव ! तभी से लेकर आतप के पीछे गमन करने वाली छाया के ही समान वह भूमि में सभी प्रकार की अवस्थाओं में उसका अत्यधिक प्रिय मित्र हो गया था । ७६। हे राजन् भृगु की सन्निधि को प्राप्त करके वह उसी के साथ अनुगत हो गया था और रुद्धाति को देखकर वह सामने उपस्थित हुआ था तथा विनय के साथ उसने अभिवादन किया था । ७७।

स ताभ्यां प्रियमाणाभ्यामाशीभिरभिनंदितः ।

दिनानि कतिचित्तत्र न्यवसत्तत्प्रयेष्य ॥७८

ततस्तयोरनुमते च्यवनस्य महामुनेः ।

आश्रमं प्रतिचक्राम शिष्यसंघैः समावृतम् ॥७९

नियंत्रितांतः करणं तं च संशांतमानसम् ।

सुकन्या चापि तद्वार्यमिवंदत महामनाः ॥८०

ताभ्यां च प्रीतियुक्ताभ्यां रामः समभिनंदितः ।

ओर्वश्रिमं समापेदे द्रष्टुकामस्तपोनिधिम् ॥८१

तं चाभिवाद्य मेधावी तेन च प्रतिनंदितः ।

उवास तत्र तत्प्रीत्या दिनानि कयिचिन्तृप ॥८२

विसृष्टस्तेन शनकेऽर्हं चीकभवनं मुदा ।

प्रतस्थे भार्गवः श्रीमानकृतव्रणसंयुतः ॥८३

अवंवत पितुः पित्रोर्नत्वा पादौ पृथक् पृथक् ।

तौ च तं नृपसंहर्षचिचाशिषा प्रत्यनन्दताम् ॥८४

परमप्रीति से समन्वित उन दोनों के द्वारा वह आशीर्वचनों से अभिनन्दित किया गया था । उसके प्रिय करने की अभिलाषा से उसने वहाँ पर कुछ दिन तक निवास किया था । ७८। इसके उपरान्त उन दोनों की अनुमति से शिष्यों के समुदायों से समावृत महामुनि च्यवन के आश्रम की ओर वह चला गया था । ७९। उस महान मन वाले ने अपने अन्तः-करण को नियन्त्रण में लाने के लिए शरण ली ।

नाम धारिणी जो उनकी भार्या थी उसकी बन्दना की थी । ८०। परम प्रीति से सुसम्पन्न उन दोनों के द्वारा राम का भली-भौति अभिनन्दन किया गया था । तप की निधि का दर्शन करने की कामना वाले उसने और्बं के आश्रम को प्राप्त किया था । ८१। हे नृप ! मेधावी राम ने उनका अभिवादन किया था और और्बं महामुनि के द्वारा राम का अभिनन्दन किया गया था । वहाँ पर उनकी प्रीति होने से वह कतिपय दिनों तक रहा था । ८२। फिर धीरे से आनन्द के साथ उस मुनि के द्वारा राम की विदाई की गयी थी और अकृत व्रण के ही सहित श्रीमान् भार्गव ने वहाँ से प्रस्थान किया था । ८३। पिता के पिता-माता के चरणों में पृथक्-पृथक् बन्दना की थी । हे नृप ! उन दोनों ने उसका बड़े ही हृषि से अभिनन्दन किया था । ८४।

पृष्ठश्च ताभ्यामखिलं निजवृत्तमुदारधीः ।

कथयामास राजेन्द्र यथावृत्तमनुकमात् ॥८५

स्थित्वा दिनानि कतिचित्तत्रापि तदनुजया ।

जगामावसर्थं पित्रोमुर्दा परमया युतः ॥८६

अभ्येत्य पितरौ राजन्नासीनावाश्रमोत्तमे ।

अवंदत तयोः पादी यथावद्भृगुनन्दनः ॥८७

पादप्रणामावनतं समुत्थाय च सादरम् ।

आश्लिष्य नेत्रसलिलैनंदंतौ पर्यंचित्रताम् ॥८८

आशीभिरभिनन्द्यांके समारोप्य मुहुर्मुखम् ।

बीक्षंतो तस्य चांगानि परिस्पृश्यापतुर्मुदम् ॥८९

अपृच्छनां च तौ रामं कालेनैतावता त्वया ।

किं कृतं पुत्रं को वायं कुत्र वा त्वमुपस्थितः ॥९०

कथं सह सकाशे त्वमास्थितो वात्र वागतः ।

त्वयैतदखिलं वत्स कथ्यतां तथ्यमावयोः ॥९१

फिर उन दोनों के द्वारा उदार बुद्धि वाले उससे अपना वृत्तान्त पूर्ण रूप से पूछा गया था । हे राजेन्द्र ! जो कुछ भी जिस तरह से हुआ था वह अनुक्रम के साथ राम ने कहा था । ८५। वहाँ पर भी कुछ दिन तक स्थित रहकर फिर उनकी अपुज्ञा से परम आनन्द से संयुत होकर माता-पिता के

निवास स्थान को वह चला गया था । ८६। हे राजन् ! उस परमोत्तम आश्रम में माता-पिता विराजमान थे । उनके सामने उपस्थित होकर भृगुनन्दन ने उन दोनों के चरणों में यथोचित रीति से बन्दना की थी । ८७। उन्होंने अपने चरणों में मस्तक झुकाने वाले राम को आदर के साथ उठाकर आश्लेषण किया था और परमानन्दित होते हुए अपने बात्सल्य के कारण आये हुए प्रेमाश्रुओं से उसका परिषिङ्घन किया था । ८८। आशीर्वदों के द्वारा अभिनन्दन करके उन्होंने अपनी गोद में बिठा लिया था और बारम्बार उस अपने पुत्र के मुख का अवलोकन करते हुए उसके अङ्गों का परिस्पर्श करके परमाधिक आनन्द को प्राप्त हुए थे । ८९। उन दोनों ने राम से पूछा था हे पुत्र ! इतने लम्बे समय तक आपने क्या किया था और यह दूसरा कौन तुम्हारे साथ में है तथा तुम कहाँ इतने समय पर्यन्त रहे थे ? । ९०। किस प्रकार से तुम सकाश में साथ समाप्ति हुए थे अथवा यहाँ पर कहाँ से इस समय में समागत हुए थे ? हे वत्स ! आपको हम दोनों के सामने जो भी सत्य-सत्य हो वह सब बतला देना चाहिए । ९१।

—X—

कार्तव्रीर्य का जमदग्नि आश्रम में आगमन

वशिष्ठ उवाच—इति पृष्ठस्तदा ताभ्यां रामो राजन्कुतांजलि ।
 तयोरकथयत्सर्वमात्मना यदनुष्ठितम् ॥१
 निदेशाद्वै कुलगुरोस्तपश्चरणमात्मनः ।
 शंभोनिदेशात्तीर्थानामटनं च यथाकमम् ॥२
 तदाज्ञयैव दैत्यानां वधं चामरकारणात् ।
 हरप्रसादादत्रापि ह्यकृतव्रणदर्शनम् ॥३
 एतत्सर्वमशेषेण यदन्यच्चात्मना कृतम् ।
 कथयामास तद्रामः पित्रोः संप्रीयमाणयोः ॥४
 तौ च तेनोदितं सर्वं श्रुत्वा तत्कर्मविस्तरम् ।
 हृष्टो हषीतिरं भूयो राजन्नाप्नुवतावुभौ ॥५
 एवं पित्रोमहाराज शुश्रूषां भृगुपुंगवः ।
 प्रकुर्वस्तद्विधेयात्मा श्रातृष्णां चाविशेषतः ॥६

एतस्मिन्नेव काले तु कदाचिद्द्वैहयेश्वरः ।
इयेष मृगयां गंतु चतुरंगबलान्वितः ॥७

श्री वसिष्ठ जी ने कहा—हे राजन् ! जब उस समय में इस प्रकार से राम से पूछा गया था तो उसने अपने दोनों करों को जोड़कर उन दोनों के समक्ष में वह सम्पूर्ण अपना घटित घटनाओं का इतिवृत्त कह दिया था जो भी कुछ अपने द्वारा अब तक किया था ।१। अपने कुलदेव की आज्ञा से अपनी तपश्चर्या का समाचरण तथा भगवान् शम्भु के निर्देश से यथाक्रम तीर्थों का पर्यटन जो किया था—वह सभी कुछ निवेदित कर दिया था ।२। फिर शंकर की ही आज्ञा से देवों की सुरक्षा करने के कारण से जो देव्यों का वध किया था वह भी सुना दिया था । यहाँ पर भी भगवान् हर के प्रसाद से ही अकृत ब्रग का दर्शन हुआ था ।३। यह सम्पूर्ण पूर्णतया जो हुआ था वह और जो अपने द्वारा कुछ भी किया गया था वह सब परम प्रसन्न माता-पिता के सामने राम ने कहकर सुना दिया था ।४। उन दोनों ने राम के द्वारा कहा हुआ सब उसके कर्मों का विस्तार श्रवण किया था और परम प्रसन्न हुए थे । हे राजन् ! फिर वे दोनों एक दूसरे हृषि को भी प्राप्त हुए थे ।५। हे महाराज ! इस रीति से उस भृगुकुल में परम श्रेष्ठ राम ने अपने माता-पिता की शुश्रूषा करते हुए पूर्णतया उनके प्रति अपने कर्तव्य का सविनय पालन किया था और अपने भाइयों की भी सेवा उसी भाव से उसने की थी ।६। इसी समय में किसी वक्त हैह्येश्वर चतुरज्ञिणी सेना के सहित मृगया करने को गमन करने वाला हुआ था ।७।

संरज्यमाने गगने बंधूककुसुमारुणः ।

ताराजालद्युतिहरैः समंतादरुणांशुभिः ॥८

मंदं वीजति प्रोद्धूतकेतकीवनराजिभिः ।

प्राभातिके गंधवहे कुमुदाकरसंस्पृणि ॥९

वयांसि नर्मदातीरतरुनीडाश्रयेषु च ।

व्याहरन्स्वाकुला वाचो मनः श्रोत्रसुखावहाः ॥१०

नर्मदातीरतीर्थं तदवतीर्याघिहारिणि ।

तत्तोये मुनिवृदेषु गृणत्सु ब्रह्म शाश्वतम् ॥११

विधिवत्कृतमैत्रेषु सन्त्विवृत्य सरितटात् ।

आश्रमं प्रति गच्छत्सु मुनिमुख्येषु कर्मिषु ॥१२

प्रत्येकं वीरपत्नीषु व्यग्रासु भृहकर्मसु ।

होमार्थी मुनिकल्पाभिर्द्विह्यमानासु धेनुषु ॥१३

स्थाने मुनिकुमारेषु तं दोहं हि नयत्सु च ।

अग्निहोत्राकुले जाते सर्वभूतसुखावहे ॥१४

अब उस वेला की अद्भुत छटा का वर्णन किया जाता है—उस समय में चारों ओर अरुण अंशुओं वाली और तारागण की द्युति का हरण करने वाली बन्धूक पुष्पों की अरुणता से आकाश मण्डल संरज्यमान हो रहा था ।८। विकसित केतकी के वनों की पंक्तियों के द्वारा मद को समुद्भूत करते हुए तथा कुमुदों से युक्त सरोवरों का स्पर्श करने वाला प्रातः काल का सुन्दर एवं सुख स्पर्श वायु बहन कर रहा था ।९। पक्षीगण उस समय में नमंदा के तट पर उगे हुए तरुवरों के नीड़ों के आश्रमों में अपनी समाकुल और मन तथा कालों को परम सुख प्रदान करने वाली वाणियाँ बोल रहे थे ।१०। नमंदा का तट तीर्थ है उस तीर्थ में उतर कर पापों के हरण करने वाले उस जल में मुनिवृन्द निरन्तर ब्रह्म अर्थात् वेद वचनों का गान कर रहे थे ।११। विधि-विधान के साथ नित्यानुष्ठान करके नमंदा नदी के तीर से वापिस लौट कर कर्मों के करने वाले प्रमुख मुनिगण अपने-अपने आश्रमों की ओर गमन कर रहे थे ।१२। प्रत्येक वीरों की पत्नियाँ अपने-अपने गृहों के आवश्यक कर्मों में उस समय में संलग्न हो रही थीं । सर्वथा मुनियों के ही सहश बहुत सी मुनि पत्नियाँ होम कर्म के सम्पादन करने के लिए धेनुओं का दोहन कर रही थीं ।१३। मुनियों के कुमार दोहन किये हुए दुर्घट को समुचित स्थानों पर पहुंचा रहे थे तथा समस्त प्राणियों को सुख का आवाहन करने वाले होम के होने पर अग्निहोत्र में सभी समाकुल हो रहे थे ।१४।

विकसत्सु सरोजेषु गायत्सु भ्रमरेषु च ।

वाशत्सु नीडान्निष्पत्य पतात्रिषु समंततः ॥१५

अनतिव्यग्रमत्तेभतुर्यगरथगामिनाम् ।

गात्राह्लादविवर्द्धन्यां वेलायां मंदवायुना ॥१६

स्वाध्यायदक्षिर्बहुभिरजिनांबरधारिभिः ॥१७

सम्यक् प्रयोज्यमानेषु मंत्रेषूच्चावचेषु च ।

प्रैषेषूच्चार्यमाणेषु हृयमानेषु वहिनषु ॥१८
यथावन्मन्त्रतंत्रोक्तक्रियासु विततासु च ।

ज्वलदग्निशिखाकारे तमस्तपनतेजसि ॥१९

प्रतिहत्य दिशः सर्वा विवृण्वाने च मेदिनीम् ।

सवितर्युदयं याति नैशे तमसि नश्यति ॥२०

तारकासु विलीनासु काष्ठासु विमलासु च ।

कृतमंत्रादिको राजा मृगयां हैहयेश्वरः ॥२१

उस प्रातःकालीन बला में सभी और कमल खिले उठे थे और विकसित पंकजों के ऊपर भ्रमरों के बृन्द गुञ्जार रहे थे । सभी और से अपने-अपने घोंसलों से पक्षीगण नीचे उतर कर अपना अशन कर रहे थे । १५। उस समय में मन्द बायु बहन कर रही थी और सुमधुर बेला में जो भी विशेष व्यग्र नहीं थे ऐसे मदोन्मत्त हाथी-अश्व और रथों द्वारा गमन करने वालों के शरीर को आह्लाद का विवर्द्धन हो रहा था । १६। बहुत से कर्म-निष्ठ जन पुष्प और तीर्थजल का आहरण करके अपने-अपने आश्रमों की ओर गमन कर रहे थे । वेदों के स्वाध्याय करने में परम दक्ष बहुत से मृग-चमों के धारण करने वालों के द्वारा भली-भाँति उच्चावच मन्त्रों के प्रयोग किये जा रहे थे तथा प्रेषों का उच्चारण किया जा रहा था । अग्नि में आहृतियाँ दी जा रही थीं । १७-१८। रीति के अनुसार मन्त्र शास्त्र और तन्त्र-शास्त्र में वर्णित क्रियाओं का विस्तार हो रहा था । जलती हुई अग्नि की शिखा के आकार वाले तपन के तेज में समस्त दिशाओं में तप को प्रतिहत करके वसुन्धरा पर वह फेला हुआ था । सूर्यदेव के उदित हो जाने पर उस समय में रात्रि के समय का अन्धकार विनष्ट हो रहा था । १९-२०। जिस समय में समस्त तारागण विलीन हो गये थे और सभी दिशाएँ एकदम स्वच्छ दिखलाई दे रही थीं । उस समय में हैह्येश्वर राजा प्रातःकालीन सब कृत्य पूर्ण करके शिकार करने के लिए चल दिया था । २१।

निर्ययौ नगरात्तस्मात्पुरोहितसमन्वितः ।

बलैः सर्वैः समुदितैः सवाजिरथकुर्जरैः ॥२२

साचिवैः सहितः श्रीमान् सवयोभिश्च राजभिः ।

महता बलभारेण नमयन्वसुधातलम् ॥२३

नादयनृथधोषेण ककुभः सर्वतो नृपः ।

स्वबलौघपदशेषप्रक्षुण्णायनिरेणुभिः ॥२४

ययौ संच्छादयन्व्योम विमानशतसंकुलम् ।

संप्रविश्य वनं घोरं विद्याद्रेबलसंचयैः ॥२५

भृशं विलोलयामास समंताद्राजसत्तमः ।

परिवार्य वनं तत्तु स राजा निजसैनिकैः ॥२६

मृगान्नानानाविधान्हस्तान्निजघान शितैः शरैः ।

आकर्णकृष्टकोदंडयोधमुक्तैः शितेषुभिः ॥२७

निकृत्सगात्राः शार्दूला न्यपतन्धुवि केचन ।

उदग्रवेगपादातखडगखडितविग्रहाः ॥२८

रथ-हाथी और अश्वों से समन्वित समस्त सैनिकों से युक्त होकर अपने पुरोहित के साथ वह राजा हैहयेश्वर अपने नगर से शिकार करने के लिए निकल दिया था ।२२। अपने सभी सचिवों के साथ और वयोवृद्ध अन्य कितने ही राजाओं को साथ में लेकर श्रीमान् वह बड़ी भारी सेना के बीरों के भार से समस्त वसुधा को नीचे की ओर झुकाते हुए वह चल रहा था ।२३। वह राजा अपनी सेना के रथों के चलने की ध्वनि से सभी दिशाओं को गुञ्जित कर रहा था और अपनी सेना के समुदायों के सहित प्रवेश करके सेकड़ों विमानों (वायुमानों) से आकाश को संछादित करता हुआ वह राजा था । उस राजेश्वर ने अपने सैनिकों के द्वारा उस सम्पूर्ण वन धेश्वर परमश्रेष्ठ नृप वे उस स्थल को अत्यन्त विलोलित कर दिया था ।२५-२६। उस नृप ने अपने कानों तक समाकृष्ट धनुषों की प्रत्यञ्चा वाले योधाओं के द्वारा छोड़े हुए तीक्ष्ण बाणों से वर्हा पर अनेक प्रकार के हिस्तक पशुओं का हनन किया था ।२७। अतीव उदग्र वेग से युक्त पदातियों के खडगों से खण्डित शरीर वाले जिनके शरीर के भाग कट गये हैं ऐसे कुछ शार्दूल वर्हा पर भूमि में गिर गये थे ।२८।

वराहयूथपाः केचिद्गुविराद्र्वा धरामगुः ।

प्रचंडशाक्तिकोन्मुक्तशक्तिनिभिन्नमस्तकाः ॥२९

मृगीधाः प्रत्यपद्यंतं पर्वता इव मेदिनीम् ।

नाराचा विद्वसवीगाः सिंहक्षशरभादयः ॥३०

वसुधामन्वकीर्यंतं शोणिताद्रीः समंततः ।

एवं सवागुरेः केशिचत्पतदिभः पतितंरपि ॥३१

श्वभिश्चानुद्रुतैः केशिचछावमानैस्तथा मृगैः ।

आत्तेविक्रोशमानैश्च भीतैः प्राणभयातुरैः ॥३२

युगापाये यथात्यर्थं वनमाकुलमावभौ ।

वराहसिंहशाद्वलश्वाविच्छशकुलानि च ॥३३

चमरीरुगोमायुगवयक्षेवृकान्वहून् ।

कृष्णसारान्द्रीपिमृगानृक्तखड्गमृगानपि ॥३४

विचित्रांगान्मृगानन्यान्यकूनपि च सर्वेणः ।

बालान्स्तनंधयान्यूनः स्थविरान्मथुनान्गणान् ॥३५

बहुत ही प्रचण्ड शक्तिशाली वीरों के द्वारा छोड़ी हुई शक्तियों से कटे हुए मस्तक वाले कुछ वराहों के यूथ रुधिर से लथपथ होकर पृथ्वी पर गिर गये थे ।२६। मृगों के समुदाय पर्वतों के ही समान भूमि पर पड़े हुए थे और सिंह-रीछ और शरभ आदिक धनुषों के तीरों से विद्व समस्त अङ्गों वाले हो गये थे ।३०। इस प्रकार से कुछ सवागुर गिरते हुए और गिरे हुओं के द्वारा सभी ओर सम्पूर्ण पृथ्वी तल को रक्त से भीगी हुई करके अनुकीर्ण कर दिया था । कुछ मृग कुत्तों के द्वारा खदेढ़े हुए होकर भाग रहे थे और और आत्तं होकर चीखें मारते हुए प्राणों के भय से अति आतुर और भय-भीत हो रहे थे ।३१-३२। जिस तरह से युग के अन्त समय में सर्वेन्द्र विभीषिका से पूर्ण स्थिति हुआ करती है ठीक उस समय से अत्यन्त आतुर हो रहे थे जिसके कारण वह सम्पूर्ण वन समाकुल होकर शोभित हो रहा था ।३३। वहाँ पर चमरी-रुग-मायु-गवय-रीछ और बहुत से वृक-कृष्णसार-द्वीपी-मृग रक्त सहृग मृग-विचित्र अङ्गों वाले मृग और न्यंकु आदि सभी ओर मारे जा रहे थे जिनमें दूध पीने वाले बहुत से बहुत छोटे पशु थे और बालक वृद्ध तथा जवान पशुओं के जोड़े भी थे । वहाँ पर सभी का निहनन किया जा रहा था ।३४-३५।

निजधनुर्भितेः शस्त्रे ग्रस्त्रवद्यान्हि संनिकाः ।

एवं हत्वा मृगान् घोरान्हिस्तप्रायानशेषतः ॥३६

श्रमेण महता युक्ता वभूवुन्तु पसंनिकाः ।

मध्ये दिनकरे प्राप्ते ससंन्यः स तदा नृपः ॥३७

नमंदा धर्मसंतप्तः पितासुरगमच्छन्नः ।

अवतीर्य ततस्तस्यास्तोये सबलवाहनः ॥३८

विजगाह शुभे राजा क्षुत्तृष्णापरिपीडितः ।

स्नात्वा पीत्वा च सलिलं स तस्याः सुखशीतलम् ॥३९

ब्रिसांकुराणि शुभ्राणि स्वादूनि प्रजघास च ।

विकीडध तोये सुचिरमुत्तीर्य सबलो नृपः ॥४०

बिशश्राम च तत्तीरे तरुखंडोपमंडिते ।

आलंबमाने तिग्मांशो ससंन्यः सानुगो नृपः ॥४१

निश्चकाम पुरं गंतु विध्याद्रिवनगह्वरात् ।

स गच्छन्नेव दृष्टे नमंदा तीरमाश्रितम् ॥४२

राजा के संनिकों ने शस्त्रों के द्वारा वध करने के जो भी पशु योग्य थे उन सबका पेने शस्त्रों से हनन कर दिया था । इस प्रकार से प्रायः हिंसा करने वाले महान् घोर पशुओं का वहाँ पर पूर्ण रूप से हनन किगा था । ३६। इस तरह से शिकार करने से शिकार करने से नृप के संनिक बड़े भारी श्रम से थक गये थे । भ्रुवन भास्कर सूर्येव मध्य में प्राप्त हो गये थे । उस समय दोपहरी के वक्त में राजा अपनी सेना के सहित सूर्यातिप से बेचैन हो गया था । ३७। घाम से संतप्त होकर प्यासा राजा धीरे से नमंदा के तट पर चला गया था और फिर वह उस नमंदा के जल में सब वाहनों और संनिकों के सहित उतर गया था । ३८। भूख और प्यास से उत्पीड़ित राजा ने उस शुभ जल में अवगाहन किया था और उस नदी के परम शीतल जल में स्नान किया था और उसका पान भी किया था । ३९। अपनी समस्त सेना के सहित राजा ने उसके जल के भीतर उतर कर बहुत काल पर्यन्त विशेष रूप से जल-क्रीड़ा की थी तथा परम स्वादिष्ट शुभ्र विस के तन्तुओं का अशन भी किया था ।

सैनिकों सहित राजा ने तरुवरों के समूह से मणिङत उस शरिता के तट पर विश्राम किया था। फिर उन विन्द्याचल के गहन वन से अपने नगर में जाने के लिये राजा निकल दिया था। वहाँ से गमन करते हुए ही उसने नर्मदा के तट पर समाधित एक आश्रम का दर्शन दिया था। ४१-४२।

आश्रमं पुण्यशीलस्य जमदग्नेर्महात्मनः ।

ततो निवृत्य सैन्यानि दूरेऽवस्थाप्य पार्श्विः ॥४३॥

परिचारे कतिपयैः सहितोऽयात्तदाश्रमम् ।

गत्वा तदाश्रमं रम्यं पुरोहितसमन्वितः ॥४४॥

उपेत्य मुनिशार्दूलं ननाम शिरसा नृपः ।

अभिनन्दाशिषा तं वै जमग्निर्वृपोत्तमम् ॥४५॥

पूजयामास विश्रिवदर्घपाद्यासनादिभिः ।

संभावयित्वा तां पूजां विहितां मुनिना तदा ॥४६॥

निषसादासने शुभ्रे पुरस्तस्य महामुनेः ।

तमासीनं नृपवरं कुशासनगतो मुनिः ॥४७॥

प्रचल्पुत्रं कुशलप्रश्नं पुत्रमित्रादिबंधुषु ।

सह संकथयस्तेन राजा मुनिवरोत्तमः ॥४८॥

स्थित्वा नातिचिरं कालमामिथ्यार्थं न्यमंत्रयत् ।

ततः स राजा सुप्रीतो जमदग्निमभाषत ॥४९॥

वह एक महान् आत्मा वाले और पुण्यशील जमदग्नि मुनि का आश्रम था। राजा ने वहाँ से लौटकर कुछ दूरी पर अपनी सेनाओं को अब स्थापित कर दिया था। ४३। अपने साथ में कतिपय परिचारकों को लेकर ही वह उस आश्रम में गया। पुरोहित के सहित ही राजा ने उस परम रम्य आश्रम में गमन किया था। ४४। राजा ने वहाँ पर पढ़ूच कर उस मुनिशार्दूल के चरणों में शिर झुकाकर प्रणाम किया था। जमदग्नि ने उस श्रेष्ठ राजा का आशीर्वचनों के द्वारा अभिनन्दन किया था। ४५। मुनि ने अर्ध्य-पाद्य और आसन आदि के द्वारा उस राजा का अच्छेन किया था। उस समय में मुनि के द्वारा की हुई पूजा को स्वीकार किया था। ४६। फिर राजा उन महामुनि के सामने परम शुभ्र आसन पर विराजमान हो गया था। जब राजा अपने

आसन पर उपविष्ट हो गये तो वे मुनिवर जमदग्नि एक कुशा के आसन पर स्थित हो गये थे । ४७। महामुनि ने उस राजा के साथ संलाप करते हुए पुत्र-मित्र और बन्धु आदि के विषय में राजा से क्लेम-कुशल पूछा था । ४८। थोड़े ही समय तक स्थित होकर महामुनि ने अपना अतिथि-सत्कार करने के लिए राजा को निमन्त्रित किया था । इसके अनन्तर राजा परम प्रीतिमान होकर जमदग्नि मुनि से बोला था । ४९।

महर्षे देहि मेऽनुजां गमिष्यामि स्वकं पुरम् ।

समग्रवाहनबलो ह्यहं तस्मान्महामुने ॥५०॥

कर्तुं न शक्यमातिथ्यं त्वया वन्याशिना वने ।

अथवा त्वं तपः शक्त्या कर्तुं मातिथ्यमद्य मे ॥५१॥

शक्नोष्यपि पुरीं गंतुं मामनुजातुमर्हसि ।

अन्यथा चेत्खलैः सैन्येरत्यर्थं मुनिसत्तम ॥५२॥

तपस्विनां भवेत्पीडा नियमक्षयकारिका ।

वसिष्ठ उवाच—

इत्येवमुक्तः स मुनिस्तं प्राह स्थीयतां क्षणम् ॥५३॥

सर्वं संपादयिष्येऽहमातिथ्यं सानुगस्य ते ।

इत्युक्त् वाहूय तां दोग्धीमुवाचायं ममातिथिः ॥५४॥

उपागतस्त्वया तस्मात्क्यरतामद्य सत्कृतिः ।

इत्युक्ता मुनिना दोग्धी सातिथेयमशेषतः ।

दुदोह नृपतेराशु यद्योग्यं मुनिगोरवात् ॥५५॥

अथाश्रमं तत्सुरराजसद्मनिकाशमासीद्भृगुपुं गवस्य ।

विभूतिभेदैरविचिन्ततरूपमनन्यसाध्यं सुरभिप्रभावात् ॥५६॥

हैहयेश्वर राजा ने महामुनि से प्रार्थना की थी कि हे महर्षे ! आप मुझे अपनी आज्ञा दीजिए । मैं अब अपने पुर को गमन करूँगा । हे महा-मुने ! कारण यह है कि मेरे साथ समस्त सेनाएँ वाहन भी हैं । ५०। इस वन में वन्य फल मूलों का अशन करने वाले आप के द्वारा आतिथ्य नहीं किया जा सकता है । अथवा यह भी हो सकता है कि आप अपनी तपश्चर्या की

शक्ति से मेरा आतिथ्य करने की सामर्थ्य रखते हैं तो भी यह उचित नहीं है और आप मुझे मेरी नगरों की ओर गमन करने की आज्ञा देने के योग्य हैं। अन्य प्रकार से अर्थात् यदि मैं ठहर भी जाऊँ तो है मुनि श्रेष्ठ ! ये सैनिक बड़े ही दुष्ट स्वभाव वाले हैं। इनके द्वारा उपस्थियों के निवासों क्षय करने वाली बहुत ही अधिक आप लोगों को पीड़ा हो जायगी । ५१। वसिष्ठ जी ने कहा—इस तरह से जब राजा के द्वारा मुनिवर से कहा गया था तो उन महामुनि ने राजा से कहा था कि आप कुछ क्षण के लिए यहाँ पर विराजमान तो रहिए । ५२-५३। मैं आपका समस्त अनुगामियों के ही सहित पूरा आतिथ्य सत्कार सम्पन्न कर दूँगा। इतना राजा से कहकर उस महामुनि ने दोग्धी द्वेनु को बुलाकर उससे कहा था कि यह राजा आज मेरे अतिथि के स्वरूप में समागत हो गये हैं । ५४। जब यह यहाँ पर समागत हो गये हैं तो इसी कारण से आप इनका आज पूर्णतया सत्कार करिए। इस रीति से मुनि के द्वारा कही हुई उस दोग्धी ने महामुनि के गौरव के कारण पूर्णरूप से राजा का आतिथेय किया था और जो-जो भी राजा के आतिथ्य के योग्य पदार्थ थे वे सभी बहुत शीघ्र दोहन करके उपस्थित कर दिये थे । ५५। इसके अनन्तर उस सुरभि के प्रभाव से उस श्रेष्ठ मुनि का आश्रम सुरराज के सद्म के समान वैभवों के अनेक भेदों के द्वारा ऐसा न सोचने के योग्य स्वरूप वाला हो गया था कि जो अन्य किसी के भी द्वारा साध्य नहीं हो सकता है । ५६।

अनेकरत्नोज्ज्वलचित्रहेमप्रकाशमालापरिवीतमुच्चैः ।

पूर्णन्दुशुभ्रविषक्तशृंगैः प्रासादसंधैः परिवीतमंतः ॥ ५७ ॥

कांस्यारकूटारसताम्रहेमदुर्बर्णसौधोपलदारुमृदिभः ।

पृथग्विमिश्रैर्भवनैरनेकैः सद्भासितं नेत्रमनोभिरामैः ॥ ५८ ॥

महाहंरत्नोज्ज्वलहेमवेदिकानिष्कूटसोपानकुटीविटंकैः ।

तुलाकपाटार्गलकुड्यदेहलीनिशांतशाला-

जिरणोभितैभृृशम् ॥ ५९ ॥

वलश्यलिदांगणचारुतोरणैरदध्रपर्यंतचतुष्ककादिभिः ।

कुड्येषु संशोभित दिव्यरत्नैविचित्रचित्रैः परिशोभमानैः ॥ ६० ॥

उच्चावचै रत्नवरैविचित्रसुवर्णसिंहासनपीठिकादैः ।

स भक्ष्यभोज्यादिभिरन्नपानैरुपेतभांडोपगतैकदेशीः ॥६१

गृहैरमत्योचिपसर्वसंपत्समन्वितैर्नेत्रमनोऽभिरामे ।

तस्याश्रमं सन्नगरोपमानं बभी वधूभिःश्च मनोहराभिः ॥६२

अब सुरभि की महिमा के आश्रम की जैसी परम विशाल शोभा हुई थी उसकी छटा का वर्णन किया जाता है—उस आश्रम के अन्दर का भाग नाना भाँति के रत्नों की देवीप्यमान द्युति से विचित्र हो गया था और सुवर्ण के चाकविक्य से संयुत प्रकाश माला से विरा हुआ था तथा पूर्ण चन्द्र के समान परम शुभ्र और अत्युच्च अन्तरिक्ष को छूने वाली शिखरों से समन्वित प्रासादों से चारों ओर परिपूर्ण वह आख्यम हो गया था । ५७। कौस्य-आरक्षुर-ताम्र-हेम-सुवर्ण सौधोपल-दारु और मृत्तिका के पृथक्-पृथक् और मिस्रित नेत्रों तथा मन को परम अभिराम प्रतीत होने वाले अनेक भवनों से वह आख्यम समुद्भासित हो गया था । ५८। उस महामुनि का वह आख्यम उस समय में महा मूल्यवान रत्नों से समुज्ज्वल था और हेम की वेदिका-निष्कृट-सोपान-कुटी और विटंककों से समन्वित था । तुला-कपाट-अर्गला-कुद्य (भीत)-देहली-निशान्तशाला-अजिर (अग्नि) की शोभा से बहुत ही वह आश्रम संयुत था । ५९। बलभी-अलिन्द-अज्ञान और परम रम्य तोरणों से युक्त था तथा अद्भुत चतुष्किका आदि से विशोभित था । उस आख्यम में जो स्तम्भ बने हुए थे उनमें और जो दीवालें थीं उनमें परिशोभमान दिव्य रत्नों के विचित्र चित्र विद्यमान थे । इनसे उस आश्रम की अद्भुत शोभा हो रही थी । ६०। वह महामुनि का आश्रम छोटे व कीमती श्वेष रत्नों से युक्त था और उसमें अत्यद्भुत सुवर्ण के अनेक सिंहासन और पीठिका आदि निर्मित थे । उस आश्रम के एक देश में भक्ष्य और भोज्य-लेह्ण-चोष्य आदि अशनोपयोगी पदार्थ वत्तमान थे तथा अन्न-पानों से समुपेत भाण्ड भी वहाँ पर विद्यमान थे । ६१। उसमें ऐसे अनेक गृह बने हुए थे जो देवों के लायक सब प्रकार की नयनों और मन के परम रमणीक लगने वाली सम्पदा से समन्वित थे । वह मुनि का आश्रम सुरभि की महिमा से मनोहर बन्धुओं से सुन्दर नगर के समान परमशोभित हो रहा था । ६२।

॥ जमदग्नि द्वारा अतिथि सत्कार ॥

वसिष्ठ उवाच—

तस्मिन्पुरे सन्तुलितामरेदपुरीप्रभावे मुनिवयंवेनुः ।

विनिर्यमे तेषु गृहेषु पश्चात्योग्यनारीनरवृद्जातम् ॥१॥

विचित्रवेषाभरणप्रसूनगन्धांशुकालकृतविग्रहाभिः ।

सहावभावाभिरुदारचेष्टाश्रीकांतिसौन्दर्यगुणान्विताभिः ॥२॥

मंदस्फुरदन्तमरीचिजालविद्योतिताननसरोजजितेदुभाभिः ।

प्रत्यग्रयौवनभरासववल्गुगीभिः स ममथरकटाक्ष

निरीक्षणाभिः ॥३॥

प्रीतिप्रसन्नहृदयाभिरतिप्रभाभिः शृङ्गारकल्पतरुष्टपविभू-
षिताभिः ।

देवांगनातुलितसीभगसीकुमार्यरूपाभिलाषमधुराकृति-
रंजिताभिः ॥४॥

उत्तप्तहेमकलशोपमचारूपीनवक्षोरुहृदयभरानतमध्यमाभिः ।

श्रोणीभराक्रमणखेदपरिश्रितासृगारक्तपावकरसारुणिता-
श्रिभूभिः ॥५॥

केयूरहारमणिकंकणहेमकंठसूत्रामलश्रवणमण्डलमंडिताभिः ।

स्नगदामचुम्बितसकुन्तकेशपाशकांचीकलापपरिशिञ्जित-
नूपुराभिः ॥६॥

आमृष्टरोषपरिसांत्वननर्महासकेलीप्रियालपनभर्त्सनरोषणेषु ।

भावेषु पाथिवनिजप्रियघीर्यबन्धसर्वपिहारचतुरेषु

कृतांतराभिः ॥७॥

श्री वसिष्ठजी ने कहा—सन्तुलित महेन्द्र की नगरी के प्रभाव वाले उस पुर में मुनिवर की धेनु ने उन गृहों में इसके पश्चात् उनके ही योग्य नर-नारियों के समुदायों की रचना भी कर दी थी । १। अब जो नारीगणों का निर्माण उस पुर में किया था उनकी वेष-भूषा—रूप माधुर्य—सीम्बर्य

छटा और कार्यं कुशलता आदि का वर्णन किया जाता है—उन नारियों के विचित्र वेष थे और अद्भुत आभरण—प्रसून—गन्धादि से समलंकृत शरीर थे। तथा वे अपने हावभावों से संसन्धित थीं और उदार चेष्टाएँ—श्री—कान्ति और सौन्दर्य आदि गुणगुण से पुक्त थीं। २। मन्द स्फुरण करने वाली दन्त पंचित की मरीचियों के जाल से विशेष रूप से दोतित उनका मुख कमल तथा जिससे उन्होंने चन्द्र की आभा को भी पराजित कर दिया था। उनकी वाणी नूतन यौवन के भार से बल्गुता से संयुक्त थी तथा प्रेम पूर्वक धीमे कटाओं से संयुक्त उनका निरीक्षण था। ३। उनके वदन की प्रजा अत्यधिक थी और प्रीति की भाव-भज्जी से वे परम प्रसन्न हृदयों वाली थीं तथा अपने शृङ्खार में कल्पतरु के परम सुन्दर सुमनों से विभूषित थीं। उनका परम सुरम्य सौभाग्य—सुकुमारता—रूप लावण्य—अभिलाषा शौर मधुर आकृति देवाङ्गना के समान ही थी जिनके कारण वे नारियाँ अतीव रक्षित थीं। ४। तपे हुए सुवर्ण के कलशों के ही सहृण अत्यधिक सुन्दर—परिपुष्ट उनके दोनों उरोज थे जिनके वहन करने के भार सो उन नारियों का मध्य भाग कुछ नीचे की ओर झुका हुआ था। उन नारियों के श्रोणियों का भार ऐसा था कि उसके वहन करने में उनको कुछ लेद होता था और खिन्नता के कारण से परिश्रित रुधिर से तथा लगे हुए पावक रस से उनके चरणों का भाग अरुणिमा से संयुक्त था। ५। कैयूर-हार-मणियों के द्वारा विनिर्मित कंकण-सुवर्ण का कण्ठ सूत्र और विमल श्वरणों के भूषणों से वे नारियाँ विभूषित थीं। उनके कुन्तल केशपाणों में परम सुन्दर सुमनों की मालाएँ गुणी हुईं थीं और करधनी में लगे हुए घूँघरों की तथा नूपुरों की छवनि से वे समायुक्त थीं। ६। आकृष्ट रोष की परिसान्त्वना में नर्म (प्रणयालाप)—हास—केली—और प्रिय आलाप करने में—भाषण और रोष तथा भर्त्सना में दक्ष एवं पार्थिव निजप्रिय धैर्यबन्ध सबके अपहार में कुशल भावों से वे नारियाँ अपने मन को लगाने वाली थीं। ७।

तन्त्रीस्वनोपमितमंजुलसौम्यगेयगंधर्वतारम्-
धुरारवभाषिणीभिः ।

वीणाप्रवीणतरपाणितलांगुलीभिर्गंभीर-
चक्रचटुवादरतोत्सुकाभिः ॥८॥

स्त्रीभिर्मदालसतराभिरतिप्रगल्भभावाभिराकुलिकामुक
मानसाभिः ।

कामप्रयोगनिपुणाभिरहीनसंपदौदार्यरूपगुणशील-

समन्विताभिः ॥६

संख्यातिगाभिरनिशं गृहकृत्यकर्मव्यग्रात्मकाभिरपि

तत्परिचारिकाभिः ।

पुंभिश्च तद्गुणगणोचितरूपशोभैरुद्भासितेर्गृहचरैः

परितः परीतम् ॥१०

सराजमार्गपिण्सौधसञ्चोपानदेवालयचत्वरेषु ।

पौररणेषार्थगुणैः समंतावध्यास्यमानं परिपूर्णकामै ॥११

अनेकरत्नोज्ज्वलितैविचित्रैः प्रासादसंधैरतुलैरसंख्यैः ।

रथाश्वमातंगखरोष्ट्रगोजायोध्यैरनेकैरपि मंदिरैश्च ॥१२

नरेंद्रसामांतनिषादिसादिपदातिसेनापतिनायकानाम् ।

विप्रादिकानां रथिसारथीनां गृहैस्तथा मागधबंदिनां च ॥१३

विवित्तरथ्यापणचित्रचत्वरैरनेकवस्तुक्रयविक्रयेत्त्र ।

महाधनोपस्करसाधुनिर्मितेर्गृहैश्च शुभ्रैर्गणिकाजनानाम् ॥१४

बीणा के तारों से निकले हुए स्वर के समान परम मञ्जुल और सौम्य गाने के योग्य गम्भीरों के समुच्च एवं मधुर निनाद से भाषण करने वालों वे सब नारियाँ थीं । बीणा के बादन में परम प्रबीण पाणि की अंगुलियाँ के द्वारा गम्भीर चक्र के चटु बाद में निरत एवं वे समस्त नारियाँ समुत्सुक थीं । वे समस्त नारियाँ योवन के मद से अधिक अलस और अत्यधिक प्रगल्भ भावों वाली थीं । तथा वे सब आकुलित एवं कामुक अर्थात् कामकेली की वासना से संयुत मनों वाली थीं । कामवासना से रचनात्मक प्रयोग करने में वे बारी बहुत ही निपुण थीं । तथा परिपूर्ण सम्पदा-उदारता-रूप-गुण और शील स्वभाव से समन्वित थीं ॥६। संख्या को भी अतिक्रमण करने वाले अर्थात् बहुत ही अधिक घर के कमों में बहुत संलग्न रहने पर भी अपने प्राणी पतियों की परिचर्या करने वाली थीं । वह पुर उन नारियों के गुणगणों के लायक ही रूप और शोभा वाले—उद्भासित और सभी ओर से ग्रहों में सञ्चरण करने वाले पुरुषों से विरा हुआ था ॥१०। वह नगर राजमार्ग, आपण सौध-सोपान-देवालयों के आँगनों

में समस्त अर्थ यहों वाले तथा परिपूर्ण कामनाओं से संयुत नागरिकों से चारों ओर अध्यास्यमान था अर्थात् परिगृणशाली पुरवासी सभी ओर निवास कर रहे थे । ११। उस नगर में असंख्य-अनुपम और नाना भाँति के रत्नों से समुज्ज्वलित एवं विचित्र प्रासादों के समुदायों की अवस्थिति थी और वहाँ पर अनेक ऐसे मन्दिर थे जहाँ पर अनेक रथ-अश्व-हाथी खर-उष्ट्र और गौएँ विद्यमान थे । १२। उस नगर में चारों ओर नरेन्द्र सामन्त-निषाद सादी-पदाति-सेनापति और नायकों के तथा रथी-सारथी-मागध-बन्दीगण और विप्र प्रभृतियों के गृह बने हुए थे । १३। उस अनुपम नगर में विविक्त अर्थात् खुली हुई रथ्याएँ थीं—सभी आपण थे जिनके चत्वर बहुत ही विचित्र थे । वहाँ पर अनेक प्रकार की वस्तुओं का क्य और विक्रय हो रहा था । उस नगर में वारांगनाओं के परम शुभ गृहों के समूह विनिमित थे जिनके निर्माण करने में बहुत अधिक धन के व्यय से सब सामान भली-भाँति लगाये गये थे । १४।

महार्हरत्नोज्ज्वलतुं गगोपुरैः सह श्वगृध्वजनर्तनालयैः ।

चित्रैष्वंजैश्चापि पताकिकाभिः शुभ्रैः ।

पट्टमंण्डपिकाभिरुन्ततैः ॥ १५

कल्पारकं जकुमुदोत्पलरेणुवासितैश्चकाह्वहं सकुररीबक-
सारसानाम् ।

नानारवाद्यरमणीयतटाकवापीसरोवरैश्चापि जलोप-
पन्नैः ॥ १६

चूतप्रियालपनसाम्रमद्गूकजं बूलक्ष्मीर्नवैश्च तरुभिश्च
कृतालवालैः ।

पर्यंतरोपितमनोरमनागकेतकीपुन्नागचंपकवनैश्च
पतत्रिजुष्टैः ॥ १७

मंदारकुंदकरवीरमनोज्यूधिकाजात्यादिकैर्विविधपुष्प
फलैश्च वृक्षैः ।

संलक्ष्यमाणपरितोपवनालिभिश्च संशोभितं जगति

विस्तुपनीयत्वैः ॥ १८

सर्वत्तुं कप्रवरसौरभवायुमंदमंदप्रचारिगतिभृत्सितघर्मकालम् ।

इत्थं सुरासुरमनोरमभोगसंपद्विस्पष्टमानविभवं नगरं
नरेन्द्र ॥१६

सौभाग्यभोगममितं मुनिहोमधेनुः सद्यो विधाय
विनिवेदयदाश तस्मै ।

जात्वा ततो मुनिवरो द्विजहोमधेन्वा संपादितं नरपते
रुचिरातिथेयम् ॥२०

आहूय कंचन तदंतिकमात्मशिष्यं प्रास्थापयत्सगुण-
शालिनमाश राजन् ।

गत्वा विशामधिपतेस्तरसा सभीयं सप्रश्रयं मुनिसुतस्तमिदं
वभाषे ॥२१

उम सुरम्य नगर में बहुत ही मूल्यवान् रत्नों से उज्ज्वल एवं
समृद्ध गोपुर बने हुए थे तथा प्रवा-गृद्धों के समुदायों के बत्तन के आलय
बने हुए थे । उसमें विचित्र ध्वजाएँ-पताकाएँ और शुभ्र पटों से संयुक्त उन्नत
गण्डपिकाएँ निनिमित्त थी । १५। उस नगर में जल में भरे हुए अनेक
तालाब-बाबड़ी और सरोबर थे जिनमें अनेक प्रकार की रमणीक ध्वनि हो
रही थी तथा वहाँ पर उनका जल कहलार-कमल-कुमुद और उत्पलों की
रेणु से सुवासित था और चक्रवाक-हंस-कुररी-बगुला तथा सारसों की
ध्वनियाँ सुनाई दे रही थीं । १६। उस नगर में अनेक प्रकार के वृक्ष लगे हुए
थे जिनके आलवाल भी बने हुए थे । उन तरुणों में आम-प्रियालपन-मधूक
जम्बू और प्लक्ष के वृक्ष थे । वहाँ पर पर्वतों में परम सुन्दर नाग केतुकी
पुन्नाग और चम्पक के बन थे जो पक्षियों के द्वारा सेवित थे अथवा जिन
पर अनेक पक्षी निवास कर रहे थे । १७। वह नगर अनेक तरह के वृक्षों से
शोभित था जिनका स्वरूप जगत् परमाश्रयं जनक था । वहाँ पर सुसंरक्षित
चारों ओर उपवनों की पंक्तियाँ थीं एवं वहाँ अनेक मन्दार-कुन्द-करबीर-
सुन्दर यूथिका और जाती आदि के पुष्पों तथा फलों वाले वृक्ष लगे हुए
थे । १८। हे नरेन्द्र ! उस नगर में समस्त ऋतुओं में शेष वसन्त में सुरभित
वायु के मन्द-मन्द प्रचलन से घर्म के काल को भर्सित कर दिया गया था ।
इस प्रकार से वह नगर सुरासुरों की परम मनोरम योगों की सम्पदा के

विस्पष्टमान वेभव वाला था । १६। उस मुनि की होम धेनु ने तुरन्त ही अमित सौभाग्य के भोग को करके शीघ्र ही उस महामुनीन्द्र की सेवा में कर दिया था । इसके अनन्तर उन मुनिशेष ने द्विज होम धेनु के द्वारा राजा का परम रुचिर आतिथेय-सम्पादित किया हुआ जान लिया था । २०। फिर उस मुनीन्द्र ने अपने किसी गुणशाली शिष्य को बुलाकर हे राजन् ! शीघ्र ही हैययेश्वर के समीप में भेज दिया था । उस मुनि सुत ने शीघ्र वेग से विशेषों के अधिपति के समीप में गमन करके बहुत ही नम्रता से यह उससे यह कहा था । २१।

आतिथ्यमस्मदुपपादितमाशु राजासंभावनीयमिति नः
कुलेदेशिकाज्ञा ।

राजा ततो मुनिवरेण कृताभ्यनुज्ञः संप्राविशत्पुरवरं
स्वकृते कृतं तत् ॥ २२ ॥

सर्वोपभोग्यनिलयं मुनिहोमधेनुसामर्थ्यसूचकमशेषबलैः
समेतः ॥

अन्तः प्रविश्य नगरद्विमशेषलोकसंमोहिनीमभिसमीक्ष्य
स राजवर्यः ॥ २३ ॥

प्रीतिप्रसन्नवदनः सबलस्तु दानी धीरोऽपि विस्मयवाप
भृशं तदानीम् ।

गच्छन्सुरस्त्रीनयनालियूथपानैकपात्रोचितचारूपत्तिः ॥ २४ ॥
रेमे स हैह्यपतिः पुरराजमार्गे शक्रः कुबेरवसताविव
सामरोधः ।

तं प्रस्थितं राजपथात्समंतात्पौरांगाश्चन्दनवारिसिक्तैः ॥ २५ ॥
प्रसूनलाजाप्रकरैरजस्वमवीवृष्टन्सौधगताः सुहृद्यैः ।

अभ्यागताहृणसमुत्सुकपौरकांता हस्तारविदग्लिताम-
ललाजवर्षः ॥ २६ ॥

कालेयपंकसुरभीकृतनन्दनोत्थशुभ्रप्रसूननिकरे-
रलिवृन्दगीतैः ।

तत्रत्यपौरवनितां जनरत्नसारमुक्ताभिरप्यनुपदं
प्रविकीर्यमाणः ॥२७

व्यभ्राजतावनिपतिविशदैः समंताच्छीतांशुरश्मि-
निकरंरिब मंदराद्विः ।

ब्राह्मीं तपः श्रियमुदारगणामचित्यां लोकेषु दुर्लभतरा
स्पृहणीयशोभाम् ॥२८

हमारे कुल गुरुदेव की यह आज्ञा हुई है कि हमारे द्वारा समुपादित
आतिथ्य को राजा के द्वारा शोध ही ग्रहण करना चाहिए। इसके पश्चात्
राजा ने मुनिवर के द्वारा अनुज्ञा प्राप्त करके उस परम श्रेष्ठ नगर में प्रवेश
किया था जोकि अपने ही लिए निमित किया गया था । २२। वह राजा
अपनी सेना के समस्त सैनिकों के सहित उस नगर में प्रविष्ट हुआ था जो
कि मुनि की होमधेनु की अत्यद्भुत शक्ति-सामर्थ्य का सूचक था और जो
सभी प्रकार के उपभोगों का एक महान विशाल आगार था। अन्दर उस
राजा ने भली-भाँति प्रवेश करके सभी लोकों का समोहन करने वाली उस
नगर की समृद्धि का अभिसमीक्षण करके अत्यधिक प्रसन्नता प्राप्त की थी
। २३। उस समय अपनी सेना के सहित परम दानी और महान् धीर उस
राजा ने प्रीति से प्रसन्न बदन वाला होकर अत्यधिक विस्मय को प्राप्त
किया था। देवों की स्त्रियों के नेत्ररूपी भ्रमरों के यूथों के द्वारा पाप करने
का एक मात्र पात्र समुचित एवं सुन्दर मूर्ति वाला जिस समय वहाँ गमन
कर रहा था। अर्थात् गमन करते हुए देवाङ्गनाएँ अपने नयनों से उसकी
सुन्दर मूर्ति का अवलोकन कर रही थीं। २४। देवगणों के समुदाय के साथ
उस राजा हैह्यपति ने कुबेर की वसति में महेन्द्र के ही समान पुर के राज
मार्ग में परम रमण किया था। राजमार्ग के द्वारा जब प्रस्थान कर रहा था
उस समय में सौधों (विशाल सहस्रों) पर स्थित होती हुईं पौराङ्गनाओं ने
चारों ओर से चन्दन के जल से सिक्त परम सुन्दर प्रसूनों और लाजाओं
(खीलों) के प्रकरों से निरन्तर उस राजा के ऊपर वर्षा की थी। समागत
अतिथि के अचंन करने में परमाधिक समुत्सुक उस नगर वासियों की अङ्ग-
नाओं के करकमलों से गिरी हुई खीलों की वर्षा हो रही थी। उस समय में
होने वाले पङ्क्ख (कीच) से सुगन्धित नम्दन बन में समुत्पन्न पुष्पों की राशियाँ
बरसायीं जा रही थीं जिन पर सौरभ से संमोहित भ्रमर-गुञ्जार कर रहे

ये । वहाँ पर वह राजा वहाँ को वनिकाओं के द्वारा अब्जन रत्न सार मुक्ताओं से अनुपद प्रकार्यमाण हो रहा था । २५-२६-२७। वह अवनिपति इस प्रकार की विशद वृष्टियों से चारों ओर विशेष रूप से आजित हुआ था जैसे मन्दराचल नन्दगा की किरणों के समुदाय से जो भागान्ती हुआ करता है । उस समय अत्यन्त उबार और लोकों में चिन्तन न करने के योग्य ब्रह्मणों की तपश्चर्या का भी अवलोकन राजा ने किया था जो कि अन्य लोकों में सहादुर्लभ और स्पृहशीय जो भा से समन्वित थी । २८।

**पश्यन्विशामविपतिः पुरसंपदं तामुच्च्वेऽग्रांस मनसा
वचसेव राज्ञ् ।**

मेने च हैह्यपतिर्गुंवि दुर्भियं शाश्वी मनोहरतरा सहिता
हि संपत् ॥ २९ ॥

**अस्याः णतांशतुलनामपि नोपगंतुं विप्रश्चियं प्रभवसीति
सुराच्चिलायाः ।**

**मङ्गेयुर पुरजनोपचितां विभूतिमालोक्यत्सह
पुरोहितमंत्रिसार्थः ॥ ३० ॥**

**गच्छस्त्वपाश्वचरदणितवर्णमौधो लेखे मुदं पुरजनैः
परिपूज्यमानः ।**

**राजा ततो मुनिवरोपचितां सपर्यमात्मानुरूपमिह
सानुचरी लभस्व ॥ ३१ ॥**

**इत्यश्रमेण नृपतिविनिवत्तंयित्वा स्वार्थं प्रकल्पतगृहा-
भिप्रुद्धो जगाम ।**

**पौरं समेत्य विविधाहृष्णपाणिभिर्भ्रं मार्गे मुदा विरचिताः
जलिभिः समताद् ॥ ३२ ॥**

**संभावितोऽस्यनुपदं जयगद्वयोषेष्टुयर्त्वैश्च
वधिरीकृतदिग्विभागं ।**

**कक्षांसराणि नृपतिः अनकेरतीत्य श्रीणि क्रमेण च
सम्भासकं युक्तीति ॥ ३३ ॥**

दूरप्रसारितपृथग्जनसंकुलानि सद्याविवेष

संचिवादरदत्तहस्तः ।

तत्र प्रदीपदधिदर्पणगन्धपुष्पदूवक्षितादिभिरलं
पुरकामिनीभिः ॥३४

निययि राजभवनांतरतः सलीलमानन्दितो नरपति-
बहुमान पूर्वम् ।

ताभिः समाभिविवेशितमांशु नानारत्न-

प्रवेकरुचिजालविराजमानम् ॥३५

क्षत्रियों के अधिपति ने उस नगर की सम्पदा को देखकर हे राजन् ! बचनों की भाँति मन में बहुत ही अधिक प्रशंसा की थी । और हैह्यपति ने यह मान लिया था कि भूमण्डल में अधिक मनोहर हित के सहित क्षत्रियों की सम्पदा ऐसी परम दुर्लभ है । अर्थात् क्षत्रियों को सम्पदा ऐसी कभी भी नहीं हो सकती है । २६। सुरों के द्वारा समर्पित इस विप्रों की श्री के समक्ष में क्षत्रियों की श्री शतांश की भी तुलना प्राप्त करने में समर्थ नहीं होती है । पुर के मध्य में अपने पुरोहित और मन्त्रियों के साथ में जब उस पुर के निवासियों के द्वारा उपचित विभूतिका आलोकन किया था तब राजा के मन में विप्रश्री की महत्ता का ज्ञान हुआ था । ३०। जिस समय में राजा नगर में भीतर गमन कर रहा था उस समय में अपने पाइर्व में चरण करने वालों के द्वारा सोधों का वर्ग उसे दिखाया गया था तथा वहाँ के गुरुजनों के द्वारा सभी ओर से वह पूज्यमान हो रहा था और उसको विशेष आनन्द प्राप्त हुआ था । उस समय में राजा से निवेदन किया गया था कि आप अपने सभी अनुचरों के सहित अपने स्वरूप के अनुरूप मुनिवर के द्वारा इस सपर्यि का लाभ प्राप्त कीजिए । ३१। फिर राजा अपने स्वार्थ को निवृत्ति करके प्रकल्पित गृह की ओर अभिमुख होकर वहाँ से चला था । मार्ग में सभी ओर से अनेक प्रकार की पूजा की सामग्री हाथों में ग्रहण किये हुए पुरवासियों ने एकत्रित होकर अपने करों को जोड़कर उसका परमाधिक आतिथ्य सत्कार किया था और पद-पद पर जयकार के शब्दों के घोष से तथा सूर्य की छवि से सभी दिशाओं को बधिर करते हुए उस राजा का नगर निवासियों ने विशेष सम्मान किया था । फिर राजा ने क्रम से तीन अन्य कक्षों का अतिक्रमण किया था जिनमें बड़े ही संभ्रम गले कञ्चुकी वर्तमान थे ।

।३२-३३। उन कञ्चुकियों के द्वारा दर्शक जनों के समूहों को अलग दूर में हटा दिया गया था जिस समय में राजा ने अन्दर प्रवेश किया था । सचिव-गण बड़े ही आदर से राजा के पदार्पण करने के लिये हाथों से सङ्केत कर रहे थे । भीतर नगर की कामिनियाँ विद्यमान थीं जो राजा का अचंन प्रदीपदधि-दर्पण-गन्ध-पृष्ठ-दूर्वा और अक्षत आदि से विशेष रूप से कर रहे थीं । ३४। फिर राजा उस राजमन्दिर के अन्दर से लीला के सहित बहुमान पूर्वक आनन्दित होता हुआ निकला था । वहाँ पर सम वयस्क उन पुर की युवतियों के द्वारा अनेक प्रकार के रत्नों के प्रवेक रुचि के जाल से विराजमान बहुत ही शीघ्र एक उपवेशन करने के लिए आसन निवेशित किया गया था । ३५।

**सूक्ष्मोत्तरच्छदमुदारयशा मनोज्ञमध्यारुरोह कनकोत्तर-
विष्टरं तम् ॥**

**तस्मिन्नुहे नुप तदीयपुरेधिवर्गः स्वासीनमाशु नुपति
विविधार्हणामिः ॥ ३६ ॥**

**वाद्यादिभिस्तदनु भूषणगंधपुष्पवस्त्राद्यालंकृतिभिरय्य-
मुदं ततान ।**

**तस्मिन्तशेषदिवसोचितकर्म सर्वं निर्वर्त्य हैहयपतिः
स्वमतानुसारम् ॥ ३७ ॥**

**नाना विद्यालयनमेविचित्रकेलीसंक्षितैदिनमशेषमल-
तिनाय ।**

**कृत्वा दिनांतसमयोचितकर्म त्वं राजा स्वमंत्रि-
सचिवानुगतः समंतात् ॥ ३८ ॥**

**आसन्नभृत्यकरसस्थितदीपकोघसंशातसंतमसमाशु सद-
प्रपेदे ।**

**तत्रासने समुपविश्य पुरोधसंत्रिसामंतनायकशतैः
समुपास्यमानः ॥ ३९ ॥**

**अन्वास्त राजसमिती विविधैविनोदैर्दृष्टः सुरेन्द्र इव
देवगणं रूपेतः ।**

यातश्चिरं विविधवाच्चिनोदनृत्प्रेक्षाप्रवृत्तहसनादिः
कथाप्रसंगः ॥४०

आसांचकार गणिकाजननर्महासकीडाविलास-
परितोषितचित्तवृत्तिः ।

इत्थं विशामधिपतिभृशमानिशाद्व नानाविहार-
विभवानुभवैरनेके ॥४१

स्थित्वानुगान्त्यरपतीनपि तन्निवासं प्रस्थाप्य वासभवनं
स्वयमप्ययासीन् ।

तद्वाजसन्यमखिलं निजबीर्यशीर्यसंपत्प्रभावमहिमानुगुणं
गृहेषु ॥४२

वह उदार यश वाला राजा बहुत ही बारीक वस्त्र का छादन जिस पर हो रहा था और नीचे सुबर्ण का विष्टर जिसमें था ऐसे उस परम-मनोहर आसन पर अध्यासित हो गये थे । हे नृप ! उस गृह में उसकी पुरन्धियों के समुदाय ने अपने आसन पर शीघ्र ही समासीन राजा का अनेक पूजन के उपचारों से अचंन किया था । ३६। इसके उपरान्त बादों के बादन आदि के द्वारा और भूषण—गन्ध—पुष्प—वस्त्र आदि अलकृतियों से राजा का विशेष आनन्द बढ़ा दिया था । वहाँ पर सम्पूर्ण दिन में होने वाले समुचित कर्म से निवृत्त होकर उस हैह्यपति ने अपने मत के अनुसार पूरे दिवस को व्यतीत किया था । ३७। वहाँ पर उस राजा का पूरा दिन अनेक तरह के आलयन—नर्मवचन—विचित्र आनन्द केलियों और भली भाँति प्रेक्षण आदि के समाचरण से व्यतीत हुआ था । फिर जब संन्ध्या का समय हो गया तो उसने दिनान्त में होने वाले उचित कर्मों से निवृत्ति प्राप्त की थी और फिर वह राजा सभी ओर से अपने मन्त्रीगण और सचिवों से अनुगत हो गया था । ३८। समीप में वत्त मान भूत्यों के करों में अनेक प्रदीप संस्थित थे जिनसे रात्रिका परम गहन अन्धकार शान्त हो गया था । उस समय में राजा अपनी सभा में प्राप्त हो गया था । वहाँ पर वह अपने आसन पर विराजमान हो गया था और सेकड़ों पुरोहित—मन्त्री—सामन्त और नायकों के द्वारा समुप्रासित हो रहा था । ३९। उस राज सभा में नानाभाँति के विनोदों से वह परम हृषित होकर बैठा हुआ था जिस तरह देवगणों से

समन्वित सुरेन्द्र होवे । इसके अनन्तर बहुत समय तक अनेक वाचों का वादन, आमोद-प्रमोद-नृत्य, और प्रेषण में प्रवृत्त हास्यविलास तथा कथाओं के प्रसङ्गों में वह प्रसक्त हो गया था । ४०। वहाँ पर गणिकाजनों के साथ प्रणय प्रवर्धक नर्म वचन-हास-कीड़ा और विलास से उसने अपने चित्त की वृत्ति को परितोषित किया था । इस रीति से क्षत्रियों के स्वामी उस राजा ने मिथा के अधर्मभाग को अत्यधिक रूप से अनेक प्रकार के विहार के वैभव के अनुभवों वे व्यतीत किया था । ४१। फिर उस राजा ने अपने अनुगामी नरपतियों को रखाना कर स्वयं भी वह अपने भवन में चला गया था । उससे राजा की सेना के जो सेनिक थे वे सभी उन गृहों में अपने शौर्यवीर्य-सम्पत्-प्रभाव और महिमा के ही अनुकूल प्राप्त करने वाले थे । ४२।

आत्मानुरूपविभवेषु महार्हवस्त्रस्तम्भूषणादिभिरनं
मुदितं वभूव ।

सैन्यानि तानि नृपतेविविधान्नपानसद्भक्ष्यभोज्य-
मधुमांसपयोवृताद्यः ॥४३॥

तृप्तान्यवात्सुरखिलानि सुखोपभौगस्तस्यां नरेन्द्रपुरि-
देवगणा दिवीव ।

एवं तदा नरपतेरनुयायिनस्ते नानाविधोचितसुखानु-
भवप्रतीताः ॥४४॥

अन्योन्यमूर्चुरिति गेहधनादिभिर्वा कि साध्यते वयमिहैव
वसाम सर्वे ।

राजापि शार्वरविधानमथो विधाय निर्वत्य वासभवने
शयनीयमग्र्यम् ।

अध्यास्य रत्ननिकररति शोभि मद्रं निद्रामसेवत नरेन्द्र
चिरं प्रतीतः ॥४५॥

वे सब सेनिक गण अपने स्वरूप के अनुरूप वैभवों में वेश कीमती वस्त्र-स्लक् और भूषण आदि के द्वारा अत्यधिक मुदित हुए थे । उस राजा के सेनिक विविध प्रकार के अन्न-पान-अच्छे भोक्ष्य-भोज्य-मधु-मांस-पय और धूत-धाइदि ते अत्यन्त तृप्त हो रहे थे । उस राजा नरेन्द्र अपि युग्मी में वैभव वेश वाला

स्वर्ण में सब कुछ प्राप्त किया करते हैं उसी भाँति उन्होंने सैनिकों ने भी सुखों के उपभोगों के द्वारा सम्पूर्ण आनन्दप्रद पदाथों की प्राप्ति की थीं। इस रीति से वे जो उस नृपति के अनुगामी थे वे सब अनेक प्रकार के समुचित सुखों के अनुभव से समाश्वस्त हो गये थे। ४४। वे सब परस्पर में एक दूसरे से कह रहे थे कि अपने घर और धन आदि के द्वारा क्या साधन किया जाता है अर्थात् अपने घरों में यहाँ से अधिक क्या यहाँ के समान भी कोई साधन प्राप्त नहीं होते हैं। हम सब तो अब यहाँ पर निवास करना चाहते हैं। फिर उस राजा ने भी शब्दों का जो भी कुछ विधान था उसे पूर्ण करके वह भी अपने निवास के भवन में दिव्य शश्या पर पहुँच गये थे। जो शश्या रत्नों के समुदाय के प्रकाश से अतीब शोभित थी और परमोत्तम थी हे नरेन्द्र ! निश्चिन्त होकर चिरकाल पर्यन्त निद्रा के सुख का सेवन किया था । ४५।

कार्तिकेय द्वारा कामधेनु की माँग

वसिष्ठ उवाच—

स्वपंतमेत्य राजानं सूतमागधबंदिनः ।

प्रबोधयितुमव्यग्रा जगुरुच्चर्वनिशात्यये ॥१॥

बोणावेणुरवोन्मश्रकलतालतानुगम् ।

समस्तश्रुतिसुश्राव्यप्रशस्तमधुरस्वरम् ॥२॥

स्निग्धकंठः सुविस्पष्टमूर्च्छनाग्रामसूचितम् ।

जगुर्गेयं मनोहारि तारमंद्रलयान्वितम् ॥३॥

ऊचुश्व तं महात्मानं राजानं सूतमागधाः ।

स्वपंतं विविधा वाचो बुबोधयिषवः शनैः ॥४॥

पश्यायमस्तमभ्येति राजेन्द्रेन्दुः पराजितः ।

विवद्धं मानया नूनं तत्र वकांबुजश्रिया ॥५॥

द्रष्टुः त्वदाननांभोजं समुत्सुक इवाधुना ।

तमांसि भिदन्नादित्यः संप्राप्तो हयुदयं विभो ॥६॥

राजन्नखिलशीतांशुवंजमौलिशिखामणे ।

निद्रपालं महाबुद्धे प्रतिबुद्ध्यस्व सांप्रतम् ॥७॥

वसिष्ठ जी ने कहा—जिस समय में राजा शयन कर रहे थे और प्रातः कालीन गाने का समय हो गया था। तो सूत—मागध और वन्दीगण वहाँ पर आकर उपस्थित हो गये थे। निशा के अवमान में उन्होंने अव्यग्र होते हुए राजा को प्रबोध कराने के लिये समुच्च स्वर से गायन किया था । १। वह उनका गान बीणा-वेणु की छ्वनि से मिला हुआ मधुर और ताल के विस्तार के अनुरूप था तथा समस्तों के श्वरण करने में सुश्राव्य था और परम प्रशस्त एवं मधुर स्वर वाला था । २। उनका कण्ठ बहुत ही स्निग्ध था । ऐसे उन्होंने विशेष रूप से सुस्पष्ट मूर्च्छना और ग्राम से संयुत था । तार (अत्युच्च) और मन्द्र लब से समन्वित बहुत ही मन को हरण करने वाला गान उन्होंने गाया था । ३। राजा को जगाने की इच्छा रखने वाले उन सूतों और मागधों ने सोते हुए उस महान् आत्मा वाले राजा से धीरे-धीरे कहा था । ४। हे राजेन्द्र ! इस समय में यह चन्द्र पराजित होकर अस्त को प्राप्त हो रहा है क्योंकि आपकी बढ़ी हुई मुख कमल की शोभा से इसका पराजय हो गया है । अब आप प्रबुद्ध होकर इसका अवलोकन कीजिए । ५। हे विभो ! इस समय में आपके मुख कमल को देखने के लिये बहुत ही उत्सुक की भाँति अन्धकारों का भेदन करता हुआ सूर्य देव उदय को प्राप्त हो गये हैं । ६। हे राजन् ! आप तो समस्त चन्द्र वंश के प्रमुखों में भी सर्वे शिरोमणि हैं । अब आप अपनी निद्रा का त्याग कर जाग्रत हो जाइये ।

इति तेषां वचः शृण्वन्न बुध्यत महोपतिः ।

क्षीराब्धौ शेषशयनाद्यथापं कजलोचनः ॥८॥

विनिद्राक्षः समुत्थाय कर्म नत्यकमादरात् ।

चकारावहितः सम्यग्जयादिकमशेषतः ॥९॥

देवतामभिवंद्येषां यां दिव्यस्त्रगंधभूषणः ॥

कृत्वा दूर्वाजनादर्शमंगल्यालभ्वनानि च ॥१०॥

दत्या दानानि चाथिभ्यो नत्वा गोब्राह्मणानपि ।

निष्क्रम्य च पुरात्तस्मादुपत्तस्थे च भास्करम् ॥११॥

तावदभ्यायगुः सर्वे मंत्रिसामंतनायकाः ।

रचितांजलयो राजन्मुश्च नृपसत्तमम् ॥१२॥

ततः स तेः परिवृतः समुपेत्य तपोनिधिम् ।

ननाम पादयोस्तस्य किरीटेनार्कवर्चसा ॥१३
 आशीभिरभिनन्द्याथ राजानं पुनिपुङ्गवां ।
 प्रश्रयावनतं साम्ना समुवाचास्यतामिति ॥१४

इस प्रकार के उन मागध बन्दियों के बचनों का श्रवण करके वह महीपति क्षीर सागर में शेषभाग की शश्या के पंकज लोचन भगवान् नारायण के समान ही प्रति बुद्ध हो गये थे । इनिद्रा से रहित नेत्रों वाला होकर फिर उस नृपति ने परम सावधान होते हुए जय आदिक जो सम्पूर्ण दैनिक कर्म थे उनको किया था और बहुत ही समादर पूर्वक सम्पन्न किये थे । १०। फिर उस राजा ने अपने अभीष्ट गौ देवता की अभिवन्दना करके वह स्वयं विघ्न गन्ध-माला और भूषणों से समन्वित हुआ था और समस्त माङ्गल्य दूर्वा-अञ्जन और आदर्श आदि अवलम्बनों को ग्रहण किया था । ११। उसने लोभी याचकगण वहाँ पर समुपस्थित हुए थे उनको दान दिया था—गौ और ब्राह्मणों को प्रणाम किया था तथा उस पुर से बाहिर निकल कर भगवान् भ्रुवन भास्कर का उपस्थान किया था । १२। उसी समय में तब तक सभी मन्त्री, समस्त और नायक वहाँ पर आ गये थे । उन्होंने अपनी करों की अञ्जलियों को जोड़कर हे राजन् ! उस नृपों में श्रेष्ठ के लिए अभिवादन किया था । १३। इसके उपरान्त उन सबके साथ सबसे संयुत वह राजा तप के निधि मुनिवर के समीप में उपस्थित हुआ था और अपने मस्तक को झकाकर निज शिर पर मूर्य के वर्चस वाला किरीट पहने हुए था महामुनि वै चरणों में प्रणिपात किया था । १४। मुनियों में परम श्रेष्ठ उस मुनीद्रि ने इसके अनन्तर आशीर्वादों के द्वारा राजा का अभिवन्दन किया था और जो विनम्रता से नीचे की ओर अवनत हो रहा था उस राजा से परम शान्ति पूर्ण वचन से कहा था आप यहाँ पुर बैठ जाइये । १५।

तमासीनं नरपति महर्षिः प्रीतमानसः ।

उवाच रजनी व्युष्टा सुखेन तव किं नृप ॥१५

अस्माकमेव राजेन्द्रवने वन्येन जीवताम् ।

शक्यं मृगसधर्माणां येम केनापि वर्त्तितुम् ॥१६

अरण्ये नागराणां तु स्थितिरत्यंतदुःसहा ।

अनभ्यस्तं हि राजेन्द्र ननु सर्वं हि दुष्करम् ॥१७

वनवासपरिक्लेशं भावान्यत्सानुगोऽसकृत् ।

आप्तस्तु भवतो नूनं सा गौरवसमुन्नतिः ॥१८॥

इत्युक्तस्तेन मुनिना स राजा प्रीतिपूर्वकम् ।

प्रहसन्निव तं भूयो वचनं प्रत्यभाषत ॥१९॥

ब्रह्मन्निकमनया ह्युक्तया हृष्टस्ते याहशो महान् ।

अस्माभिर्महिमा येन विस्मितं सकलं जगत् ॥२०॥

भवत्प्रभावसंजातविभवाहृतचेतसः ।

इतो न गंतुमिच्छन्ति सैनिका मे महामुनि ॥२१॥

जब राजा वहाँ पर आसीन हो गये थे तब बड़े ही प्रीतियुक्त मन वाले महार्षि ने उस नरपति से कहा था—हे तृप ! कहिए क्या आपकी रात्रि तो सुख पूर्वक व्यतीत हुई है ? १५। हे राजेन्द्र ! इस वन में पशु के ही समान शर्म वाले हमारा तो वन में समुत्पन्न वस्तुओं से ही जीवन यापन होता है और जिस-किसी भी प्रकार से वृत्ति की जा सकती है । १६। ऐसे महारण्य में जो नगरों में निवास करने वाले हैं उनकी स्थिति तो बहुत ही दुःसह हुआ करती है । हे राजन् ! कारण यही है कि नागरिक पुरुषों का ऐसे अरण्य-जीवन का सभी कभी अस्यास नहीं होता है और यह सब महान कठिन ही होता है । १७। आपने इस वनवास के परिक्लेश को अपने समस्त अनुगामियों के साथ में अनेक बार प्राप्त किया है । निश्चय ही आपके लिए यह गौरव ही समुन्नति है । १८। इस रीति से जब यह उस राजा से मुनिवर ने कहा था तो उस राजा ने प्रीति के साथ कुछ मुस्कराते हुए पुनः उस मुनिवर को इसका उत्तर दिया था । १९। राजा ने मुनिवर से कहा था—हे ब्रह्मान् ! आपको इस उक्ति से क्या है अर्थात् आपने जो यह कथन किया है उसका क्या अभिप्राय है समझ में नहीं आता है । हम लोगों ने तो आपको जो महान् महिमा स्वयं अपने नेत्रों से देखी है वह तो परम अद्भुत है और उससे तो सम्पूर्ण जगत को ही बड़ा विस्मय होता है । २०। हे महामुने ! आपके तप के प्रभाव से जो यहाँ पर महान वैभव समुत्पन्न हुआ है उससे प्रभावित चित्त वाले ये मेरे सभी सैनिक तो यहाँ से अन्यत्र गमन करने की इच्छा नहीं करते हैं । २१।

त्वाहशानां जगंतीह प्रभावस्तपसां विभो ।

नैव चित्रं तव विभो शक्नोति तपसा भवान् ।
 ध्रुवं कर्तुं हि लोकानामवस्थात्रितयं क्रमात् ॥२३
 सुहृष्टा ते तपः सिद्धिर्महती लोकपूजिता ।
 गमिष्यानि पुरीं ब्रह्मन्ननुजानातु मां भवान् ॥२४
 वसिष्ठ उवाच—

इत्युक्तस्तेन स मुनिः कार्त्तवीर्येण सादरम् ।
 संभावयित्वा नितरां तथेति प्रत्यभाषत ॥२५
 मुनिना समनुज्ञातो विनिष्क्रम्य तदाश्रमात् ।
 सैन्यैः परिवृतः सर्वैः संप्रतस्थे पुरीं प्रति ॥२६
 स गच्छश्चित्यामास मनसा पथि पाथिवः ।
 अहोऽस्य तपसः सिद्धिलोकविस्मयदायिनी ॥२७
 यथा लब्धेदृशी धेनुः सर्वकामदुहां वरा ।
 कि मे सकलराज्येन योगद्वर्चा वाप्यनल्पया ॥२८

हे विभो ! इस जगती तल में आप जैसे महा पुरुषों के तपों के प्रभावों से ही निश्चित रूप से सर्वदा ब्राह्मणों के वर्चस् को नित्य ही धारण किया करते हैं । २२। हे विभो ! इसमें कुछ भी विचित्रता नहीं है । आप अपने तप के द्वारा लोकों की क्रम से तीनों अवस्थाओं को ध्रुवकर सकते हैं । २३। हमने आपको लोकों में पूजित महान् तप की सिद्धि भली भाँति देखती हैं । हे ब्रह्मन् ! मैं अब अपनी नगरी में जाऊँगा अतः आप मुझे गमन करने के लिए अपना आदेश प्रदान कीजिए । २४। वसिष्ठ जी ने कहा—जल कार्त्तवीर्य राजा के द्वारा जब इस प्रकार से उन महामुनि से सादर प्रार्थना की गयी थी तो मुनि ने बहुत कुछ सत्कार करके यहीं उत्तर दिया था कि यदि आप जाना ही चाहते हैं तो स्वेच्छया गमन कीजिए । २५। उस महामुनि से अनुज्ञा प्राप्त करने वाले राजा ने उनके आश्रम से बाहिर निकल कर समस्त सेनाओं से परिवृत होते हुए अपनी पुरी की ओर प्रस्थान कर दिया था । २६। मार्ग में गमन करने के समय में उस राजा ने अपने मन में विचार किया था कि ओहो ! इस मुनि की तपश्चर्चर्या को कैसी अद्भुत शक्ति है जो सभी लोकों को विस्मय देने वाली है । २७। जिस तपश्चर्चर्या की सिद्धि से ऐसी

समस्त इच्छाओं की पूति करने वाली धेनुओं से भी परमश्रेष्ठ धेनु प्राप्त की है। इस मेरे सम्पूर्ण राज्य के महात् वैभव से भी क्या हो सकता है और अनल्प योग की ऋद्धि से भी कुछ नहीं हो सकता है। अर्थात् इस मेरे महान् विशाल राज्य का वैभव तथा योग द्वारा ऋद्धि का वैभव भी इसके सामने तुच्छ है। २८।

गोरत्नभूता यदियं धेनुमुंनिवरे स्थिता ।

अनयोत्पादिता नूनं संपत्स्वर्गसदामपि ॥२९॥

ऋद्धमेंद्रमपि व्यक्तं पदं त्रैलोक्यपूजितम् ।

अस्या धेनोरहं मन्ये कला नार्हति षोडशीम् ॥३०॥

इत्येवं चित्यानं तं पश्चादभ्येत्य पार्थिवम् ।

चन्द्रगुप्तोऽब्रवीन्मंत्री कृतांजलिपुटस्तदा ॥३१॥

किमर्थं राजशार्दूल पुरीं तिगमिष्यसि ।

रक्षितेन च राज्येन पुर्या वा कि फलं तव ॥३२॥

गोरत्नभूता नृपतेयविद्वेनुर्न चालये ।

वत्ति नार्द्धमपि ते राज्यं शून्यं तव प्रभो ॥३३॥

अन्यच्च दृष्टमाश्चर्यं मया राजञ्चृणुष्व तत् ।

भवनानि मनोज्ञानि मनोज्ञाश्च तथा स्त्रियः ॥३४॥

प्रसादा विविधाकारा धनं चाहृषसंक्षयम् ।

धेनो तस्यां क्षणेनैव विलीनं पश्यतो मम ॥३५॥

कारण यही है कि समस्त धेनुओं में रत्न के सहश यह धेनु इस मुनिवर के समीप में संस्थित है। इसके ही द्वारा स्वर्ग में निवास करने वालों की भी सम्पदा उत्पादित की गयी है यह निश्चित है। २६। यह माना जाता है कि महेन्द्र का पद अर्थात् स्थान परम ऋद्धियों से परिपूर्ण है तथा यह तीनों लोकों में पूजित होता है क्योंकि सर्वतोभाव से यह परम समृद्ध होता है किन्तु मैं तो ऐसा मानता हूँ कि वह इन्द्र का वैभव भी इस धेनु को शक्ति से समुत्पादित वैभव के सामने सोलहवाँ भाग भी नहीं है। ३०। राजा इसी प्रकार से अपने मन में चिन्तन कर रहा था उस राजा के पीछे से आकर मन्त्री चन्द्रगुप्त ने उस समय में हाथ जोड़कर उस राजा से कहा था। ३१। हे राज शार्दूल ! आप किस लिए अपनी पुरी की ओर गमन कर रहे हैं ?

आपका राज्य और पुरी तो परम सुरक्षित है अतः वहाँ पर पुरी में गमन करने से क्या फल होगा ? अर्थात् इसी समय वहाँ गमन व्यर्थ ही है । ३२। हे प्रभो ! यह रत्नभूता गी जब तक आप मरीसे राजा के घर में न होवे तब तक आपका सम्पूर्ण राज्य इसके वैभव के सामने आधा भी नहीं है और यों ही कहना उचित है कि आपका पूरा राज्य एक प्रकार से शून्य हीं है । ३३। हे राजन् ! मैंने एक और भी महात् आशर्चर्य देखा था, उसका भी आप अवण कीजिए । उस धेनु ने अपनी अद्भुत शक्ति से बड़े-बड़े मनोज्ञ भवन समुत्पादित किये थे वे सब और परम सुन्दरी मित्राँ जो श्रीं तथा अनेक भाँति के आकार-प्रकार बाले जो महल अर्थात् विशाल भवन थे एवं जो कभी भी क्षीण होने वाला नहीं देखा गया था वह धन सभी कुछ एक ही क्षण में उसी धेनु में मेरे देखते-देखते विलीन हो गये थे । ३४-३५।

तत्पोवनमेवासीदिदानी राजसत्तम ।

एवांप्रभावा सा यस्य तस्य किं दुर्लभं भवेत् ॥३६॥

तस्मादत्नार्हसत्त्वेन स्वीकर्त्तव्या हि गौस्त्वया ।

यदि तेऽनुमतं कृत्यमार्घ्येयमनुजीविभिः ॥३७॥

राजोवाच—एवमेवाहमप्येनां न जानामीत्यसांप्रतम् ।

ब्रह्मस्वं नापहृत्व्यमिति मे शङ्कुते मनः ॥३८॥

एवं ब्रुवंतं राजानमिदमाह पुरोहितः ।

गर्गो मतिमतां श्रेष्ठो गर्हयन्निब भूपते ॥३९॥

ब्रह्मस्वं नापहृत्व्यमापद्यमि कथंचन ।

ब्रह्मस्वसदृशं लोके दुर्जंरं नेह विद्यते ॥४०॥

विषं हत्युपयोक्तारं लक्ष्यभूतं तु हैह्य ।

कुलं समूलं दहति ब्रह्मस्वारणिपावकः ॥४१॥

अनिवार्यमिदं लोके ब्रह्मस्वं दुर्जंरं विषम् ।

पुत्रपौत्रान्तफलदं विपाककटु पार्थिव ॥४२॥

हे श्रेष्ठ राजन् ! इस समय में वही तपोवन था जिसमें इस रीति के प्रभाव बाली वह धेनु विद्यमान है । उस व्यक्ति को इस जगत् में क्या पदार्थ दुर्लभ है अर्थात् उस को कुछ भी दुर्लभ नहीं होता है । ३६। इस कारण से आप तो सभी रत्नों के रखने के योग्य बल-विक्रिय वाले हैं । आपको यह गी

स्वीकार करनो चाहिए अथवि उस धेनु को आप ग्रहण कर लीजिए । यदि यह कार्य आपको पसन्द हो तो इसको अपने अनुजीवियों के द्वारा कहला देना चाहिए ॥३७॥ इस प्रकार से मैं भी इसको नहीं जानता हूँ । किन्तु यह सब्र आपका कथन अयुक्त है । चाहे कितनी ही आपत्ति क्यों न उपस्थित हो जावे, ऐसे आपत्काल में भी ब्राह्मणों के धन का कभी भी आहरण नहीं करना चाहिए । मेरा मन परम शङ्खित रहा करता है ॥३८॥ इस रीति से जिस समय में राजा कह रहा था उस समय में राजा के पुरोहित ने राजा से यह कहा था—हे भूपते ! मतिमानों में परम श्रेष्ठ गर्ग मुनि ने ऐसे कर्म की निन्दा करते हुए यही कहा था ॥३९॥ आपत्ति काल में भी कभी ब्राह्मणों के धन का किसी भी तरह से अपहरण नहीं करना चाहिए । इस लोक में ब्रह्मास्व के समान अन्य कुछ भी दुजर अथवि बुरा कर्म नहीं होता है ॥४०॥ हे हैहय ! विष भी मारक होता है किन्तु वह अपने उपभोक्ता को ही जो कि उसका लक्ष्य भूत है मारता है किन्तु ब्राह्मणों का धन रूपी पावक मूल के सहित सम्पूर्ण कुल को भस्मीभूत कर दिया करता है ॥४१॥ हे पार्थिव ! लोक में यह बड़ा भारी आश्चर्य से संयुत है कि ब्रह्मास्व अनिवार्य रूप से महान् दुर्जर विष है । यह तो केवल ग्रहण करने वाले को ही नहीं प्रत्युत उसके सभी पुत्र-पौत्र आदि का विनाश कर देने वाला है और विपाक में महान् कटु होता है ॥४२॥

ऐश्वर्यमूढं हि मनः प्रभूणामसदात्मनाम् ।

किन्नामासन्न कुरुते नेत्रासद्विप्रलोभितम् ॥४३॥

वेदान्यस्त्वामृते कोऽन्यो विना दानान्लृपोत्तम् ।

आदानं चित्यानो हि ब्राह्मणेष्वभिवाङ्छति ॥४४॥

ईशंशांत्वं महाबाहो कर्म सज्जननिदितम् ।

मा कृथास्तद्धि लोकेषु यशोहानिकरं तव ॥४५॥

वशे महति जातस्त्वं वदान्यानां महीभुजाम् ।

यशांसि कर्मणानेन सांप्रतं मा व्यनीनशः ॥४६॥

अहोऽनुजीविनः किञ्चिद्भर्तरं व्यसनार्णवे ।

तत्प्रसादसमुन्नद्रा मज्जयंत्यनयोन्मुखाः ॥४७॥

श्रिया विकर्वन्पुरुषकल्याचित्ये विचेतनः ।

तन्मतानुप्रवृत्तिश्च राजा सद्यो विषीदति ॥४८

अज्ञातमुनयो मंत्री राजानमनयांबुधो ।

आत्मना सह दुर्बुद्धिलोहनोरिव मज्जयेत् ॥४९

असत् आत्माओं वाले प्रभुओं का मन ऐश्वर्य की बृद्धि करने में महान् मूढ़ हुआ करता है । वे बहुधा नेत्रों से बुरे कर्मों को देखते हुए भी विशेष रूप से प्रलोभित उनका मन क्या-क्या असत् कर्म नहीं किया करता है अर्थात् ऐसे बहुत से बुरे कर्म हैं जिनको उनका मन करने में थोड़ा भी शङ्कित नहीं होकर किया करता है ॥४३। हे उत्तम नृप ! आपको छोड़कर अन्य ऐसा कौन है जो यह नहीं जानता है कि ब्राह्मणों को तो अपनी ओर से दान ही दिया जाता है । दान के देने के अतिरिक्त उनसे कुछ ग्रहण करना ब्राह्मणों के विषय में चाहता हो । तात्पर्य यही है कि आप ब्राह्मणों को दान देने के महत्व को भली भाँति जानते हैं और उनसे किसी वस्तु का ग्रहण नहीं किया जाता है यह भी अच्छी तरह से समझते हैं—इस विषय में आपके समान अन्य कोई भी जाता नहीं है ॥४४। हे महान् ब्राह्मणों वाले ! आप तो इस तरह के पूर्ण ज्ञाता महा पुरुष हैं । फिर ऐसे मज्जनों के द्वारा विशेष निन्दित ऐसे कर्म को कभी मन करिए क्योंकि ऐसा बुरा कर्म लोक में आपके सुयश की हानि के ही करने वाला होगा ॥४५। हे राजन् ! आप महान् दानी राजाओं के बंग में समुत्पन्न हुए हैं । अतएव आपका विशाल यश है । अब इस असन् कर्म के द्वारा अपने यश का विनाश मत करिये ॥४६। अहो ! अर्थात् बड़े ही आश्चर्य की बात तो यह है कि ये अनुजीवी लोग जोकि अपने ही स्वामी के परम प्रसाद से समुच्च द्वारा गये हैं वे ऐसी अनीति की ओर उन्मुख हो रहे हैं कि वे उसी अपने स्वामी व्यसनों के सागर में डूबा रहे हैं ॥४७। श्री सम्पन्नता होने के कारण से ऐसा मनुष्य ज्ञान शून्य हो गया है कि अचिन्तनीय पुरुष के कृत्य को भी करने के लिये उतारू हो जाता है । ऐसे मनुष्यों के मत के अनुसार प्रवृत्ति रखने वाला राजा तुरन्त ही दुःखों को भोगा करता है ॥४८। जो मन्त्री सुन्दर नीति को नहीं जानता है वह दुष्ट बुद्धि वाला मन्त्री लोहे वी नौका की ही भाँति अपने राजा को भी अनीति को सागर में निमग्न करा दिया करता है ॥४९।

तस्मात्त्वं राजशाहौ ल मूढस्य नयवर्त्मनि ।

मतमस्य सुदुर्बुद्धेनानुवर्त्तितुगर्हसि ॥५०

एवं हि वदतस्तस्य स्वामिश्रेयस्करं वचः ।

आक्षिप्य मन्त्री राजानमिदं भूयो ह्यभाषत ॥५१

ब्राह्मणोऽयं स्वजातीयहितमेव समीक्षते ।

महांति राजकार्याणि द्विजैत्तु न शक्यते ॥५२

राजैव राजकार्याणि वेद्यानि स्वमनीषया ।

विना वै भोजनादाने कार्यं विप्रो न विदति ॥५३

ब्राह्मणो नावमंतव्यो वंदनीयश्च नित्यशः ।

प्रतिसंग्रहणीयश्च नाधिकं साधितं क्वचित् ॥५४

तस्मात्स्वीकृत्य तां धेनुं प्रयाहि स्वपुरं नृप ।

नोचेद्राज्यं परित्यज्य गच्छत्वं तपसे वनम् ॥५५

क्षमावत्त्वं ब्राह्मणानां दण्डः क्षत्रस्य पार्थिव ।

प्रसह्य हरणे वापि नाधर्मस्ते भविष्यति ॥५६

इस कारण से हे राजशादूल ! आप इस मूढ़ के न्याय मार्ग में मत चलिए और इस दुष्ट बुद्धि वाले मन्त्री के मत के अनुसार असत् करने के लिये आप कभी भी योग्य नहीं होते हैं । ५०। इस रीति से अपने स्वामी के कल्याण करने वचनों को जब वह पुरोहित कह रहा था तो उसकी बात को काट कर वह मन्त्री फिर राजा से यह बोला था । ५१। हे राजन् ! यह पुरोहित तो जाति का ब्राह्मण है और यह सर्वदा अपनी ही जाति का हित चाहा करता है । राजा के कार्य तो बहुत महान् हुआ करते हैं जो कि विप्रों के द्वारा कभी भी जाने नहीं जा सकते हैं । ५२। राजाओं के कार्य तो राजा के ही द्वारा जानने के योग्य हुआ करते हैं । विप्र के बल भोजन और दान ग्रहण के अतिरिक्त अपनी बुद्धि से अन्य नृपोचित कार्य को नहीं जानता है । ५३। मैं ब्राह्मणों की किसी भी रीति से निन्दा नहीं करता हूँ प्रत्युत मेरा यही मत है कि कभी भी ब्राह्मण का अपमान नहीं करना चाहिए और ब्राह्मण की नित्य ही बन्दना करनी चाहिए । इसका प्रति संग्राहण भी करना उचित है किन्तु इसके द्वारा कहीं पर भी किसी कार्य को साधित नहीं करे । ५४। हे नृप ! इस कारण से आप उस मुनि की होमधेनु को स्वीकार करके अथर्ति अपने अधिकार में लेकर ही फिर अपने नगर में गमन करिए । यदि यह कार्य नहीं करना चाहते हैं और ऐसे अद्भुत पदार्थ का भी त्याग कर

रहे हैं तो फिर सभी राज पाट को त्याग कर तप करने को बन में ही चले जाइए और पूर्ण त्यागी बन जाइए । ५५। इस प्रकार से क्षमावान् होना तो ग्राहणों का ही धर्म होता है । हे राजन् ! क्षत्रिय का धर्म तो दण्ड देना है । यदि बल पूर्वक भी उस धेनुरत्न का अपहरण करते हैं तो इसके करने में भी आपका कोई अधर्म नहीं होगा । ५६।

प्रसह्य हरणे दोषं यदि संपश्यसे नृप ।

दत्त्वा मूल्यं गवाश्वाद्यमृणेधेनुः प्रगृह्यताम् ॥ ५७ ॥

स्वीकर्तव्या हि सा धेनुस्त्वया त्वं रत्नभाग्यतः ।

तपोधनानां हि कुतो रत्नसंग्रहणादरः ॥ ५८ ॥

तपोधनबलः शांतः प्रीतिमान्स नृप त्वयि ।

तस्मात्ते सर्वथा धेनुं याचितः संप्रदास्यति ॥ ५९ ॥

अथ वा गोहिरण्याद्यं यदन्यदभिवाङ्गितम् ।

संगृह्य वित्तं विपुलं धेनुं तां प्रतिदास्यति ॥ ६० ॥

अनुपेक्ष्यं महद्रत्नं राजा वै भूतिमिच्छता ।

इति मे वर्त्तते बुद्धिः कथं वा मन्यते भवात् ॥ ६१ ॥

राजोवाच—गत्वा त्वमेव तं विप्रं प्रसाद्य च विशेषतः ।

दत्त्वा चाभीप्सितं तस्मै तां गामानय मंत्रिक ॥ ६२ ॥

वसिष्ठ उवाच—

एवमुक्तस्ततो राजा स मंत्री विधिचोदितः ।

निवृत्य प्रययी शीघ्रं जमदग्नेरथाश्रमम् ॥ ६३ ॥

हे नृप ! आप यदि बलात् उस धेनुरत्न के अपहरण करने में कोई दोष और अधर्म ही देखते हैं तो आप इसके बदले में अन्य गौ तथा अश्व आदि मूल्य के रूप में मुनि को देकर ऋषि की उस धेनु का ग्रहण कर लीजिए । ५७। मेरे इस सम्पूर्ण निवेदन करने का निष्कर्ष यही है कि आपके द्वारा उस धेनु को स्वीकार कर ही लेना चाहिए अर्थात् किसी भी रीति से उसको अपने अधिकार में ले ही लेना उचित है । इसका कारण यही है कि आप तो ऐसे रत्नों का सेवन करने वाले हैं । जो तप को ही अपना धन माना करते हैं ऐसे तपस्त्वयों को ऐसे रत्नों के संग्रहण करने का समादर

कहीं भी नहीं होता है । ५८। वह तपोषन धन वाला ऋषि तो परम शान्त स्वभाव वाला है और हे नृप ! वह आप में प्रीति रखने वाला भी है । इस कारण से जब भी आपके द्वारा याचना उससे की जायगी तो वह सब प्रकार से उस धेनु को दे देगा ।—६। अथवा यह भी होसकता है कि वह कुछ अधिक इच्छा रखता होवे तो अन्य गौ और सुवर्ण आदि जो-जो भी उसका अभी-प्रित हो वह बहुत-सा धन एकत्रित करके उसको दे दिया जावे तो वह इस सबके बदले में उस धेनु का प्रतिदान अवश्य ही कर देगा ।६०। मेरी बुद्धि तो यही है कि भूति की अभिलाषा रखने वाले राजा के द्वारा ऐसे महान् रत्न की कभी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए । आप इस विचारणीय विषय में कैसा अपना मत रखते हैं ? ।६१। राजा ने मन्त्री के मत का श्रवण करके कहा था—हे मन्त्रिन् ! आप ही वहाँ गमन कीजिए और विशेष रूप से उस विप्र को प्रसन्न कीजिए तथा जो भी कुछ उसका अभिवान्धित हो उस सबको उसे प्रदान करके उस धेनु को यहाँ पर ले आइए ।६२। वसिष्ठजी ने कहा—इस रीति से जब राजा के द्वारा कहा गया था तो वह मन्त्री भाग्य के विधान से प्रेरित होकर श्रीघंड ही वापिस होकर जमदग्नि मुनि के आधम में चला गया था ।६३।

गते तु नृपतौ तस्मिन्नकृतव्रणसंयुतः ।

समिदानयनार्थाय रामोऽपि प्रययौ वनम् ॥६४

ततः स मंत्री सबलः समासाद्य तदाश्रमम् ।

प्रणम्य मुनिशादौ लमिदं वचनमन्नवीत् ॥६५

चन्द्रगुप्त उवाच—

अह्यन्नपतिनाऽजप्तं राजा तु भुवि रत्नभाक् ।

रत्नभूता च धेनुः सा भुवि दोर्धीष्वनुत्तमा ॥६६

तस्माद्रत्नं सुवर्णं वा मूल्यमुक्तं वा यथोचितम् ।

आदाय गोरत्नभूतां धेनुं मे दातुमर्हसि ॥६७

जमदग्निउवाच—

होमधेनुरियं मह्यं न दातव्या हि कस्यचित् ।

राजा वत्सलः स कर्य वहस्यमिवाचक्षि ॥६८

मंत्र्युवाच-

रत्नभावत्वेन नृपतिद्वेनुं ते प्रतिकांक्षति ।

गवायुतेन तस्मात्त्वं तस्मै तां दातुमहंसि ॥६६

उस राजा के आश्रम से अपने पुर को ओर चले जाने पर राम भी आकृत व्रण के ही साथ में समिधाओं के लाने के लिए वन में चला गया था ।६४। इसके अनन्तर वह चन्द्रगुप्त नामधारी मन्त्री अपनी सेना के सहित जमदग्नि मुनि के आश्रम में पहुँच कर उसने मुनियों में शादूल के समान जमदग्नि के चरणों में प्रणाम करके वह वचन कहे थे ।६५। चन्द्रगुप्त ने कहा—हे ब्रह्मन् ! नृपति ने यह आज्ञा प्रदान की है कि इस भूमण्डल में राजा ही रत्नों का सेवन करने वाला होता है । इस भूमि में समस्त दोहन शील धेनुओं में अतीव उत्तम वह धेनु रत्नभूता हूँ जो कि इस समय में आप के पास है ।६६। इस कारण से आप रत्न अथवा सुवर्ण जो भी समुचित हो उस धेनु का मूल्य बताकर ग्रहण कीजिए और गौओं में जो रत्नभूता धेनु है उसको आप मुक्तको प्रदान करने के योग्य होते हैं ।६७। जमदग्नि मुनि ने कहा—यह तो मेरी होम धेनु है अर्थात् समस्त होम की सामग्री देने वाली है अतयिक्त मेरे द्वारा यह किसी के लिये भी देने के योग्य नहीं है । यह आपका स्वामी राजा तो बहुत ही बड़ा दानशील है फिर वह किस प्रकार से इस ब्रह्मस्व अर्थात् ब्राह्मण के धन को लेने की इच्छा कर रहा है ? ।६८। मन्त्री ने कहा—क्योंकि नृपति रत्नों का सेवन करने वाला होता है इसी भावना के कारण से वह आपकी रत्नभूता धेनु की आकांक्षा करता है । यो ही बिना किसी मूल्य के नहीं लेना चाहता है । आप दश सहस्र गौओं को ग्रहण करके इस कारण से उस धेनु को उस राजा के लिए देने के योग्य हैं ।६९।

जमदग्निरुवाच-

क्रयविक्रययोर्नाहं कर्त्ता जातु कथंचन ।

हविधनीं च वै तस्मान्नोत्सहे दातुमंजसा ॥७०

मंत्र्युवाच—राज्यार्थेनाथ वा ब्रह्मन्सकलेनापि भूभृतः ।

देहि धेनुमिमामेकां तत्ते श्रेयो भविष्यति ॥७१

जमदग्निरुवाच—

जीवन्नाहं तु दास्यामि वासवस्यापि दुर्भिते ।

गुरुणा याचितं किं ते वचसा नृपते पुनः ॥७२

मंत्र्युवाच-

त्वमेव स्वेच्छया राजे देहि धेनुं सुहृत्या ।

यथा बलेन नीतायां तस्यां त्वं किं करिष्यसि ॥७३

जमदग्निरुवाच-

दाता द्विजानां नृपतिः स यद्यप्याहरिष्यति ।

विप्रोऽहं किं करिष्यामि स्वेच्छावितरणं विजा ॥७४

वसिष्ठ उवाच-

इत्येवमुक्तः संकुद्धः सः मन्त्री पापचेतनः ।

प्रसह्य नेतुमारेभे मुनेस्तस्य पयस्त्वनीम् ॥७५

जमदग्नि मुनि ने कहा—भाई, मैं कभी भी किसी भी प्रकार से क्रय और विक्रय के करने वाला नहीं हूँ। वह धेनु तो मेरी हविर्धानी अर्थात् होम के लिये हवि के प्रदान करने वाली है! इसलिए तुरन्त ही मैं उसको देने का उत्साह नहीं करता हूँ। ७०। मन्त्री ने फिर कहा—हे ब्रह्मान्! आप उस राजा के आशे राज्य को ग्रहण करके अथवा सम्पूर्ण राज्य को लेकर भी इस एक धेनु को दे दीजिए। इससे आपका बहुत बड़ा कल्याण होगा। ७१। जमदग्नि ने कहा—हे दुष्ट मति वाले! मैं जीवित रहते हुए इस राजा की तो बात ही क्या है देवेन्द्र को भी मह धेनु नहीं दूँगा। फिर आपके राजा के बड़े वर्षन से याचना करना तो सर्वथा ब्यर्थ ही है। अर्थात् इससे कुछ भी लाभ नहीं है। ७२। मन्त्री ने कहा—आप ही सौहार्द्र की भावना से राजा के लिए उस धेनु को दे दीजिए—यही अच्छा है। और ऐसा आप नहीं करते हैं तो उसको बलपूर्वक ले लेने पर आप क्या करेंगे? ७३। जमदग्नि मुनि ने कहा—राजा तो ब्राह्मणों के लिए दान प्रदान करने वाला हुआ करता है। वही यदि ब्रह्मास्व का आहरण करता है तो मैं तो विप्र हूँ मैं स्वेच्छा से वितरण करने के बिना उसका क्या करूँगा। ७४। वसिष्ठ जी ने कहा—जब इस रीति से उस चन्द्रगुप्त मन्त्री से ऋषि के द्वारा कहा गया तो वह पाप पूर्ण ज्ञान वाला मन्त्री बहुत क्रोधित हो गया था। फिर उसने मुनि की उस पयस्त्वनी धेनु का बलपूर्वक अपहरण करना आरम्भ कर दिया था। ७५।

॥ जमदग्नि-वध ॥

वसिष्ठ उवाच—

जमदग्निस्ततो भूयस्तमुवाच रुषान्वितः ।

ब्रह्मस्वं नापहर्त्तव्यं पुरुषेण विजानता ॥१

प्रसस्य गां मे हरतो पापमाप्स्यसि दुर्मति ।

आयुजनि परिक्षीणं न चेदेतत्करिष्यति ॥२

बलादिच्छसि यन्नेतु तन्न शक्यं कथंचन ।

स्वयं वा यदि सायुज्येद्विनशिष्यति पाथिवः ॥३

दानं विनापहरणं ब्राह्मणानां तपस्विनाम् ।

शतायुषोऽर्जुनादन्यः कोऽन्विच्छति जिजीविषुः ॥४

इत्युक्तस्तेन संकुद्धः स मंत्री कालचोदितः ।

बद्धवा तां गां हृषेः पाशेविचकर्ण बलान्वितः ॥५

जमदग्निरथ कोधादभाविकर्मप्रिचोदितः ।

रुरोधं तं यथाशक्ति विकर्णतं पयस्विनीम् ॥६

जीवन्न प्रतिमोक्षयामि गामेनामित्यमर्षितः ।

जग्राह सुदृढं कंठे बाहुभ्यां तां महामुनिः ॥७

श्री वसिष्ठजी ने कहा—पुनः जमदग्नि मुनि ने क्रोध से समन्वित होते हुए उससे कहा था—एक ज्ञानी पुरुष के द्वारा ब्रह्मस्व का कभी भी अपहरण नहीं करना चाहिए । १। हे दुष्टमति वाले ! बलात् मुझ से मेरी गौ का हरण करके तू महान् पाप को प्राप्त हो जायगा । यदि तू ऐसा ही करेगा तो मैं जानता हूँ कि आयु को परिक्षीण कर रहा है । २। बल पूर्वक जो इसको लेने की इच्छा कर रहा है वह किसी भी रीति से नहीं किया जा सकेगा । यदि यही करेगा तो तू स्वयं ही सायुज्य को प्राप्त हो जायगा अथवा तेरा राजा विनष्ट हो जायगा । ३। विना दान के तपस्वी ब्राह्मणों की वस्तु का बल से छीन लेना शतायु कात्तवीर्यजुन के सिवाय अन्य कौन जीवित रहने की इच्छा वाला चाहता है अर्थात् ऐसा कोई भी नहीं चाहा करता है । वह तेरा राजा ही है जो ऐसा करना चाहता है । ४। इस तरह से जब

मुनि के द्वारा उस मन्त्री से कहा गया था तो वह मन्त्री काल से प्रेरित होकर उस दुष्कर्म में प्रवृत्त हो गया था और बल (सेना) से समन्वित उस मन्त्री ने परम सुदृढ़ पाणों से उस होम धेनु को वौधि करके अपने साथ ले जाने के लिये खींचा था ।५। इसके अनन्तर क्रोध से भविष्य में होने वाले कर्म से प्रेरित होते हुए जमदग्नि ने गौ के खींचते हुए उस मन्त्री को अपनी शक्ति को भरपूर लगाकर जैसी शक्ति उनमें थी उसी के अनुसार रोका था ।६। उन्होने कहा था कि मैं अपने जीते जी इस धेनु को नहीं छोड़ूगा । यह कहते हुए उनको बड़ा क्रोध उत्पन्न हो गया और उस महामुनि ने बड़ी हृदयता के साथ अपनी दोनों बाहुओं को उस धेनु क कण्ठ में ढालकर उसको बलपूर्वक पकड़ लिया था ।७।

ततः क्रोधपरीतात्मा चन्द्रगुप्तोऽतिनिर्घृणः ।

उत्सारयध्वमित्येनमादिदेश स्वसैनिकान् ॥८॥

अप्रधृष्यतमं लोके तमृषि राजकिकराः ।

भ्राजिया प्रहृत्यैनं परिवन्नुः समंततः ॥९॥

दंडै कणाभिर्लंगुडैर्विनिवनं तश्च मुष्टिभिः ।

ते समुत्सारयन् धेनोः सुदूरतरमंतिकात् ॥१०॥

स तथा हन्यमानोऽपि व्यथितः क्षमयान्वितः ।

न चुक्रोधाक्रोधनत्वं सतो हि परमं धनम् ॥११॥

स च शक्तः स्वतपसा संहत्तुमपि रक्षितुम् ।

जगत्सर्वं क्षयं तस्य चिन्तयन्न प्रचुक्रुधे ॥१२॥

स पूर्वं क्रोधनोऽत्यर्थी मातुरथे प्रसादितः ।

रामेणाभूततो नित्यं शांत एव महातपाः ॥१३॥

स हन्यमानः सुभृशं चूर्णितांगास्थिबंधनः ।

निपपात महातेजा धरण्यां गतचेतनः ॥१४॥

इसके अनन्तर क्रोध से परीत आमा वाले उस अत्यन्त नीच चन्द्रगुप्त ने अपने सैनिकों को आज्ञा दे दी थी कि इस मुनि को बल पूर्वक हटा दो ।८। वह मुनि इस लोक में ऐसे थे कि कोई भी उनको प्रधर्षित नहीं कर सकता या उसपि राजा के किसी भी जस कर्त्त्वे जो उपरोक्ता द्वारा दी गयी भास्त्रा

से बलपूर्वक चारों ओर से उसको धेर लिया था । मैनिकों ने सेतु के सभी प्रकाश से बहुत दूर तक उस अृषि को हटाते हुए उस पर दण्डों से—कशाओं से—लाठियों से—ओर घूँसों से पीट रहे थे । १६-१०। वह अृषि इस तरह से पीटे और मारे जाने पर भी बहुत व्यथित होकर क्रोध से मंयुत तो हो गया भी उसने विशेष क्रोध का भाव प्रकट नहीं किया था क्योंकि वे यह भी जानते थे कि क्रोध का न करना सत्पुरुष का परम धन होता है । ११। वह मुनिवर अपने तप के प्रभाव से शत्रु का संहार करने के लिए और अपनी रक्षा करने में भी परम समर्थ थे किन्तु यह सम्पूर्ण जगत् का क्षय है यही विचारते हुए उन्होंने विशेष क्रोध नहीं किया था । १२। वह पूर्वकाल में अत्यधिक क्रोध करने वाले थे किन्तु राम ने अपनी माता के लिए उनको प्रसादित किया था । तभी से फिर वे महान् तपस्वी नित्य राम शान्त हो गये थे । १३। वे मुनि बहुत ही अधिक मारे पीटे गये थे उस मार के प्रहारों से उनकी मङ्ग की अस्थियों के बन्धन सब चूणित हो गये थे । और फिर वह महान् तेज वाले मुनि चेतना शून्य होकर भूमि में गिर गये थे । १४।

तस्मन्मुनौ निपतिते स दुरात्मा विशंकितः ।

किकरानादिशच्छीव्रं धेनोरानयने बलात् ॥ १५ ॥

ततः सवत्सां तां धेनुं बद्धं वा पश्यैर्द्धैर्नुं पाः ।

कशाभिरभिहन्यंत चक्रषुश्च निनीषया ॥ १६ ॥

आकृष्यमाणा बहुभिः कशाभिलंगुडैरपि ।

हन्यमाना भृशं तैश्च चुक्रुधे च पयस्त्वनी ॥ १७ ॥

व्यथितातिकशापातैः क्रोधेन महतान्विता ।

आकृष्य पाणान् सुदृढान् कृत्वाऽत्मानममोचयत् ॥ १८ ॥

विमुक्तपाणवंधा सा सर्वतोऽभिवृता बलैः ।

हुंहारवं प्रकुर्वाणा सर्वतोऽह्यपतद्रुषा ॥ १९ ॥

विषाणखुरपुच्छाग्रैरभिहत्य समंततः ।

राजमंत्रिबलं सर्वं व्यद्रावयदमर्घिता ॥ २० ॥

विद्राश्य किकरान्सर्वस्तरसैव पयस्त्वनी ।

पश्यतां सर्वभूतानां गंगनं प्रत्यपद्यत ॥ २१ ॥

विशेष शंका से युक्त उस दुष्ट आत्मा वाले ने उस महामुनि के धरणी पर गिर जाने पर अपने किंकरों को आदेश दिया था कि बल पूर्वक बहुत ही शीघ्र उस धेनु का आनयन करें अर्थात् उसको ले जावें । १५। इसके पश्चात् हे नृप ! वत्स के सहित उस धेनु को परम सुहङ्ग पाशों से बाँधकर चाबुकों के प्रहारों से उसको पीटते हुए ले जाने की इच्छा से वे किंकर उसे खींच रहे थे । १६। जब बहुत से किंकरगणों के द्वारा वह खींची जा रही थी तथा चाबुकों से और लाठियों से मारी-पीटी जा रही थी तो वह तपस्विनी उनसे बहुत ही क्रोध में भर गयी थी । १७। अत्यधिक चाबुकों के प्रहार उस पर हुए थे तो वह धेनु बहुत व्यथित हो गयी थी और महान क्रोध से भी समन्वित हो गयी थी फिर उस धेनु ने उस सुहङ्ग पाशों को खींचकर अपने आपको उन से छुड़वा लिया था । १८। जब पाशों के बन्धन से वह विमुक्त हो गयी थी तो सैनिकों ने सब ओर सो घेर लिया था । उस समय में क्रोध से दुःहा की ध्वनि करते हुई वह सभी ओर आक्रमण करने वाली हो गयी थी । १९। फिर अत्यन्त अमर्षित होकर उसने अपने सभी ओर में विषाण-खुर और पूँछ के अग्रभाग से सम्पूर्ण राजा के मन्त्री की सेना को वहाँ से दूर खदेड़ दिया था । २०। वह पयस्विनी समस्त किंकरों को वहाँ से दूर भगा कर सबके देखते हुए बड़े ही वैग से अन्तरिक्ष में चली गयी थी । २१।

ततस्ते भग्नसंकल्पाः संभग्नक्षतविग्रहाः ।

प्रसह्य बद्धवा तद्वत्सं जग्मुरेवातिनिघृणाः ॥२२॥

पयस्विनीं विना वत्सं गृहीत्वा किकरैः सह ।

स पापस्तरसा राज्ञः सन्तिर्धि समुपागपत् ॥२३॥

गत्वा समीपं नृपतेः प्रणम्यास्मै प्रशंसकृत् ।

तद्वृत्तांतमशेषेण व्याचचक्षे ससाध्वसः ॥२४॥

इसके अनन्तर वे सब अपने संकल्पों के भग्न हो जाने वाले हो गये थे और उनके सबके शरीर क्षतों से प्रभग्न हो गये थे । वे अत्यन्त जघन्य बलपूर्वक उस धेनु के वत्स को ही बाँधकर वहाँ से चले गये थे । २२। फिर वह पापात्मा बना पयस्विनी के उसके वत्स का ग्रहण करके अपने सेवकों के साथ राजा के समोप में समागत हो गया था । २३। राजा के समीप में गमन करके प्रशंसा करने वाले उसने राजा को प्रणाम किया था और भय से भीत उसने वहाँ का सम्पूर्ण सृत्तान्त राजा के समक्ष में वर्णित किया था । २४।

॥ परशुराम की प्रतिज्ञा ॥

वसिष्ठ उवाच—

श्रुत्वैतत्सकलं राजा जमदग्निबधादिकम् ।

उद्दिग्नचेताः सुभृशं चिन्तयामास नैकधा ॥१॥

अहो मे सुनृशंसस्य लोकयोरुभयोरपि ।

ब्रह्मस्वहरणे वाञ्छा तद्वत्या चातिगहिता ॥२॥

अहो नाश्रीषमस्याहं ब्राह्मणस्य विजानतः ।

वचनं तहि तां जह्यां विमूढात्मा गतत्रपः ॥३॥

इति संचितयन्नेव हृदयेन विदूयता ।

स्वपुरं प्रतिचक्राम सबलः साधुगस्ततः ॥४॥

पुरीं प्रतिगते राजि तस्मिन्सपरिवारके ।

आश्रमात्सहसा राजन्वनिश्चक्राम रेणुका ॥५॥

अथ सक्षतसवर्ज्जं रुधिरेण परिष्लुलम् ।

निश्चेष्टं पतितं भूमी ददर्श पतिमात्मनः ॥६॥

ततः सा विहृतं मत्वा भर्त्तारं गतचेतनम् ।

अन्वाहतेवाशनिना मूर्छिता न्यपतद्भुवि ॥७॥

श्री वसिष्ठजी ने कहा—राजा कीतं वीर्यं यह सम्पूर्ण जमदग्नि मुनि के बध आदि का वृत्तान्त श्रवण करके बहुत ही अधिक उद्दिग्न चित्त वाला हो गया था और वह अनेक प्रकार की बातों के विषय में चिन्तन करने लग गया था । १। अहो ! मैं दोनों ही लोकों में बहुत अधिक क्रूर हो गया हूँ क्योंकि मैंने ब्रह्मत्व के अपहरण करने में अपनी इच्छा की थी और अतीव गहित उस मुनि की हत्या का पाप भी मुझे लग गया है । २। अहो ! मैंने उस ज्ञाता पुरोहित विप्र की बात को नहीं सुना था अर्थात् उसके कथन का पालन नहीं किया था । विमूढ आत्मा वाले निर्लंज भैंने उसकी वाणी का त्याग कर दिया था । ३। यही सोचते हुए बहुत ही दुखित हृदय से वह अपनी सेना और अनुगामियों के ही सहित अपने पुर की ओर चल दिया था । ४। उस राजा के पुरी की ओर चले जाने पर जो कि अपने समस्त परिकर के

साथ था, हे राजन् ! रेणुका सहसा अपने आश्रम से निकली थी ।५। इसके पश्चात उस रेणुका ऋषि पत्नी ने सम्पूर्ण अंगों में क्षतों वाले-रुधिर से लथ-पथ-चेष्टा से रहित अथवि बेहोश और भूमि पर पड़े हुए अपने पति को देखा था ।६। इसके अनन्तर उस रेणुका अपने भर्ता को चेतना से शून्य निहत (मृत) मानकर वज्राधात से चोट खाई हुई के समान मूर्छित होकर भूमि पर गिर गयी ।७।

चिरादिव पुनर्भूमेरुत्थायातीव दुःखिता ।

पतित्वोत्थाय सा भूयः सुस्वरं प्रहरोद ह ॥८॥

विललाप च सात्यर्थं धरणीधूलिधूसरा ।

अश्रुपूर्णमुखी दीना पतिता शोकसागरे ॥९॥

हा नाथ प्रिय धर्मज्ञ दाक्षिण्यामृतसागर ।

हा धिगत्यंतशांत त्वं नैव कांशेत चेदशम् ॥१०॥

आश्रमादभिनिष्क्रांतः सहसा व्यमानर्णवे ।

क्षिप्त्वानाथामगाधे माँ क्व च यातोऽसि मानद ॥११॥

सतां साप्तपदे मंत्रे मुषिताऽहं त्वया सह ।

यासि यत्र त्वमेकाकी तत्र माँ नेतुमर्हसि ॥१२॥

दृष्ट्वा त्वामीदृशावस्थमचिराद्बृद्यं मम ।

न दीर्घं भ्राम्य कठिनाः खलु योषितः ॥१३॥

इत्येवं विलपत्ती मा रुदती च मुहुर्मुहः ।

चुकोश रामरामेति भृशं दुःखपरिप्लुता ॥१४॥

बहुत देर में फिर भूमि से उठकर वह अत्यन्त दुःखित हुई थी और बारम्बार भूमि में उठकर और फिर पछाड़ खाकर गिरती हुई ऊँचे स्वर से उसने रुदन किया था ।८। धरणी की धूल से धूसर होती हुई उसने बहुत ही अधिक विलाप किया था । उसका मुख झर-झर गिरते हुए आँसुओं से संयुक्त और परम दीन होकर शोक के महात् सागर में निमग्न हो गयी थी ।९। उसने अपने करुण क्रम्बन में कहा था हा नाथ ! आप तो मेरे परमप्रिय थे और आप धर्म के पूर्ण ज्ञाता थे । हे स्वामिन् ! आप दाक्षिण्य रूपी अमृत के महात् सागर थे । हा । मुझे चिन्ता है आप एको ब्रह्मात् पापत् भ्राम्य-

बाले थे किन्तु इस प्रकार से आपने कभी भी काढ़का नहीं की थी । १०। हे मान प्रदान करने वाले ! अभी-अभी तो आप अपने आश्रम से निकले थे । तुरन्त ही अनाथ मुझको दुःखों के महान् घोर सागर में पटककर आप कहाँ पर चले गये हैं । ११। सत्पुरुषों की सप्तपदी की मित्रता में मुझे अपने ग्रहण किया था अब मैं आपसे उस सप्तपदी के विपरीत मुखित हो रही हूँ कि आपका सहवास मेरा छूट रहा है । जहाँ पर भी आप अकेले जा रहे हैं वहाँ पर मुझको भी अपने ही साथ मैं ले जाने के योग्य आप हैं । १२। आपको ऐसी मूर्च्छित एवं मृत दशा में पतित हुओं को देखकर भी तुरन्त ही मेरा हृदय विदीर्ण नहीं हो रहा है—यह क्या बात है । निश्चय ही स्थियों का हृदय बहुत ही निष्ठुर होता है । १३। इस प्रकार से महान् घोर विलाप करती हुई और बार-बार कङ्दन करती हुई हे राम ! हे राम ! यह कहकर अस्यन्त दुःख में परिप्लुत होकर रुदन कर रही थी । १४।

तावद्रामोऽपि स वनात्समिद्भारसमन्वितः ।

अकृतव्रणसंयुक्तः स्वाश्रमाय न्यवर्त्तत ॥ १५ ॥

अपश्यद्भयशंसीनि निमित्तानि बहूनि सः ।

पश्यन्तु द्विग्नहृदयस्त्वं प्रापाश्रमं विभुः ॥ १६ ॥

तमायांतमभिप्रेश्य रुदती सा भृशातुरा ।

नवीभूतेव शोकेन प्रारुदद्रेषुका पुनः ॥ १७ ॥

रामस्य पुरतो राजन्भर्तुं व्यसनपीडिता ।

उभाभ्यामपि हस्ताभ्यामुदरं समताहृदयत् ॥ १८ ॥

मार्गे विदितवृत्तांतः सम्यग्रामोऽपि मातरम् ।

कुररीभिव शोकात्ति दृष्ट्वा दुःखमुपेयिवान् ॥ १९ ॥

धैर्यमारोप्य मेधावी दुःखशोकपरिप्लुतः ।

नेत्राभ्यामश्रुपर्णम्भिं तस्थो भूमावघोमुखः ॥ २० ॥

तं तथागतमालोक्य रामं प्राहाकृतव्रणः ।

किमिदं भृगुशाद्दलं नैतत्त्वव्युपपद्यते ॥ २१ ॥

तब तक वह राम समिधाओं के भार का बहन करते हुए अकृत व्रण के सहित वन से अपने आश्रम के लिए बापिस आया था । १५। मार्ग में उस

राम ने किसी आने वाले भय की सूचना देने वाले बहुत से अशकुनों को देखा था और उनको देखते हुए उसका हृदय अधिक उद्धिग्न हो रहा था । फिर वह अपने आश्रम में पहुँचा था । १६। उस अपने पुत्र राम को आते हुए देखकर वह रेणुका अत्यन्त आतुर होकर रुदन करने लगी तथा उसका वह शोक नया सा हो गया था और फिर वह दाढ़ मारकर रुदन कर रही थी । १७। हे राजन् ! अपने पुत्र राम के सामने अपने भत्ता के वियोग जन्म दुःख से बहुत ही उत्पीड़ित होकर उसने दोनों करों से अपने वक्ष-स्थल को भली भाँति ताड़ित किया था । १८। राम ने भी आते हुए मार्ग में ही यह सब वृत्तान्त जान लिया था और जब उसने अपनी जननी को शोक से अधिक आर्त होकर कुररी के समान विलाप-कलाप करती हुई देखा था तो उसको बड़ा ही दुःख प्राप्त हुआ था । १९। राम बहुत ही मेघा सम्पन्न थे उन्होंने धैर्य का सहारा लिया था जो कि उस समय में दुःख और शोक में निमग्न था । उसके दोनों नेत्रों में आँसू भरे हुए थे । वह भूमि पर ही नीचे की ओर मुख करके स्थित हो गया था । २०। उस समय में अकृत द्रण ने राम को उस प्रकार की अवस्था में अवस्थित देखकर राम से कहा था—हे भृगुकुल में शादूल के सहश पुरुष ! यह क्या हो रहा है ? ऐसा शोक मग्न हो जाना आपके लिए उचित प्रतीत नहीं हो रहा है । २१।

न त्वादृशा महाभाग भृशं शोचन्ति कुत्रचित् ।

धृतिमंतो महांतस्तु दुःखं कुर्वति न व्यये ॥ २२ ॥

शोकः सर्वेन्द्रियाणां हि परिशोषप्रदायकः ।

त्यज शोकं महाबाहो न तत्पात्रं भवादृशाः ॥ २३ ॥

ऐहिकामुष्मिकार्थानां नूनमेकांतरोधकः ।

शोकस्तस्यावकाशं त्वं कथं हृदि नियच्छसि ॥ २४ ॥

तत्त्वं धैर्यथनो भूत्वा परिसात्वय मातरम् ।

रुदतीं वत वैधव्यशंकापहतचेतनाम् ॥ २५ ॥

नैवागमनमस्तीह व्यतिक्रांतस्य वस्तुनः ।

तस्मादतीतमखिलं त्यक्त्वा कृत्यं विचितय ॥ २६ ॥

इत्येवं सांत्वमानश्च तेन हुःखसमन्वितः ।

रामः संस्तंभयामास शनैरात्मानमात्मना ॥ २७ ॥

दुःखशोकपरीता हि रेणुका त्वरुदन्मुहुः ।

त्रिसप्तकुत्वो हस्ताभ्यामुदरं समताडयत् ॥२५

हे महाभाग ! आपके समान परम धीर और ज्ञान सम्पन्न पुरुष किसी भी दशा में अत्यधिक शोक नहीं दिया करते हैं । जो धीर्यंशाली महान् पुरुष हुआ करते हैं वे हानि होने पर बहुत दुःख नहीं किया करते हैं । २२। यह शोक बहुत ही बुरा होता है जो कि समस्त इन्द्रियों का परिपोषण करने वाला है । हे महाबाहो ! अब आप इस शोक का परित्याग कर दीजिए । आपके समान पुरुष शोक करने के पात्र नहीं हुआ करते हैं । २३। शोक तो निश्चय ही लौकिक और परमाधिक प्रयोजनों का एकान्त अवरोधक होता है फिर आप अपने हृदय में ऐसे दुखद शोक को अवकाश क्यों दे रहे हैं ? २४। इस कारण से अब आप धीर्य के घन वाले होकर अर्थात् धीरज धारण करके रुदन करवी हुई और विधवा होने की विभीषिका से बुद्धि हीन होकर पड़ी हुई अपनी माता को परि सान्त्वना दीजिए । २५। इस संसार में जो भी वस्तु अतिक्रान्त हो गई है अर्थात् जो प्राणी देह का त्याग कर चल वसा है उसका फिर यहाँ उसी रूप में आगमन कभी भी नहीं होता है । इस कारण से जो कुछ भी व्यतीत हो गया है उस सबका त्याग करके आगे जो भी करने योग्य कुत्य हैं उनका ही परिविन्तम आप करिए । २६। इस रीति से उसके द्वारा सान्त्वना दिये हुए राम ने परम दुःख से समन्वित होते हुए भी धीरे-धीरे अपनी ही आत्मा से अर्थात् अपने ही आत्म ज्ञान से अपने आपको संस्तम्भित दिया था । २७। रेणुका तो महान् और परम धोर शोक से घिरी हुई होकर बारम्बार रुदन कर रही थी और उसने अपने दोनों करों से इकीस बार अपने वक्षःखल को प्रताङ्गित किया था । २८।

तावत्तदंतिकं रामः समभ्येत्याश्रुलोचनः ।

रुदतीमलमंबेति सांत्वयामास मातरम् ॥२६

उवाचापनयन्दुःखादभर्तुं शोकपरायणाम् ।

त्रिसप्तकुत्वो मदिदं त्वयाऽवक्षः समाहतम् ॥२७।

तावत्संख्यमहं तस्माल्क्षत्रजातमशेषतः ॥२८।

हनिष्यो भुति सर्वं त्र सत्यमेतद्ब्रह्मीमि ते ॥२९।

तस्माल्क्षं शोकमुत्सृज्य धीर्यमालिषु सांप्रतम् ॥३०।

नास्त्येव नूनमायातमतिक्रातस्म वस्तुनः ॥३१।

इत्युक्ता रेणुका तेन भृशं दुःखान्विताऽपि सा ।

कृच्छ्राद्वैर्यं समालंब्य तथेति प्रत्यभाषत ॥३३

ततो रामो महाबाहुः पितुः सह सहोदरैः ।

अग्नौ सत्कर्तुं मारेभे देहं राजन्यथाविधि ॥३४

भर्तुं शोकपरीतांगी रेणुकापि दृढव्रता ।

पुत्रान्सर्वान्समाहूय त्विदं वचनमवृवीत ॥३५

इसी बीच में राम ने अपनी जननी के समीप में समुपस्थित होकर अपनी अंखों में भरे हुए अश्रुओं से समन्वित होते हुए रुदन करते वाली रेणुका से कहा था कि धीरज धारण करो—इस तरह से अपनी माता को साम्न्यना दी थी ।२६। अपने स्वामी के वियोग जन्य शोक में डूबी हुई उस माता रेणुका के दुःख को दूर करते हुए उस राम ने कहा था कि आपने जो यह इस समय में इककीस बार अपने वक्षःस्थल को प्रत्ताङ्गित किया है ।३०। उतनी ही बार संख्या में मैं इस कारण से इस भूमण्डल में सर्वत्र क्षत्रिय जाति का पूर्णरूप से हनन करूँगा—यह मैं आपके समक्ष में पूर्णतया सत्य बोल रहा हूँ अर्थात् इस कार्य में लेशमान भी छुटि नहीं होगी ।३१। इसलिए अब आप इस शोक का परित्याग करके अपने हृदय में धैर्य धारण कीजिए। यह तो निश्चित बात है कि जो वस्तु यहाँ से चली गयी है उसका पुनः यहाँ पर आगमन नहीं होता है अर्थात् मृत प्राणी फिर कितना ही चाहे शोक-दुःख किया जावे वापिस नहीं आया करता है । अतः फिर इतना अधिक शोक करना व्यर्थ ही है ।३२। उस राम के द्वारा इस प्रकार से समझाई हुई रेणुका असह्य दुःख के भार से समन्वित थी तथापि बड़ी कठिनाई से धैर्य धारण किया था और अब विशेष शोक में नहीं करूँगी—अपने पुत्र राम को उत्तर दिया था ।३३। हे राजन् ! इसके उपरान्त राम ने अपने सहोदर भाइयों के साथ विधि पूर्वक अपनै पिता के देह को अग्नि में दाह करने के कार्य का आरम्भ किया था ।३४। अपने भर्ता के वियोग से समुत्पन्न शोक से परीत अङ्गों वाली तथा परम सुदृढ़ पतिव्रत धर्म से युक्त रेणुका ने भी अपने समस्त पुत्रों को बुलाकर उनसे यह वचन कहा था ।३५।

रेणुकोवाच—अहं वः पितरं पुत्राः स्वर्गं पुण्यशीलिनम् ।

असह्यदुःखं वैधव्यं सहमाना कथं पुनः

भत्रा विरहिता तेन प्रवत्तिष्ये विनिदिता ॥३७

तस्मादनुगमिष्यामि भत्तरि दयितुं मम ।

यथा तेन प्रवत्तिष्ये परत्रापि सहानिशम् ॥३८

ज्वलंतमिममेवाग्नि संप्रविश्य चिरादिव ।

भतुं मम भविष्यामि पितृलोकप्रियातिथिः ॥३९

अनुवादमृते पुत्रा भवदिभस्तत्र कर्मणि ।

प्रतिभूय न वक्तव्यं यदि मत्प्रियमिच्छथ ॥४०

इत्येवमुक्त्वा वचनं रेणुका हठनिश्चया ।

अग्निं प्रविश्य भत्तरिमनुगंतुं मनो दधे ॥४१

एतस्मिन्नेव काले तु रेणुकां तनयैः सह ।

समाभाष्याऽतिगंभीरा वागुवाचाशरीरिणी ॥४२

रेणुका ने कहा—हे पुत्रो ! मैं अब आप लोगों के परमात्मिक पुण्य शील स्वर्ण में गये हुए पिता का ही मैं अनुगमन यहाँ करना चाहती हूँ सो आप लोग सब मुझे ऐसा करने की आज्ञा देने के लिए योग्य होते हो ॥३६। विघ्वा हो जाने का दुख बहुत ही असत्य होता है उसे सहन करती हुई मैं कैसे-कैसे रहूँगी और अपने स्वामी के विरह वाली विशेष रूप से निन्दित होकर इस संसार में अपना जीवन प्रवृत्त करूँगी ॥३७। इस कारण से मैं अपने परम प्रिय स्वामी का अनुगमन करूँगी अर्थात् उनके ही देह के साथ सती हो जाऊँगी जिससे परलोक में भी निरन्तर उनके ही साथ रह सकूँगी ॥३८। जलती हुई इसी अग्नि में प्रवेश करके कुछ ही समय में मैं अपने स्वामी की पितृलोक में प्रिय अतिथि बन जाऊँगी ॥३९। हे पुत्रो ! यदि आप लोग भेरे अमोप्सित चाहते हैं अर्थात् भेरे प्यारे बनना चाहते हैं तो अनुवाद के बिना उस कर्म में आप लोगों को प्रतिकूल होकर कुछ भी नहीं बोलना चाहिए ॥४०। इस रीति से इन वचनों को ही कहकर रेणुका सुहङ्ग निश्चय वाली हो गयी थी तथा अग्नि में प्रवेश करके अपने स्वामी का अनुगमन करने के लिये उसने मन में ठान ली थी ॥४१। इसी काल में पुत्रों के सहित रेणुका को सम्बोधित करके अर्थात् गम्भीर बिना शरीर बाणी अर्थात् अन्तरिक्ष में कही हुई बाणी ने कहा था ॥४२।

हे रेणुके स्वतनयैगिरं मेऽवहिता शृणु ।

मा कार्षीः साहसं भद्रे प्रवक्ष्यामि प्रियं तव ॥४३

साहसो नैव कर्त्तव्यः केनाप्यात्महितैषिणा ।

न मर्त्तव्यं त्वया सर्वो जीवन्भद्राणि पश्यति ॥४४

तस्माद्दैर्यधना भूत्वा भव त्वं कालकांकिणी ।

निमित्तमंतरीकृत्य किञ्चिदेव शुचिस्मिते ॥४५

अचिरणैव भर्ता ते भविष्यति सचेतनः ।

उत्पन्नजीवितेन त्वं कामं प्राप्स्यसि शोभने ।

भवित्री चिररात्राय बहुकल्याणभाजनम् ॥४६

वसिष्ठ उवाच—

इति तद्वचनं श्रुत्वा धृतिमालंब्य रेणुका ।

तद्वाक्यगौरवाद्वर्षमवापुस्तनयाश्च ते ॥४७

ततो नीत्वा पितुर्देहमाश्रमाभ्यन्तरं मुनेः ।

शायथित्वा निवाते तु परितः समुपाविशन् ॥४८

तेषां तत्रोपविष्टानामप्रहृष्टात्मचेतसाम् ।

निमित्तानि शुभान्यासन्ननेकानि महांति च ॥४९

हे रेणुके ! परम सावधान होकर अपने पुत्रों के सहित मेरी बाणी का श्रवण करो । हे भद्रे ! तुम साहस मत करो । मैं आपका प्रिय वचन कहूँगो । ४३। अपनी आत्मा के हित की अभिलाषा रखने वाले किसी को भी साहस कभी नहीं करना चाहिए । आपको नहीं मरना चाहिए क्योंकि जो प्राणी जीवित रहता है वह शुभ कर्मों को देखा करता है । ४४। इसलिए आप धैर्य के घन वाली होकर काल की प्रतीक्षा की आकाङ्क्षा वाली होओ । हे शुचिस्मित वाली ! भले ही कुछ ही निमित्त को अन्तरित बनाकर ऐसा करो । ४५। बहुत ही स्वल्प समय में आपके भर्ता सचेतन हो जायगे अर्थात् जीवित हो जायगे तो होशोभने ! जब उनमें जीवन समुत्थन हो जायगा तो आपकी कामना पूर्णतया प्राप्त हो जायगी और फिर विशेष अधिक काल पर्यन्त अनेक कल्याणों की भाजन होने वाली होंगी । ४६। वसिष्ठजी ने कहा— इस प्रकार के उस अन्तरिक्ष बाणी को वचन का श्रवण करके रेणुका ने धैर्य

का आलम्बन ग्रहण किया था । और उसके जो पुत्र थे उन्होंने भी उसके वचनों के गौरव से परम प्रसन्नता प्राप्त की थी । ४७। इसके पश्चात् उन्होंने उस मुनि अपने पिता के मृत शरीर को आश्रम को भीतर ले जाकर रख दिया था और उसको वहाँ लिटाकर निवात में वे उसके चारों ओर बैठ गये थे । ४८। जिस समय में वे वहाँ पर बहुत ही खिल आत्मा और मनो वाले बैठे हुए थे तो उनको बहुत से परम शुभ एवं महान् निर्मित हुए थे । अच्छे शकुन दिखाई दिये थे । ४९।

तेन ते किञ्चिदाष्वस्तचेतसो मुनिपुंगवाः ।

निषेदुः सहिता मात्रा कांक्षतो जीवितं पितुः ॥५०॥

एतस्मन्नंतरे राजभृगुवंशधरो मुनिः ।

विध्रेवलेन मतिमांस्तत्रागच्छहृष्ट्या ॥५१॥

अथर्वणां विधिः साक्षाद्वेदवेदांगपारगः ।

सर्वशास्त्रार्थवित्प्राजः सकलासुरवंदितः ॥५२॥

मृतसंजीविनीं विद्यां यो वेद मुनिदुर्लभाम् ।

यथाहतान्मृतान्देवैरुत्थापयति दानवान् ॥५३॥

शास्त्रमौशनसं येन राजां राज्यफलप्रदम् ।

प्रणीतमनुजीवन्ति सर्वेऽद्यापीह पार्थिवाः ॥५४॥

स तदाश्रममासाद्य प्रविष्टोऽत्महामुनिः ।

ददर्श तदवस्थांस्तान्सर्वान्दुखपरिप्लुतान् ॥५५॥

अथ ते तु भृगुं हृष्ट्वा वंशस्य पितरं मुदा ।

उत्थायास्मै ददुआपि सत्कृत्य परमासनम् ॥५६॥

इस रीति से जब शुभ शकुन दिखाई दिये तो उनके देखने से वे श्रेष्ठ मुनिगण परम आश्रमस्त मन वाले हो गये थे अर्थात् उनको कुछ शुभाशा हुई थी । वे सभी अपने पिता के जीवित की आकाढ़का करते हुए माता के साथ वहाँ पर बैठ गये थे । ५०। हे राजन् ! इसी बीच में भृगु के वंश को धारण करने वाले मतिमान् मुनि विधि के बल से यद्यच्छा से ही वहाँ पर समागत हो गये थे । ५१। वे मुनि अथर्व वेद की साक्षात् विधि के स्वरूप वाले थे और अन्य सभी वेदों तथा वेदोंके अङ्ग शास्त्रों के पारगामी मनीषी

थे । वे समस्त शास्त्रों के पारगामी मनीषी थे । वे समस्त शास्त्रों के तात्त्विक अर्थों के ज्ञाता विद्वान् थे और समस्त असुरों के द्वारा बन्दित थे ॥५२। जो मनियों के लिये भी अत्यन्त दुर्लभ होती है ऐसी मृत प्राणियों को भी जीवित कर देने वाली विद्या को जानते थे । जब भी देवों के द्वारा रण में दानव निकृत हो जाया करते हैं तो इसी मृत संजीवनी विद्या से उनको उठा दिया करते हैं अत्यत् जीवित बना देते हैं ॥५३। जिस महामुनि ने और्मनस शास्त्र को प्रणीत किया था जो राजाओं को राज्य के फल का प्रदान करने वाला है और आज भी यहाँ पर नृपगण अनुजीवित रहते हैं ॥५४। वह महामुनि उस आश्रम में पहुँच कर अन्दर प्रविष्ट हुए थे और उन्होंने उस व्यवस्था में अवस्थित सबको दुःख से परिष्कृत हुए देखा था ॥५५। इसके अनन्तर उन सबने वंश के पिता भृगु मुनि का दर्शन प्राप्त करके बड़े ही असन्नद के साथ वे सब खड़े हो गये थे और गोत्रोत्यान देकर सबने उनका बड़ा सरकार किया था तथा प्रणाम करके भृगु मुनि को आसन सम्पित किया था ॥५६।

स चाशीभिस्तु तान्सर्वान्तभिनन्द्य महामुनिः ।

प्रश्न्तु किमिदं वृत्तं तत्सर्वं ते त्यवेदयन् ॥५७

तच्छ्रुत्वा स भृगुः शीघ्रं जलमादाय मंत्रवित् ।

संजीविन्या विद्यया तं सिषेच प्रोच्चरन्निदम् ॥५८

यज्ञस्य तपसो वीर्यं ममापि शुभमस्ति चेत् ।

तेनासौ जीवताच्छ्रीघ्रं प्रसुप्त इव चोत्थितः ॥५९

एव मुक्ते शुभे वाक्ये भृगुणा साधुकारिणा ।

समुत्तस्थावथाच्चिकः साक्षाद्विगुरुरिवापरः ॥६०

हृष्ट्वा तत्र स्थितं वंशं भृगुं स्वस्य पितामहम् ।

तनाम भक्तया तृपते कृतांजलिरुवाच ह ॥६१

जगदभिन्नहवाच—

धन्योऽयं कृतकृत्योऽहं सफलं जीवितं च मे ॥६२

यत्पश्ये चरणी तेऽद्य सुरसुरनमस्तुतौ ।

उन महामुनि ने आशीवदों के द्वारा सबका अभिनन्दन करके उनसे उन्होंने पूछा था कि यह क्या हुआ है । इस पर उन्होंने पूरा वृत्तान्त जो भी वहाँ पर घटनाएँ घटित हुई थीं भृगुमुनि की सेवा में निवेदित कर दी थीं ॥५७॥ यह सारा वृत्तान्त सुनकर मन्त्र शास्त्र के महामनीषी भृगु मुनि ने बहुत ही शीघ्र जल लेकर यह उच्चारण करते हुए सजीवनी विद्या से उस जमदग्नि के देह को अभिषिक्त किया था । यदि मेरे तप का और यज्ञ का योर्य शुभ है तो उसके प्रभाव से यह जमदग्नि सोकर उठे हुए के ही समान शीघ्र ही जीवित हो जावें ॥५८-५९॥ इस प्रकार से इस परम शुभ वाक्य की साधुकारी भृगु मुनि के द्वारा उच्चारित होने पर शीघ्र ही जमदग्नि साक्षात् दूसरे देवगुरु के हो सहश समुत्थित हो गया था ॥६०॥ जब उठा तो उसने वहाँ पर संस्थित-अन्दना करने के थोग्य अपने पितामह भृगु मुनि का दर्शन किया था । हे नृपते ! उस जमदग्नि ने भक्ति की भावना से प्रणाम करके दोनों हाथों को जोड़कर उनसे कहा था ॥६१॥ जमदग्नि ने कहा—मैं परम धन्य तथा कृतकृत्य हो गया हूँ और मेरा जीवन आज सफल हो गया है ॥६२॥ जो सुरगण और असुरों के द्वारा बन्दित आपके चरण कमल हैं उनका आज मैं अपने नेत्रों से अवलोकन कर रहा हूँ । हे मान के प्रदान करने वाले भगवन् ! मैं आपकी इस समय में क्या शुश्रूषा करूँ ? मुझे आप आज्ञा कीजिए ॥६३॥

पुनीह्यात्मकुलं स्वस्य चरणांबुकण्ठिभो ।

इत्युक्त्वा सहसाऽनीतं रामेणार्थं मुदान्वितः ॥६४

प्रददौ पादयोस्तस्य भक्तधानमितकंधरः ।

तज्जलं शिरसाऽधर्त सुकुदुम्बो महामनाः ॥६५

अथ सत्कृत्य स भृगुं प्रपञ्च विनयान्वितः ।

भगवन् कि कृतं तेन राजा दुष्टेन पातकम् ॥६६

यस्यातिथर्य हि कृतवानहं सम्यविधानतः ।

साधुबुद्ध्या स दुष्टात्मा कि चकार महामते ॥६७

वसिष्ठ उवाच—

एवं स पृष्ठो मतिमान्भृगुः सर्वविदीश्वरः ।

चिरं ध्यात्वा समालोच्य कारणं प्राह् भूपते ॥६८

भृगुरुवाच—शृणु तात महाभाग बीजमस्य हि कर्मणः ।

यथा वै कृतवान्पापं सर्वज्ञस्य तवानघ ॥६६

शप्तः पुरा वसिष्ठेन नाशार्थं स महीपतिः ।

द्विजापराधतो मूढ वीर्यं ते विनशिष्यते ॥७०

हे विभो ! आप अपने चरणों के जल कणों के द्वारा अपने ही इस कुल को पुनीत बनाइए । इतना कहकर आनन्द से समन्वित होते हुए सहस्रा राम के द्वारा अर्ध्यं लाया था । ६४। भक्तिभाव से अपनी गर्दन झुकाने वाले उस जमदग्नि ने उन भृगु मुनि के चरणों के प्रक्षालनार्थं जल समर्पित किया था । महान् यश वाले उसे जमदग्नि ने अपने समस्त कुटुम्ब के सहित उस चरणों के तीर्थं जल को अपने शिर पर धारण किया था । ६५। इसके उपरान्त उनका पूर्ण सत्कार करके परम विनय से समन्वित होते हुए भृगु से पूछा था । हे भगवन् ! आप कृपया यत्तजाइए कि उस महान् दुष्ट राजा ने यह क्या पातक किया था ? ६६। जिसका आतिथ्य-सत्कार मैंने बड़े ही विधि-विधान से किया था । हे महामते ! मैंने यह सब बहुत ही अच्छी बुद्धि से किया था और मेरे हृदय में कुछ भी कपट का भाव नहीं था । फिर भी उस आत्मा वाले ने मेरे साथ यह ऐसा क्यों दुर्व्यवहार किया था । ६७। वसिष्ठ जी ने कहा—इस प्रकार से जब जमदग्नि के द्वारा सब कुछ के ज्ञाता ईश्वर और महामतिमान् भृगु से पूछा गया तब हे भूपते ! भृगु मुनि ने बहुत काल पर्यन्त ध्यान करके भली भाँति अवलोकन किया था और फिर इस सब घटना के घटित होने का जो भी कुछ कारण था वह कहा था । ६८। भृगुमुनि ने कहा—हे महान् भाग वाले तात ! इस कुत्सित कर्म का जो भी बीज है उसी को आप सुन लीजिए । हे अनघ ! जिसने हैह्य राजा ने सर्वज्ञ आपका निश्चित स्वप्न से पाप किया था । ६९। बहुत प्राचीन समय में वसिष्ठ मुनि ने विनाश होने के लिये उस राजा को शाप दे दिया था । वह शाप वही था कि हे मूढ़ ! द्विज के अपराध करने से तेरा सब वीर्यं विक्षम विनाश को प्राप्त हो जायगा । ७०।

तत्कथं वचनं तस्य भविष्यत्यन्यथा मुनेः ।

अयं रामो महावीरं प्रसह्य नृपपुंगवम् ॥७१

हनिष्यति महाबाहो प्रतिज्ञां कृतवान्पुरा ।

यस्मादुरः प्रतिहतं त्वया मातर्ममाग्रतः ॥७२

एकविशतिवारं हि भृशं दुःखपरीतया ।

त्रिःसप्तकृत्वो निःक्षत्रां करिष्ये पृथिवीमिमाम् ॥७३

अतोऽयं वार्यमाणोऽपि त्वया पित्रा निरंतरम् ।

भाविनोऽथेस्य च बलात्करिष्यत्येव मानद ॥७४

स तु राजा महाभागो वृद्धानां पर्युपासिता ।

दत्तात्रेयाद्वरेरंशाल्लब्धबोधो महामतिः ॥७५

साक्षाद्भक्तो महात्मा च तद्विष्ट पातकं भवेत् ।

एवमुक्त्वा महाराज स भृगुब्रह्मणः सुतः ।

यथागतं ययौ विद्वान्भविष्यत्कालपर्यन्थात् ॥७६

मुनि तो सर्वदा सत्यवक्ता होते हैं अतः उस महामुनि का वचन किस प्रकार से अन्यथा होगा । यह आपका पुल राम महान वीर्य वाले उस श्रेष्ठ नृप को बल पूर्वक मार देगा । हे महाबाहो ! यह पहिले ही ऐसी प्रतिज्ञा कर चुका है । कारण यह है कि वियोग के शोक से संतप्त होकर मेरे ही समक्ष से अपने वक्षःस्थल को प्रताङ्गित किया है । ७१-७२। आपने अपने उरःस्थल को बहुत ही दुःख से परीत होकर इक्कीस बार प्रताङ्गित किया है सो मैं भी इक्कीस बार ही इस सम्पूर्ण भूमण्डल को क्षत्रियों से रहित करूँगा । ७३। हे मानद ! इसीलिए पिता आपके द्वारा यह निरन्तर रोके जाने पर भी भविष्य में होने वाले अर्थ के बल से ऐसा अवश्य ही करेगा क्योंकि ऐसा ही होनहार है । ७४। यह साक्षात् भक्त और महात्मा है । उसके वध करने में पातक भी होगा । इस रीति से कहकर हे महाराज । उन ब्रह्माजी के पुत्र भृगुमुनि ने फिर यह भी कहा था कि वह राजा महान भाग वाला है और वृद्धों की उपासना करने वाला है । साक्षात् भगवान् हरि के अंश दत्तात्रेय मुनि से उसने ज्ञान प्राप्त किया है और महती मति से सुसम्पन्न है । ऐसे का वध करना भी महान् पातक है । इतना ही कहकर भविष्य में आने वाले काल के पर्यंत से वे विद्वान् भृगु जैसे ही आये थे वैसे ही वहाँ से चले गये थे । ७५-७६।

॥ परशुराम का शिवलोक गमन ॥

सगर उवाच—

ब्रह्मपुत्र महाभाग वद भागेवचेष्टितम् ।

यच्चकार महावीर्यो राजः क्रुद्धो हि कर्मणा ॥१

वसिष्ठ उवाच—

गते तस्मिन्महाभागे भूमी पितृपरायणः ।

रामः प्रोवाच संक्रुद्धो मुच्छ्वासान्मुहमुर्दुः ॥२

परशुराम उवाच—

अहो पश्यत मूढत्वं राजो हयुत्पथगामिनः ।

कार्त्तवीर्यस्य यो विद्वांश्वके ब्रह्मवधोद्यमस् ॥३

दैवं हि बलवन्मन्ये यत्प्रभावान्धरीरिणः ।

शुभं वाप्यशुभं सर्वे प्रकुर्वति विमोहिताः ॥४

शृण्वन्तु ऋषयः सर्वे प्रतिज्ञा क्रियते मया ।

कार्त्तवीर्यं निहत्याजो पितुर्वरं प्रसाधये ॥५

यदि राजा सुरैः सर्वेरिद्राव्यैदनिवैस्तथा ।

रक्षिष्यते तथाप्येनं संहरिष्यामि नान्यथा ॥६

एवमुक्तं समाकर्णं रामेण सुमहात्मना ।

जमदग्निरुवाचेदं पुत्रं साहसभाषिणम् ॥७

राजा सगर ने कहा—हे महाभाग ! हे ब्रह्मपुत्र ! अब आप कृपा करके भागेव के ऐष्टित का वर्णन कीजिए । महान् वीर्ये वाले राम ने राजा के इस कृतिसत कर्म से क्रुद्ध होकर जो भी कुछ किया था ॥१। वसिष्ठ जी ने कहा—जब महाभाग भृगुमुनि वहाँ से चले गये थे तो उस समय में पिता के चरणों की सेवा में तत्पर रहने वाले राम ने बारम्बार अत्युष्ण इवासों का मोचन करते हुए बहुत ही क्रुद्ध होकर कहा था ॥२। परशुराम ने कहा—अहो ! उत्पथ के गमन करने वाले राजा की मूढता को देखिए जिस कार्त्तवीर्य ने परम विद्वान् होते हुए भी एक तपस्वी ब्राह्मण के वद्ध करने का उत्तम किया था ॥३। मैं यह कार्त्तवीर्य हूँ कि वैष्णव नारद / कलापौरुषे होता है

ललिता परमेश्वरी सेना जययात्रा

अथ राजनायिका श्रिता ज्वलितांकुशा फणिसमानपाशभृत् ।

कलनिकवणद्वलयमंक्षवं धनुर्दधती प्रदीप्तकुसुमेषुपंचका ॥१

उदयसहस्रमहसा सहस्रतोऽप्यतिपाटलं निजवपुः प्रभाक्षरम्

किरती दिशासु बदनस्य कांतिभिः सृजतीव

चन्द्रमयमध्रमंडलम् ॥२

दशयोजनायतिपता जगत्वयीमभिवृण्वता

विशदमौकितकात्मना ।

धवलातपत्रवलयेन भासुरा शशिमंडलस्य सखितामुपेयुषा ॥३

अभिवीजिता च मणिकांतशोभिना

विजयादिमुख्यपरिचारिकागणैः ।

नवचन्द्रिकालहरिकांतिकंदलीचतुरेण चामरचतुष्टयेन च ॥४

शक्तश्चकराज्यपदवीमभिसूचयन्ती साम्राज्य-

चिह्नशतमंडितसैन्यदेशा ।

संगीतवाद्यरचनाभिरथामरीणां संस्तूयमानविभवा

विशदप्रकाशा ॥५

वाचामगोचरमगोचरमेव बुद्धेरीहत्तया न

कलनीयमनन्यतुल्यम् ॥६

त्रैलोक्यगर्भपरिपूरितशक्तिचक्रसाम्राज्यसं-

पदभिमानमभिस्पृशन्ती ।

आबद्धभवितविपुलांजलिशेखराणामारादहंप्रथमिका

कृतसेवनानाम् ॥७

इसके अनन्तर वह राज नायिका वहाँ पर विराजमान थी जिसका अंकुश ज्वलित था और जो सर्प के ही तुल्य पाश को धारण करने वाली थी । मधुर क्वणन करने वाला वलय और इक्षु का धनुष धारण किये हुए थी । उसके बाण पाँच कुसुमों के थे ॥१। उद्दित सूर्य के तेज से भी अत्यधिक

जमदग्नि ने कहा—हे राम ! अब आप मेरी बात सुनिए । मैं सत्पुरुषों के सनातन (सवंदा से चले आने वाले) धर्म को बतलाऊँगा । जिसकी सुनकर सभी मानव धर्म के करने वाले हो जाया करते हैं । दा महान् भाग्य वाले साधुजन होते हैं और जो इस संसार से निरन्तर जन्म-मरण के महान् कष्ट से छुटकारा पाने की आकांक्षा रखने वाले हैं वे कभी भी किसी पर प्रकोप नहीं किया करते हैं चाहे कोई उनको प्रताड़ित अथवा निहत भी क्यों न करे तो भी वे कुपित नहीं हुआ करते हैं ॥१॥ जो महाभाग क्षमा ही को धन मानने वाले हैं तथा परम दमनशील और तपस्वी होते हैं उन साधु कर्म करने वालों के लिए निरन्तर लोक अअय होते हैं ॥१०॥ जो महापुरुष हैं वे दुष्टों के द्वारा दण्ड आदि से ताड़ित होते हुए और बुरे वचनों द्वारा निर्भत्सित होते हुए भी कभी मन में खोभ नहीं किया करते हैं वे ही पुरुष साधु कहे जाया करते हैं ॥११॥ ताड़न करने वाले को जो ताड़ित किया करता है वह कभी भी साधु नहीं हो सकता है प्रत्युत पाप का भागी ही होता है । हम लोग तो ब्राह्मण और साधु हैं क्षमा रखने के ही द्वारा परम पूज्य पद को प्राप्त हुए हैं ॥१२॥ सामान्यजन के बध से भी अधिक एक राजा के बध करने में महान् पातक होता है क्योंकि राजा में भगवान् का अंश होता है । इसी कारण से मैं अब आपको निवारित करता हूँ और यह उपदेश देता हूँ कि क्षमा को खारण करो तथा तपश्चर्या करो ॥१३॥ बसिष्ठजी ने कहा—नृपनन्दन ! इस रीति से भली भाँति दिये हुए आदेश को समझ कर राम ने परमाधिक क्षमा के स्वभाव वाले और अतियों के दमन करने वाले अपने पिताजी से कहा ॥१४॥

परशुराम उवाच—

शृणु तात महाप्राज्ञ विज्ञप्ति मम सांप्रदम् ।

भवता शम उद्दिष्टः साधूनां सुमहात्मनाम् ॥१५॥

स शमः साधुदीनेषु गुरुष्वीश्वरभावनः ।

कर्त्तव्यो दुष्टचेष्टेषु न शमः सुखदो भवेत् ॥१६॥

तस्मादस्य वधः कार्यः कार्त्तवीयस्य वै मया ।

देह्याज्ञा माननीयाद्य साधये वैरमात्मनः ॥१७॥

जमदग्निरुवाच—

शृणु राम महाभाग चत्तो मम समाहितः ।

करिष्यसि यथा भावि नैवान्यथा भवेत् ॥१८

इतो ब्रज त्वं ब्रह्मणं पृच्छ तात हिताहितम् ।

स यद्विद्यति विभूस्तत्कर्ता नात्र संशयः ॥१९

वसिष्ठ उवाच—

एव मुक्तः स पितरं न मस्कृत्य महामतिः ।

जगाम ब्रह्मणो लोकमगम्यं प्राकृतैर्जनैः ॥२०

ददर्श ब्रह्मणो लोकं शातकौभविनिर्मितम् ।

स्वर्णप्राकारसंयुक्तं मणिस्तंभैविभूषितम् ॥२१

परशुराम ने कहा—हे महाप्राज्ञ तात ! अब आप मेरी विज्ञप्ति का श्रवण कीजिए । आपने जो शाम बतलाया है वह महान आत्मा वाले साधु पुरुषों का है । वह शाम साधु पुरुषों के प्रति-दीनजनों पर और ईश्वर की भावना से संयुत गुरुजनों में ही करना चाहिए । जो दुष्टजन हैं उनमें किया हुआ शाम कभी भी सुख देने वाला नहीं हुआ करता है । १५-१६। इसी कारण से इस दुष्ट कार्त्तवीर्य का वध तो मेरे द्वारा करने के ही योग्य है । हे सम्मान करने के योग्य ! आज तो आप मुझे अपनी आज्ञा प्रदान कर दीजिए कि मैं अपने बैर का बदला ले लूँ । १७। जमदग्नि मुनि ने कहा—हे महाभाग राम ! अब आप बहुत सावधान होकर मेरे वचन का श्रवण करो । यह मैं जानता हूँ कि जो कुछ होने वाला है उसे ही तू म अवश्य करोगे । इसमें कुछ भी अन्यथा नहीं होगा । १८। अब आप यहाँ से ब्रह्माजी के समीप में चले जाओ और उनसे है तात ! अपना हित और अहित पूछिए । वे विभु जो भी कहेंगे उसी को आप करना—फिर इसमें कुछ भी संशय नहीं होगा । १९। वसिष्ठ जी ने कहा—जब राम के पिता के द्वारा इस प्रकार से राम से कहा गया था तो उस महामति ने अपने पिता के चरणों में प्रणाम किया था और फिर वह ब्रह्माजी के लोक को चला गया था जो लोक सामान्य प्राकृतजनों के द्वारा गमन करने के योग्य नहीं था । २०। उस परशुराम ने ब्रह्माजी के उस लोक को देखा था जो लोक सुवर्ण के ही द्वारा बना हुआ था । उस लोक का प्रकार (चहार दीवारी) भी सुवर्ण से संयुक्त था था और वह लोक मणियों के अनेक स्तम्भों से विभूषित हो रहा था । २१।

स्वर्णस्त्रापस्यत्समासीनं ब्रह्मणमसितोजसम् । १९६ ॥ १९६

रत्नसिंहासने रम्ये रत्नभूषणभूषितम् ॥२२ ॥ १९७ ॥ १९७

सिद्धोद्वेश्च मुनीन्द्रेश्च वेष्टितं ध्यानतत्परः ।

विद्याधरीणां तृत्यं च पश्यतं सस्मितं मुदा ॥२३

तपसां फलदातारं कर्त्तारं जगतां विभुम् ।

परिपूर्णतमं ब्रह्म ध्यायत यतमानसम् ॥२४

गुह्ययोगं प्रबोचतं भक्तवृदेषु संततम् ।

हृष्ट्वा तमव्ययं भक्तचा प्रणनाम भृगूद्वहः ॥२५

स हृष्ट्वा विनतं राममाशीभिरभिनन्द्य च ।

पप्रच्छ कुशलं वत्स कथमागमनं कृथाः ॥२६

संपृष्ठो विधिना रामः प्रोचाचाखिलमादितः ।

वृत्तांतं कार्त्तवीर्यस्य पितुः स्वस्य महात्मनः ॥२७

तच्छ्रुत्वा सकलं ब्रह्मा विज्ञातार्थोऽपि मानद ।

उवाच रामं धर्मिषु परिणामसुखावहम् ॥२८

वहाँ पर उस लोक में अपरिमित ओज से समन्वित विराजमान ब्रह्माजी का उस राम ने दर्शन किया था । जो परम रम्य रत्नों के सिंहासन पर समाप्ति न थे और रत्नों के ही भूषणों के समलंकृत थे । २२। उन ब्रह्माजी को चारों ओर से बड़े-बड़े सिद्धों और मुनीन्द्रों के ध्यान में समाप्त होकर घेर रखा था तथा यह वहाँ पर उनके सामने विद्याधरियों का नृत्य हो रहा था जिस नृत्यकी बड़े ही आनन्द के साथ मुस्कराते हुए ब्रह्माजी देख रहे थे ब्रह्माजी उस समय में तपों के फल को प्रदान करने वाले—जगतों की रचना करने वाले—व्यापक और परिपूर्ण तप ब्रह्म का ध्यान कर रहे थे तथा उनने शपने मन को नियमन्त्रित कर रखा था । २४। जो वहाँ पर भक्तों के समुदाय विद्यमान थे उनको निरन्तर परम गोपनीय योग को वे बतला रहे थे । इस रीति से विराजमान अव्यय उन ब्रह्माजी का भक्तिभाव से दर्शन प्राप्त करके उस भृगुकुल में समुत्पन्न राम ने उनके चरणों में प्रणिपात किया था । २५। उन ब्रह्माजी ने विशेष रूप से नत उस राम को देखकर आशीर्वानों के द्वारा उसका अभिनन्दन किया था । किर उस राम से ब्रह्माजी ने उसका कुशल पूछा था इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने राम से कहा था—हे वत्स ! तुमने किस प्रयोजन से यहाँ पर मेरे समीप में आगमन किया है ? इसका उत्तर ब्रह्माजी ने इस गीत में | RAM SE WPUKHA LOVE TERE JALNE

आरम्भ से सम्पूर्ण वृत्तान्त कहकर उनको सुना दिया था जिसमें कात्तीवीर्य राजा के द्वारा जो कुछ किया गया था और महात्मा अपने पिता जमदग्नि पर जो कुछ दुःख पड़ा था यह सभी हाल था । २७। इस सम्पूर्ण वृत्तान्त का शब्दण करके हे मानव ! यद्यपि ब्रह्माजी को यह सभी बातें पहिले ही विज्ञात थीं तथापि उन्होंने पूछकर सब कुछ सुना था और परिणाम में सुख आवहन करने वाले धर्मिष्ठ राम से कहा था । २८।

प्रतिज्ञा दुर्लभा वत्स यां भवान्कृतवान् नुषा ।

सृष्टि रेषा भगवतः संभवेत्कृपया वटो ॥ २९ ॥

जगत्सृष्टं मया तात संकलेशेन तदाज्ञया ।

तन्नाशकारिणी चैव प्रतिज्ञा भवता कृता ॥ ३० ॥

त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां कर्तुं मिच्छसि मेदिनीम् ।

एकस्य राजो दोषेण पितुः परिभवेन च ॥ ३१ ॥

ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रैः सृष्टिरेषा सनातनी ।

आविर्भूता तिरोभूता हरेरेव पुनः पुनः ॥ ३२ ॥

अव्यर्था त्वत्प्रतिज्ञा तु भवित्री प्रात्तनेन च ।

यद्वायासेन ते कार्यं सिद्धिर्भवितु मर्हति ॥ ३३ ॥

शिवलोकं प्रयाहि त्वं शिवस्याज्ञामवाप्नुहि ।

पृथिव्यां बहवो भूपाः संति शंकरकिकराः ॥ ३४ ॥

विनेवाजां महेशस्य को वा तान्हंतुमीश्वरः ।

विभ्रतः कवचान्यंगे शत्र्णीश्चापि दुरासदाः ॥ ३५ ॥

हे वत्स ! आपकी यह प्रतिज्ञा बड़ी ही दुर्लभ है जिसको क्रोध के वंशीभूत होकर आपने किया है । हे वटो ! यह सृष्टि तो भगवान् की कृपा से ही होती है । २९। हे तात ! यह आपको जात ही है कि उन्हों परम प्रभु की आज्ञा से बड़े ही क्लेश के द्वारा इस समस्त जगत् का सृजन किया है और आपने इसी सृष्टि के नाश करने वाली प्रतिज्ञा कर डाली हैं । ३०। आप तो केवल एक ही राजा के दोष से तथा अपने पिता के तिरस्कार के होने से इस भूमि को इक्कीस बार भूपों से रद्दित करना चाहते हैं । ३१। यह सृष्टि तो ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य और शूद्र-इन चारों वर्णों से समन्वित सर्वदा से ही

चली आने वाली है। इसका आविभवि और तिरोभाव तो बार-बार भगवान् हरि से ही हुआ करता है। ३२। आपकी जो प्रतिज्ञा है वह भी अव्यर्थ होने वाली ही है और प्राकृतन अथवा आयास से आपके कार्य की सिद्धि होने के योग्य होती है। ३३। अब मेरा मत यही है कि शिवलोक में गमन कीजिए और अपनी की हुई प्रतिज्ञा के विषय में भगवान् शिव की आज्ञा को प्राप्त कीजिए। कारण यह है कि इस भूमण्डल में बहुत से भूप भगवान् शिव के सेवक हैं। ३४। बिना महेश्वर की आज्ञा प्राप्त किये हुए किसकी सामर्थ्य है कि उन सब भूपों का हनन कर सके। ये सब शिव के भक्त राजा लोग अपनै अङ्गों में कवच धारण करने वाले हैं तथा दुरासदद को भी ये सब धारण किया करते हैं। ३५।

उपायं कुरु यत्नेन जयदीजं शुभावहम् ।

उपाये तु समारब्धे सर्वे सिद्ध्यंत्युपक्रमाः ॥ ३६ ॥

श्रीकृष्णमन्त्रं कवचं गृह्ण वत्स गुरोहर्हरात् ।

दुर्लभ्यं वैष्णवं तेजः शिवशक्तिर्विजेष्यति ॥ ३७ ॥

त्रैलोक्यविजयं नाव कवचं परमाद्भुतम् ।

यथाकथं च विज्ञाप्य शंकरं लभ दुर्लभम् ॥ ३८ ॥

प्रसन्नः स गुणस्तुभ्यं कृपालुर्दीनवत्सलः ।

दिव्यपाशुपतं चापि दास्यत्येव न संशयः ॥ ३९ ॥

यत्न के साथ उपाय करिए। जप का बीज शुभ का आवाहन करने वाला है। जब उपाय का आरम्भ कर दिया जाता है तो उसके कर देने पर सभी उपक्रम सिद्ध हो जाया करते हैं। ३६। अपने गुरुदेव हर से है वत्स! श्रीकृष्ण का मन्त्र और वज्र का ग्रहण करो। उससे दुर्लभ्य वैष्णव तेज और शिव की शक्ति हो जायगी। जोकि विजय करेगी। ३७। भगवान् शिव के पास एक त्रैलोक्य के विजय करने वाला इसी नाम का परम दुर्लभ कवच विद्यमान है। यह कवच अतीव अत्युत्तम है। जिस किसी भी प्रकार से भगवान् शक्ति को प्रसन्न करके उनसे इसके प्राप्त करने की प्रार्थना करो और इस दुर्लभ वस्तु की प्राप्ति उनसे करो। ३८। आपके गुण गणों से वे भगवान् शिव प्रसन्न हैं और वे बहुत ही दयालु तथा दीनों पर व्यार करने वाले हैं। वे तुम्हें अपना दिव्य पाशुपत अस्त्र भी अवश्य ही प्रवाह कर दी हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। ३९।

परशुराम का शिवाराधन

बसिष्ठ उवाच—

ब्रह्मणो बच्चनं श्रुत्वा स प्रणम्य जगद्गुरुम् ।

प्रसन्नचेताः सुभृशं शिवलोकं जगाम ह ॥१॥

लक्षणोजनमूढ़वै च ब्रह्मलोकाद्विलक्षणम् ।

अथानिर्वचनीयं च योगिशम्यं परात्परम् ॥२॥

वैकुण्ठो दक्षिणे यस्मादगौरीवश्च वामतः ।

यदधो ब्रुवलोकश्च सर्वलोकपरस्तु सः ॥३॥

तपोदीर्यगती रामः शिवलोकं ददर्श च ।

उपमानेन रहितं नानाकौतुकसंयुतम् ॥४॥

वसंति यश्च योगीद्रा सिद्धाः पाण्डुपताः शुभाः ।

कोटिकल्पतपः पुण्याः गता निर्मत्सरा जनाः ॥५॥

पारिजातमुखैर्वैः ओभितं कामधेनुभिः ।

योगेन योगिमा सृष्टं स्वेच्छया शंकरेण हि ॥६॥

शिल्पनां गुरुणा स्वत्ने न दृष्टं विश्वकर्मणा ।

सरोवरशास्तेदिव्यैः पद्मरागविराजितैः ॥७॥

श्री बसिष्ठ जी ने कहा—वह राम ब्रह्माजी के इस बच्चन को सुनकर फिर ब्रह्माजी के चरणों में प्रणाम करके अत्यन्त ही प्रसन्न जित्त बाला होता हुआ वहाँ से शिव के लोक को बला । १। वह शिवका स्तोक वहाँ से एक लाख योजन ऊंचर की ओर था और वह इस ब्रह्माजी के लोक से भी अधिक विलक्षण था । उसका वर्णन बच्चनों के द्वारा तो ही ही नहीं सकता है । ऐसा ही यह अनिर्वचनीय था और पर से भी पर था तथा योगी जनों के ही द्वारा गमन करने के योग्य था । २। जिस शिवलोक से वैकुण्ठ से दक्षिण दिशा में है और गौरी लोक वहाँ है और है तथा जिनके नीचे की ओर ध्रुव लोक है और वह शिवलोक सभी लोकों से पर है । ३। तपश्चयर्ति और बलविक्रम के वीर्य की गति वाले उस राम ने उस शिवलोक का दर्शन कर लिया था । वह अनेक प्रकार के कौतुकों से युक्त था तथा उसकी समानता रखने वाला अन्य कोई भी उपमान ही नहीं था । ४। वह ऐसा लोक था जहाँ

पर केवल महान् योगीन्द्र-सिंह और परम गुरु पाशुपत ही निवास किया करते हैं । जो करोड़ों कल्पों तक तपस्या करने के महान् पुनीत पुण्य वाले—परम शान्त शील-स्वभाव वाले और मर्त्सरता से रहित जन थे वे ही उस लोक के निवास करने वाले थे ॥५॥ वह लोक पारिजात मुख वाले वृक्षों से तथा कामधेनुओं से परम सुखोभित था जिन सबका योगिराजाधिराज भगवान् शङ्कुर ने अपने ही योगबल से हैच्छा पूर्वक सृजन किया था । समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली धेनु कामधेनु कही जाती है तथा मनकी इच्छाओं को पूरा करने वाला दृश्य कल्पवृक्ष होता है उन्हीं का एक भेद परिजात देव वृक्ष है ॥६॥ इस लोक की रचना ऐसी ही परम अद्भुत थी कि विश्व के शिल्पयों के परम गुरु विश्वकर्मा ने कभी स्वप्न में भी नहीं वेदी थी फिर उसके भी द्वारा स्वयं ऐसी रचना का करना तो बहुत ही दूर की बात है । उस लोक में परम दिव्य सैकड़ों ही सरोवर वे जिनके घाट और सौढ़ियाँ तथा सम्पूर्ण प्राकार मण्डल पद्मराग नाम वाली मणियों के द्वारा विनिर्मित था । इन सब सरोवरों से वह लोक परमाधिक शोभा से समन्वित था ॥७॥

शोभितं चातिरम्यं च संयुक्तं मणिवेदिभिः ।

सुवर्णरत्नरचितप्राकारेण समावृतम् ॥८॥

आयूद्धवंबरस्पशि स्वच्छं क्षीरनिभं परम् ।

चतुद्वारसमायुक्तं शोभितं मणिवेदिभिः ॥९॥

रत्नसोपानयुक्तैश्च रत्नस्तम्भकपाटकैः ।

नानाचित्रविचित्रैश्च शोभितं सुमनोहरैः ॥१०॥

तन्मध्ये भवनं रम्ये सिहद्वारोपशोभितम् ।

ददर्श रामो धर्मत्मा विचित्रमिव संगतः ॥११॥

तत्र स्थितौ द्वारपालौ ददर्शतिभयंकरौ ।

महाकरालदंतास्यौ विकृतारत्कलोचनौ ॥१२॥

दग्धण्ठलप्रतीकाशौ महाबलपराक्रमौ ।

विभूतिभूषितांगौ च व्याघ्रचर्दीवरौ च तौ ॥१३॥

त्रिशूलपट्टिगधरौ ज्वलंती ब्रह्मतेजसा ।

त्रौ दद्रवा मरमा भीति किञ्चित्प्रकाश ॥

वह लोक मणियों के द्वारा निर्मित अनेक वेदियों से बहुत ही अधिक सुरम्य एवं शोभित था । इसके चारों ओर सुवर्ण का प्राकार (परकोटा) बना हुआ था । वह लोक बहुत ही ऊँचा था जो कि अन्तरिक्ष का स्पर्श कर रहा था तथा वह इतना अधिक स्वच्छ एवं शुभ्र था कि क्षीर के ही समान दिखाई दे रहा था । इस लोक में चार परम विशाल द्वार बने हुए थे जिनका निर्ताण मणियों की वेदियों से किया गया था । १० इसमें ऊपर चढ़ने के लिए रत्नों के द्वारा विनिर्मित सोपानों को श्रेणियाँ थीं और इसमें जो स्तम्भ तथा कपाट बने हुए थे वे भी सब रत्नों के थे । इस लोक में जो भी रचना थी वह अनेक प्रकार की चित्रविचित्र थी तथा परम मनोहर थी जिससे यह लोक परम शोभित हो रहा था । ११ उस लोक के मध्य में सिद्धों के द्वारा उपशोभित एक सुरम्य भवन बना हुआ था । उस धमतिमा राम ने वहाँ पर पहुँचकर उसकी एक विचित्र स्थल के ही समान देखा था । १२ वहाँ पर उस रामने देखा था कि अतीव भयङ्कर दो द्वारपाल स्थित थे । जिनके महान् कराल मुख और दौत थे तथा बहुत ही विकृत लाल नेत्र थे । १३ वे द्वारपाल ऐसे ही प्रतीत हो रहे थे मानों वे दग्ध पर्वत होवें । वे महान् बल और विक्रम से समन्वित थे । उनके शरीरों में विभूति लगी हुई थी जिससे उनका अङ्ग विभूषित था और वे व्याघ्र के चमों के वस्त्र धारण किये हुए थे । १४ वे दोनों द्वारपाल त्रिशूल और पट्टिश धारण करने वाले थे तथा ब्रह्मतेज से जाज्वल्यमान हो रहे थे । उन को देखकर राम अपने मन में भय से भीत हो गया था बहुत ही विनीत होकर उन से कुछ बोला था । १५

नमस्करोमि वामीशो शंकरं रुष्टुमागतः ।

ईश्वराजां समादाय मामथाऽप्तुतर्वंथ ॥ १५ ॥

तौ तु तद्वचनं श्रुत्वा गृहीत्वाऽज्ञां शिवस्य च ।

प्रवेष्टुमाज्ञां ददतुरीश्वरानुचरौ च तौ ॥ १६ ॥

स तदाज्ञामनुप्राप्य विवेशांतः पुरं मुदा ।

तत्रातिरम्यां सिद्धोघेः समाकीर्णा सभां द्विजः ॥ १७ ॥

हृष्ट्वा विस्मयमापेदे सुगंधबहुला विभोः ।

तत्रापश्यच्छिवं शातं त्रिनेत्रं चन्द्रशेखरम् ॥ १८ ॥

त्रिशूलशोभितकरं व्याघ्रचर्मवरांवरम् ।

विभूतिभूषितांगे च नागयज्ञोपवीतिनम् ॥१९

आत्मारामं पूर्णकामं कोटिसूर्यसमप्रभम् ।

पंचाननं दशभुजं अक्षागुग्रहविग्रहम् ॥२०

योगजाने प्रबृंदितं सिद्धे भ्यस्तकं मुद्रया ।

स्तूयमानं च योगीद्वैः प्रथमप्रकरेमुदा ॥२१

राम ने कहा—इश आप दोनों की सेवा में मेरा प्रणाम स्वीकृत होवे। मैं इस समय में भगवान् शङ्कर के दर्शन प्राप्त करने के लिए ही यहाँ पर समागत हुआ हूँ। अब भगवान् ईश्वर की आज्ञा प्राप्त करके मुझे दर्शन करने के लिए आदेश प्रदान करने को आप योग्य होते हैं । १५। उन ईश्वर के दोनों अनुचरों ने राम के बचनों का अवण करके और फिर शिव की आज्ञा को प्राप्त करके राम को अन्दर प्रवेश करने के लिये उन्होंने आज्ञा देदी थी । १६। उस राम ने भी उनकी आज्ञा प्राप्त करके बड़े ही हृषि के साथ उस अन्तःपुर में प्रवेश किया था। वहाँ पर उसने एक सभा का स्थल देखा था जो इस द्विज ने सिद्धों के सपुदायों से समाकीर्ण देखा था और जिसमें अनेक प्रकार की बड़ी ही सुन्दर सुगन्ध भरी हुई थी तथा वह बहुत ही सुरम्य था। इस सभा-स्थल का अवलोकन करके बड़ा ही विस्मय हो गया था। वहाँ पर फिर उस रामने परम शान्त-तीन लोके धारण करने और मरुतक में चन्द्र को धारण किये हुए भगवान् शिव का दर्शन किया था । १७-१८। भगवान् शंकर के कर में क्रिश्वल शोभित हो रहा था और वे व्याघ के चर्म को वस्त्र के स्थान में पहिने हुए थे। उनके सम्पूर्ण अङ्गों में शमशान की भस्म लगी हुई थी और उनका गरीर नायों के यजोपवीत से शोभित था । १९। प्रभु शंकर अपनी ही आत्मा में रमण करने वाले थे—पूर्ण काम थे और उनकी सभी कामनाएँ परिपूर्ण थीं और करोड़ों सूर्यों के समान परमोज्ज्वल प्रभा थी। वे पाँच मुखों वाले—दश भुजाओं से शोभित और अपने भक्तों पर परमाधिक अनुग्रह करने वाले थे । २०। उस समय में शिव सिद्धों के लिए तर्क की मुद्रा के द्वारा योग और ज्ञान का विषय बतला रहे थे। बड़े-बड़े योगीन्द्र और प्रथमगण बड़े ही आनन्द के साथ उनका स्तवन कर रहे थे । २१।

भैरवेयोगिनीभिश्च बृतं सद्गणेस्तथा ।

मूर्धन्यं नमाम तं दृष्ट्वा रामः परगया मुदा ॥२२

वामभागे कार्त्तिकेयं दक्षिणे च गणेश्वरम् ।

नन्दीश्वरं महाकालं वीरभद्रं च तत्पुरः ॥२३

क्रोडे दुर्गा शतभुजां दृष्ट्वा नत्वाथ तामसि ।

स्तोतुं प्रचक्रमे विद्वान्निरा गद्गदया विभुम् ॥२४

नमस्ते शिवमीशानं विभुं व्यापकमव्ययम् ।

भुजंगभूषणं चोग्रं नृकपालस्तगुज्ज्वलम् ॥२५

यो विभुः सर्वलोकानां सृष्टिस्थितिविनाशकृत् ।

ब्रह्मादिरूपधृगज्येष्ठस्तं त्वां वेद कृपाणंवम् ॥२६

वेदा न शक्ता यं स्तोतुमवाड्मनसगोचरम् ।

ज्ञानबुद्ध्योरसाध्यं च निराकारं नमाम्यहम् ॥२७

शक्रादयः सुरगणा ऋषयो मनवोऽसुराः ।

न यं विदुर्यथातत्वं तं नमामि परात्परम् ॥२८

भगवान् शिव को भैरव—योगिनियाँ और रुद्र के गणों ने चारों ओर से घेर रखा था । ऐशी दशा में विराजमान हुए भगवान शिव का दर्शन करके राम ने बड़े ही हृषि से अपने शिर को उनके चरणों में झुका कर प्रणाम किया था । २२। उनके वाम भाग में स्वामी कार्त्तिकेय थे और दाहिनी ओर गणनायक गणेश विराजमान थे तथा उनके सामने नन्दीश्वर-महाकाल और वीरभद्र स्थित हो रहे थे । २३। शिव की गोद में सौ भुजाओं वाली जगज्जननी दुर्गा विद्यमान थी । इनका दर्शन करके राम ने उनको भी प्रणाम किया था । इसके अनन्तर विद्वान् राम ने अपनी गद्गद वाणी से उन विभु की स्तुति करने का उपक्रम किया था । २४। राम ने कहा था—मैं ईशान-विभु-व्यापक-अव्यय-भुजङ्गों के भूषणों वाले—उप्र और नरों के कपालों की माला के धारण करने से परमोज्ज्वल शिव की सेवा में प्रणाम करता हूँ । २४-२५। जो विभु समस्त लोकों को सृष्टि स्थिति और विनाश के करने वाले हैं ऐसे ब्रह्मा आदि के स्वरूप को धारण करने वाले—सबसे बड़े उन आप कृपा के सामर को मैं जानता हूँ । २६। जिन मन और वाणी के आगोचर प्रभु की स्तुति करने में वेद भी समर्थ नहीं हैं उन ज्ञान और बुद्धि के द्वारा साधन के अयोग्य तथा बिना आकार वाले प्रभु शिव के चरणों में मैं नमस्कार करता हूँ । २७। महेन्द्र आदि देवगण-ऋषिगण-मनु और असुर

ये सब जिनके स्वरूप का अथार्व रूप से नहीं जाना करते हैं उन पर से भी पर प्रभु शिव के लिए मैं प्रणिषात करता हूँ । २८

यस्थांगशेन सृज्यते लोकाः सर्वे चराचराः ।

लीयते च पुनर्यस्मिस्तत्त्वं नमामि जगन्मयम् ॥ २९

यस्येषत्कोपसंभूतो हृताशो दहतेऽखिलम् ।

सोऽद्वैलोकं सपातालं तं नमामि हरं परम् ॥ ३०

पृथ्वीपवनं वह्नयचम्भोनभोयज्वेऽदुभास्कराः ।

मूर्त्त्योऽष्ट्री जगत्पूज्यास्त्वं यजं प्रणमाम्यहम् ॥ ३१

यः कालरूपो जगदादिदत्ता पाता पृथग् रूपधरो
जगन्मयः ।

हत्ता पुनारुद्धवपुस्तथांते तं कालरूपं शरणं प्रपद्ये ॥ ३२

इत्येवमुक्त्वा स तु भाग्यो मुदा पषात्

तस्यांध्रिसमोप आतुरः ।

उत्थाप्य तं बामकरेण लीलया दधे तदा मूर्छिन्
करं कृपार्णवः ॥ ३३

आशीभिरेन्द्र श्यभिन्द्रं सादरं निवेशयामास गणेशपूर्वतः ।

उवाच वामाभिवीक्ष्य चाप्युमां

कृपाद्रैष्टचाऽखिलकामपूरकः ॥ ३४

शिव उवाच—

कस्त्वं वटो कस्य कुले प्रसूतः कि कार्यमुद्दिश्य
भवानिहागतः ।

विनिहिंशाहं तव भक्तिभावतः प्रीतः प्रदद्यां भवतो
मनोगतम् ॥ ३५

जिन पूज्य देव के अंशों के भी अंशों के द्वारा चर और अचर समस्त लोक सृजित हुआ करते हैं और फिर जिसमें ही ये सब लीन हो जाया करते हैं उन जगन्मय प्रभु को मैं नमस्कार करता हूँ । २८। जिन प्रभु के बहुत ही अन्त क्षेत्र में समुद्रों के नाम अस्ति कर्त्त्वात् और पातामात्र के लक्ष्मित अन्यां

इस विश्व को दरध कर देता है उन हर की सेवा में जो पर हैं मैं प्रणाम हूँ । ३०। जिसकी पृथ्वी-यवन-अग्नि-जल-नभ-यज्वा-चन्द्र और भास्कर में आठ मूर्तियाँ जगत् की पूज्य है उन यज्ञ स्वरूप देव को मैं नमस्कार करता हूँ । ३१। जो काल के स्वरूप वाले इस सम्पूर्ण जगत् के आदि करने वाले अर्थात् ऋष्टा हैं इसका पालन करने वाले हैं और अपना यह जगन्मय रूप धारण किया करते हैं । फिर रुद्र का स्वरूप धारण करके अन्त में इस सबका संहार करने वाले हैं उन काल के रूप वाले भगवान् शंकर की मैं शरणागति में प्राप्त होता हूँ । ३२। वह भार्गव राम इस रीति से इतना ही स्तवन करके बड़े ही आनन्द से उन शिव के चरणों के सभी परमाधिक आत्म होकर गिर पड़ा था । तब कृपा के सागर भगवान् शंकर ने अपने बयि करकमल से लीला से ही उसको उठाकर उसके मस्तक पर अपनाकर रख दिया था । ३३। अनेक आशीर्वदनों के द्वारा उसका अभिनन्दन करके बड़े ही आदर के साथ अपने प्रिय आट्मज गणेश के आगे उसको बिठा दिया था । फिर अपनी बामा उमा का अभिवीक्षण करके समस्त कामनाओं के पूर्ण करने वाले शिव ने कृपाद्वं हृषि से उससे कहा था । ३४। शिव ने कहा—हे बटो ! आप यह बताइए कि आप कौन हैं और किसके बंश में आपने जन्म ग्रहण किया है और आप किस कार्य के कराने का उद्देश्य लेकर यहाँ पर समागम हुए हैं—यह सभी कुछ सूचित कीजिए । मैं आपकी इस प्रकार की भक्ति की भावना से आपके ऊपर परम प्रसन्न हो गया हूँ तथा जो भी कुछ आपके मन का अभीप्सित है उस सबको मैं आपके लिए दे दूँगा । ३५।

इत्येवमुक्तः स भृगुर्भृहात्मना हरेण विश्वार्त्तिहरेण सादरम् ।
पुनश्च नत्वा विबुधां पति गुरुं कृपासमुद्रं समुवाच
सत्वरम् ॥ ३६ ॥

परशुराम उवाच ।

भृगोश्चाहं कुले जातो जमदग्निसुतो विभो ।

रामो नाम जगद्वर्णं त्वामहं शरणं गतः ॥ ३७ ॥

यत्कायथिं महं नाथ तव सांनिष्ठ्यमागतः ।

तं प्रसाधय विश्वेश वांछितं काममेव मै ॥ ३८ ॥

मृगयामागतस्यापि कार्यं वीर्यस्य मूषपते ।

आतिथ्यं कृतवाद् देव जमदग्निः पिता मम ॥३६

राजा तं स वल्लोभात्पात्रामास मन्दधीः ।

सा धेनुस्तं शृतं इष्ट्वा गवां लोकं जगाम ह ॥४०

राजा न जोचन्मरणं पितुर्मैम निरागसः ।

जगाम स्वपुरं पश्चान्माता मे प्रारुददभृथम् ॥४१

लज्जात्वा लोकवृत्तजो भृगुर्नः प्रपितामहः ।

आजगाम महादेव ह्यहृष्यागतो वनात् ॥४२

जब इस रीति से वह भृगु कुलोद्भूत राम सम्पूर्ण विश्व की आत्मि के हरण करने वाले महात्मा शम्भु के द्वारा बड़े ही आदर के साथ कहा गया था तब तो उन देवों के स्वामी और कृपा के सामग्र गुरु की मेवा में उस राम ने फिर एक बार प्रणाम करके बहुत ही शीघ्र निवेदन किया था ।३६। परशुराम ने कहा—हे भगवन् ! मैं भृगु मुनि के कुल में समुत्तम्न हुआ हूँ और हे विश्वो ! जमदग्नि वृथि का युज्ञ हूँ । मेरा नाम छोटा सा राम—यह है । आप तो समस्त जगत् की वन्दना करने के योग्य हैं । मैं ऐसे समय में आपकी शरणागति में प्रपत्न हुआ हूँ ।३७। हे नाथ ! जिस कार्य के लिए मैं आपकी सन्तिवि में समागत हुआ हूँ । हे विश्वेश्वर ! उसको आप कुप्ता कर प्रसाधित कीजिए और मेरी कामना है कि अब आप मेरा बाल्हित जो भी है उसे मुझे प्रदान कीजिए ।३८। मेरे पिता जमदग्नि ने हे देव ! मृश्य के लिए वन में आये हुए राजा कार्य वीर्य का बहुत अच्छी तरह से आतिथ्य-सत्कार किया था ।३९। उस महानव्द मति वाले राजा ने लोभ के बणीभूत होकर बलपूर्वक मेरे पिता को मार डाला था । जो एक धेनु यी जिसके ग्रहण करने का लालच राजा के मन में हो गया था वह होमधेनु भी मेरे पिता को मरा हुआ देखकर गां-लोक में चली गयी थी ।४०। राजा ने निरपराध मेरे पिता की मृत्यु के विषय में कुछ भी चिन्ता नहीं की थी और फिर वह अपने नगर में चला गया था । इसके पीछे मेरी माता रेणुका अत्यन्त ददन कर रही थी ।४१। इस घटना का ज्ञान प्राप्त करके लोक के बृत के जाता हमारे पितामह भृगुमुनि हे महादेव ! वहाँ पर आ गये थे । मैं समिधा लेने के लिए उस समय में वन में गया हुआ था सो मैं भी इसी बीच में वहाँ पर समागत ही गया था ।४२।

मया सह युद्धखात्तन्निभ्रातृ न्मात्रा सहैव मे ।

सांत्वयित्वा स मंत्रजोऽनीवयत्पितरं मम ॥४३

आनामते भृगी मातुर्दुःखेनाहं प्रकोपितः ।

प्रतिज्ञां कृतवान्देव सांत्वयन्मातरं स्वकाम् ॥४४

क्रिसप्तकृत्वो यदुरस्ताडितं मातुरात्मनः ।

तावस्संरथमहं पृथ्वीं करिष्ये अववर्जिताम् ॥४५

इत्येवं परिपूर्णं मे कर्त्ता देवो जगत्पतिः ।

महादेवो ह्यतो नाथं त्वस्सकाशभिहागतः ॥४६

वसिष्ठ उवाच—

इत्येवं तद्वचः श्रुत्वा हृष्ट्वा दुर्मुखं हरः ।

बभूवानम्रवदनश्चित्यानः क्षणं तदा ॥४७

एतस्मिन्नंतरे दुर्गा विस्मिता प्राहसद्भृशम् ।

उवाच च महाराज भार्गवं वैरसाधकम् ॥४८

लपस्त्रिवन्दिजपुत्र क्षमां निर्भूपां कर्तुं मिच्छसि ।

त्रिः सप्तकृत्वः कोपेन साहसस्ते महान्वटो ॥४९

उस समय में मैं रुदन कर रहा था और अपनी माता के साथ मेरे

सब भाई भी क्रन्दन कर रहे थे । उस मन्त्र शास्त्र के ज्ञाता मुनि ने सबको सान्त्वना देकर मेरे मृत पिता जमदग्नि को मंजोवनी विद्या से जीवित कर दिया था । ४३। जब तक भृगु मुनि लहरी पर नहीं आये थे उस बीच में मैं माता के वैष्णव के दुख से बहुत ही कुपित हो गया था । हे देव ! मैंने अपनी माता को सान्त्वना देते हुए एक प्रतिज्ञा कर डाली थी । ४४। मेरी माता ने करुण क्रन्दन करते हुई ने जो इकीस बार अपना उरस्थल ताड़ित किया था उसी गणना को लेकर ही मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि इकीस बार ही मैं इस पृथ्वी की अश्वियों से रहित कर दूँगा । ४५। यह इस दीति से की हुई मेरी प्रतिज्ञा परिपूर्ण हो जावे—इसके पूर्ण करने वाले जगत् के पति देवेशवर आप ही हैं । आप तो सब से बड़े देव हैं । हे नाथ ! इसीलिए मैं अब आपके चरणों की सम्मिलिति में यहाँ पर आया हूँ । ४६। वसिष्ठजी ने कहा—भगवान् शंकर ने इस प्रकार से उस राम के वधनों का श्रक्षण करके जग-जगन्नी दुर्गा के मुख को ओर देखा था और उस समय में एक क्षण के लिए

नीचे की ओर अपना मुख करके चिन्तन करने वाले प्रभु शंकर हो गये थे । ४७। इसी अन्तर में जगदम्बा देवी दुर्गा विस्मित होती हुई अत्यधिक हँस गयी थीं । और हे महाराज ! बैर के साधक उस भाग्यव राम से बोली । ४८। जगदम्बा ने कहा था कि हे तपस्विन् ! द्विज के पुत्र ! क्या तुम इस भूमण्डल को भूपों से विहीन करने की इच्छा कर रहे हो ? और वह भी एक-दो बार नहीं प्रत्युत कोप से इक्कीस बार ऐसा करना चाहते हो । हे बटो ! यह तो आपका एक बहुत ही महान साहस है । ४९।

हंतुमिच्छसि निःशस्त्रः सहस्रार्जुनमीश्वरम् ।

भ्रूभंगलीलया येन रावणोऽपि निराकृतः ॥५०॥

तस्मै प्रदत्ता दत्तेन श्रीहरेः कवचं पुरा ।

शक्तिरत्यर्थवीर्या च तं कथं हंतुमिच्छसि ॥५१॥

शंकरः करुणासिद्धः कत्तुं चाप्यन्यथा विभुः ।

न चान्यः शंकरात्पुत्र सत्कार्यं कत्तुंमीश्वरः ॥५२॥

अथ देव्या अनुमतिं प्राप्य शंभुद्यार्णवः ।

अस्यधादभद्रया वाचा जमदग्निसुतं विभु ॥५३॥

शिव उवाच—

अद्यप्रभृति विप्र त्वं मम स्कन्दसमो भव ।

दास्यामि मंत्रं दिव्यं ते कवचं च महामते ॥५४॥

लीलया यत्प्रसादेन कात्तवीर्यं हनिष्यसि ।

त्रिःसप्तकृत्वो निभूपां महीं चापि करिष्यसि ॥५५॥

इत्युक्त्वा शंकरस्तस्मै ददी मंत्रं सुदुर्लभम् ।

त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥५६॥

उस राजा सहस्रार्जुन का बिना ही शस्त्रों वाले होते हुए तुम हनन करने की इच्छा कर रहे हो जिसने अपनी भ्रूभङ्ग की लीला से अर्थात् जरा सी भृकुटी तिरछी करके रावण जैसे महापराक्रमी को भी निराहत कर दिया था अर्थात् अपने सामने निराहत करके भगा दिया था । ५०। उस राजा को तो पहिले दत्तात्रेय मुनि ने श्री हरि का कवच प्रदान किया था और उसका शब्द श्रीरामाकृष्ण (Lord Rāma) का नाम भी उसके लिए आशीर्वाद दिया गया था ।

तुम किस प्रकार से मार देना चाहते हो ? । ५१। भगवान् शंकर तो कहना के अथाह सागर हैं और कहना से ही सिद्ध हो जाते हैं । यह विभु तो परम समर्थ हैं सभी कुछ अन्यथा भी कर सकते हैं । हे पुत्र ! भगवान् शंकर के अतिरिक्त अन्य कोई भी इस कार्य के करने में समर्थ नहीं है । ५२। इसके अनन्तर देवी के इन वचनों से दया के सागर भगवान् शम्भु ने दुर्गा देवी की भी अनुमति प्राप्त कर ली थी और फिर विभु शम्भु ने जमदग्नि के पुत्र से परम भद्र वाणी के ह्रारा कहा था । ५३। भगवान् शिव ने कहा—हे विप्र ! आज से लेकर तुम मेरे पुत्र कात्तिकेय के समान हो जाओगे । हे महान् मति वाले ! मैं आपको परम दिव्य मन्त्र और कवच दे दूँगा । ५४। योंही विनाही किसी आयास के लीला ही से जिनके प्रसाद के प्रभाव से आप कार्त्तवीर्य का हनन कर दोगे और जैसी तुम्हारी प्रतिज्ञा है वह भी पूर्ण होगी और इकीस बार इस पृथ्वी को भी भूपों से रहित तुम कर दोगे । ५५। इतना यह इस रीति से कहकर भगवान् शम्भु ने उस परशुराम के लिए सुदुर्लभ मन्त्र प्रदान कर दिया था और तीनों लोकों का विजय करने वाला परम अद्भुत कवच भी उसे दे दिया था । ५६।

नागपाशं पाशुपतं ब्रह्मास्त्रं च सुदुर्लभम् ।

नारायणास्त्रमाग्नेयं वायव्यं वारुणं तथा ॥५७

गाधिवं गारुडं चैव जूङ्भणास्त्रं महाद्भुतम् ।

गदां शक्तिं च परशुं शूलं दण्डमनुत्तमम् ॥५८

शस्त्रास्त्रग्राममखिलं प्रहृष्टं संबभूव ह ।

नमस्कृत्य शिवं शांतं दुर्गा स्कन्दं गणेश्वरम् ॥५९

परिक्रम्य ययौ रामः पुष्करं तीर्थमुत्तमम् ।

सिद्धं कृत्वा शिवोक्तं तु मन्त्रं कवचमुत्तमम् ॥६०

साधयामास निखिलं स्वकार्यं भृगुनन्दनः ।

निहत्य कार्त्तवीर्यं तं ससैन्यं सकुलं मुदा ।

विनिवृत्तो यृहं प्रागात्पितुः स्वस्य भूगृह्णः ॥६१

नागपाश—पाशुपत और सुदुर्लभ ब्रह्मास्त्र—नारायणास्त्र—आग्नेय—वायव्य—वारुण अस्त्र भी दिये थे । ५७। गान्धिवं-गारुड और परम अद्भुत जूङ्भणा भी प्रदत्त कर दिया था । तीर्था गदा-शक्ति-शूल-उत्तम दण्ड उसको

दे दिया था। इदै इस तरह सम्पूर्ण शस्त्रों और अस्त्रों के समूह को पाकर राम बहुत ही प्रशन्न हुआ था। फिर उस परम्पराम ने परम शान्त शिव को—दुर्गा देवी को—स्वामी कालिकेय को और गणेशबर की सेवा में प्रणिपात करके तथा इन सबकी परिक्रमा करके फिर वह राम परमोत्तम तीर्थ पुष्कर को बहुर्ष से चला गया था और बहुर्ष पर संस्थिति करते हुए भगवान् शिव के द्वारा बताये हुए उत्तम मन्त्र को और कवच को सिद्ध किया था। ४६-६०। फिर भ्रगु नन्दन ने बड़े ही आनन्द से सम्पूर्ण कुल और सेना के सहित राजा कार्त्त्वीर्थ का निहनन करके अपना पूर्ण कार्य साखित किया था। फिर वह राम अपने पिता के धर को विनिवृत्त होकर चला गया था। ६१।

— X —

॥ मृगसृगी कथा ॥

संग्रह उवाच—

ब्रह्मपुत्र महाभाग महान्मेऽनुग्रहः कृतः ।

यदिदं कवचं मह्यं प्रकाशितमनामयम् ॥ १ ॥

ओर्वेणानुगृहीतोऽहं कृतास्त्रो यदनुग्रहात् ।

भवतस्तु कृपापात्रं जातोऽहमधुना विभो ॥ २ ॥

रामेण भाग्यवेद्रेण कार्त्त्वीर्थो नृपो गुरो ।

यथा समापितो वीरस्तन्मे विस्तरतो वद ॥ ३ ॥

कृपापात्रं स दत्तस्य राजा रामः जिवस्य च ।

उभौ तौ समरे वीरो जघटाते कथं गुरो ॥ ४ ॥

वसिष्ठ उवाच—

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि चरितं पापनाशनम् ।

कार्त्त्वीर्थस्य भूपस्य रामस्य च महात्मनः ॥ ५ ॥

स रामः कवचं लब्धया भूत्रं चैव गुरोमुखात् ।

चकार साधनं तस्य भक्त्या परमथा युतः ॥ ६ ॥

भूमिशायी त्रिष्वर्णं स्नानसंध्यापरायणः ।

उवास पुष्करे राम शतवर्षमतंद्रितः ॥ ७ ॥

राजा सगर ने कहा—हे ब्रह्माजी के पुत्र ! आप तो महान् भाग वाले हैं। मेरे ऊपर आपने बड़ा भारी अनुग्रह किया है कि यह कवच जो कि अनामय है, मेरे साथने आपने प्रकाशित कर दिया है ॥१॥ कृतास्त्र में और्बे के द्वारा अनुग्रहीत हुआ है । हे विभो ! इस समय में तो मैं आपकी कृपा का पात्र बन गया हूँ ॥२॥ हे गुरुदेव ! भार्गवेन्द्र परशुराम ने राजा कार्त्त्वीर्य को जो बड़ा ही वीर था जिस प्रकार से समाप्त किया था वह सब विस्तार के साथ मेरे साथने वर्णन करके सुनाइए ॥३॥ वह राजा तो दत्तात्रेय मुनि की कृपा का पात्र था और राम भगवान् शिव की अनुकूल्या का भाजन था । हे गुरुबार ! ये दोनों ही महान् दीर थे । समर क्षेत्र में किस प्रकार से इन्होंने युद्ध किया था ॥४॥ वसिष्ठ जी मेरे कहा—हे राजन् ! अब आप श्रवण कीजिए मैं इस चरित को बताऊँगा क्योंकि यह चरित तो पापों का विनाश कर देने वाला है । यह चरित महान् बलशाली राजा कार्त्त्वीर्य का तथा महात् आत्मा वाले परशुराम के महायुद्ध का है ॥५॥ उन परशुराम ने गुरुदेव के मुख से इस कवच और मन्त्र की दीक्षा प्रहण की थी फिर उन परशुराम ने यही भारी भक्ति से युक्त होकर इनको सिद्ध किया था ॥६॥ भूमि पर इन्हों भयन किया था—तीनों कालों में सम्मोपासना की थी और यह सनातन तथा सन्देशा में परायण हो गये थे । इस प्रकार मैं यह सब साधना करते हुए राम बहुत ही समाहित होकर एक सो बर्षे तक पुष्कर में रहे थे अर्थात् पुष्कर क्षेत्र में ही निवास किया था ॥७॥

समित्युरुषकुलादीनि द्रव्याण्यहरहभृंगोः ।

आनीय काननादभूप प्रायच्छदकृतद्रणः ॥८॥

सततं ध्यानसंयुक्तो रामो मतिमत्ता वरः ।

आराधयामास विभुं कृष्णं कल्पयनाशनम् ॥९॥

तस्येवं यजमानस्य रामस्य जगतीपते ।

गतं वर्षशतं तत्र ध्यानयुक्तस्य नित्यदा ॥१०॥

एकदा तु महाराज रामः स्नातुं गतो महात् ।

मध्यमं पुष्करं तत्र ददण्डित्यमुत्तमम् ॥११॥

मृग एकः समायामो भृग्या युक्तः पलायितः ।

व्याघ्रस्य भृग्यो प्राप्तो धर्मतप्तोऽतिपीडितः ॥१२॥

पिपासितो महाभाग जलपानसमुत्सुकः ।
 रामस्य पश्यतस्तत्र सरसस्तटमागतः ॥१३
 पञ्चान्मृगी समावाता भीता सा चकितेक्षणा ।
 उभौ तौ पिदतस्तत्र जलं शंकितमानसौ ॥१४

हे भूप ! अकृतव्यण प्रतिदिन उस भृगुवंशज परशुराम के लिए बन से समिधा पुष्प और कुशा आदि ब्रह्मणों को लाकर दिया करता था ।८। मतिमानों में परम श्रेष्ठ परशुराम निरन्तर ध्यान में संलग्न होकर समस्त कल्पणों के विनाश करने वाले विभु श्रीकृष्ण की आराधना किया करता था ।९। हे अगतीपते ! इस रीति से यज्ञ करते हुए और वहाँ पर नित्य ही ध्यान में से सत्त रहने वाले परशुराम को एक सौ वर्ष व्यतीत हो गये थे ।१०। हे महाराज ! एक बार वह महान राम स्नान करने के लिए मध्यम पुष्कर में गया था और वहाँ पर उसने उत्तम आश्चर्य का अवलोकन किया था ।११। एक भृग मृगी के साथ दोड़ा हुआ वहाँ पर आया था जो एक व्याघ की मृगया को प्राप्त हो रहा था तथा ध्राम से सन्तुष्ट होकर अस्थस्त पीड़ित था ।१२। हे महाभाग ! बहुत ही प्यासा था और जलपान करने के लिए बड़ा ही उत्सुक हो रहा था परशुराम उसको देख रहे थे कि वहाँ पर उस सुरोवर के तट पर समागत ही गया था ।१३। इसके पीछे-पीछे मृगी भी वहाँ पर आ गयी थी जो बहुत ही डरी हुई थी और उसके नेत्र चकित हो रहे थे । वे दोनों ही बहुत शक्ति भव वाले होते हुए वहाँ पर जलपान कर रहे हैं ।१४।

तावत्समागतो व्याघो बाणपाणिर्धनुद्वृरः ।
 स दृष्ट्वा तत्र संविष्टं रामं भार्गवनन्दनम् ॥१५
 अकृतव्यणसंयुक्तं तस्थौ द्वूरकृतेक्षणः ।
 स चिन्तयामास तदा शंकितो भृगुनन्दनात् ॥१६
 अयं रामो महावीरो दुष्टानामंतकारकः ।
 कथमेतस्य हन्मयेतो पश्यतो मृगयामृगो ॥१७
 इति चिन्तासमाविष्टो व्याघो राजन्यसत्तम ।

रामस्तु तौ मृगी हृष्ट्वा पिबन्तौ सभयं जलम् ।
 तर्क्यामास मेधावी किमत्र भयकारणम् ॥१६
 नैवात्र व्याघ्रसंनादो न च व्याघो हि हृश्यते ।
 केनेतो कारणेनाहो शंकितौ चकितेक्षणौ ॥२०
 अथ वा मृगजातिःहि निसर्गच्चकितेक्षणा ।
 येनेतो जलपानेऽपि पश्यतश्चकितेक्षणौ ॥२१

उसी समय में व्याघ्र धारण किये हुए हाथ में बाण ग्रहण कर वहाँ पर व्याघ्र भी आ गया था । उस व्याघ्र ने वहाँ पर विराजमान परशुराम को देखा था । १५। उस राम ही समीप में अकृत व्रण भी बैठा हुआ था । वह व्याघ्र दूर तक अपनी हृष्टि डाले हुए वहीं पर ठहर गया था और उस व्याघ्र का मन भृगुनन्दन राम से उस समय में शंकित हो गया था और विचार किया था । १६। यह परशुराम तो महान वीर हैं और दुष्टों का विनाश कर देने वाला है । अब मैं इसके देखते हुए इन दोनों शिकार वाले मृगी और मृग का हनन करूँ । १७। हे राजन्यों मैं परम श्रेष्ठ ! वह व्याघ्र इस प्रकार से चिन्ता में डूबा हुआ परशुराम के भय से संत्रस्त मन वाला होकर वहीं पर स्थित हो गया था । १८। परशुराम ने उन दोनों मृगों को देखा था कि बड़े ही भय के साथ वहाँ पर जल पी रहे थे । उस मेधावी राम ने मन में विचार किया था कि यहाँ पर इनके लिए भय होने का क्या कारण है । १९। यहाँ पर किसी व्याघ्र की गर्जना की छवनि भी नहीं है और न यहाँ पर कोई व्याघ्र ही दिखाई दे रहा है किर किस कारण से ये दोनों मृग शंकित नेत्रों वाले तथा चकित हृष्टि से युक्त हो रहे हैं—यह बड़े आश्चर्य की बात है । २०। अथवा यही कारण हो सकता है कि इन मृगों की जाति ही स्वाभाविक रूप से चकित नेत्रों वाली हुआ करती है । इस कारण से ही ये दोनों जलपान करने में भी चकित नेत्रों वाले होते हुए देख रहे हैं । २१।

नैतावत्कारणं चात्र कि तु खेदभयातुरो ।

लक्षयेते खिन्तसवर्गी कम्पयुक्तौ यतस्त्वमी ॥२२

एवं संचित्य मतिमान्स तस्थौ मध्यपुष्करे ।

शिष्येण संयुतो रामो यावत्तौ चापि संस्थितौ ॥२३

पीत्वा जलं ततस्तो तु वृक्षच्छायासमाप्तिः ।

रामं हृष्ट्वा महात्मानं कर्था तौ अक्तुमुद्दा ॥२४

मृगयुवाच—कांतं चात्रैव तिष्ठावो यावद्वामोऽन्न संस्थितः ।

अस्य वीरस्य सानिष्ठे भयं नैवावयोर्भवेत् ॥२५

अत्राप्यागत्य चेद्व्याधो श्यावयोः प्रहरिष्यति ।

हृष्टमात्रो हि मुनिना भस्मीभूतो अविष्यति ॥२६

इत्युक्तं वचने मृग्या रामदर्शननुष्ठया ।

मृगश्चौकाच हृष्णं समाविष्टः प्रिया स्वकाम् ॥२७

एवमेव महाभागे यद्वै वदसि भामिनि ।

जानेऽहमपि रामस्य प्रभावं सुमहात्मनः ॥२८

यहाँ पर इतना ही कारण नहीं है किन्तु ये दोनों तो बड़े लेद और भय से आत्मर हो रहे हैं—ऐसे ही दिखलाई दे रहे हैं। क्योंकि इनके सभी अङ्ग चिन्तनता से संयुत हैं और ये दोनों ही कम्प से प्रकटित हो रहे हैं ॥२२। इस तरह से चिन्तन करके भलिमाद् वह परशुराम भव्य पुष्कर में संस्थित हो गया था और उसके साथ में शिव्य भी था। वह राम जब तक वहाँ बढ़ा रहा था तब तक वे दोनों मृग भी वहाँ पर संस्थित रहे थे ॥२३। जल-पान करके वे दोनों मृग एक वृक्ष की छुया का आश्रय प्रहृण करके बैठ गये थे। उस महान् आत्मा वाले परशुराम का दर्शन करके उन दोनों ने बड़े ही आनन्द के साथ आपस में बातचीत की थी ॥२४। मृगी ने मृग से कहा—हे कान्त ! हम दोनों यहाँ पर स्थित रहेंगे जब तक यह परशुराम यहाँ पर संस्थित रहते हैं। इस दोनों के समीप में हम दोनों को कोई भय नहीं होगा ॥२५। यदि यहाँ पर भी व्याध आकर रूप दोनों पर प्रहार करेगा तो इस मुनि के द्वारा केवल देखने ही से वह भस्मीभूत हो जायगा ॥२६। परशुराम के दर्शन करने से परम सन्तुष्ट भूगी के द्वारा इस प्रकार से यह बचन कहने पर वह मृग भी बड़े ही दृढ़ से समाविष्ट होकर अपनी प्रिया से बोला था ॥२७। हे महाभागे ! यह बात तो इसी प्रकार की है। हे भामिनि ! आप यह बात निश्चित ही कह रही हैं। मैं भी परम महात्म आत्मा वाले राम के प्रभाव को अच्छी तरह से जानता हूँ ॥२८।

योऽयं संहृश्यते चास्य पाष्वेण शिष्योऽकृतव्रणः । २५
 स चानेन मताभागस्त्रातो व्याघ्रभयातुरः ॥२६
 अयं रामो महाभागे जमदग्निसुतोऽनुजः ।
 पितरं कार्त्तवीर्येण हृष्ट्वा चैव तिरस्कृतम् ॥२७
 चकारातितरां क्रुद्धः प्रतिज्ञां नुपघातिनीम् ।
 तत्पूर्तिकामो ह्यगद्ब्रह्मलोकं पुरा ह्ययम् ॥२८
 स ब्रह्मा दिष्टवांश्चैनं शिवलोकं व्रजेति ह ।
 तस्य त्वाज्ञां समादाय गतोऽसौ शिवसन्निधिम् ॥२९
 प्रोवाचखिलवृत्तांतं राजशचाप्यात्मनः पितुः ।
 स कृपालुम्भंहादेवः सभाज्य भृगुनन्दनम् ॥३०
 ददी कृष्णस्य सन्मंत्रमभेद्यं कवचं तथा ।
 स्वोयं पाशुपतं चास्त्रमन्यास्त्रग्राममेव च ॥३१
 विसर्जयामास मुदा दत्त्वा शस्त्राणि चादरात् ।
 सोऽयमत्रागतो भद्रे मंत्रसाधनतत्परः ॥३२

जो इस महापुरुष के समीप में अकृतव्रण नाम वाला एक शिष्य दिखाई दे रहा है उसको इसी महापुरुष ने ही व्याघ्र के भय से जब यह आतुर हो गया तो इसकी व्याघ्र से सुरक्षा की थी ।२६। हे महाभागे ! यह राम है जो जमदग्नि मुनि का पुत्र है । इसने ही अपने पिता को राजा कार्त्तवीर्य के द्वारा निराकृत किया हुआ देखा था और उस समय में इसने अत्यन्त क्रुद्ध होकर नृपों के विधात करने की प्रतिज्ञा की थी जौर उस प्रतिज्ञा की पूर्ति की कामना वाला यह पहिले ब्रह्मलोक में गया था ।३०-३१। वहाँ पर इसको यह निर्देश किया था कि यह शिवलोक में चला जावे । उन ब्रह्माजी की आज्ञा को प्राप्त करके फिर यह राम भगवान् शिव की सन्निधि में प्राप्त करके फिर यह राम भगवान् शम्भु के समक्ष राजा का, पिता का और अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदित किया था । वे महादेव बहुत ही कृपालु थे उन्होंने इस भृगुनन्दन का स्वागत किया था ।३३। फिर उन शङ्कुर प्रभु ने श्रीकृष्ण का एक उत्तम मन्त्र और न भेदन करने के योग्य एक कवच इसको

प्रदान कर दिया था तथा अपना पाशुपत अस्त्र और अन्यान्य बहुत से अस्त्रों का समुदाय इसको प्रदान किये थे । ३४। बड़े आदर के साथ प्रीति से इन सब शस्त्रास्त्रों को प्रदान करके भगवान् शिव ने वहाँ से विदा किया था । हे भद्रे ! वही राम इस समय में मन्त्रों की साधना में तत्पर होता हुआ यहाँ पर समागत हुआ है । ३५।

नित्यं जपति धर्मतिमा कृष्णस्य कवचं सुधीः ॥३६॥
 शतबषीणि चाण्यस्य गतानि सुमहात्मनः ॥३६॥
 मंत्रं साधयतो भद्रे न च तत्सिद्धिरेति हि ॥३७॥
 अत्रास्ति कारणं भक्तिः सा च वै त्रिविधा मता ॥३७॥
 उत्तमा मध्यमा चैव कनिष्ठा तरलेक्षणे ॥३८॥
 शिवस्य नारदस्यापि शुक्रस्य च महात्मनः ॥३८॥
 अम्बरीषस्य राजर्णे रंतिदेवस्य मारुतेः ॥३९॥
 बलेर्विभीषणास्यापि प्रह्लादस्य महात्मनः ॥३९॥
 उत्तमा भक्तिरेवास्ति गोपीतामुद्घवस्य च ॥४०॥
 वसिष्ठादिमुनीशानां मन्वादीनां शुभेक्षणे ॥४०॥
 मध्या च भक्तिरेवास्ति प्राकृतान्यजनेषु सा ॥४१॥
 मध्यभक्तिरयं रामो नित्यं यमपरायणः ॥४१॥
 सेवते गोपिकाधीशं तेन सिद्धिं न चागतः ॥

वरिष्ठ उवाच—

इत्युक्ता त्वरितं कांतं सां मृगी हृष्टमानसा ॥४२॥

पुनः प्रच्छ भक्तेस्तु लक्षणं प्रेमदायकम् ।

मृग्युवाच—

साधु कांत महाभाग वचस्तेऽलौकिकं प्रिय ॥

ईट्टर् ज्ञानं तव कर्थं संजातं तद्वदाधुना ॥४३॥

सुधी यह धर्मतिमा परशुराम नित्य ही भगवान् श्रीकृष्ण के कवच का यहाँ पर जप कर रहा है । इस महात्मा को जाप करते हुए एक सी वर्ष तो करनी चाहिए है । यह महात्मा साधारण लोकास द्वारा किया जाना

इसको उसकी सिद्धि नहीं हो रही है। इस साधना में मुख्य कारण भक्ति ही होता है। वह भक्ति तीन प्रकार की होती है, ऐसा माना गया है। ३७। हे चञ्चल नेत्रों वाली प्रिये ! उस भक्ति के उत्तम-मध्यम और कनिष्ठ—ये तीन भेद हुआ करते हैं। अब यह बतलाता है कि उत्तमा भक्ति किन-किन महापुरुषों में विद्यमान है—भगवान् शिव-देवर्षि नारद-महात्मा शुकदेव-राजर्षि अम्बरीष-राजा रन्तिदेव-पवनसुत हनुमान्-राजा वलि-दानव विभीषण और महात्मा प्रह्लाद-इन में परमोत्तमा भक्ति होती है। ३८-३९। अज की गोपियों में और उद्धव में भी उत्तम प्रकार की ही भक्ति विद्यमान है। हे शुभेक्षणे ! जो वसिष्ठ मुनिश हैं तथा मनु आदि हैं उनमें भी मध्यम श्रेणी की ही भक्ति होती है। इसके अतिरिक्त अन्य सभी जनों में कनिष्ठ श्रेणी की प्राकृत भक्ति हुआ करती है। यह जो परशुराम है इसमें मध्य श्रेणी वाली ही भक्ति है जो कि नित्य ही यम-नियमों में परायण हो रहा है। ४०-४१। यह राम गोपिकाओं के अद्वीश्वर भगवान् का सेवन तो कर रहा है किन्तु यह सिद्धि को अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। महामुनीन्द्र वसिष्ठ जी ने कहा—जब उस मृग के द्वारा अपनी प्रिया मृगी से कहा गया था तो उस मृगी ने परम प्रसन्न मन बाली होकर शीघ्र ही अपने स्वामी से प्रश्न किया था। ४२। उस मृगी ने फिर उस भक्ति का प्रेम प्रदान करने वाला लक्षण अपने स्वामी से पूछा था। मृगी ने कहा—हे कान्त ! आप तो महान् भाग वाले हैं। हे प्रिय ! आपके ये बचन तो बहुत ही अच्छे और अलौकिक हैं। अब आप कृपा करके मुझे यह बतलाइए कि इस प्रकार का विशद ज्ञान आपके हृदय में कैसे समुद्भूत हो गया है। ४३।

मृग उवाच—

शृणु प्रिये महाभागे ज्ञानं पुण्येन जायते ॥४४॥

तत्पुण्यमद्य संजातं भार्गवस्यास्य दर्शनात् ।

पुण्यात्मा भार्गवश्चायं कृष्णभक्तो जितेद्रियः ॥४५॥

गुरुशुश्रूषको नित्यं नित्यत्तेमित्तिकादरः ।

अतोऽस्य दर्शनाज्जातं ज्ञानं मेऽद्यैव भास्मिनि ॥४६॥

त्रैलोक्यस्थितस्त्वानां शुभाशुभनिदर्शकम् ।

अद्यैव विदितं मेऽभूद्रामस्यास्य महात्मनः ॥४७॥

चरितं पुण्यदं चैव पापधनं श्रृण्वतामिदम् ।

यद्यत्करिष्यते चैव तदपि ज्ञानगोचरम् ॥४८

योत्तमा भक्तिराख्याता तां विना नैव सिद्ध्यति ।

कवचं मंत्रसहितं ह्यपि वषयुतायुतेः ॥४९

अपनी परम प्रिया के द्वारा इस रीति से पूछे जाने पर उस मृग ने कहा था—हे महान् भाग वाली प्रिये ! अब आप श्रवण कीजिए कि यह ज्ञान जो होता है वह परम उत्कृष्ट पुण्य से ही हुआ करता है । ४४। वह उस प्रकार का पुण्य आज इन्हीं महापुरुष भार्गव परशुराम के दर्शन प्राप्त करने ही से समुत्पन्न हो गया है । यह भार्गव महान् पुण्यात्मा हैं और यह भगवान् श्रीकृष्ण के परम भक्त तथा अपनी इन्द्रियों को जीत लेने वाले हैं । ४५। हे भामिनि ! यह राम अपने गुरु की शुश्रूषा करने वाले हैं और प्रतिदिन नित्य कर्मों तथा नैमित्तिक कर्मों में बड़ा आदर करने वाले हैं । इसलिए आज ही इस महापुरुष के दर्शन से मेरे हृदय में यह अद्भुत ज्ञान समुत्पन्न हो गया है । ४६। यह मेरा ज्ञान ऐसा है जो इस त्रिभुवन में संस्थित जीव हैं उन सबके शुभ और अशुभ कर्मों को बता देने वाला है और आज ही मुझे महात्मा इस परशुराम का भी पूर्ण चरित विदित हो गया है । ४७। इसका चरित बहुत ही पुण्य का देने वाला है और समस्त पापों का विनाशक है । अब तुम इसका श्रवण करो । यह राम भविष्य में जो-जो भी कर्म करेंगे वह भी सब मेरे ज्ञान का गोचर हो रहा है अर्थात् मुझे सब ज्ञात हो गया है । ४८। मैंने जो आपके सामने उत्तम प्रकार की भक्ति का वर्णन किया था उस तरह भी भक्ति के बिना इस परशुराम को यह मन्त्र और कवच दश सहस्र वर्षों में भी कभी सिद्ध नहीं होगा । ४९।

यद्ययं भार्गवो भद्रे ह्यगस्त्यानुग्रहं लभेत् ।

कृष्णप्रेमामृतं नाम स्तोत्रमुत्तमभक्तिदम् ॥५०

ज्ञात्वा च लप्स्यते सिद्धि मंत्रस्य कवचस्य च ।

स मुनिज्ञतितत्त्वार्थः सानुकंपोऽभयप्रदः ॥५१

उपदेक्ष्यति चैवैनं तत्त्वज्ञानं मुदावहम् ।

श्रीकृष्णचरितं सर्वं नामभिर्ग्रथितं यतः ॥५२

कृष्णप्रेमामृतस्तोत्राज्ञास्यतेऽस्य महामतिः ।

ततः संसिद्धकवचो राजानं हैहयाधिपम् ॥५३

हत्वा सपुत्रामात्यं च सुहृद्वलवाहनम् ।

त्रिःसप्तकृत्वो निभूंपां करिष्यत्यवनीं प्रिये ॥५४

वसिष्ठ उवाच—

एवमुक्त्वा मृगो राजन्विरराम मृगीं ततः ।

आत्मनो मृगभावस्य कारणं ज्ञातवांश्च ह ॥५५

यदि यह भार्गव परशुराम है भद्रे ! अगस्त्य मुनि की कृपा को प्राप्त कर लेवे तो इसको सिद्धि हो सकती है । अगस्त्य मुनि उत्तम भक्ति के देने वाले कृष्ण प्रेमामृत नाम का स्तोत्र जानते हैं ।५०। उन महामुनि की कृपा से यदि उस स्तोत्र का ज्ञान प्राप्त कर लेवे तो उसको जानकर यह मन्त्र की और कवच की सिद्धि को प्राप्त कर लेगा । वह अगस्त्य मुनि तो तत्त्वों के अर्थ को जाने हुए हैं और वे बहुत ही दयालु तथा अभय के प्रदान करने वाले हैं ।५१। वे मुनि उस आनन्द-प्रद तत्त्व ज्ञान का इस राम के लिये उपदेश कर देंगे क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण का सम्पूर्ण चरित उनके सुनामों से ही ग्रथित है ।५२। श्रीकृष्ण मृत स्तोत्र से इस राम की महामति ज्ञान प्राप्त कर लेगी । फिर इसको इस कवच की संसिद्धि हो जायगी और कवच की सिद्धि वाला यह राम हैहयों के अधिय राजा का हनन पुत्र-पौत्र, मन्त्रीगण, मित्र-वर्ग-सेना और समस्त वाहनों के सहित करके है प्रिये ! फिर वह परशुराम इस मोदिनी को निश्चित रूप से इकीस बार अत्रिय राजाओं से रहित कर देगा—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । श्री वसिष्ठजी ने कहा—इतना यह सब अपनी प्रिया मृगी से कहकर है राजन् ! फिर वह मृग शान्त हो गया था और उसने मृग होने के भाग के कारण को भी उस समय में जान लिया था ।५३-५४-५५।

—X—

॥ परशुराम का अगस्त्याश्रम में आगमन ॥

सगर उवाच—

मुने परमतत्त्वज्ञ ध्यानज्ञानार्थकोविद् ।

भगवद्भक्तिसंलीनमानसानुग्रहः कृतः ॥१

त्वयापि हि महाभाग यतः शंससि सत्कथाः ।

श्रुत्वा मृगमुखात्सर्वं भार्गवस्य विचेष्टितय् ॥२॥

भूत भवद्भविष्यं च नारायणकथान्वितम् ।

पुनः प्रपञ्च कि नाथ तन्मे बद सविस्तरम् ॥३॥

वसिष्ठ उवाच—

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि मृगस्य चरितं महत् ।

यथा पृष्ठं तथा सोऽस्यै वर्णयामास तत्त्ववित् ॥४॥

श्रुत्वा तु चरितं तस्य भार्गवस्य महात्मनः ।

भूयः प्रपञ्च तं कांतं ज्ञानतत्त्वार्थमादरात् ॥५॥

मृग्युवाच—

साधु साधु महाभाग कृतार्थस्त्वं न संशयः ।

यदस्य दर्शनात्तेऽच्च जातं ज्ञानमतींद्रियम् ॥६॥

अथातश्चात्मनः सर्वं ममापि वद कारणम् ।

कर्मणा येन संप्राप्तावावां तिर्यग्जनि प्रभो ॥७॥

राजा नगर ने कहा—हे मुनिवर ! आप तो परम तत्त्वों के ज्ञाता हैं और आप तत्त्वों के इयान तथा ज्ञान के अर्थों के महान् मनीषी हैं । आप तो भगवान् की भक्ति से संलीन मन वाले हैं और उसी मन से आपने अनुग्रह किया है । हे महाभाग ! आप तो बहुत ही अच्छी कथाओं का कथन कर रहे हैं । उस मृगी ने अपने स्वामी मृग के मुख से भार्गव परशुराम का सम्पूर्ण विचेष्टित श्रवण करके तथा भूत-बत्तमान और भविष्य में होने वाले रामायण की कथा से समन्वित वृत्त का स्वरण करके हे नाथ ! उसने पुनः क्या पूछा था—यह पूर्ण विस्तार के सहित हमारे सामने बर्णन करने की कृपा कीजिए । १-३। वसिष्ठजी ने कहा—हे राजन् ! मैं आपके आगे उस मृग का जो महान् चरित है उस भली भाँति बतलाऊँगा । आप उसका श्रवण कीजिए । जिस प्रकार से जो भी उस मृगी ने उस मृग से पूछा था उस सबको तत्त्वों के ज्ञाता उसने उस मृगी के समझ में बर्णन कर दिया था । ४। उस महान आत्मा वाले भार्गव का चरित्र श्रवण करके उस मृगी ने फिर बड़े ही आदर से अपने स्वामी से ज्ञान के तत्त्व का अर्थ पूछा था । ५। मृगी

कृतार्थ हैं—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है कि आज इन परशुराम के दर्शन करने से आपको ऐसा ज्ञान उत्पन्न हो गया है जो इन्द्रियों की पहुँच से भी दूर है । ६। इसीलिए इसके पश्चात् अपनी आत्मा का सम्पूर्ण कारण मुझे भी कृपा करके बतलाइए । हे प्रभो ! ऐसा वह क्या कर्म हमने किया था जिसके कारण से हम दोनों ने वह पशु की तिर्यग् योनि प्राप्त की है । ७।

इति वाक्यं समाकार्ष्यं प्रियायाः स मृगः स्वयम् ।

वर्ण्यामास चरितं मृग्याश्चैवात्मनस्तदा ॥८॥

मृग उवाच—

शृणु प्रिये महाभागे यथाऽऽवां मृगतां गतौ ।

संसारेऽस्मिन्महाभागे भावोऽय भवकारणम् ॥९॥

जीवस्य सदसद्भ्यां हि कर्मभ्यामागतः स्मृतिम् ।

पुरा द्रविडदेशे तु नानाऽकृद्धिसमाकुले ॥१०॥

ब्राह्मणानां कुले वाऽहं जातः कौशिकगोत्रिणाम् ।

पिता मे शिवदत्तोऽभून्नाम्ना शास्त्रविशारदः ॥११॥

तस्य पुत्रा वयं जाताश्चत्वारो द्विजसत्तमाः ।

ज्येष्ठो रामोऽनुजस्तस्य धर्मस्तस्यानुजः पृथुः ॥१२॥

चतुर्थोऽहं प्रिये जातो सूरिरित्यभिविश्रुतः ।

उपनीय कमात्सवीश्छिवदत्तो महायशाः ॥१३॥

वेदान ध्यापयामास सांगांश्च सरहस्यकान् ।

चत्वारोऽपि वयं तत्र वेदाध्ययनतप्तराः ॥१४॥

उस मृग ने इस अपनी प्रिया के वाक्य का श्वरण करके स्वयं ही उस समय में अपना और अपनी प्रिया मृगी का चरित वर्णन किया था । ८। मृग ने कहा—हे महाभाग वाली प्रिये ! अब आप सुनिए कि जिस प्रकार से हम तुम दोनों उस मृग की जाति में देह धारण करने वाले हुए हैं । हे महा-भाग ! इस संसार में इस भव अर्थात् जन्म के ग्रहण करने का कारण एक मात्र भाव ही हुआ करता है । तात्पर्य यह है कि जैसी भावना जिसकी होगी वह वैसा ही उसके अनुरूप जन्म धारण किया जारता है । ९। जो भी जीव के सद् और अनन्त कर्म होते हैं उनसे ही वह स्मृति को प्राप्त होता है ।

बहुत पहले अनेक प्रकार की ऋद्धियों से पूर्ण द्रविड़ देश में कौशिक गोत्र वाले ब्राह्मणों के कुल में मैंने जन्म ग्रहण किया था। मेरे पिता नाम से शिव दत्त हुए थे जो कि शास्त्रों के अच्छे विद्वान् थे । १०-११। उन शिवदत्त नाम-धारी विप्र के परम श्रेष्ठ द्विज हम चार पुत्र समुत्पन्न हुए थे। सबमें बड़ा राम था, उससे छोटा भाई धर्म था और उससे भी छोटा भाई पुश्य नाम वाला हुआ था । १२। हे प्रिये ! चौथा भाई मैं उत्पन्न हुआ था जो सूरि—इस नाम से प्रसिद्ध था। महा यशस्वी उस शिवदत्त ने क्रम से सबका उपनयन संस्कार करा दिया था । १३। और फिर उसने हम सबको रहस्य के सहित तथा समस्त वेद के अङ्ग शास्त्रों के साथ वेदों का अध्यापन किया था अर्थात् साञ्च सम्पूर्ण वेदों को पढ़ाया था । १४।

गुरुशुश्रूषणे युक्ता जाता ज्ञानपरायणः ।

गत्वाऽरण्यं फलान्यं ब्रुसमित्कुशमृदोऽन्वहम् ॥ १५ ॥

आनीय पित्रे दत्त्वाथ कुर्मोऽध्ययनमेव हि ।

एकदा तु वयं सर्वे संप्राप्ता पर्वते वने ॥ १६ ॥

औदिभदं नाम लोलाक्षि कृतमालातटे स्थितम् ।

सर्वे स्नात्वा महानद्यामूषसि प्रीतमानसाः ॥ १७ ॥

दत्ताघर्षि कृतजप्याश्च समाख्यानं नगोत्तमम् ।

शालंस्तमालैः प्रियकैः पनसैः कोविदारकैः ॥ १८ ॥

सरलाञ्जुं नपूर्णेश्च खजूरे नर्तारिकेलकैः ।

जंबूभिः सहकारैश्च कटुफलैर्वृहतीदुमैः ॥ १९ ॥

अन्यैननिाविधैर्वृक्षैः परार्थप्रतिपादकैः ।

स्निग्धच्छायैः समाहृष्टनानापक्षिनिनादितैः ॥ २० ॥

शादूर्लहरिभिर्भल्लैर्गडकैमृगनाभिभिः ।

गजेद्रेः शरभादैश्च सेवितं कन्दरागतैः ॥ २१ ॥

हम सभी भाई गुरु की शुश्रूषा में निरत रहा करते थे और बहुत ही ज्ञान में परायण हो गये थे। प्रतिदिन वन में जाकर फल—जल—समिधा—कुशा और मृतिका लाया करते थे । १५। ये सब वस्तुएँ वन से लाकर अपने पिता को दिया करते थे और फिर इसके अनन्तर अपना अध्ययन ही किया

करते थे। एक बार ऐसा हुआ था कि हम सब वन में पर्वत पर पहुँच गये । १६। हे चञ्चल नेत्रों वाली ! कृतमाला नदी के तट पर औदृभि नाम वाला वहाँ स्थित था। हम सबने प्रातःकाल की बेला में उसी नदी में स्नान किया था और बहुत ही प्रसन्न मन वाले हो गये थे । १७। हम सबने सूर्य देव को अर्च्य दिया था और जाप करके हम सब उस उत्तम पर्वत पर सकारूढ़ हो गये थे। अब वहाँ की वृणावली की प्राकृतिक छटा का वर्णन किया जाता है—वह स्थल ऐसा अत्यधिक रमणीय था कि वहाँ पर शाल-तमाल-प्रियक-पनस-कोविदार-सरल-अजुंन-पूग-खजूर-नारिकेल-जम्बू-सहकार-कटुफल और बृहती के वृक्ष लगे थे । १८-१९। इनके अतिरिक्त अन्य भी वहाँ पर अनेक प्रकार के तरुवर थे जो दूसरों के अर्थ का प्रतिपादन करने वाले थे। अर्थात् पुष्प-फलादि से द्वारा दूसरे जीवों का उपकार करने वाले थे। उन वृक्षों की छाया बहुत ही घनी थी और उन पर दूर-दूर से पक्षी गण उन पर समावृष्ट होकर अपना कलख कर रहे थे । २०। उस पर्वतीय महारण्य में विविध प्रकार के वन्य हिंस्र जीव भी ऋमण कर रहे थे। शार्दूल-भल्ल-हरि-गण्डक-मृगनाभि-गजेन्द्र और शरभ आदि बहुत हिंसक अपनी-अपनी कन्दरा में निवास करते हुए उसका सेवन कर रहे थे । २१।

मलिलकापाटलाकुन्दकणिकारकदंबकैः ।

सुगंधिभिर्वृतं चान्यैवतिओद्भूतपरागिभिः ॥२२

नानाणिगणाकीर्णं नीलपीतसितारुणैः ।

शृंगे समुलिलखंतं च व्योम कौतुकसंयुतम् ॥२३

अत्युच्चपातृवनिभिर्निर्जरैः कंदरोदगतैः ।

गज्जंतमिव संसक्तं व्यालाद्यैर्मृगपक्षिभिः ॥२४

तत्रातिकौतुकाहृष्टदृष्यो भ्रातरो वयम् ।

नास्मार्जं चात्मनाऽत्मानं वियुक्ताश्च परस्परम् ॥२५

एतस्मिन्तंतरे चैका मृगी ह्यागातिपासिता ।

निर्जरापात शिरसि पातुकामा जलं प्रिये ॥२६

तस्याः पिबन्त्यास्तु जलं शार्दूलोऽतिभयंकरः ।

तत्र प्राप्तो यद्यच्छातो जगृहे तां भयादिताम् ॥२७

अहं तदग्रहणं पश्यन्भयेन प्रपलायितः । १३३।२५।२५

अत्युच्चवत्त्वात्पतितो मृतश्चैणीमनुस्मरन् ॥२६॥

वहाँ वन में अनेक सुन्दर एवं सुरभित सुमनों वाले द्रुम और लताएँ भी समुत्पन्न हुए थे जिनमें कदम्ब-मल्लिका-पाटल-कुन्द-कर्णिकार आदि थे । इनके अतिरिक्त अन्य भी ऐसे वृक्ष थे जिनके पराग वायु से उड़ रहा था और वह वन सुगन्धित उन गुलमलता और द्रुमों से समाकीर्ण था । २२। उस पर्वत में अनेक नील-सित-पीत अरुण वर्ण वाली मणियाँ थीं । उसकी शिखरें इतनी अधिक उच्च थीं कि वे मानों व्योम में पहुँच कुछ उल्लेख कर रही हों । इस तरह से वह पर्वत बहुत से कौतुकों से समन्वित था । २३। वहाँ बहुत ही ऊँचाई से गिरने के कारण घोर गम्भीर ध्वनि वाले अनेक झरने थे । ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो कन्दराओं में स्थित व्यालादि मृगों और पक्षियों की गजना से वह संसक्त है । २४। वहाँ पर अत्यधिक कौतुकों से युक्त वह स्थल था । मैंने अपनी आत्मा से अपने आपको स्मरण नहीं किया था अर्थात् मैं अपने आपको भूल गया था तथा हम सब परस्पर में एक दूसरे से विमुक्त हो गये थे क्योंकि हम सब भाई वहाँ अत्यधिक कौतुकों से हृष्ट हृष्टि वाले हो गये थे । २५। इसी बीच में वहाँ पर एक मृगी बहुत ही प्यासी आ गयी थी । हे प्रिये ! वह मृगी जहाँ पर एक झरना गिर रहा था उसके ही शिर में वह जलपान करने की इच्छा वाली थी । २६। वह विचारी जब जल पी रही थी तो वहाँ पर एक महान भयङ्कर शादूल आ पहुँचा था जो अपनी ही इच्छा से धूमता हुआ आ निकला था और उसने भय से पीड़ित उस हिरणी को पकड़ लिया था । २७। मैंने जब यह देखा कि शादूल ने उसका ग्रहण कर लिया है तो मुझे भी बड़ा भय उत्पन्न हो गया था और मैं वहाँ से भाग दिया था । उस तरह से भयभीत होकर जब मैं बेतहाशा भागा था तो एक बहुत ही उच्च स्थल से नीचे गिर गया था और उस शादूल के द्वारा पकड़ी हुई हिरणी का अनुस्मरण करते हुए गिरते-गिरते मृत हो गया था । २८।

सा मृता त्वं मृगी जाता मृगस्त्वाहमनुस्मरन् ।

जातो भद्रे न जाने वै क्व गता भ्रातरोऽग्रजाः ॥२८॥

एतन्मे स्मृतिमापन्नं चरितं तव चात्मनः ।

योऽयं वा पृष्ठसंलग्नो व्याधो दूरस्थितोऽभवत् ।

रामस्यास्य भयात्सोऽपि भक्षितो हरिणाधुना ॥३१॥

प्राणांस्त्यक्त् वा विधानेन स्वर्गलोकं गमिष्यति ।

आवाभ्यां तु जलं पीतं मध्यमे पुष्करे त्विह ॥३२॥

संहष्टो भार्गवश्चायं साक्षाद्विष्णुस्वरूपधृक् ।

तेनानेकभवोत्पन्नं पातकं नाशमागतम् ॥३३॥

अगस्त्यदर्शनं लब्ध्या श्रुत्वा स्तोत्रं गतिपदम् ।

गमिष्यावः शुभांल्लोकान्येषु गत्वा न शोचति ॥३४॥

इत्येवमुक्त् वा सं मृगः प्रियाये प्रियदर्शनः ।

विरराम प्रसन्नात्मा पश्यन्नाममनातुरः ॥३५॥

वह जो हिरणी शारूल के द्वारा पकड़ी जाने पर मर गयी थी वही तू अब पुनः इस जन्म में मृगी हुई है । और मैं द्विज सुत जो मरती हुई तेरा अनुस्मरण करते प्राणों का गिरकर परित्याग करने वाला था वही अब मृग होकर जन्म लेने वाला हूँ । यह मृत्यु के समय में भावना का ही कारण है कि हम तुम दोनों इस तिर्यग् योनि से समुत्पन्न हुए हैं । मैं यह नहीं जानता हूँ कि मेरे अन्य तोन भाई जो मुक्षसे बढ़े थे कहाँ पर गये हैं । २६। यह मेरा अपना और तुम्हारा चरित मेरी स्मृति में विद्यमान है । हे भद्रे ! जो व्यतीत हो गया है और जो आगे होने वाला है उसको मैं बतलाता हूँ । तुम उसका श्रवण करो । ३०। जो यह व्याधि पीछे की ओर लगा हुआ दूर में खड़ा था और थम का उसको भय हो रहा था । उसका भी इस समय में एक सिंह ने भक्षण कर लिया है । ३१। उसका ऐसा ही विधान है उससे वह अपने प्राणों का त्याग करके स्वर्गलोक में चला जायगा और यहाँ पर मध्यम पुष्कर में हम तुम दोनों ने जल पिया है । ३२। यहाँ पर इन भार्गव परशुराम का भली भाँति दर्शन किया गया है । इससे अनेक जन्मों में किये हुए भी पातक नाश को प्राप्त हो गये हैं क्योंकि वह भार्गव साक्षात् भगवान् विष्णु के ही स्वरूप को धारण करने वाले हैं । ३३। अब महामुनीन्द्र अगस्त्य के दर्शन प्राप्त करके तथा सङ्गति प्रदायक स्तोत्र का श्रवण करके हम तुम दोनों ही परम शुभ लोकों में गमन करेंगे जिनमें गमन करके प्राणी को किसी भी प्रकार की चिन्ता नहीं रहा करती है अर्थात् कोई पीड़ा होती ही नहीं है

।३४। इस तरह से यह हृतना अपनी प्रिया से कहकर वह प्रिय दर्शन मृग चुप हो गया था और अनातुर होकर राम का दर्शन करते हुए वह बहुत ही प्रसन्न आत्मा वाला हो गया था ।३५।

भार्गवः श्रुतवांश्चर्च भूगोक्तं शिष्यसंयुतः ।

विस्मितोऽभूच्च राजेन्द्र गन्तुं कृतमतिस्तथा ॥३६॥

अकृतव्रणसंयुक्तो ह्यगस्त्यस्याश्रमं प्रति ।

स्नात्वा नित्यक्रियां कृत्वा प्रतस्ये हर्षितो भृशम् ॥३७॥

रामेण गच्छता मार्गे हृष्टो व्याधो मृतस्तथा ।

सिहस्य संप्रहारेण विस्मितेन महात्मना ॥३८॥

अध्यद्वयोजनं गत्वा कनिष्ठं पुष्करं प्रति ।

स्नात्वा माध्याद्विनकीं सन्ध्यां चकारातिमुदान्वितः ॥३९॥

हितं तदात्मनः प्रोक्तं मृगेण स विचारयन् ।

तावत्तपृष्ठसंलग्नं मृगयुग्ममुपागतम् ॥४०॥

पुष्करे तु जलं पीत्वाभिषिच्यात्मतनुं जलैः ।

पश्यतो भार्गवस्यागादगस्त्याश्रमसंमुखम् ॥४१॥

रामोऽपि सन्ध्यां निर्वर्त्त्य कुम्भजस्याश्रमं यथो ।

विपद्गतं पुष्करं तु पश्यमानो महामनाः ॥४२॥

भार्गव परशुराम ने अपने शिष्य के सहित इस तरह से उस मृग के द्वारा कही हुई बातों को सुना था और इसको सुनकर उसको बड़ा भारी विस्मय हो गया था । हे राजेन्द्र ! फिर उस परशुराम ने उसी भाँति से गमन करने के लिये अपनी चुद्धि बना ली थी ।३६। उस भार्गव ने सर्वप्रथम स्नान किया था और फिर अपनी जो नित्य क्रिया थी उसको समाप्त किया था । इसके पश्चात् मन में अत्यधिक हर्षित होकर अकृत व्रण नामधारी के साथ संयुत होकर अगस्त्य मुनि के आश्रम की ओर उसने प्रस्थान कर दिया था ।३७। जिस समय में राम गमन कर रहे थे तब मार्ग में मरे हुए व्याध को देखा था जो कि सिंह के द्वारा किये हुए सम्प्रहार से ही मर गया था । उसको देखकर उस महान् आत्मा वाले को बड़ा विस्मय हो गया था ।३८। फिर आगे आधे योजन तक चलकर कनिष्ठ पुष्कर था । वहाँ पहुँचकर राम

ने स्नान किया था और परम हर्ष से संयुत होकर वहाँ पर मध्याह्न काल में होने वाली सन्ध्या की उपासना की थी । ३६। उस समय में वह यही विचार कर रहा था उर मृग ने मेरा अपना हित कहा था । तब तक वह यह देखता है कि पीछे लगा उस मृग और मृगी का जोड़ा वहाँ पर उपागत हो गया था । ४०। उस मृग और मृगी के जोड़े ने पुष्कर में जल का पान किया था और उसके जल से अपने शरीरों का अभिषिञ्चन किया था । भार्गव परशुराम यह देख ही रहे थे कि उनके देखते-देखते वह मृग-मृगी का जोड़ा अगस्त्य मुनि आश्रम के सम्मुख चला गया था । ४१। राम ने भी अपनी सन्ध्योपासना को पूर्ण करके नैतिक कर्म से निवृत्ति की थी और वह भी अगस्त्य मुनि के आश्रम को चला गया था । यह परमोदार मन वाला विपद्गत पुष्कर का दर्शन करते ही चला जा रहा था । ४२।

विष्णोः पदानि नागानां कुण्डं सप्तष्टिसंस्थितम् ।

गत्वोपस्पृश्य शुच्यंभो जगामागस्त्यसंश्रयम् ॥ ३३ ॥

यच्च ब्रह्मसुता राजन्समामाता सरस्वती ।

त्रीन्संपूर्यितुं कुण्डानाभिन्होवस्य वै विधेः ॥ ४३ ॥

तत्र तीरे शुभं पुण्यं नानामुनिनिषेवितम् ।

ददर्श महदाश्चर्यं भार्गवः कुम्भजाश्रमम् ॥ ४५ ॥

मृगः सिहैः सहगतैः सेवितं शांतमानसैः ।

कुटरैरजुनैः पारिभ्रद्विवेगुदैः ॥ ४६ ॥

खदिरासनखजूरैः संकुलं बदरीद्रुमैः ।

तत्र प्रविश्य वै रामो ह्यकृतव्रणसंयुतः ॥ ४७ ॥

ददर्श मुनिमासीनं कुम्भजं शांतमानसम् ।

स्तिमितोदसरः प्रख्यं ध्यायन्तं ब्रह्म शाश्वतम् ॥ ४८ ॥

कौश्यां वृष्यां मार्गकृति वसानं पल्लवोटजे ।

ननाम च महाराज स्वाभिवानं समुच्चरन् ॥ ४९ ॥

भगवान् विष्णु के पदों को-नागों के कुण्ड को जहाँ पर सप्तष्टिगण

संस्थित थे जाकर, उस परम शुचि जल का उपस्पर्शन करके फिर वह अगस्त्य मुनि के संश्रय स्थल को चला गया था । ४३। हे राजन् ! वहाँ पर

ब्रह्माजी की पुत्री सरस्वती चित्ति के अस्तिहोत्र के तीनों कुण्डों को पूरित करने के लिए समायात हुई थी । ४६। वहाँ पर उसी सरस्वती के तत्पर परम पुनीत और शुभ तथा महाश्चर्य से युक्त कुम्भज ऋषि के आश्रम को भागेंद्र ने देखा था जो अनेक मुनिगणों के द्वारा निषेचित था । ४५। वह आश्रम परम शान्त था और उसमें मृग और सिंह अपना स्वाभाविक दैर त्याग कर परम शान्त मन वाले एक ही साथ रहा करते थे । ऐसे सभी पशुओं का वहाँ पर निवास था । उस आश्रम में अनेक प्रकार के परम सुन्दर तरुवर लगे हुए थे जिनमें कुटर-अर्जुन-विष्व-पारिभद्र-ध्रुव-इङ्गुद-खदिरासन-खर्जर और बदरी आदि के अकृत ब्रण से संयुक्त होकर प्रवेश किया था । ४५-४६-४७। प्रवेश करके राम ने विराजमान और परमशान्त मन वाले मुनिवर अगस्त्यजी का दर्शन प्राप्त किया था जो सर्वथा एकदम रुके हुए शान्त जल से भरे हुए सरोवर के ही समान थे तथा शाश्वत ब्रह्म का ध्यान कर रहे थे । ४८। वहाँ पर लताओं और द्रुमों के पत्तों से एक उटज (झौचड़ी) बनी हुई थी उस उटज में अगस्त्य मुनि कौश्य—वृष्य तथा मृग चर्म को परिधान किये हुए विराजमान थे । हे महाराज ! वहाँ पर भागेंद्र राम ने अपने नाम का उच्चारण करते हुए अगस्त्य मुनि के चरणों में प्रणिपात किया था । ४९।

रामोऽस्मि जामदग्न्योऽहं भवतं द्रष्टुमागतः ।

तद्विद्धि प्रणिपातेन नमस्ते लौकभावन ॥५०॥

इत्युक्तवन्तं रामं तु उन्मील्य नयने शनैः ।

दृष्ट्वा स्वागतमुच्चार्य तस्मायासनमादिशत् ॥५१॥

मधुपकं समानीय शिष्येण मुनिपुंगवः ।

ददौ पप्रच्छ कुशलं तपसश्च कुलस्य च ॥५२॥

स पृष्ठस्तेन वै रामो घटोद्भवमुवाच ह ।

भवत्संदर्शनादीश कुशलं मम सर्वतः ॥५३॥

किं त्वेकं संशयं जातां छिद्धि स्ववचनामृतैः ।

मृगश्चंको मया दृष्टो मध्यमे पुष्करे विभो ॥५४॥

तेनोक्ततिखिलं वृत्तं मम भूतमनागतम् ।

तद्विद्धि त्वा विमुग्धिष्ठो भवत्प्रसामान ॥५५॥

पाहि मां कृपया नाथ साधयंतं महामनुम् ।

शिवेन दत्तं कवचं मम साधयतो गुरो ॥५६

राम ने अगस्त्य मुनि के चरणों की सन्निधि में समुपस्थित होकर उनसे निवेदन किया था कि मैं जमदग्नि का आत्मज राम हूँ और यहाँ पर आपके दर्शन करने के लिए समागत हुआ हूँ। हे लोकों पर कृपा करने वाले मुनिवर ! मैं आपकी सेवा में प्रणिपात कर रहा हूँ उसे आप स्वीकार कीजिए । ५०। जब राम ने इस रीति से प्रार्थना की थी तो ऐसे कहने वाले राम को उन्होंने धीरे से ध्यानावस्था में मुँदे हुए नेत्रों को खोलकर देखा था और फिर आपका स्वागत है—ऐसा उच्चारण करके उनको आसन पर उपविष्ट हो जाने की आशा प्रदान की थी । ५१। उन मुनियों में परम श्रेष्ठ अगस्त्य जी ने शिष्य के द्वारा मधुपकं मङ्गाकर राम को प्रदान किया था। फिर तपश्चर्या और कुल की क्षेम-कुशल उससे पूछी थी । ५२। उन मुनिवर के द्वारा जब राम से इस रीति से पूछा गया था तो उस समय में राम ने अगस्त्य मुनि से कहा था। हे ईश ! अब आपके चरणों के दर्शन से मेरा सभी प्रकार का क्षेम-कुशल है । ५३। हे निभो ! मुझे एक संशय हो गया है। उसका छेदन आप कृपा कर अपने अमृत रूपी बचनों के द्वारा कर दीजिए। मैंने एक मृग को मध्यम पुष्कर में देखा था । ५४। उस मृग ने मेरा अतीत और अनागत सम्पूर्ण वृत्त बतला दिया था। इसका अवण करके मैं अधिक विस्मय से आविष्ट हो गया हूँ और अब आपके चरण कमलों की शरण में समागत हुआ हूँ । ५५। अपनी स्वाभाविक अनुकम्पा से मेरा परित्राण कीजिए। और हे नाथ ! महामन्त्र की सिद्धि कराइये। हे गुरो ! भगवान् शिव ने जो कवच मुझे प्रदान किया है उसको सिद्ध कराइये। इसमें आपकी परमानुकम्पा मेरे दास के ऊपर होगी । ५६।

कृष्णस्य समतीतं तु साधिकं हि शरच्छतम् ।

न च सिद्धिमवाप्तोऽहं तन्मे त्वं कृपया वद ॥५७

वसिष्ठ उवाच—

एवं प्रश्नं समाकर्ण्य रामस्य सुमहात्मनः ।

क्षणं ध्वात्वा महाराज मृगोक्तं जातवात् हृदा ॥५८॥

मृगं चापि समायात मृग्या सह निजाश्रमे ।

श्रोतुं कृष्णामृतं स्तोत्रं सर्वं तत्कारणं मुनिः ।

विचायश्वासयामास भार्गवः स्ववचोमृते ॥५६॥

इस श्रीकृष्ण के मन्त्र की साधना करते हुए मुझे एक सौ वर्ष से भी अधिक काल व्यतीत हो गया है तो भी मुझे इसकी सिद्धि प्राप्त नहीं हुई है । इसका क्या कारण है । यह आप मुझे अपनी परमाधिक कृपा करके बतलाइए ।५७। श्री वसिष्ठ मुनि ने कहा—इस प्रकार का जो प्रश्न महात्मा राम ने किया था उसका श्रवण करके है महाराज ! उस महामुनि ने एक क्षण भर कुछ ध्यान किया था और फिर जो कुछ भी उस मृग ने कहा था उसको उस समय में उन्होंने अपने ध्यान से जान लिया था ।५८। अपनी मृगी के साथ अपने आश्रम में आये हुए उस मृग को भी उन्होंने जान लिया था जो कि श्रीकृष्णामृत स्तोत्र का श्रवण करने के लिए ही वहाँ पर समाप्त हुआ था । मुनि ने उस सबका कारण भी समझ लिया था । इस सबका विचार करके उन महामुनि अगस्त्य जी ने उस भार्गव राम को अपने अमृत रूपी वचनों के द्वारा आश्वासन दिया था ।५९।

अगस्त्य द्वारा श्रीकृष्ण प्रेमामृत स्तोत्र का कथन

वसिष्ठ उवाच—

अवगत्य स वै सर्वं कारणं प्रीतमानसः ।

उवाच भार्गवं राममगस्त्यः कुम्भसंभवः ॥१॥

अगस्त्य उवाच—

श्रृणु रामं महाभागं कथयामि हितं तत्र ।

मन्त्रस्य सिद्धिं येन त्वं शीघ्रमेव समाप्नुयाः ॥२॥

भक्तेस्तु लक्षणं जात्वा त्रिविद्याया महामते ।

यो यतेत नरस्तस्य सिद्धिर्भवति सत्वरम् ॥३॥

एकदाऽहमनुप्राप्तोऽनन्तदर्शनकांक्षया ।

पातालं नागराजेन्द्रैः शोभितं पराया मुदा ॥४॥

तत्र हृषा महाभाग मया सिद्धाः समततः ।

सनकाद्या नारदश्च गौतमो जाजलिः कलुः ॥५॥

ऋभुहंसोऽरुणिश्चैव वाल्मीकि: शक्तिरासुरिः ।

एतेऽन्ये च महासिद्धा वात्स्यायनमुखा द्विज ॥६

उपासत हयुपासीना ज्ञानार्थं फणिनायकम् ।

तं नमस्कृत्य नागेंद्रैः सह सिद्धैर्महात्मभिः ॥७

महामुनि वसिष्ठ जी ने कहा—उस सम्पूर्ण कारण को भली भाँति समझ कर कुम्भ से समुत्पन्न अगस्त्य मुनि ने अपने मन परम प्रीति करके भार्गव राम से कहा था ।१। अगस्त्य मुनि ने कहा—हे परशुराम ! आप तो महान् भाग वाले हैं । मैं अब आपके हित की बात कहता हूँ उसका आप श्रवण कीजिए । जिनके द्वारा आप बहुत ही शीघ्र इस महामन्त्र की सिद्धि की प्राप्ति कर लेंगे ।२। हे महती मति वाले ! यह भक्ति तीन प्रकार की होती है । उस भक्ति के तीनों प्रकारों के लक्षणों का ज्ञान प्राप्त करके जो मनुष्य फिर यत्न किया करता है वह बहुत ही शीघ्र पूर्ण सिद्धि प्राप्त कर लिया करता है ।३। एक बार मैं स्वयं भगवान् अनन्त देव के दर्शन प्राप्त करने की आकांक्षा से पाताल लोक में गया था जो कि परमानन्द के साथ बड़े-बड़े नाग राजों से सुशोभित था ।४। हे महाभाग ! यहाँ पर मैंने देखा था कि चारों ओर बड़े-बड़े सिद्ध महापुरुष विराजमान थे । वहाँ सनकादिक चारों महासिद्ध-देवषि नारद-गौतम-जाजलि-क्रतु-ऋभु-हंस-अरुणि-वाल्मीकि-शक्ति-आसुरि प्रभृति सभी मुनीन्द्रगण और ऋषियों के समुदाय विद्यमान थे । हे द्विज ! ये सब और अन्य भी वात्स्यायन जिनमें प्रमुख थे महान् सिद्धगण वहाँ पर बैठे हुए थे ।५-६। ये सभी वहाँ पर बैठे हुए ज्ञान की पूर्ण प्राप्ति के लिये फणि नायक शेषराज की उपासना कर रहे थे । वहाँ पर बड़े-बड़े नागेन्द्र और महान् आत्मा वाले सिद्ध सभी विराजमान थे उन सबके साथ फणीन्द्र नायक शेष महाराज की सेवा में मैंने बड़े आदर के साथ प्रणिपात किया था ।७।

उपविष्टः कथास्तत्र शृण्वानो वैष्णवीमुदा ।

येयं भूमिर्महाभाग भूतधात्रीस्वरूपिणी ॥८

निविष्टा पुरतस्तस्य शृण्वन्ती ताः कथाः सदा ।

यद्यत्पृच्छति सा भूमिः शेषं साक्षान्महीष्वरम् ॥९

शृण्वन्ति ऋषयः सर्वे तत्रस्थाः तदनुग्रहात् ।

मया तत्र श्रुतं वत्स कृष्णं मामृतं शुभम् ॥१०

स्तोत्रं तत्ते प्रवक्ष्यामि यस्यार्थं त्वमिहागतः ।

वाराहाद्यवताराणां चरितं पापनाशनम् ॥११

सुखदं मोक्षदं चैव ज्ञानविज्ञानकारणम् ।

श्रुत्वा सर्वं धरा वत्स प्रहृष्टा तं धराधरम् ॥१२

उवाच प्रणता भूयो ज्ञातुं कृष्णविचेष्टितम् ।

धरण्युवाच-

अलंकृतं जन्म पुंसामपि नंदनं जीकसाम् ॥१३

तस्य देवस्य कृष्णस्य लीलाविग्रहधारिणः ।

जयोपाधिनियुक्तानि संति नामान्यनेकशः ॥१४

मैं वहाँ पर बड़े ही आनन्द से भगवान् विष्णु देव की कथाओं का श्रवण करता हुआ बैठ गया था । हे महाभाग ! यह भूमि भी जो समस्त भूतों की धात्री स्वरूप वाली है वहाँ पर उन शेष भगवान् के आगे बैठी हुई थी और बहुत ही प्रीति के साथ सदा कथाओं का श्रवण किया करती थी । वह भूमि साक्षात् इस मही के धारण करने वाले शेष भगवान् से जो-जो भी पूछा करती है उसको समस्त ऋषिगण वहाँ पर मंस्थित होकर उनके ही अनुग्रह के होने से श्रवण किया करते हैं । हे वत्स ! मैंने भी वहाँ परम शुभ कृष्ण प्रेमामृत का श्रवण किया था । ८-१०। उस स्तोत्र को मैं अब आपको बतलाऊँगा जिसको प्राप्त करने के लिये तुम यहाँ पर आये हो । इस स्तोत्र में बाराह आदि भगवान् के अवतारों का चरित है जो समस्त प्रकार के पापों का विनाश कर देने वाला होता है । ११। यह चरित परमाधिक सुख-सौभाग्य के प्रदान करने वाला है—परलोक में जाकर इस भौतिक शरीर के त्याग करने के पश्चात् मोक्ष का भी देने वाला है जिससे इस संसार में बारम्बार जन्म-मरण के महान् कष्टों से छुटकारा मिल जाया करता है । और यह चरित ऐसा अद्भुत है कि जो पूर्ण ज्ञान और विशेष ज्ञान का भी कारण होना है । इस वसुन्धरा देवी ने इन सब का श्रवण किया था और यह बहुत ही अधिक प्रसन्न हुई थी, हे वत्स ! फिर धराके धारण करने वाले अनन्त भगवान् से बोली थी । १२। परम प्रणत होकर इस भूमि ने फिर भगवान् की लोला को जानने के लिए प्रार्थना की थी । धरणी ने कहा—भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र जो ने नन्द गोपराज के ब्रज में निवास करने वाले ब्रज-सासी उत्तरांशों का उत्तरांश ।

विहारों से अलंकृत कर दिया था । १३। अपनी लीला से ही विग्रह (मानवीय शरीर) धारण करने वाले उन श्री कृष्ण देव के जय की अनेक उपाधियों से नियुक्त अनेक शुभ नाम है । १४।

तेषु नामानि मुख्यानि श्रोतुकामा चिरादहम् ।

तत्तानि ब्रूहि नामानि वासुदेवस्य वासुके ॥ १५ ॥

नातः परतरं पुण्यं त्रिषु लोकेषु विद्यते ।

शेष उवाच—

वसुंधरे वरारोहे जनानामस्ति मुक्तिंदम् ॥ १६ ॥

सर्वमंगलमूद्धन्यमणिमाद्यष्टसिद्धिदम् ।

महापातककोटिष्ठं सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥ १७ ॥

समस्तजपयज्ञानां फलदं पापनाशनम् ।

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ॥ १८ ॥

सहस्रनाम्नां पुण्यानां त्रिरावृत्या तु यत्फलम् ।

एकावृत्या तु कृष्णस्य नामैकं तत्प्रयच्छति ॥ १९ ॥

तस्मात्पुण्यतरं चैतत्स्तोत्रं पातकनाशनम् ।

नाम्नामष्टोत्तरशतस्याद्मेव ऋषिः प्रिये ॥ २० ॥

छन्दोऽनुष्टुब्देवता तु योगः कृष्णप्रियावहः ।

श्रीकृष्णः कमलानाथो वासुदेवः सनातनः ॥ २१ ॥

उन श्रीकृष्ण के नामों में जो बहुत ही प्रमुख उनके नाम हैं उनके श्रवण करने की कामना वाली में बहुत अधिक समय से हो रही है । हे भगवन्नवासुके ! भगवान् वासुदेव के उन परम शुभ नामों को अब कृपा करके मेरे आगे बतलाइए । १५। क्योंकि इस संसार में इससे परतर अर्थात् बड़ा अन्य कोई भी पुण्य नहीं है । तात्पर्य तह है कि भगवान् श्रीकृष्ण के परम शुभ नामों का स्मरण और श्रवण लोक में सबसे अधिक पुण्य कार्य है । भगवान् शेष ने कहा—हे परम श्रेष्ठ आरोह वाली वसुधरे । भगवान् श्री कृष्ण के एक सौ आठ नामों का एक शतक स्तोत्र है और वह मानवों के लिए मुक्ति के प्रदान करने वाला है । १६। यह शतक सभी प्रकार के मङ्गल कार्यों में शिरोमणि है तथा लौकिक साधारण वैभवों की प्राप्ति की तो बात

ही क्या है यह तो अणिमा-महिमा आदि जो आठ सिद्धियाँ हैं उनको भी देने वाला है। बड़े-बड़े महान् जो करोड़ों प्रकार के पातक हैं उनका भी विनाश कर देने वाला और समस्त तीर्थों के स्नान-ध्यान तथा अटन का जो पुण्यफल हूँ आ करता है उनके प्रदान कर देने वाला होता है। १७। सभी तरह के अश्वमेधादि यज्ञों एवं जपों का जो भी फल होता है उसके देने वाला है और सभी पापों के नाश करने वाला है। हे देवि ! अब आप उस नामों के शतक को सुनिए, मैं आपको बतलाता हूँ जो एक सौ आठ भगवान् के नामों वाला है। १८। परम पुण्यमय अन्य सहस्र नामों की तीन बार आवृत्ति के करने से जो फल प्राप्त होता है वह पुण्य-फल भगवान् श्रीकृष्ण के नाम की एक ही आवृत्ति के द्वारा एक ही नाम दिया करता है। १९। इस कारण से यह स्तोत्र विशेष पुण्य वाला है और पातकों का विनाशक है। हे प्रिये ! इस परम शुभ नामों के अष्टोत्तर शत का मैं ही ऋषि हूँ। २०। इसका छन्द अनुष्टुप् है और इसका देवता श्री कृष्ण के प्रिय का आवहन करने वाला योग है। अब यहाँ से आगे वह अष्टोत्तर शतक का आरम्भ होता है—श्रीकृष्ण-कमला (महालक्ष्मी) के नाथ-वसुदेव के पुत्र वासुदेव-और सनातन अर्थात् सदा सर्वदा से चले आने वाले हैं। २१।

वसुदेवात्मजः पुण्यो लीलामानुषविग्रहः ।
श्रीवत्सकौस्तुभधरो यशोदावत्सलो हरिः ॥२२

चतुमुं जात्तचक्रासिगदाशंखाद्यायुधः ।

देवकीनन्दनः श्रीशो नन्दगोपप्रियात्मजः ॥२३

यमुनावेगसंहारी बलभद्रप्रियानुजः ।

पूतनाजीवितहरः शकटासुरभंजनः ॥२४

नन्दव्रजनानन्दी सच्चिदानन्दविग्रहः ।

नवनीतविलिप्तांगो नवनीतनटोऽनघः ॥२५

नवनीतलवाहारी मुचुकुदप्रसादकृत् ।

षोडशस्त्रीसहस्रेणस्त्रिभंगी मधुराकृतिः ॥२६

शुकवाग्मृताब्धींदुर्गोविदो गोविदांपतिः ।

यत्सपालनसंचारी वेनुकासुरमद्दनः ॥२७

तृणीकृततृणायत्तो यमलार्जुनभंजनः ।

उत्तालतालभेत्ता च तमालश्यामलाकृतिः ॥२८

वसुदेव को पुत्र—परम पुण्यमय—लीला ही से मानुष शरीर के धारण करने वाले हैं । श्रीवत्स का चिट्ठन और कौस्तुभ मणि धारण के करने वाले-यशोदा के वत्सल और हरि हैं । हरि का अर्थ होता है पापों के हरण करने वाले हैं । २२। चार भुजाओं में सुदर्शन चक्र, कौमोदकी गदा, शश्व और असि आदि आयुधों के धारण करने वाले हैं । देवकी के नन्दन—श्रीदेवी के स्पामी और नन्दगोप की प्रिया यशोदा के आत्मज अर्थात् पुत्र हैं । २३। यमुना के बेग का संहार करने वाले । बलभद्रजी परम प्रिय अनुज अर्थात् छोटे भाई हैं । पूतना के जोवन का हरण करने वाले तथा शकटासुर का हनन करने वाले हैं । २४। नन्दगोप ब्रह्मजन अर्थात् ब्रजबासी मनुष्यों को आनन्द देने वाले और सत्-चित् (ज्ञान) तथा आनन्द के शरीर वाले हैं अर्थात् सत्-चित् और आनन्द ये तीनों ही वस्तुएँ उनके शरीर में विद्यमान हैं । नवनीत (मवखन) से विलिप्त अङ्गों वाले हैं जिस समय में यशोदाजी दधि मन्थन कर रही थी उस समय में दधिभाण्ड का भयंकर नवनीत अपने समस्त अङ्गों में लपेट लिया था । नवनीत के लिए नट हैं अर्थात् थोड़ा सा नवनीत पाने के लिए गोपाङ्गनाओं के यहाँ अनेक नृत्य आदि की लोलायें करने वाले हैं । अनघ अर्थात् निष्पाप स्वरूप वाले हैं । २५। नवनीत के घोड़े से भाग का आहार करने वाले हैं अर्थात् दधि और मवखन के विक्रय करने वाली ब्रजाङ्गनाओं को मार्ग में रोककर नवनीत का आहार किया करते हैं । राजा मुचुकुन्द के ऊपर कृपा करने वाले हैं । जिस समय जरासन्ध से युद्ध हो रहा था तब स्ववं भाग कर वहाँ पर पहुँच गये थे जहाँ पर विद्रित मुचुकुन्द गुफा में यह वरदान लेकर सो रहा था कि उसे जो भी जगायेगा वह भस्म हो जायगा । उस पर अपनी पीताम्बर डालकर आप छिप गये थे जरासन्ध ने उसे श्रीकृष्ण समझ कर जगाया और भस्म हो गया था फिर भगवान् ने दर्शन देकर उसको प्रसन्न किया था । सोलह सहस्र स्त्रियों के स्वामी हैं—त्रिभञ्जी हैं अर्थात् चरण-कटि और ग्रीवा तीनों को तिरछा करके बंसी बादन करने वाले हैं तथा परमाधिक मधुर आकृति से समन्वित है । २६। अमृत के समान जो शुकदेव की बाणी रूपी सागर है उसके आप चन्द्र हैं अर्थात् शुकदेव जी के द्वारा श्रीमद्भागवत की रचना हुई उसके प्रकाशन चन्द्र हैं । गोविन्दों के पति हैं । जब आप बालक थे तब ब्रज में गोवत्सों का पालन करने के लिए वन में सञ्चरण करने वाले हैं तथा द्वेनुक नामक कंस

के द्वारा प्रेषित असुर का मर्दन करने वाले हैं । २७। तृणावत्तं असुर को तृण के समान हनन करके डाल दिया है और जो दो अजुन वृक्षों का जोड़ा शाप वश वृक्ष हो गये थे उनका भंजन कर वृक्षों की योनि छुड़ा देने वाले हैं । बहुत ही ऊँचे तालों के भेदन करने वाले हैं तथा तमाल वृक्षों के सहश श्यामल आकृति वाले हैं । २८।

गोपगोपीश्वरो तोगी सूर्यकोटिसमप्रभः ।

इलापतिः परंज्योतियदिवेंद्रो यद्वद्धहः ॥ २६ ॥

वनमाली पीतवासाः पारिजातापहारकः ।

गोवद्धनाचलोद्वर्त्ता गोपालः सर्वपायकः ॥ ३० ॥

अजो निरंजनः कामजनकः कंजलोचनः ।

मधुहा मथुरानाथो द्वापकानाथको बली ॥ ३१ ॥

वृदावनांतसंचारी तुलसीदामभूषणः ।

स्यमंतकमण्हेहर्त्ता नरनारायणात्मकः ॥ ३२ ॥

कुब्जाकुष्टांबरधरो मायी परमपूरुषः ।

मुष्टिकासुरचाणूरमल्लयुद्धविशारदः ॥ ३३ ॥

संसारवैरी कंसारिमुरारिन्द्रकांतकः ।

अनादि ब्रह्मचारी च कृष्णाव्यसनकर्षकः ॥ ३४ ॥

शिशुपालशिरश्छेत्ता दुर्योधनकुलांतकृत् ।

विदुराक्रूरवरदो विश्वरूपप्रदर्शकः ॥ ३५ ॥

ब्रज में समस्त गोप और जो गोपियां यीं उन सबके ईश हैं—महायोगी और करोड़ों सूर्यों को प्रभा के समान प्रदीप प्रभा से समन्वित हैं । इला के पति—परम ज्योति स्वरूप यादवों में प्रमुख और यदु कुल के उद्धन करने वाले हैं । २६। वनमाला के धारण करने वाले-पीत वर्ण के वस्त्रों के पहिनने वाले तथा पारिजात का महेन्द्रपुरी से आहरण करने वाले हैं—गोवद्धन गिरि के उद्वर्त्ता अर्थात् अपनी अङ्गुलि पर उठाने वाले—गोओं के पालन-पोषण करने वाले और समस्त चरक्षचरों के पालक हैं । ३०। अजन्मा-निरंजन-कामदेव के जन्म दाता तथा कमलों के सहश लीचनों वाले हैं । मधुनामक देव के उत्तर कर्त्ता—मधुराषुदी के नाम अरवा के उत्तमी और

बलशाली हैं । ३१। वृन्दावन के मध्य में सञ्चरण करने वाले—तुलसी की माला से सुशोभित अर्थात् तुलसी की माला के भूषण वाले हैं । स्यमन्तक नाम वाली मणि को जाम्बवान् से हरण करने वाले तथा नर और नारायण के स्वरूपधारो हैं । ३२। कुब्जा जो कंस नृप की चन्दन सेविका थी वह थी तो परम सुन्दरी किन्तु टेढ़े-मेढ़े शरीर वाली थी । उसके द्वारा समाकृष्ट वस्त्रों के धारण करने वाले हैं । कुब्जा श्रीकृष्ण पर मोहित हो गयी थी—यह तात्पर्य है । मायी और परम पुरुष हैं । कंस के मल्ल चाणूर और मुष्टिक असुर थे उनके साथ यस्त्र युद्ध में परम कोविद हैं । ३३। इस संसार के बैरी हैं अर्थात् संसार में होने वाले दुःखों के विनाशक हैं—कंस के निपात करने वाले—मुर दंत्य के नाशक और नरक नामक असुर के अन्त कर देने वाले हैं । अनादि ब्रह्मचारी हैं अर्थात् ऐसे ब्रह्मचारी हैं जिनका कभी कोई आदि नहीं है तथा कृष्ण-द्वौपदी के व्यसन के अपकर्षण करने वाले हैं अर्थात् दुःशासन के द्वारा चीर खींचकर दुर्योधन की सभा में उसको लज्जित किया जा रहा था उस समय चीर का वर्धन करके उसकी लज्जा की रक्षा करने वाले हैं । ३४। राजा शिशुपाल के शिर के छेदन करने वाले हैं और राजा कौरवेश्वर दुर्योधन के कुल का अन्त कर देने वाले हैं । विदुर और अङ्गूर को वरदानों के प्रदाता हैं और विश्वरूप अर्थात् विराट् स्वरूप के प्रदाता हैं । ३५।

सत्यवाक्सत्यसंकल्पः सत्यभामारतो जयो ।

सुभष्टापूर्वजो विष्णुर्भीष्ममुक्तिप्रदायकः ॥ ३६ ॥

जगद्गुरुजं गन्नाथो वैणुवाद्यविशारदः ।

वृषभासुरविघ्वंसी वकारिबणिबाहुकृत् ॥ ३७ ॥

युधिष्ठिरप्रतिष्ठाता वर्हिबहवितंसकः ।

पार्थसारथिष्यक्तो गीतामृतमहोदधिः ॥ ३८ ॥

कालीयफणिमाणिक्यरंजितः श्रीपदांबुजः ।

दामोदरो यज्ञभोक्ता दानवेद्रविनाशनः ॥ ३९ ॥

नारायणः परं ब्रह्म पन्नगाशनवाहनः ।

जलक्रीडासमासक्तगोपीवस्त्रापहारकः ॥ ४० ॥

पुण्यश्लोकस्तीर्थपादो वेदवेद्मी दयानिधिः ।

सर्वतोर्थात्मकः सर्वग्रहरूपी परात्परः ॥ ४१ ॥

इत्येवं कृष्णदेवस्य नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ।

कृष्णेन कृष्णभवतेन श्रुत्वा गीतामृतं पुरा ॥४२

सदा सत्य वचनों वाले तथा सत्य संकल्पों वाले हैं । सत्यभामा नाम वाली अपनी पटरानी में रति रखने वाले और जयशील हैं सुभद्रा के बड़े भाई हैं—भगवान् साक्षात् विष्णु का स्वरूप हैं तथा भीष्मपितामह की मुक्ति देने वाले हैं । ३५। इस सम्पूर्ण जगत् के गुरु हैं—इस अगत् के नाथ हैं और वेणु (वंशी) के बादन करने में महापंडित हैं । वृषभासुर के विघ्नंस करने वाले हैं—बकासुर के निहन्ता और बाणासुर की बाहुओं के कर्त्तन करने वाले हैं । ३७। राजा युधिष्ठिर को राज्य गद्दी पर प्रतिष्ठित करने वाले हैं और मयूर की पंख के भूषण वाले हैं । पार्थ पृथा के पुत्र अर्जुन के रथ के वहन कराने वाले सारथि हैं । इनका ऐसा स्वरूप है जो अव्यरुत है अर्थात् जिसको कोई पहिचान ही नहीं सकता है—बीता के उपदेशों से जो कि अमृत के समान हैं यह महोदधि हैं । जैसे अमृत समुद्र से उत्पन्न हुआ था वैसे ही गीता के उपदेश इनके ही हृदय से निकले हैं । ३८। कालिय नाग के मस्तक पर नृत्य करने से माणिक्य मणि से रञ्जित श्रीपद कमल वाले हैं । दाम से बद्ध उदर वाले हैं । दधिमन्थन के महाभाण्ड का भज्ज कर देने पर यशोदा माता ने पकड़कर डोरी से बाँध दिया था तभी से दामोदर नाम हुआ है । यज्ञों के भोक्ता और दानवेन्द्रों के विनाशक है । ३९। आप साक्षात् श्रीराशायी नारायण—परं ब्रह्म और पन्नगों के अशन करने वाले गरुण के वाहन वाले हैं । यमुना के जल में दिगम्बर होकर क्रीड़ा करने वाली ब्रज वाला गोपियों के वस्त्रों का अपहरण करने वाले हैं । आप पुण्य अर्थात् परम पुनीत यश वाले हैं—तीर्थ के समान चरणों वाले वेदों के द्वारा जानने के योग्य और दया के निधि हैं । समस्त तीर्थों के स्वरूप वाले—सब ग्रहों से रूप वाले और पर से भी पर हैं । ४०-४१। इस प्रकार से स्त्रीकृष्ण देव के एक सौ आठ नामों का यह शतक है । श्रीकृष्ण के भक्त कृष्ण ने अर्थात् वेद व्यासजी ने पहिले गीतामृत का अवण दिया था । ४२।

स्तोत्रं कृष्णप्रियकरं कृतं तस्मान्मया श्रुतम् ।

कृष्णप्रेमामृतं नाम परमानन्ददायकम् ॥४३

अत्युपद्रवदुःखघ्नं परमायुष्यवर्द्धनम् ।

दानं ब्रतं तपस्तीर्थं यत्कृतं त्विह जन्मनि ॥४४

पठतां शृण्वतां चैव कोटिकोटिगुणं भवेत् ।

पुत्रप्रदमपुत्राणामगतीनां गतिप्रदम् ॥४५

धनवाहं दरिद्राणां जयेच्छूनां जयावहम् ।

शिशुनां गोकुलानां च पृष्ठिदं पुण्यवद्धं नम् ॥४६

बालरोगग्रपादीनां शमनं शांतिकारकम् ।

अंते कृष्णस्मरणदं भवतापत्रयापहम् ॥४७

असिद्धसाधकं भद्रे जपादिकरमात्मनाम् ।

कृष्णाय यादवेद्राय ज्ञानमुद्राय योगिने ॥४८

नाथाय रुक्षिमणीशाय नमो वेदांतवेदिने ।

इमं मंत्रं महादेवि जपन्नेव दिवानिशम् ॥४९

कृष्ण द्वै पायन महामुनि ने यह श्रीकृष्ण के प्रिय को करने वाला स्तोत्र रचित किया था । उन्हीं से इसका श्रवण मैंने किया था । यह श्रीकृष्ण प्रेमामृत नामक स्तोत्र परमाधिक आनन्द के प्रदान करने वाला है । ४३। यह अत्यधिक उपद्रव और दुःखों का हनन करने वाला है तथा इसके श्रवण और पठन से अधिकाधिक आयु का वर्धन होता है । इस लोक में जन्म ग्रहण करके जो भी कुछ दान-ब्रत-तप-तीर्थ आदि किया है वह सभी इस परम पुनीत स्तोत्र के पढ़ने वालों तथा श्रवण करने वालों को करोड़ों गुना फल देने वाला होती है । जो पुत्रों से रहित है उनको यह पुत्रों के प्रदान करने वाला है तथा जिनकी सद्गति का कोई भी साधन नहीं है उनको सुगति अर्थात् उद्धार के प्रदान करने वाला है । ४४-४५। जो धन से महीन महान् दरिद्र है उनको धन का वहन कराने वाला है और जो सर्वत्र युद्ध स्थल में अपनी विजय के इच्छुक हैं उनको जय देने वाला है । यह स्तोत्र शिशुओं की और गोकुलों की पुष्टि का बढ़ाने वाला है । ४६। बालरोग और ग्रहों आदि का शमन करने वाला तथा मरम शान्ति के करने वाला है । यह समय में श्रीकृष्ण की स्मृति का देने वाला तथा संसार के तीनों (आध्यात्मिक-आविभौतिक-आधिदेविक) तापों का अपहरण करने वाला है । ४७। हे भद्रे ! यह स्तोत्र अपने असिद्ध जप आदि के साधन करने वाला अर्थात् सिद्धि कारक है । पादवेन्द्र-ज्ञान की मुद्रा वाले-योगी—रुक्षिमणी के स्वामी-

वेदान्त के वेदों नाथ श्री कृष्ण के लिए नमस्कार है—हे महादेवि ! यह मन्त्र है इसका अहर्निश जाप करते रहना चाहिए । ४८-४९।

सर्वग्रहानुग्रहभावसर्वप्रियतमो भवेत् ।

पुत्रपौत्रैः परिवृतः सर्वसिद्धिसमृद्धिमात् ॥५०

निषेव्य भोगानंतेऽपि कृष्णसायुज्यमाप्नुयात् ।

अगस्त्य उत्तरा-

एतावदुक्तो भगवानननंतो मूर्त्तिस्तु संकर्षणसंज्ञिता विभो ॥५१

धराधरोऽलं जगतां धराये निदिश्य भूयो विरराम मानदः ।
ततस्तु सर्वे सनकादयो ये समास्थितास्तत्परितः कथाहताः ।

आनन्दपूर्णा बुनिधौ निमग्नाः

सभाजयामासुरहीश्वरं तम् ॥५२

ऋषय ऊचुः—

नमो नमस्तेऽखिलविश्वभावन प्रपन्नभक्ता-

त्तिहराव्ययात्मन् ।

धराधरायापि कृपार्णवाय शेषाय विश्वप्रभवे नमस्ते ॥५३

कृष्णामृतं नः परिपायितं विभो विधूतपापा

भवता कृता वयम् ।

भवाहशा दीनदयालबो विभो समुद्धरत्येव

निजान्हि संनतान् ॥५४

एवं नमस्कृत्य फणीश पादयोर्मनो विधायाखिलकामपूरयोः ।

प्रदक्षिणीकृत्य धराधराधरं सर्वे वयं स्वावसथानुपागताः ॥५५

इस परमोत्तम एवं दिव्य स्तोत्र का सेवन करने वाला पुरुष समस्त ग्रहों के अनुग्रह को प्राप्त करने वाला हो जाता है और वह सभी का परम प्रिय बन जाया करता है। इस अष्टोत्तर शतक कृष्ण स्तोत्र के अवण तथा पठन करने से भजन पुत्र-पौत्रादि से परिवृत होता है और उसके सभी प्रकार की सिद्धियों को समृद्धि हो जाया करती है । ५०। वह मनुष्य इस लोक में सब प्रकार के गुणों का उपयोग करके भी अस्ति समय में भगवान् श्री

कृष्ण के सायुज्य की प्राप्ति किया करता है। अगस्त्य मुनि ने कहा—हे विभो ! इतना कहकर भगवान् अनन्त देव चुप हो गये थे जो कि संकर्षण की संज्ञा वाली मूर्त्ति थी। यह भगवान् समस्त जगतों की इस धरा के धारण करने में पूर्णतया समर्थ थे। मान के देने वाले प्रभु ने पुनः धरा के लिए निर्देश किया था। इसके अनन्तर कथा का आदर करने वाले सनकादिक मुनिगण सब जो उनको चारों ओर से घेरकर समवस्थित थे आतन्द से परिपूर्ण सागर में निमग्न हो गये थे और उन सबने अहीश्वर प्रभु को सभाजित किया था । ५१-५१। ऋषिगणों ने कहा—हे प्रभो ! आप तो इस सम्पूर्ण विश्व पर अनुकर्मा करते हुए इसका परिपालन किया करते हैं। हे अव्यय स्वरूप वाले ! आप तो शरण में समागत अपने भक्तों की आत्ति के हरण करने वाले हैं आपके लिए हमारा सबका बारम्बार प्रणाम है। आप इस धरा के धारण करने वाले होते हुए भी परम कृपा के सागर हैं और आप समग्र विश्व की समुत्पात्त करने वाले हैं। ऐसे शेष भगवान् आपकी सेवा में हमारा प्रणिपात है । ५२। हे विभो ! आपने हम सबको श्रीकृष्ण के नामों का जो अष्टोत्तर शतक रूपी अमृत है उसका भली भाँति से पान कराया है और आपने हम सबको पापों से रहित कर दिया है। हे विभो ! आप सरीखे महापुरुष ही दीनों पर दया की वृष्टि करने वाले होते हैं जो कि अपने चरणों की शरण में समागत अपने भक्तों का भली भाँति उद्धार किया करते हैं । ५३। इस रीति से नमस्कार करके और समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले भगवान् शेष के चरणों में मन लगाकर तथा धराधर को परिक्रमा करके हम सब अपने-अपने निवास स्थानों को उपागत हो गये थे । ५४।

इति तेऽभिहितं राम स्तोत्रं प्रेमामृताभिधम् ।

कृष्णस्य परिपूर्णस्य राधाकांतस्य सिद्धिदम् ॥५६॥

इदं राम महाभाग स्तोत्रं परमदुर्लभम् ।

श्रुतं साक्षाद्द्वगवतः शेषात्कथययः कथाः ॥५७॥

यावंति मन्त्रजालानि स्तोत्राणि कवचानि च ॥५८॥

त्रैलोक्ये तानि सवर्णि सिद्ध्यत्येवास्य शीलनात् ।

वसिष्ठ उवाच—

एव मुक्त्वा महाराज कृष्णे मामृतं स्तवग् ।

यावद्वयरं सीतस मुनिस्तावत्स्वर्यानिमागतम् ॥५९॥

चतुर्भिरद्भुतेः सिद्धैः कामरूपैर्मनोजवैः ।

अनुयातमथोत्पलुत्य स्त्रीपुंसो हरिणी तदा ।

अगस्त्यचरणी नत्या समारुहतुमुदा ॥६०

दिव्यदेहधरौ भूत्वा शंखचक्रादिचिह्नतौ ।

गतौ च वैष्णवं लोकं सर्वदेवनमस्कृतम् ।

पश्यतां सर्वभूतानां भागवागस्त्ययोस्तथा ॥६१

अगस्त्य महामुनि ने कहा कि हे राम ! श्री राधा के कान्त-परिपूर्ण भगवान् श्रीकृष्ण का यह समस्त सिद्धियों का प्रदान कर देने वाला प्रेमामृत नाम वाला स्तोत्र मैंने आपको बता दिया है । ५६। हे महाभाग राम ! यह स्तोत्र अत्यन्त दुर्लभ है । मैंने कथाओं का वर्णन करके हुए साक्षात् भगवान् शेष के हो मुख से इसका श्रवण किया है । ५७। इस लोक में जितने भी मन्त्रों के समूह हैं तथा स्तोत्र और कवच आदि हैं इस त्रिभुवन में वे सभी इस स्तोत्र के ही परिशोलन करने से सिद्ध हो जाया करते हैं । वसिष्ठजी ने कहा—हे महाराज ! इस रीति से श्रीकृष्ण प्रेमामृत स्तव को बतलाकर जब तक अगस्त्य मुनि विरत हुए थे तभी तक वहाँ स्वर्ग से एक यान आ गया था । ५८-५९। उस मान में चार स्वेच्छया स्वरूप धारण करने वाले—मन के ही समान वेग से समन्वित और अतीव अद्भुत सिद्धों से युक्त था । इसके अनन्तर वे दोनों हरिण और हरिणी स्त्री एवं पुरुष के स्वरूप में होकर अगस्त्य मुनि को प्रणाम करके उस समय में परम हर्ष से उछल कर उस यान में समारूढ़ हो गये । ६०। वे दोनों परम दिव्य देह के धारण करने वाले हो गये थे जो शश्व-चक्र आदि भगवान् के चिह्नों से संयुक्त थे । इसके पश्चात् वे समस्त देवगणों के द्वारा बन्दित भगवान् विष्णु के लोक में चले गये थे । उस समय इस विलक्षण घटना को वहाँ पर संस्थित सभी प्राणी तथा भाग्यव राम और अगस्त्य मुनि भी देख रहे थे उन सबकी आँखों के ही सामने ऐसा हुआ था । ६१।

भाग्यव चरित्र (१)

वसिष्ठ उवाच—

दृष्ट्वा परशुरामस्तु तदाश्चर्यं महाद्भुतम् ।

जगाद सर्ववृत्तांतं मृगयोस्तु यथाश्रुतम् ॥१

तच्छ्रुत्वा भगवान्साक्षादगस्त्यः कुंभसंभवः ।

मोदमान उवाचेदं भार्गवं पुरतः स्थितम् ॥२

अगस्त्य उवाच—

श्रुणु राम महाभाग कायकीर्यविशारद ।

हितं वदामि यत्तेऽद्य तत्कुरुष्व समाहितः ॥३

इतो विदूरे सुमहत्स्थानं विष्णोः सुदुर्लभम् ।

पदानि यत्र हृश्यन्ते न्यस्तानि सुमहात्मना ॥४

यत्र गंगा समुद्रभूता वामनस्य महात्मनः ।

पदाग्रात्कमतो लोकांस्तद्वलेस्तु विनिग्रहे ॥५

तत्र गत्वा स्तवं चेदं मासमेकमनन्यधीः ।

पठस्व नियमेनैव नियतो नियताशनः ॥६

यत्वया कवचं पूर्वमभ्यस्तं सिद्धिमिच्छता ।

शत्रूणां नियहाथयि तच्च ते सिद्धिदं भवेत् ॥७

श्री वसिष्ठजी ने कहा—उस समय में परशुराम ने इस महान् आश्चर्य को देखकर उन दोनों हरिण-हरिणियों का सम्पूर्ण वृत्तान्त जैसा भी सुना गया था अगस्त्य मुनि से कह दिया था ।१। साक्षात् कुम्भ से समुत्पत्ति ग्रहण करने वाले अगस्त्य भगवान् ने इस वृत्तान्त का श्रवण करके बहुत ही अधिक प्रसन्न होते हुए अपने समझ में संस्थित भार्गव राम से यह कहा था ।२। अगस्त्य जी ने कहा—हे राम ! आप तो महान् भाग वाले हो और क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए—इस विषय में आप बहुत विद्वान हैं । आज मैं जो आपके हित की बात है उसको आपको बतलाता हूँ । उसे आप बहुत ही सावधान होते हुए कर डालिए ।३। इस स्थल से विशेष दूरो पर भगवान् विष्णु का परम दुर्लभ एक बड़ा भारी स्थान है जहाँ पर भगवान् के कमनीय कोमल चरणों के चिह्न दिखलाई दिया करते हैं जहाँ पर महान् आत्मा वाले प्रभु ने उन अपने चरणों को रखा था ।४। यह वह स्थल है जहाँ पर प्रभु ने वामन का अवतार लेकर राजा बलि को विनिगृहीत करने के कार्य में अपने चरण के अग्रभाग से सभी लोकों को समाक्षान्त कर लिया था । उस समय में ब्रह्माजी ने भगवान् के चरणों को प्रक्षालित किया था और जहाँ पर महात्मा वामन के चरणों के जलसे गङ्गा

का समुद्रभव हुआ था ।५। अब आप उसी स्थल में जाकर अनन्य बुद्धि वाले होते हुए एक मास तक इस स्तोत्र का पाठ करो और पूर्ण नियम से ही नियत तथा नियत अशन (भोजन) वाले होकर रहो ।६। आपने सिद्धि की इच्छा रखते हुए जिस कबच का पूर्व में अभ्यास किया था और अपने समस्त शत्रुओं के नियह करने की कामना से ही किया था वही अब आपको सिद्धि के देने वाला हो जायगा ।७।

बसिष्ठ उवाच—

एवमुक्तो ह्यगस्तयेन रामः शत्रुनिबर्हणः ।

नमस्कृत्य मुनिं शान्तं निर्जगाश्रमाद्वहिः ॥८॥

पुनस्तेनैव मार्गेण संप्राप्तस्तत्र सत्वरम् ।

यत्रोत्तरात्पदन्यासान्निर्गंता स्वर्णदी नृप ॥९॥

तत्र वासं प्रकल्प्यासावकृतव्रणसंयुतः ।

समभ्यस्यत्स्तवं दिव्यं कृष्णप्रेमामृताभिघ्नम् ॥१०॥

नित्यं व्रतपतेस्तस्य स्तोत्रं तुष्टोऽभवद्धरः ।

जगाम दर्शनं तस्य जायदग्न्यस्य भूपते ॥११॥

चतुव्यूहाधिपः साक्षात्कृष्णः कमललोचनः ।

किरीटेनार्कवर्णेन कृडलाभ्यां च राजितः ॥१२॥

कौस्तुभोद्भासितोरस्कः पीतवासा घनप्रभः ।

मुरलीवादनपरः साक्षात्मोहनरूपधृक् ॥१३॥

तं हृष्टवा सहसोत्थाय जामदग्न्यो मुदान्वितः ।

प्रणभ्य दंडवद्भमौ तुष्टाव प्रयतो विभुम् ॥१४॥

बसिष्ठजी ने कहा—इस प्रकार से शत्रुओं के निवर्हण करने वाले राम से जब अगस्त्य मुनि के द्वारा कहा गया था तो फिर राम ने मुनि को नमस्कार करके जो महा मुनि परम शान्त स्वभाव वाले थे उस आशम से राम बाहिर निकलकर चला गया था ।८। हे भूप ! फिर उसी मार्ग से वह बहुत शीघ्र वहाँ पर पहुँच गया था जहाँ पर उत्तर पद के न्यास से स्वर्ग गङ्गा निकली थी ।९। उस स्वल पर उस परशुराम ने अकृतव्रण के साथ ही सुकृष्टिमि शिखा कर दी थी ।

मृत नामक दिव्य स्तव का भली-भाँति अभ्यास किया था । १०। हे भूपते ! ब्रज के स्वामी उन भगवान् श्रीकृष्ण उस पर परम प्रसन्न हो गये थे और उन्होंने जमदग्नि के पुत्र के लिए अपना दर्शन दिया था । ११। अब भगवान् के स्वरूप का वर्णन किया जाता है जिस रूप से राम को उन्होंने दर्शन दिया था—उनके नेत्र कमलों के समान परम सुन्दर थे—भगवान् कृष्ण साक्षात् चतुर्व्यूहों के अधिप थे—सूर्य के वर्ण के सट्टण जाज्वल्यमान किरीट और दोनों कानों में कुण्डलों की शोभा से समन्वित थे । १२। वक्षःस्थल में कोस्तुभ महामणि धारण किये हुए थे जिसकी प्रभा से उनका उरःस्थल समुद्रभासित हो रहा था—पीताम्बर का परिधान करने वाले नील जलद के समान प्रभा वाले थे । उनके करकमलों में वंशी थी जिसका वादन वे कर रहे थे तथा वे साक्षात् मोहन करने वाले स्वरूप को धारण करने वाले थे । १३। ऐसे उन भगवान् श्री कृष्ण के दर्शन करके जमदग्नि के पुत्र परशुराम ने तुरन्त ही अपने आसन से उठकर गात्रोत्थान दिया था और वह बहुत ही हृषि के समन्वित हो गये थे । उस राम ने उनके सामने चरणों में दण्ड की भाँति गिरकर उन विभु को प्रणाम किया था और फिर बहुत ही प्रणत होकर उनकी स्तुति की थी । १४।

परशुराम उवाच—

नमो नमः कारणविग्रहास पपन्नपालाय सुरात्तिहारिणे ।

ब्रह्मे शविलिङ्घद्रमुखस्तुताय ततोऽस्मि नित्यं

परमेश्वराय ॥ १५ ॥

यं वेदवादैर्विविधप्रकारैनिर्णेतुमीशानमुखा न शक्नुयुः ।

तं त्वामनिर्देश्यमजं पुराणमनंतमीडे भव मे दयापरः ॥ १६ ॥

यस्त्वेक ईशो निजवांछितप्रदो धत्ते तनूलोकविहाररक्षणे ।

नानाविधा देवमनुष्यनिर्यग्यादसु भूमेर्भवारणाय ॥ १७ ॥

तं त्वामहं भक्तजनानुरक्तं विरक्तमत्यन्तमपीदिरादिषु ।

स्वयं समक्षं व्यभिचारदुष्टचित्तास्वपि त्रेमनिवद्मानसम् ॥ १८ ॥

यं वे प्रसन्ना असुराः सुरा नराः

सकिन्तरास्तिर्यग्योतयोऽपि हि ।

गताः स्वरूपं निखलं विहाय ते देहस्त्रयपत्यार्थम-
मत्वमीश्वर ॥१६॥

तं देवदेवं भजतामभीप्सितप्रदं निरीहं गुणवर्जितं च ।
अचित्यमव्यक्तमधौघनाशनं प्राप्तोऽरणं

प्रेमनिधानमादरात् ॥२०॥

तर्पति तापैविविधैः स्वदेहमन्ये तु यज्ञैविविधैर्यजंति ।

स्वप्नेऽपि ते रूप्रमलीकिकं विभो पश्यन्ति

नैवार्थनिवद्वासनाः ॥२१॥

परशुराम ने कहा—भक्तों की सुरक्षा करने के कारणों से शरीर धारण करने वाले—अपनी शरणागति में सम्प्राप्त जनों का प्रतिपालन करने वाले और सुरगणों की पोड़ा का हरण करने वाले आपके लिए मेरा बार-म्बार नमस्कार है । ब्रह्मा-शिव-विष्णु और इन्द्र जिनमें प्रभु हैं ऐसे समस्त देवगणों के द्वारा जिनका स्तवन किया गया है ऐसे परमेश्वर प्रभु के लिए मैं नित्य ही प्रणाम निवेदन करने वाला हूँ । १५। शिव आदि प्रभु देव भी अनेक प्रकार के वेदों के वादों के द्वारा जिनके स्वरूप का निर्णय करने में समर्थ नहीं हुआ करते हैं उन निर्देशन करने के योग्य-अजन्मा-पुराण पुरुष तथा अनन्त प्रभु का मैं स्तवन करता हूँ । आप मेरे ऊपर दया में परायण हो जाइए । १६। जो एक ही ईश हैं और नित्य हो अपने भक्तों के मनोवाञ्छितों को प्रदान करने वाले हैं वे आप इस भूमि के भार को उतारने के लिए लोकों में विहार और उनकी रक्षा करने के वास्ते अनेक प्रकार के देव-मनुष्य-तिर्यग् तथा जल जीवों में शरीर धारण करके अवतार ग्रहण किया करते हैं । १७। ऐसे उन प्रभु आपको मैं स्वयं साक्षात् देख रहा हूँ जो अपने ही भक्तों में अनुराग रखने वाले हैं और इन्दिरा आदि में भी अत्यन्त विरक्त रहते हैं तथा व्यभिचार से दुष्ट चित्त वालियों में भी प्रेम से निवद्ध मन वाले हैं । १८। हे ईश्वर ! जिन आपके स्वरूप की प्राप्ति परम प्रसन्न होते हुए सम्पूर्ण अपने देह-स्त्री-सन्तति और वैभव की ममता का त्यागकर असुर-सुर-नर-किन्नर-और तिर्यग् योनि वाले भी कर चुके हैं । १९। उन्हीं देवों के भी देव-भजन करने वालों के लिये अभीप्सित प्रदान करने वाले-निरीह गुणों से रहित अर्थात् रजोगुणादि से रहित-न चिन्तन करने के योग्य-अव्यक्त और अधों के समुदायों के विनाश करने वाले-अरण तथा प्रेम के निधान

आपको मैंने आदर से इस समय साक्षात् प्राप्त कर लिया है । २०। अन्य जन तो नाना भौति के तपश्चर्या जनित तापों से अपने देह को संतप्त किया करते हैं और विविध वज्रों के द्वारा आपका यजन किया करते हैं । हे विभो ! इस प्रकार के परम विलङ्घ विधानों के करते हुए भी वे सब किसी प्रयोजनों की सिद्धि के लिए निष्ठा वासना बलों आपके इस अलोकिक स्वरूप का दर्शन स्वरूप में भी नेत्रों में नहीं किया करते हैं । २१।

ये वै त्वदीयं चरणं भवश्रमान्निविष्णचित्ता
विधिवत्समरंति ।

नमन्ति भक्त्याऽथ समर्चयन्ति वै परस्परं संसदि
वर्णयन्ति ॥ २२ ॥

तेनैकत्रन्मोदभवपंक्षेदनप्रसक्तचित्ता भवतोऽधिष्ठिपद्मे ।
तरंति चान्यानपि तारयन्ति हि भवौषधं नाम
मुद्रा तवेऽ ॥ २३ ॥

अहं प्रभो कामनिबद्धचित्तो भवतंतमायं विविधप्रयत्नः ।
आराधये नाथ भजानभिजः कि ते ह
विज्ञाप्यभिहास्ति लोके ॥ २४ ॥

कृष्ण उच्चाच—

इत्येवं जामदग्न्यं तु स्तुर्वतं प्रणतं पुरः ।
उच्चाचागाधया वाचा मोहयन्निव मायया ॥ २५ ॥

कृष्ण उच्चाच—

हंत राम महाभाग सिद्धं ते कार्यमुलमम् ।
कवचस्य स्तवस्यापि प्रभावादवधारय ॥ २६ ॥
हत्वा तं कार्त्तवीर्यं हि राजानं दृप्तमानसम् ।
माधयित्वा पितृवैरं कुरु निःक्षत्रियां महीय ॥ २७ ॥
मम चक्रावतारो हि कार्त्तवीर्यो धरातले ।
कृतकार्यो द्विजश्रेष्ठ तं समाप्य मानद ॥ २८ ॥

जो-जो भी भक्तगण आपके चरणाभ्युजों का इस संसार के बारम्बार जन्म-मरण के घोर श्रम से बैराग्य वाले होकर विधि के साथ स्मरण किया करते हैं—भक्ति की परम पूत भावना से नमन करते हैं और आपके चरणों का भली भाँति अर्चन किया करते हैं तथा परस्पर में एक-दूसरे सभा में इनका वर्णन किया करते हैं । २२। उस रीति से आपके चरण कमल में एक जन्म में समुत्पन्न पङ्कु के भेदन करने में प्रसक्त चित्त वाले भक्तजन स्वयं तर जाते हैं और दूसरों को तार दिया करते हैं । हे ईश ! आपका परम पुनीत नाम निश्चित रूप से इस साँसारिक रोग के दूर करने के लिए अमृत स्वरूप महीषध है । २३। हे प्रभो ! मैं तो कुछ कामना से निबद्ध चित्त वाला वाला हूँ । मैंने पपम स्त्रेष्ठनम् आपकी विधिपूर्वक प्रबल प्रयत्नों के साथ आराधना की थी । हे नाथ ! आप तो स्वयं ही इसके अभिज्ञ हैं अर्थात् आपको सभी कुछ ज्ञात है । आपके लिए इस लोक में क्या बात विज्ञापित करने के योग्य है ? अर्थात् कुछ भी नहीं है । २४। वसिष्ठ जी ने कहा—इस प्रकार से स्तवन करते हुए अपने चरणों में आगे प्रणत होने वाले परशुराम से माया से मोहित करते हुए के समान ही अगाध बाणी से प्रभु ने कहा था । २५। स्त्रीकृष्ण चन्द्र भगवान् ने कहा—बड़ी ही प्रसन्नता की बात है हे राम ! आप महान् भाग्य वाले हो । आपका उत्तम कार्य सिद्ध हो गया है । इसकी सिद्धि कवच और स्तव के ही प्रभाव से हुई है—इसको मन में समझ लीजिए । २६। बहुत हो वर्ष से युक्त मन वाले राजा कात्त्वीर्य का हनन करके अपने पिता के साथ किये हुए कुत्सित व्यवहार के बैर का बदला लेकर इस भूमि को अत्रियों से रहित कर डालिए । २७। इस धरातल में यह कात्त्वीर्य मेरे हो चक्र का अवतार है हे मानद द्विजस्त्रेषु ! उसको समाप्त करके आप सफल हो जाइए । २८।

अद्य प्रभृति लोकेऽस्मन्नंशावे शेन मे भवान् ।

चरिष्यति यथाकालं कर्ता हर्ता स्यथं प्रभुः ॥२६॥

चतुर्विशे युगे वत्स त्रेतायां रघुवंशजः ।

रामो नाम भविष्यामि चतुर्व्यूहः सनातनः ॥३०॥

कौसल्यानन्दजनको राजो दशरथादहम् ।

तदा कौशिकयज्ञं तु साधयित्वा सलक्षणः ॥३१॥

गमिष्यामि महाभाग जनकस्य पुरं महत् ।

तदा यास्यन्नयोध्या ते हरिष्ये तेज उन्मदम् ।

वसिष्ठ उवाच—

कृष्ण एवं समादिश्य जामदग्न्यं तपोनिधिम् ।

पश्यतोऽतर्दद्ये तत्र रामस्य सुमहात्मनः ॥३३

आज से ही आरम्भ करके आप इस लोक में मेरे ही अंश के वेश से चरण करेंगे और यथा समय आप स्वयं ही कर्ता और हर्ता प्रभु हो जायगे । २६। हे वत्स ! आगे चौबीसवें युग में जब प्रेतायुग होगा तब में राजा रघु के बंश में चतुर्थ्यं ह सनातन राम नाम वाला होऊँगा अर्थात् मेरा रामावतार होगा । ३०। मैं राजा दशरथ के बीयं से उसकी रानी कौशल्या के गर्भ से जन्म ग्रहण कर उमके आनन्द को उत्पन्न करने वाला आत्मज होऊँगा । उस समय में लक्ष्मण के साथ कौणिक विश्वामित्र महर्षि के यज्ञ को पूर्ण कराकर जिसमें दानव वाधा डाल रहे थे मैं फिर हे महाभाग ! राजा जनक के महान् नगर को जाऊँगा । वहाँ पर धनुषशाला में समस्त वीर नृपों के मध्य में शिव के धनुष का भञ्जन करके विदेह की पुत्री जानकी के साथ विवाह करूँगा । ३१-३२। उस समय में अपनी राजधानी अयोध्यापुरी के लिये गमन करते हुए आपके उत्तमदतेज का हनन कर दूँगा । वसिष्ठ जी ने कहा—इस रीति से भगवान् श्रीकृष्ण ने जमदग्नि के पुत्र परशुराम को अपना आदेश भली-भाली देकर जो कि राम तप की निधि थे । वहीं पर महात्मा राम के देखते-देखते हुए ही भगवान् कृष्ण अन्तहित हो गये थे । ३३।

भार्गव-चरित्र (२)

वसिष्ठ उवाच—

अंतर्घट्नं गते कृष्णे रामस्तु सुमहायणः ।

समुद्रिक्तमथात्मानं मेने कृष्णानुभावतः ॥१

अकृतद्रष्टव्यसंयुक्तः प्रदीप्ताग्निरिव ज्वलन् ।

समायातो भार्गवोऽसौ पुरी माहिष्मतीं प्रति ॥२

यत्र पापहरा पुण्या नमंदा सरितां वरा ।

पुनाति दर्शनादेव प्राणिनः पापिनो ह्यपि ॥३

पुरा यत्रहरेणापि निविष्टे न महात्मना ।

त्रिपुरस्य विनाशाय कृतो यत्नो महीपते ॥४

तत्र कि वर्ण्यंते पुण्यं नृणां देवस्वरूपिणाम् ।

स हृष्टवा नर्मदां भूप भार्गवः कुलनन्दनः ॥५

नमश्चकार सुप्रीतः शत्रुसाधनतत्परः ।

नमोऽतु नर्मदे तुभ्यं हरदेहसमुदभवे ॥६

क्षिप्रं नाशय शत्रून्मे वरदा भव शोभने ।

इत्येवं स नमस्कृत्य नर्मदां पापनाशिनीम् ॥७

श्री वसिष्ठ जी ने कहा—भगवान् श्री कृष्ण के अन्तर्घनि हो जाने पर सुमहान् यश वाले परशुराम ने इसके उपरान्त अपने आपको श्रीकृष्ण चन्द्र के अनुभाव समुद्रित्त मान लिया था अर्थात् अपने आपको उच्चस्तरीय व्यक्ति मान लिया था ।१। अकृतव्रण से समन्वित होकर जलती हुई अग्नि के ही समान जलता हुआ यह भार्गव राम माहिष्मती नगरी की ओर आ गया था ।२। यह पुरी वहाँ पर थी जहाँ पर समस्त सरिताओं में परम श्रेष्ठ-पुण्य प्रदा और पापों का हरण करने वाली नर्मदा नाम वाली नदी बहती है । यह नदी बहती है । यह नदी केवल दर्शन मात्र ही से महापापी प्राणियों को पुनीत बना दिया करती है ।३। हे महीपते ! प्राचीन काल में त्रिपुर के हनन करने वाले भगवान् शम्भु ने भी जो कि महान् आत्मा वाले हैं यहीं पर निविष्ट होते हुए त्रिपुरासुर के विनाश के लिये यत्न किया था ।४। वहाँ पर जो भी मनुष्य हैं वे महापुण्य शाली देवों के समान स्वरूप वाले हैं । उनके महान् पुण्य का क्या वर्णन किया जावे अर्थात् उनका पुण्य तो अवर्णनीय है । उस भार्गव परशुराम ने जो अपने कुल को अभिनन्दित करने वाले थे, हे भूप ! उस पुण्यमयी परम पावनी नदी का दर्शन किया था ।५। फिर राम ने जो अपने महाशत्रु कार्त्तवीर्य के साधन करने में परायण थे परम-प्रीनिमान् होकर नर्मदा को प्रणाम किया था और सविनय प्रार्थना की थी कि हे नर्मदे ! आप तो साक्षात् भगवान् शङ्कर के देह से शरीर धारण करने वाली हैं । आपकी सेवा में मेरा प्रणिपात स्वीकार होवे ।६। हे शोभने ! मेरा यही विनम्र निवेदन है कि आप मेरे शत्रुओं का बहुत ही शोद्ध विनाश करने की मेरे ऊपर अनुकम्पा कीजिए और मेरे लिए वर-

दान देने वाली हो जाइए । इस प्रकार से अन्यर्थना करते हुए उस परशुराम ने पापों के विनाश कर देने वाली नर्मदा के लिए नमस्कार की थी । ७।

दूतं प्रस्थापयामास कार्त्तवीर्यजुंनं प्रति ।

दूत राजा त्वया वाच्यो यदहं वच्चिम तेऽनघ ॥८॥

न संदेहस्त्वया कार्यो दूतः क्वापि न वध्यते ।

यद्बलं तु समाश्रित्य जमदग्निमुनिं नृपः ॥९॥

तिरस्त्वं कृतवान्मूढ तत्पुत्रो योद्धुमागतः ।

शीघ्रं निर्गच्छ मंदात्मन्युद्धं रामाय देहि तत् ॥१०॥

भार्गवं त्वं समासाद्य गच्छ लोकांतरं त्वरा ।

इत्येवमुक्त्वा राजानं श्रुत्वा तस्य वचस्तथा ॥११॥

शीघ्रमागच्छ भद्रं ते विलम्बो नेह शस्यते ।

तेनैवमुक्तो दूतस्तु गतो हैह्यभूपतिम् ॥१२॥

रामोदितां तत्सकलां श्रावयामास संसदि ।

स राजात्रेयभक्तस्तु महाबलपराक्रमः ॥१३॥

चुक्रोधं श्रुत्वा वाच्यं तद्दूतमुत्तरमावहत् ।

कार्त्तवीर्यं उवाच-

मया भुजबलेनैव दत्तदत्तेन मेदिनी ॥१४॥

उसके अनन्तर वहीं से एक दूत को कार्त्तवीर्यजुंन के राजा के पास भेजा था । उन्होंने उस दूत से कहा था कि हे दूत ! तुमको वहीं पहुँच कर उस राजा कार्त्तवीर्य से यह कहना चाहिए हे अनघ ! अर्थात् निष्पाप ! जो कुछ भी मैं इस समय में तुमको बोल रहा हूँ । ८। ऐसे कहने में तुमको डरना नहीं चाहिए और अपने लिये पाये जाने वाले किसी तरह के दण्ड का हृदय में कुछ भी सन्देह नहीं करना चाहिए क्योंकि राजाओं के यहीं पर ऐसा नियम है कि जो दूत बनकर आता है वह चाहे किसी ही सूचना लेकर क्यों न आया हो उसका वध किसी भी दशा में कहीं पर भी नहीं किया जाता है । उस राजा से तुम कह देना कि हे नृप ! जिस बल का समाश्रय लेकर तू ने जमदग्नि महामुनि का महान् तिरस्कार किया था हे मूढ ! उसी मुनि का पुत्र तुझसे युद्ध करके बदला लेने के लिए समागत हुआ है । हे मन्द

आत्मा वाले ! अब तनिक भी बिलम्ब न करके बहुत ही शीघ्र अपनी नगरी से बाहर निकलकर आ जाओ और राम के साथ युद्ध करो । १०। उस भागेवं राम के समीप में पहुँच कर शीघ्र ही दूसरे लोक को गमन कर अर्थात् मृत्यु के मुख में चला जा । इस तरह से स्पष्टतया उस राजा से कह देना और वह इसका उत्तर क्या देता है उसके बचनों का स्वरण करना । ११। हे दूत ! तुम बहुत ही शीघ्र वापिस आ जाना । तुम्हारा इसमें ही ही कल्याण होगा । इस काय में बिलम्ब बिल्कुल भी न होवे—इसी में तुम्हारी प्रशंसा है । जब इस रीति से उस दूत से कहा गया था तो वह दूत तुरन्त ही हैह्य भूपति के समीप में वहाँ से चला गया था । १२। उस राजा की सभा में उस दूत ने जैसा भी जो कुछ परशुराम के द्वारा गया था वह सब उसी प्रकार से उसने राजा को सुना दिया था । वह राजा कार्त्तवीर्य तो दत्तात्रेय महामुनि का परम भक्त था—इसका भी उसको बड़ा अभिमान था और वह महान् बल-पराक्रम से भी संयुत था । १३। जब उसने दूत के द्वारा परशुराम का कहा हुआ सन्देश सुना तो उसको बहुत ही अधिक क्रोध आ गया था और उसने उस दूत को इसका उत्तर दिया था । कार्त्तवीर्य राजा ने कहा—मैंने इस सम्पूर्ण मेदिनी को दत्तात्रेय के द्वारा प्रदान किये हुए अपनी भुजाओं के ही बल-पराक्रम से अपने अधिकार में किया है । १४।

जिता प्रसह्य भूपालान्बद्धवानीय निजं पुरम् ।

तद्वलां भयि वर्त्तेत युद्धां दास्ये तवाधुना ॥ १५ ॥

इत्युक्त्वा विससज्जशु दूतं हैह्यभूपतिः ।

सेनाध्यक्षं समाहृय प्रोवाच वदतांवरः ॥ १६ ॥

सज्जं कुरु गहाभाग सैन्यं मे वीरसंमतः ।

योत्स्ये रामेण भृगुणा विलंबो मा भवत्विति ॥ १७ ॥

एवमुक्तो महावीरः सेनाध्यक्षः प्रतापनः ।

सैन्यं सज्जं विधायाशु चतुरंगं न्यवेदयत् ॥ १८ ॥

सैन्यं सज्जं समाकर्ण्य कार्त्तवीर्यो नृपो मुदा ।

सूतोपनीतं स्वरथमारुरोह विशांपते ॥ १९ ॥

तस्य राजः समंतात् सामंता मंडलेश्वराः ।

नागस्तु कोटिशस्तत्र हयस्यांदनपत्तयः ।

असंख्याता महाराज सन्ये सागरसन्निभे ॥२१

मैंने इस समस्त भूमि को जीत लिया है और बलात् समस्त भूपालों को बाँधकर अपने पुर में मैं ले आया हूँ। वह सभी बल मुझमें विद्यमान है। एतएव अब मैं तुम्हारे साथ युद्ध अवश्य करूँगा । १५। इतना कहकर उस हैह्य पति ने उस दूत को अपने यहाँ से शीघ्र ही विदाकर दिया था। और फिर बोलने वालों में परम श्रेष्ठ ने अपनी समस्त सेना के अध्यक्ष को बुला कर उसको आदेश दिया था । १६। हे महाभाग ! आप तो महान् वीरों के द्वारा माने हुए वीर हैं। इसी समय मेरी अपनी सब सेना को सज्जित करिए। मैं अभी भृगु राम के साथ युद्ध करूँगा अतः इस कायं में बिलम्ब न होवे । १७। जब इस रीति से शीघ्र ही सेना के सुसज्जित करने के लिये सेनाध्यक्ष से कहा गया था तो उस प्रतापन नामक सेनाध्यक्ष ने चतुरज्ञी सेना को बहुत ही शीघ्र सज्जित करके राजा से निवेदन कर दिया था कि सब सेना प्रस्तुत है । १८। हे विशांपते ! जिस समय में कात्त्वीर्यं नृप ने आनन्द से युक्त होते हुए अपनी सेना को पूर्णतया सुसज्जित सुना था तो वे सारथि के द्वारा लाये हुए अपने रथ पर समारूढ़ हो गये थे । १९। उस राजा कात्त्वीर्य के चारों ओर अनेक अक्षीहिणीयों से समन्वित होकर बड़े-बड़े सामन्त मण्डलेश्वर उस राजा को परिवारित करके स्थित हो गये थे । २०। हे महाराज ! वहाँ पर सेना में करोड़ों की संख्या में हाथी-अश्व-रथ और पैदल सैनिज थे जिनकी कोई भी संख्या नहीं थी और वह सेना एक महान् सागर के ही सहस्र थी । २१।

हश्यन्ते तत्र भूपाला नानावंशसमुद्भवाः ।

महावीरा महाकाया नानायुद्धविशारदाः ॥२२

नानाशस्त्रास्त्रकुशला नानावाहगता नृपाः ।

नानालंकारसंयुक्ता मत्ता दानविभूषिताः ॥२३

महामात्रकृतोद्देशा भांति नागा ह्यनेकशः ।

नानाज्ञातिसमुत्पन्ना हयाः पवनरहसः ॥२४

प्लवंतो भांति भूपाल सादिभिः कृतशिक्षणाः ।

स्यन्दनानि सुदीर्घाणि जवनाशवयुतानि च ॥२५

चक्रनिघोषयुक्तानि प्रावृणमेघोपमानि च ।

पदातयस्तु राजंते खड्गचर्मधरा नृप ॥२६

अहंपूर्वमहंपूर्वमित्यहंपूर्वकान्विताः ।

यदा प्रचलितं सैन्यं कात्तंवीर्यजुंनस्य वै ॥२७

तदा प्राच्छादितं व्योम रजसा च दिशो दश ।

नानावादित्रनिघोषैहेयानां ह्लेषितैस्तथा ॥२८

वहाँ पर उस सेना में अनेक वंशों में समुत्पन्न हुए भूपाल दिखलाई दे रहे थे जो परम महान् वीर-बड़े विशाल शरीर को धारण करने वाले तथा अनेक प्रकार के युद्ध करने के कौशल में विशारद थे । २२। वे सब नृप विविध प्रकार के शस्त्रों और अस्त्रों के चलाने में प्रवीण थे और बहुत के वाहनों से युक्त थे । ये सब नृप नाना भाँति के अलड्डारों से भूषित थे । इस सेना में बड़े मदमत्त हाथी थे जो मद से विभूषित थे । २३। उस सेना में अनेक प्रकार के नाग शोभा दे रहे थे । जिनका उद्देश बड़े-बड़े कार्य करना ही था । विविध प्रकार की ज्ञानियों में समुत्पन्न होने वाले अश्व ये जिनकी गति का वेग वायु के ही सदृश था । २४। हे भूपाल ! उन अश्वों को उनके साईशों के द्वारा ऐसी शिक्षा दी गयी थी कि वे प्लवन करते हुए शोभा दे रहे थे । उस सेना में बड़े-बड़े सुविशाल और लम्बे-चौड़े रथ में जिनमें ऐसे घोड़े जुड़े हुए थे जो बड़ी ही शीघ्रता से गमन किया करते थे । २५। रथों के पहियों के चलने के समय में बड़ी जोरदार ध्वनि होती थी जो ऐसे ही प्रतीत हो रहे थे मानों वर्षा काल के मेघ गर्जते चले जा रहे हों । हे नृप ! जो पैदल सैनिक थे वे सब ढाल और तलवार धारण करने वाले थे । २६। वे पैदल सैनिक परस्पर में चलने के लिये—मैं आगे चलूँगा—मैं सबसे पहिले बढ़ूँगा—इस प्रकार से सभी आगे-आगे बढ़कर सेना में युद्ध के लिये वीर भावना से समन्वित थे । इस रीति से जिस समय में राजा कात्तंवीर्य की वह सुमहान् विशाल सेना युद्ध के लिए वहाँ से चल दी थी उस समय से सम्पूर्ण दशों दिशाएँ और आकाश सेना के सैनिकों और उनके वाहनों के चलने से उठकर उड़ी हुई धूलि से आच्छादित हो गये थे अर्थात् चारों ओर रज ला गयी थी । सेना के प्रस्थान के समय में अनेक तरह के बाजे बज रहे थे इनके घोष से तथा अश्वों के हिन-हिनाने से आकाश मण्डल व्याप्त हो गया था अर्थात् नभ में गूँज उठ रही थी । २७-२८।

गजानां वृंहिते राजन्व्याप्तं गगनमंडलम् ।

मार्गे ददर्श राजेन्द्रो विपरीतानि भूपते ॥२६

शकुनानि रणे तस्य मृत्युदौत्यकराणि च ।

मुक्तकेशां छिन्ननासां रुदतीं च दिगंबराम् ॥३०

कृष्णवस्त्रपरीधानां वनितां स ददर्श ह ।

कुचैलं पतितं भग्नं नग्नं काषायवाससम् ॥३१

अंगहीनं ददर्शसौ नरं दुःखितमानसम् ।

गोधां च शशकं शल्यं रिक्तकुम्भां सरीसृपम् ॥३२

कापर्सिं कच्छपं तैलं लवणं चास्थिखंडकम् ।

स्वदक्षिणे शृगालं च कुर्वता भैरवं रवम् ॥३३

रोगिणं पुलकसं चैव वृषं च श्येनभल्लुकौ ।

हष्ट्वापि प्रययौ योद्धुं कालपाशावृतो हठात् ॥३४

नर्मदोत्तरतीरस्थो ह्यकृतव्रणसंयुतः ।

वटच्छायासमासीनो रामोऽपश्यदुपागतम् ॥३५

हे राजन् ! हाथियों की चिघाड़ों से सम्पूर्ण गगन मण्डल भर कर गूँज गया था । हे भूपते ! जिस समय वह राजेन्द्र अपनी महती सेना को लेकर परशुराम से युद्ध करने के लिए गमन कर रहा था उस समय में मार्ग में विपरीत बहुत से शकुन देखे थे जो कि रण स्थल में मृत्यु के होने की सूचना देने वाले दूतों के ही समान थे । यहाँ से आगे उन बुरे असगुनों के विषय में बतलाया जाता है जो-जो उस राजा ने मार्ग में देखे थे—उस राजा ने एक ऐसी नारी को देखा था जो अपने शिर के केशों को खोले हुई थी—वह रुदन कर रही थी और बिल्कुल नग्न थी । २६-३०। वह काले वर्ण का परिधान की हुई थी । इसका तात्पर्य यह है कि ऐसी स्त्री मार्ग में मिले तो बड़ा ही बुरा सगुन है । ऐसा पुरुष भी यदि मिल जावे तो वह भी बुरा सगुन है जैसा उस कार्त्तवीय ने देखा था । उसे एक ऐसा पुरुष दिखाई दिया था जो बहुत ही मैले-कुचले वस्त्र पहिने हुए था—भूमि पप पड़ा था—उनका शरीर जीण-शीण था और काषाय (गेहूँआ) रङ्ग के वस्त्र धारण किये हुए था । ३१। वह पुरुष अङ्गों से हीन था और उनके मन में बड़ा ही

अधिक दुख था । काना-नकटा-लूला-लंगड़ा मनुष्य जो किसी भी अपने अङ्ग से हीन हो वह शुभ कार्य के करने के समय में मार्ग में मिल जावे तो असगुन होता है । मार्ग से तात्पर्य अपने स्थान से निकलते ही मिल जाने से है । उस राजा ने इसके अतिरिक्त अन्य भी बुरे-बुरे असगुन थे । उनके नाम बताये जाते हैं—उसने गोधा (गोह)—शशक (खरगोश)—शाल्य जल से रिक्त कलश और सरोसृप को देखा था । ३२। उसने फिर कपास-कच्छु-तेल-लवण-हड्डी का टुकड़ा और अपनी दाहिनी ओर भेरव शब्द करते हुए शृंगाल को देखा था । ३३। इनमें से कोई भी एक एदि मार्ग में गृह से निकलते ही देखने को मिल जाता है तो असगुन होता है जिसमें उस राजा ने इन सभी बुरे सगुनों को देखा था । फिर राजा ने पुत्कस-रोगी मनुष्य-वृष-श्येन और भल्लुक को देखा था । इन सब बुरे-बुरे असगुनों को बार-बार देखकर भी हठ के वश वह राजा युद्ध करने के लिये चल ही दिया था क्यों-कि वह तो काल के पाश से समावृत था । ३४। राम अकृतव्रण के सहित नर्मदा नदी के उत्तर की ओर तट पर स्थित था और एक बट वृक्ष की छाया का समाश्रय ग्रहण कर रखा था । उस परशुराम ने इत राजा कार्त्तवीर्य को सेना सहित आया हुआ देख लिया था । ३५।

कार्त्तवीर्य नृपवरं शतकोटिनृपान्वितम् ।

सहस्राक्षौहिणीयुक्तं दृष्ट्वा हृष्टो बभूव ह ॥ ३६ ॥

अद्य मे सिद्धिमायातां कार्यं चिरसमीहितम् ।

यद्दृष्टिगोचरो जातः कार्त्तवीर्यो नृपाधमः ॥ ३७ ॥

इत्येवमुक्त्वा चोत्थाय धृत्वा परशुमायुधम् ।

व्यंजृभतारिनाशाय सिंहः क्रुद्धो यथा तथा ॥ ३८ ॥

दृष्ट्वा समुद्यतं रामं सैनिकानां वधाय च ।

चकंपिरे भृशं सर्वे मृत्योरिव शरीरिणः ॥ ३९ ॥

स यत्र यत्रानिलरंहसा भृगुश्चिक्षेप रोषेण युतः परश्वधम् ।

ततस्ततश्चिन्नभुजोरुकंधरा नागा हयाः शूरनरा ॥ ४० ॥

निपेतः ॥ ४० ॥

सथा गर्वेते महयुक्तमन्तते तानां तनां मर्द्यति प्रधान ॥

तथैव रामोऽपि मनोनिलौजा विमर्द्यामास

नृपस्य सेनाम् ॥४१

इष्टवा ममिस्थं प्रररंतमोजसा रामं रणे शस्त्रभृतां वरिष्ठम् ।

उद्यम्य चापं महदास्थितो रथं सज्यं च कृत्वा

किल मत्स्यराजः ॥४२

परशुराम ने श्रेष्ठ नृप कात्तीयर्जुन को देखा था जो सौ करोड़ राजाओं के साथ संयुत था और सहस्र अक्षीहिणी सेनाएँ भी उसके साथ थीं—ऐसे विशाल समुदायों को देखकर परशुराम मन में बहुत ही प्रसन्न हुए थे। हर्षातिरेक का कारण यही था कि जब मेदिनी को अश्रियों से हीन ही करना है तो इस समय में एक ही साथ बहुत से अश्रिय समागम हो गये हैं। ३६। परशुराम ने अपने मन में विचार किया कि बहुत समय से चाहा हुआ मेरा कार्य आज सिद्धि को प्राप्त हुआ है कि यह महान् अधम नृप कात्तीय मेरी हृष्टि के सामने आ गया है। ३७। अपने मन में यह कहकर वह वहाँ से उठकर खड़े हो गये थे और अपने आयुध परशु को धारण कर लिया था। फिर अपने शत्रु के विनाश करने के लिए परशुराम ने गर्जना की थी जिस तरह से क्रुद्ध हुआ सिंह गर्जा करता है। ३८। फिर समस्त है। ३९। फिर समस्त सैनिकों के बध करने के लिए समुक्त हुए परशुराम को देखकर सभी मृत्यु से जरीर धारियों के ही समान बहुत ही अधिक कौप गये थे। ३१। उन महावीर परशुराम ने रोष से युक्त होकर जहाँ-जहाँ पर अपने परशु को फैककर प्रहार किया था जो कि वायु के वेग के ही समान किया गया था वहाँ-वहाँ पर ही कटे हुए बाहु-वक्षःस्थल और गरदन बाले करी—अश्व और शूर वीर मनुष्य मरकर भूमि पर गिर गये थे। ४०। जिस तरह से भद्र से यस कोई गजेन्द्र दौड़ लगाता हुआ नाल वनका मर्दन कर दिया करता है ठीक उसी भौति से परशुराम ने भी मन और वायु के सहश ओज से युक्त होकर उस नृप की सेना का मर्दन कर कर दिया था। ४१। उस रणस्थल में इस रीति से अपने ओज के द्वारा प्रहार करते हुए शस्त्रधारियों में परमश्रेष्ठ परशुराम को देखकर मत्स्यराज नामक राजा ने अपने धनुष को उठाया था तथा फिर वह अपने विशाल रथ पर सजास्थित हो गया था। ४२।

आकृष्य वाणाननलोप्रतेजसः समाकिरन्भार्गवमाससाद् ।

दृष्ट्वा तमायांतमथो महात्मा रामो

भृहीत्वा धनुषं महोप्रम् ॥४३

वायव्यमस्त्रं विदधे रुषाप्लुतो निवारयन्मांगलबाणबर्षम् ।

स चापि राजाऽतिवलो मनस्वी ससर्ज रामाय तु

पर्वतास्त्रम् ॥४४

तस्तं भ तेनातिवलं तदस्त्रं वायव्यमिष्वस्त्रविधानदक्षः ।

रामोऽपि तत्रातिवलं विदित्वा तां मत्स्यराजं

विविधास्त्रपूर्णः ॥४५

किरंतमाजो प्रसभं मुमोच नारायणास्त्रं विधिमन्त्रयुक्तम् ।

नारायणास्त्रे भृगुणा प्रयुक्ते रामेण राजन्नपतेर्वधाय ॥४६

दिशस्तु सर्वाः सुभृशं हि तेजसा प्रजज्वलुमंतस्यपतिश्वकंपे ।

रामस्तु तस्याथ विलक्ष्य कम्पं बाणेश्चतुर्भि-

निजघान वाहान् ॥४७

शरेण चैकेन ध्वजं महात्मा चिच्छेद चापं च शरद्वयेन ।

बाणेन चैकेन प्रसद्य सारथि निपात्य

भूमो रथमार्द्यशित्रभिः ॥४८

त्यक्त्वा रथं भूमिगतं च मंगलं परश्वधेनाशु जघान मूर्दनि ।

स भिन्नशीषो रुधिरं वमन्मुहुमूर्च्छामवाप्याथ

ममार च क्षणात् ॥४९

तत्सेन्यनस्त्रेण च संप्रदग्धं विनाशमायादथ भस्मसात्कणात् ।

तस्मिन्निपतिते राजि चन्द्रवंशसमुद्भवे ॥५०

मंगले नृपतिश्वेष्ठे रामो हर्षमुपागतः ॥५१

उस राजा मत्स्यराज ने अपने धनुष की प्रत्यञ्चा की चींचकर उसने अग्नि के समान उग्र तेज वाले बाणों की आरों ओर भली-भाँति वर्षा करते हुए भार्गव के समीप में बह प्राप्त हो गया था । इसके अनन्तर

महात्मा परशुराम ने भी अपने ऊपर आङ्गमण करके आये हुए उसको देख कर अपने महान उस धनुष को ग्रहण कर लिया था । ४३। राम ने भी क्रोध से आप्लुत होकर उस मंगल वाणों की वृष्टि का निवारण करते हुए अपने वायव्य कस्त्र का प्रयोग किया था । वह राजा मत्स्यराज भी बहुत अधिक बली था और बड़ा मनस्वी था उसने परशुराम के ऊपर पर्वतास्त्र का प्रयोग किया था अर्थात् राम के ऊपर छोड़ दिया था । ४४। वाणों और अस्त्रों के विधान में परम दक्ष उसने उस राम के अति बलशाली वायव्य अस्त्र को स्तम्भित कर दिया था अर्थात् जहाँ की तहाँ रोककर क्रियाहीन बना दिया था । परशुराम ने भी वहाँ पर उस मत्स्यराज को अत्यधिक बल-विक्रम वाला समझकर विविध भाँति के अस्त्रों के समुदाओं की मत्स्यराज पर वर्षा करते हुए फिर रणभूमि में विश्वि के साथ मन्त्र से युक्त बलपूर्वक नारायणास्त्र को छोड़ दिया था । हे राजन् ! उस राजा के वध के लिए भृगुराम के द्वारा नारायणास्त्र का प्रयोग करने पर सर्वत्र दाह उत्पन्न हो गया था । ४५-४६। उस अस्त्र के तेज से समस्त दिशाएँ बहुत ही अधिक प्रज्वलित हो गयी थीं और वह मत्स्य देश का राजा भी उस भीषण दशा को देखकर कौप गया था । परशुराम ने जब उस राजा के कम्प को देखा तो फिर उसमें चार वाणों से उसके वाहनों का हनन किया था । ४७। उस महात्मा ने एक वाण से उसकी छवजा को काट दिया था और दोशरों से धनु का छेदन किया था तथा एक वाण से बल पूर्वक सारथि का निपातन करके तीन वाणों से भूमि पर रथ को चूर्ण कर दिया था । ४८। अपने रथ का त्याग करके भूमि पर स्थित मंगल के मस्तक में श्रीधर ही परशु से प्रहार करके उसका हनन कर दिया था । जब उसका शिर भग्न हो गया था तो वह रुधिर का वमन करता हुआ बार-बार मूर्छा प्राप्त करके एक ही क्षण में मृत्यु के मुख में चला गया था । ४९। उसकी समस्त सेना भी अस्त्र से प्रदग्ध हो गयी थी और क्षण भर में ही इसके उपरान्त भस्मसात् होकर विनाश को प्राप्त हो गयी थी । चन्द्रवंश में समुत्पन्न नृपों में श्रेष्ठ उस राजा मङ्गल के निपत्ति हो जाने पर राम को परम हर्ष प्राप्त हुआ । ५०-५१।

सार्गक्र-थरित्र (३)

वसिष्ठ उवाच—

मत्स्यराजे निपलिते राजा युद्धविशारदः ।

राजेन्द्रान्प्रेरयामास काल्पनीयो महाबलः ॥१॥

वृहद्वलः सोमदत्तो विदधो मिथिलेश्वरः ।

निषधाधिपतिश्वेष मगधाधिपतिस्तथा ॥२॥

आययुः समरे योद्धुः भार्गवेन्द्रेण भूपते ।

वर्षतः अरजालानि नानायुद्धविशारदाः ॥३॥

बीराभिमानिनः सर्वे हैह्यस्याज्ञया तदा ।

पिनाकहस्तः स भृगुर्ज्वलदग्निशिखोषमः ॥४॥

चित्रेप नामपाणं च अभिमंड्य अरोत्तमम् ।

तदस्त्रं भार्गवेन्द्रेण क्षिप्तं संग्राममुद्धनि ॥५॥

चकर्त गारुडास्त्रेण सोमदत्तो महाबलः ।

ततः क्रुद्धो महाभागो रामः शशुविदारणः ॥६॥

रुद्रदत्तोऽन्न अभेन सोमदत्तं जघान ह ।

वृहद्वलं च गदया विदर्भ मुष्टिना तथा ॥७॥

वसिष्ठजी ने कहा—मत्स्यराज के मर जाने पर युद्ध करने की कला के महामनीयी—महान बलशाली काल्पनीय ने फिर वहाँ रणभूमि में अन्य राजेन्द्रों को भेजा था । १। मिथिला का स्वामी विदर्भ सोमदत्त बहुत अधिक बल बाला था । निषध देश का अधिपति और मगध देश का स्वामी—ये सब हैं भूपते ! भार्गवेन्द्र परशुराम के साथ युद्ध करने के लिए समागम हो गये थे । ये सभी अनेक ब्रकार के युद्ध करने में परम पश्चिम थे और ये वहाँ अपने बाजों के जालों की थष्टि कर रहे थे । २-३। ये सभी बीरता के अभिमान रखने वाले थे और उस समय में राजा हैह्य की आज्ञा पाकर ही युद्ध करने के लिए आगे थे । वह भृगु परशुराम अपने हाथ में धनुष प्रहण किये थे तथा जलती हुई अग्नि के समान परम तेजस्वी थे । ४। भार्गवेन्द्र परशुराम ने तपाप्यम तासकः ॥५॥ यात्रा या उपने क्रम मात्र को अमित्यिद्युक्ते

संग्राम में फेंका था । ४। किन्तु भार्गवेन्द्र के द्वारा प्रक्षिप्त किये उस अस्त्र को महा बलवान् सोमदत्त ने काट दिया था और उसको अपने गद्धास्त्र से ही खण्डित कर दिया था । इसके अनन्तर महाभाग राम अत्यन्त क्रुद्ध हुए थे जो कि अपने शत्रुओं का विदारण करने वाले थे । ६। इसके पश्चात् परशुराम ने भगवान् रुद्र के द्वारा दिये हुए शूल में सोमदत्त का हतन कर दिया था—गदा से वृहदबल का और मुष्टि के प्रहार से विदर्भ का निपातन कर दिया था । ७।

मैथिलं मुद्गरेणैव शक्तया च निषधाधिपम् ।

मागधं चरणाधातैरस्त्रजालेन संनिकान् ॥८॥

निहत्य निखिलां सेनां संहाराग्विसमीरणे ।

दुद्राव कार्त्तवीर्यं च जामदग्न्यो महाबलः ॥९॥

दृष्ट्वा तं योट्धुमायांतं राजानोऽन्ये महारथाः ।

कार्यकार्यविधानजाः पृष्ठे कृत्वा च हैहयम् ॥१०॥

रामेण युयुधुश्चैव दर्शयन्तश्च सौहृदम् ।

कान्यकुञ्जाश्च शतशः सौराष्ट्राऽवंतयस्तथा ॥११॥

चक्रुश्च शरजालानि रामस्य च समंततः ।

शरजालावृतस्तेषां रामः संग्राममूर्द्धनि ॥१२॥

न चादृश्यत राजेन्द्र तदा स त्वकृतव्रणः ।

सस्मार रामचरितं यदुक्तं हरिणेन वै ॥१३॥

कुण्लं भार्गवेन्द्रस्य याचमानो हरि मुनिः ।

एतस्मिन्नेव काले तु रामः शस्त्रास्त्रकोविदः ॥१४॥

राम ने मिथिला के नृप का हनन मुद्गर के द्वारा और शक्ति से निषध देश के नृप का वध तथा मगधदेशाधिपति का निपातन चरणों के आधातों से एवं उनके सब सैनिकों का वध अपने अनेक अस्त्रों के प्रहारों से कर दिया । ८। इस रीति से परशुरामजी ने वहाँ पर स्थित सम्पूर्ण सेना को मारकर महान् बलवान् जामदग्नि के पुत्र ने उस संहार की अग्नि के समीरण में राजा कार्त्तवीर्य पर दीड़कर आक्रमण किया था । ९। उस समय में महारथी अन्य राजाओं ने जो कि कायं और अकायं के विधान के ज्ञाता थे जब

यह देखा कि परशुराम कात्तीर्य से युद्ध करने के लिए आ रहे हैं तो उन सबने उस कात्तीर्य को अपने पीठ पीछे कर दिया था । १०। और हैह्य राजा के प्रति अपना सौहार्द दिखलाते हुए वे सब परशुराम के साथ युद्ध कर रहे थे । इन राजाओं में कान्त्य कुबज-सौराष्ट्र और सैकड़ों ही अवन्ति के नृप थे । ३१। इन सभी ने परशुराम पर सभी और अपने शरों के जालों की ऐसी घोर वर्षा की थी कि उस समय में परशुराम उनके बाणों से उस संग्राम भूमि में चारों ओर से ढक गये थे । १२। हे राजेन्द्र ! इस बाणों की वृष्टि से राम दिखाई नहीं दे रहे थे । तब उस अकृतव्यण ने उस श्रीराम के चरित का स्मरण किया था जो हरिण के द्वारा कहा गया था । १३। उस मुनि ने भगवान् श्रीहरि से भार्गवेन्द्र परशुराम के कुशल रहने की याचना की थी । इतने ही बीच में ऐसा हुआ कि समस्त शस्त्रों और अस्त्रों के महापण्डित परशुराम ने अपने महान् आयुधों का प्रयोग किया था । १४।

विधूय शरजालानि वायव्यास्त्रेण मंत्रवित् ।

उदत्तिष्ठदणाकांक्षी नीहारादिव भास्करः ॥ १५ ॥

त्रिरात्रं समरे रामस्तः साढ़ युयुधे बली ।

द्वादशाक्षोहिणीस्तत्र चिच्छेद लघुविक्रमः ॥ १६ ॥

रम्भास्तम्भवनं यद्वत् परथवधवरायुधः ।

सर्वास्तान्भूपवग्निश्च तदीयाश्च महाचमूः ॥ १७ ॥

दृष्ट्वा विनिहतां तेन रामेण सुमहात्मना ।

आजगाम महावीर्यः सुचन्द्रः सूर्यवंशजः ॥ १८ ॥

लक्षराजन्यसंयुक्तः सप्ताक्षोहिणिसंयुतः ।

तत्रानेकमहावीरा गर्जतस्तोयदा इव ॥ १९ ॥

कंपयन्तो भुवं राजन् युयुधुभर्गवेण च ।

तेः प्रयुक्तानि शस्त्राणि महास्त्राणि च भूपते ॥ २० ॥

क्षणेन नाशयामास भार्गवेन्द्रः प्रतापवान् ।

गृहीत्वा परशुं दिव्यं कालांतकयमोपमम् ॥ २१ ॥

मन्त्रों के परमज्ञाता राम ने अपने अस्त्र के द्वारा समस्त शरों के समुदाय को दूर करके कुहरे से निकले हुए भगवान् सूर्य देवकी भाँति वहाँ

पर रण करने की इच्छा वाले उठकर खड़े हो गये थे । १५। महान् बलबान् उन परशुराम ने उन सबके साथ तीन दिन और रात्रि पर्यन्त समराज्ञ में घोर युद्ध किया था । और परम लघु विक्रम वाले परशुराम ने वहीं पर बारह अक्षौहिणी सेनाओं का छेदन कर दिया था अर्थात् सबको काटकर मार गिराया था । १६। जिस तरह से केलाओं के बन को काटकर गिरा दिया जाया करता है उसी भाँति से परम श्रेष्ठ परशुराम ने अपने परशु से उन सब शूरों को और उनकी बड़ी भारी सेनाओं को काटकर मार दिया था । जब सूर्यवंश में समुत्पन्न महान् वीर्य वाले सुचन्द्र नामक नृप ने यह देखा था कि उस महात्मा राम ने सब सेना को मार गिराया है तो वह वहाँ पर युद्ध करने के लिए स्वयं सामने आगया था । १८-१९। उसके साथ लाखों अन्य राजा थे और सात अक्षौहिणी सेना भी थी । उनमें बहुत से ऐसे महान् वीर थे जो घनघोर मेघों के ही समान गर्जन कर रहे थे । २०। हे राजन् ! वे अपनी गर्जना-तर्जना से सम्पूर्ण भूमि के प्राणियों को कंपा रहे थे और उन्होंने वहाँ आकर परशुराम के साथ घोर युद्ध किया था । हे भूपते ! उन्होंने अनेक शस्त्रों और अस्त्रों का वहाँ पर प्रयोग किया था । २१। तब एक ही क्षण में महान् प्रताप वाले परशुराम ने कालान्तक यमराज के सहज अपने परम दिव्य परशु (फणी) का ग्रहण करके उम सबका विनाश कर दिया था । २२।

कालयन्सकलां सेनां चिच्छेद भृगुनन्दनः ।

कर्षकस्तु यथा श्रेत्रे पक्वं धान्यं तथा तृणम् ॥२२॥

निःशेषयति दात्रेण तथा रामेण तत्कृतम् ।

लक्षराजन्यसैन्यं तद्वृष्ट्वा रामेण दारितम् ॥२३॥

सुचन्द्रः पृथिवीपालो युयुधे संगरे नृप ।

तावुभौ तत्र संकुब्धौ नानाशस्त्रास्त्रकोविदौ ॥२४॥

युयुधाते महावीरो मुनीशनृपतीश्वरो ।

रामोऽस्मै यानि शस्त्राणि चिक्षेपास्त्राणि चापि हि ॥२५॥

तानि सर्वाणि चिच्छेद सुचन्द्रो युद्धपंडितः ।

ततः क्रुद्दो रणे रामः सुचन्द्रं पृथिवीश्वरम् ॥२६॥

कृतप्रतिकृताभिज्ञं जात्वोपस्पृश्य वार्यथ ।

नारायणास्त्रं विशिखे संदधे चानिवारितम् ॥२७

तदस्त्रं शतसूर्यभिं क्षिप्तं रामेण धीमता ।

हृष्टोत्तीर्यं रथात्सद्यः सुचन्द्रः प्रणनाम ह ॥२८

उस सम्पूर्ण सेना को काटते हुए भृगुनन्दन ने छिन्न-भिन्न करके मार गिराया था जिस तरह से कोई खेतिहर किसान अपने खेत में पकी हुई फसल को तथा घास फूँस को काट दिया करता है । २२। कृषक अपनी दरांत से जैसे काट देता है वैसे ही परशुरामजी ने उस सेना को काट दिया था । जब लाखों राजाओं की सेना को राम के परशु के द्वारा विदीर्ण हुई देखा गया था । २३। तो हे नृप ! राजा सुचन्द्र ने समर में परशुराम के साथ स्वयं ही समागत होकर युद्ध किया था । वे दोनों ही बहुत अधिक क्षुब्ध हो रहे थे और दोनों अनेक शस्त्रास्त्रों के प्रयोग करने में बहुत ही कुशल पंडित थे । २४। वे दोनों मुनीन्द्र और राजा महान् वीर थे और और युद्ध कर रहे थे । परशुराम ने जिन-जिन शस्त्रों तथा अस्त्रों का भी उस पर प्रक्षेप किया था । २५। युद्ध में परम प्रवीण पण्डित उस सुचन्द्र नृपने उन सभी शस्त्रास्त्रों को काट गिया था । इसके अनन्तर परशुराम को उस रण में बहुत अधिक क्रोध आ गया था और परशुराम को ऐसा ज्ञान हुआ था कि यह सुचन्द्र नृप ऐसा कुशल है कि जिसका भी इस पर प्रयोग किया जाता है उसी का प्रतिकार करना यह अच्छी तरह से जानता है तो उस समय में जल का उपस्पर्शन किया था और फिर विशिख नारायण अस्त्र का सन्धान किया था । जो कि किसी भी प्रकार से निवारित नहीं हो सकता था । २६-२७। वह नारायणास्त्र संकड़ों सूर्यों की आभा वाला था जिसका कि प्रक्षेप बुद्धिमान् परशुराम ने सुचन्द्र पर किया था । उस समय में इस नारायणास्त्र को देख कर सुचन्द्र नृप तुरन्त ही अपने रथ से नीचे उतर गया था और उसने उस अस्त्र को प्रणाम किया था । २८।

सवस्त्रपूज्यं तच्चापि नारायणविनिर्मितम् ।

तमेवं प्रणतं त्यक्त्वा ययो नारायणांतिकम् ॥२९

विस्मितोऽभूत्तदा रामः समरे शत्रुसूदनः ।

रामः शक्ति च मुसलं तोमरं पट्टिशं तथा ।

गदां च परशुं कोपाच्चक्षेप नृपमूर्द्धनि ॥३१

जग्राह तानि सर्वाणि सुचंद्रो लीलयैव हि ।

चिक्षेप शिवशूलं च रामो नृपतये यदा ॥३२

बभूव पुष्पमालां च तच्छूलं नृपतेगले ।

ददर्श च पुरस्तस्य भद्रकालीं जगत्प्रसूम् ॥३३

वहंतीं मुँडमालां च विकटास्यां भयंकरीम् ।

सिंहस्थां च त्रिनेत्रां च त्रिशूलवरधारिणीम् ॥३४

दृष्ट्वा विहाय शस्त्रास्त्रं नमस्कृत्य समैङ्गत ।

राम उवाच—

नमोस्तु ते शंकरवल्लभायै जगत्सवित्र्यै समलकृतायै ॥३५

और वह अस्त्र भी समस्त अस्त्रों में परम पूज्य था क्योंकि साक्षात् भगवान् नारायण ने ही उसका निर्माण किया था । जब उस सुचन्द्र को इस भाँति से प्रणाम करते हुए देखा तो वह अस्त्र उसको छोड़कर भगवान् नारायण के ही समीप में चला गया था । २६। अपने शत्रुओं के विनाश करने वाले परशुराम को उस समय में समर स्थल में बहुत ही अधिक विस्मय हो गया था जबकि उन्होंने यह देखा था कि उनके द्वारा प्रयोग किया हुआ वह महान् अस्त्र भी व्यर्थ हो गया था और कुछ भी शत्रु का न करके उसी रूप में स्वस्थ वह बना रहा था । ३०। फिर राम ने अनेक शक्ति—मुसल—तोमर—पट्टिश—गदा और परशु आदि का उस सुचन्द्र पर प्रक्षेप बड़े ही क्रोध पूर्वक किया था । ३१। किन्तु इन सबका कुछ भी प्रभाव उस पर नहीं हुआ था और उसने उन सबको यों ही लीला से ही ग्रहण कर लिया था । जिस समय में परशुराम ने उस सुचन्द्र पर शिवशूल का प्रक्षेप दिया था । ३२। तो वह शिव शूल भी आकर उस राजा के गले में पुष्पों की माला होकर गिर गया था । उस समय में परशुराम ने यह देखा था कि उसके आगे समस्त जगत् की जननी भद्रकाली संस्थित हो रही है । ३३। वह भद्रकाली देवी नरमुण्डों की माला कण्ठ में पहिने हुई थीं तथा उसका मुख बहुत ही भीषण था और सबको भय देने वाली थी । वह एक सिंह के ऊपर सवार रही थी—तीन उसके नेत्र थे और हाथों में त्रिशूल धारण कर रही थी

।२४। ऐसी भगवती भद्रकाली का दर्शन करके परशुराम जी ने अपने सभी शस्त्र-अस्त्रों का परित्याग कर दिया था और देवी के चरणों में प्रणाम करके फिर उसकी भली भाँति स्तुति की थी । परशुराम ने कहा—आप तो भगवान् शङ्खर की प्रियबल्लभा हैं और इस सम्पूर्ण जगत् को जन्म देने वाली हैं । आपके लिए मेरा नमस्कार है । ३५।

नानाविभूषाभिरिभारिगायै प्रपन्नरक्षाविहितोद्यमायै ।
दक्षप्रसूत्यै हिमवद्भवायै महेश्वराद्विग्समास्थितायै ॥ ३६
काल्यं कलानाथकलाधरायै भवतप्रियायै भुवनाधिपायै ।
ताराभिधायै शिवतत्परायै गणेश्वराराधितपादुकायै ॥ ३७
परात्परायै परमेष्ठिदायै तापत्रयोन्मूलनचितनायै ।

जगद्द्वितायास्तपुरत्रयायै बालादिकायै त्रिपुराभिधायै ॥ ३८
समस्तविद्यासुविलासदायै जगजजनन्यै निहिताहितायै ।
बकाननायै बहुसौख्यदायै विष्वस्तनानासुरदानवायै ॥ ३९
वराभयालंकृतदोर्लंतायै समस्तभीवर्णिनमस्कृतायै ।
पीतांबरायै पवनाशुगायै शुभप्रदायै शिवसंस्तुतायै ॥ ४०

नागारिगायै नवखण्डपायै नीलाचलाभांगलसत्प्रभायै ।
लघुक्रमायै ललिताभिधायै लेखाधिपायै लवणाकरायै ॥ ४१
लोलेक्षणायै लयवर्जितायै लाक्षारसालंकृतपंकजायै ।

रमाभिधायै रतिसुप्रियायै रोगापहायै रचिताखिलायै ॥ ४२

आप विविध प्रकार के आभूषणों से समलंकृत हैं और इभारि के द्वारा गान की गयी हैं । आपकी शरणागति में प्रपन्न हो जाते हैं उनकी सुरक्षा के लिये आप उद्यम करने वाली हैं । आपने प्रजापति दक्ष के घर में जन्म धारण किया है और हिमवान् के यहाँ भी आप समुत्पन्न हुई हैं । आप साक्षात् महेश्वर की पाणिपरिणीता प्रिय पत्नी बनकर उनके अद्विज्ञ में समास्थित हुई है । ३६। आप कला नाथ की कला के धारण करने वाली हैं—अपने भक्तों की प्रिय काली हैं और समस्त भुवनों की स्वामिनी हैं । तारा नाम वाली हैं—भगवान् शिव को सेवा में सर्वदा तत्पर रहा करती हैं

और विश्वेष्वर गणेश आपकी पादुकाओं का समाराधन किया करते हैं। ३७। आप पर से भी परा हैं—परमेष्ठी के पद को प्रदान करने वाली है और आध्यात्मिक-आधिदैविक-आधिभौतिक—इन तीनों प्रकार के तापों का उन्मूलन करने वाला आपका चिन्तन हुआ करता है—इस जगत् के हित के लिए ही आपने त्रिपुरासुर को निहत किया था। वाला से आदि लेकर अनेक आपके शुभ नाम हैं तथा आपका परम शुभ त्रिपुरा—यह भी नाम है। ऐसी आपके लिये मेरा प्रणाम है। ३८। आप समस्त विद्याओं के सुविलास के प्रदान करने वाली हैं—इस सम्पूर्ण जगत् के जनन देने वाली जननी हैं—आप अहित करने वाले शत्रुओं को निहत कर देने वाली हैं—आप बकानना है अर्थात् बगुलामुखी हैं—आपके अनेक असुरों और दानवों का निहनन किया है और अत्यधिक सौख्य प्रदान किया है। ३९। आपके कर कमलों में वरदान और अभयदान रहते हैं और इनसे आपकी भुजलताएँ भूषित रहा करती हैं—समस्त देवगणों के द्वारा आपके चरण कमल वन्दित हैं—आप पीताम्बरा अर्थात् पीतवर्ण के वस्त्र धारण करने वाली हैं—आप पवन के ही समान अपने भक्तों की पीड़ा दूर करने के लिये शीघ्र गमन करने वाली हैं—आपका संस्तवन भगवान् शङ्कर भी किया करते हैं तथा आप आप सबको शुभ प्रदान करने वाली हैं—ऐसी आपकी चरण सेवा में मेरा अनेक बार प्रणिपात है। ४०। आप नागारि के द्वारा गान की गयी हैं—नब खण्डों वाले विश्व का पालन एवं रक्षण करने वाली हैं तथा नीलाचल की आभा वाले अंगों की प्रभा से शोभित हैं। आप लधुक्रमा—ललिता नाम धारिणी—लेखाधिपा और लवणाकारा हैं। ४१। आपके नेत्र परमाधिक चञ्चल हैं—आप लय से वर्जित हैं और आपके चरणों में लाक्षारस लगा हुआ है जिससे आपके चरण कमल समलंकृत हैं। आपका शुभ नाम रमा है—आप सुरति से प्यार करने वाली हैं—आप सभी रोगों का अपहरण करने वाली हैं और आपने ही सबकी रचना की है—ऐसी आपके लिए मेरा प्रणाम निवेदित है। ४२।

राज्यप्रदायै रमणोत्सुकायै रत्नप्रभायै रुचिरांबरायै ।

नमो नमस्ते परतः पुरस्तात् पाश्वाधिरोद्धर्वं च

नमो नमस्ते ॥ ४३ ॥

सदा च सर्वत्र नमो नमस्ते नमो नमस्तेऽखिलविग्रहायै ।

प्रसीद देवेशि मम प्रतिज्ञां पुरां कृतां पालय भद्रकालि ॥ ४४ ॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव जगञ्चयस्यापि नमो नमस्ते ।

वसिष्ठ उवाच—

एवं स्तुता तदा देवी भद्रकाली तपस्विनी ॥४५

उवाच भार्गवं प्रीता वरदानकृतोत्सवा ।

भद्रकाल्युवाच—

वत्स राम महाभाग प्रीतास्मि तव सांप्रतम् ॥४६

वर वरय मत्तो यस्त्वया चाभ्यथितो हृदि ।

राम उवाच—

मातर्यंदि वरो देयस्त्वया मे भक्तवत्सले ॥४७

तत्सुचंद्रं जये युद्धे तवानुग्रहभाजनम् ।

इति मेऽभिहितं देवि कुरु प्रीतेन चेतसा ॥४८

आप राज्य के प्रदान करने वाली हैं—आप रमण करने के लिए परम समुत्सुक रहा करती है—आपकी रत्नों के सहश प्रभा है और आप रुचिर वस्त्रों के परिधान करने वाली हैं—ऐसी आपके लिए बारम्बार मेरा नमस्कार है । ४३। आपकी सेवा में मेरा सदा और सर्वत्र अनेक बार नमस्कार है । आप समस्त प्रकार के शरीर को धारण करने वाली हैं । आपकी सेवा में बारम्बार प्रणिपात है । हे देवेशि ! आप मेरे ऊपर अनुकम्पा करके प्रसन्न हो जाइए और हे भद्रकालि ! मैंने जो समय भूमि को क्षत्रियों से हीन कर देने की पहले प्रतिज्ञा की है उसको परिपूर्ण करा दीजिए । ४४। आप ही मेरी माता-पिता हैं और मेरी ही क्या इन तीन जगतों की माता हैं और आप ही पिता हैं—ऐसी आपके चरणों में मेरा बार-बार प्रणाम निवेदित है । वसिष्ठ जी ने कहा—उस समय में परमाधिक वेगवाली भद्रकाली देवी इस प्रकार से संस्तुत की गयी थी । ४५। तो वह देवी परम प्रसन्न होकर वरदान द्वारा आनन्द देने वाली होती हुई भार्गव परशुराम से बोली—भद्रकाली ने कहा—हे वत्स राम ! आप महान भाग वाले हैं । अब इस समय में मैं आपके ऊपर बहुत प्रसन्न हो गई हूँ । ४६। आप मुझसे वरदान प्राप्त कर लो जो भी कुछ तुमने अपने हृदय में विचार करके मेरी प्रार्थना की है । परशुराम ने कहा—हे भार्गव ! मैं आप है अत्यता ।

मुझे कोई वरदान ही देना चाहती हैं तो मैं यही वरदान चाहता हूँ कि यह राजा सुचन्द्र से इस युद्ध में मेरा जय हो जावे तभी मैं आपकी अनुकम्पा का पात्र होऊँगा । हे देवि ! यहो मेरा निवेदन आपकी सेवा में मैंने किया है सो आप परम प्रसन्न चित्त से हो कर दीजिए । ४७-४८।

येन केनाप्युपायेन जगन्मातर्नमोऽस्तु ते ।

भद्रकाल्युवाच—

आग्नेयास्त्रेण राजेन्द्रं सुचंद्रं नय मद्गृहम् ॥४६॥

ममातिप्रियमद्यैव पार्षदो मे भवत्वयम् ।

वसिष्ठ उवाच—

इत्युक्तमाकर्णं स सार्गवेद्रो देव्याः प्रियं

कर्तुं मथोद्यतोऽभूत ॥५०॥

प्राणान्नियम्याचमनं च कृत्वा सुचंद्रमुद्दिश्य च तत्समादधे ।

अस्त्रं प्रयुक्तं नृपतेर्बंधाय रामेण राजन् प्रसभं तदा तत् ॥५१॥

दग्धवा वपुभूतमयं तदीयं निनाय लोकं परदेवतायाः ।

ततस्तु रामेण कृतप्रणामा सा भद्रकाली जगदादिकर्त्री ॥५२॥

अंतर्हिताभूदथ जामदग्न्यस्तस्थौ रणे भूपवधाभिकांक्षी ॥५३॥

हे जगत् की माता ! जिस किसी भी उपाय से मेरा विजय हो जावे यही मेरी इच्छा है । मेरा आपके लिए नमस्कार है । भद्रकाली देवी ने कहा—राजेन्द्र सुचन्द्र को तुम आग्नेयास्त्र द्वारा ही मेरे स्थान में पहुँचा दो । ४६। यह मेरा अत्यधिक प्रिय भक्त है सो आज ही यह मेरे गृह में पहुँचकर मेरा पार्षद हो जावेगा । वसिष्ठ जो ने कहा—उस भार्गव परशुराम जी ने यह इतना ही देवी के द्वारा कहा हुआ श्रवण करके इसके अनन्तर वह देवी का प्रिय कार्य करने के लिए समुद्यत हो गया था । ५०। फिर परशुराम जी ने प्राणों का आयाम करके आचमन किया था और फिर राजा सुचन्द्र को उद्दिष्ट करके वह अस्त्र धारण किया था उस अस्त्र का हे राजन ! राम ने नृप के वध के लिए बलपूर्वक उस समय में प्रयोग किया था । ५१। उसके उसी भौतिक शरीर को अपने अस्त्र से भस्मीभूत करके उसको फिर पर देवता के लोक को पहुँचा दिया था । इसके अनन्तर परशुराम के द्वारा प्रणिपात

की हुई वह जगत की आदि कर्त्री भद्रकाली देवी वहाँ पर अन्तर्हित हो गयी थी और परशुराम उस रण स्थल में भूप के वध की आकांक्षा वाला होकर स्थित हो गये थे । ५२-५३।

(५४-५५) उल्लेख—X— से लगती स्थिति अपराह्न तक ।

परशुराम द्वारा कार्तवीर्य-वध

वसिष्ठ उवाच—

सुचंद्रे पतिते राजान् राजेन्द्राणां शिरोमणी ।

तत्पुत्रः पुष्कराक्षस्तु रामं योद्धुमथागतः ॥१॥

स रथस्थो महावीर्यः सर्वशस्त्रास्त्रकोविदः ।

अभिवीक्ष्य रणेत्युग्रं रामं कालान्तकोपमम् ॥२॥

चकार शरजालं च भार्गवेन्द्रस्य सर्वतः ।

मुहूर्तं जामदग्न्योऽपि बाणैः संछादितोऽभवत् ॥३॥

ततो निष्क्रम्य सहसा भार्गवेन्द्रो महाबलः ।

शरबंधान्महाराज समुद्रेक्षत सर्वतः ॥४॥

दृष्ट्वा तं पुष्कराक्षं तु सुचंद्रतनयं तदा ।

कोधमाहारयामास दिव्यक्षन्तिव पावकः ॥५॥

स कोष्ठेन समाविष्टो वारुणं समवासृजत् ।

ततो मेघाः समुत्पन्ना गर्जतो भंरवानुवान् ॥६॥

ववृषुर्जलधाराभिः प्लावयन्तो धरां नृप ।

पुष्कराक्षो महावीर्यो वायव्यास्त्रमवासृजत् ॥७॥

श्री वसिष्ठजी ने कहा—हे राजन् ! अब राजा सुचन्द्र का निपातन हो गया था जो कि सभी राजेन्द्रों को शिरोमणि था तब उसका पुत्र पुष्कराक्ष परशुरामजी से युद्ध करने के लिए वहाँ पर आगया था । १। वह महान बल वीर्य वाला था और अपने रथ पर संस्थित था और सभी प्रकार के शस्त्राशस्त्रों के प्रयोग करने में बहुत बड़ा पण्डित था तथापि उसकी हृषि में परशुराम रण में अतीव उग्र और कालान्तक यम के समान दिखाई दिये थे । २। उस पुष्कराक्ष ने ऐसी बाणों की वृष्टि उनके सभी ओर की थी एक

बड़ी के लिए परशुरामजी को शरों के जाल से भली भाँति ढक दिया था । ३। इसके अनन्तर भार्गवेन्द्र जो महान बल से समन्वित थे उस बाणों के जाल से सहसा बाहिर निकल आये और है महाराज ! उसने शरों के बन्धों को सभी ओर देखा था । ४। उस समय में परशुराम ने सुचन्द्र के पुत्र पुष्कराक्ष के ऊपर अपनी हष्टि डाली थी और उनको बड़ा भारी क्रोध उत्पन्न हो गया था । उस समय में क्रोध से वे जलती हुई अग्नि के ही समान दिखाई दे रहे थे । ५। उस रात में क्रोध से समाविष्ट होकर बाहुण अस्त्र को छोड़ा था । इसके अस्त्र के प्रभाव से सभी ओर से महान भैरव गर्जना करते हुए मेघ समुत्पन्न हो गये थे । ६। हे नृप ! उन मेघों ने जल के धारा सम्पात से इस पृथ्वी को प्लावित करते हुए बड़ी ओर वृष्टि की थी । पुष्कराक्ष महान वीर्य वाला था उसने भी उस समय में वायव्य अस्त्र को छोड़ दिया था । ७।

तेन तेऽदर्शनं नीताः सद्य एव बलाहकाः ।

अथ रामो भृशं क्रुद्धो ब्राह्मं तत्राभिसंदधे ॥८॥

पुष्कराक्षोऽपि तेजैव विचकर्षं महाबलः ।

ब्राह्मं सोऽप्याहितं हृष्ट्वा दंडाहत इवोरुगः ॥९॥

घोरं परशुमादाय निःश्वसंस्तमधावत ।

रामस्याधावतस्तत्र पुष्कराक्षो धनुर्धरः ॥१०॥

संदधे पंचविषिखान्दीप्तास्यानुरगानिव ।

एकंकेन च बाणेन हृदि शीर्षे भुजद्वये ॥११॥

शिखायां च क्रमाद्वित्वा तस्तंभ भृशमातुरम् ।

स चैव पीडितो रामः पुष्कराक्षेण संयुगे ॥१२॥

क्षणं स्थित्वा भृशं धावन्परशुं मूर्धन्यपातयत् ।

शिखामारभ्य पादातं पुष्कराक्षं द्विधाऽकरोत् ॥१३॥

पतिते शक्ले भूमो तत्कालं पश्यतां नृणाम् ।

आश्रयं सुमहजातं दिवि चैव दिवीकसाम् ॥१४॥

उसने वायव्य अस्त्र के द्वारा उन सभी मेघों को तितर-बितर करके तुरन्त ही दूर भगा दिया था जो कि वहाँ बिल्कुल भी दिखाई न दे रहे थे ।

इसके अनन्तर परमाधिक क्रुद्ध हुए और उन्होंने व्रह्मास्त्र अभिसन्धान किया था । दा महान बली पुष्कराक्ष ने भी उसी समय में व्रह्म अस्त्र का ही प्रयोग करके उसको निकृष्ट कर दिया था । तब वह इतना क्रोधित हो गया था जैसे दण्ड से आहत सर्प हो जाया करता है । ऐसा जब परशुराम ने उसको देखा था । ६। फिर उष्ण श्वास लेते हुए राम ने अपना महान धोर परशु ले लिया था और उसकी ओर दौड़े थे । धनुधरी पुष्कराक्ष ने वहाँ पर दौड़ते हुए परशुराम के ऊपर पाँच बाण छोड़े थे जो परम दीप्त उरगों के ही समान थे । उसने एक-एक बाण से परशुराम के शरीर का वेधन किया था और एक हृवय में—एक शिर में दो भुजाओं में और एक शिखा में मारकर इनका भेदन कर दिया था तथा बहुत ही आतुर करके स्तम्भित कर दिया था । वह राम इस प्रकार से प्रपीड़ित हो गये थे और युद्ध स्थल में पुष्कराक्ष ने उनको जहाँ तहाँ रोक दिया था । १०-१२। पर क्षण भर स्थित रहकर बहुत ही बहुत अधिक बल से दौड़कर उन्होंने फिर उस पुष्कराक्ष के मस्तक में अपने परशु का प्रहार किया था और चोटी से लेकर पंरों तक उसके दो टुकड़े कर दिये थे । १३। दो खण्डों में कटकर उसके भूमि पर निपतित हो जाने पर जो भी मनुष्य वहाँ पर देख रहे थे उनको तथा देवलोक में देवों को बहुत बड़ा आश्चर्य हुआ था कि इतने बड़े बलशाली को किस तरह से टुकड़े कर मार गिराया है । १४।

विदार्य रामस्तं क्रोधात्पुष्कराक्षं महाबलम् ।

तत्सैन्यमदहत्क्रुद्धः पावको विपिनं यथा ॥ १५ ॥

यतो यतो धावति भार्गवेद्रो मनोऽनिलौजाः प्रहरन्परश्वधम् ।

ततस्ततो वाजिरथेभमानवा निकृत्तगात्राः शतशो निपेतुः ॥ १६ ॥
रामेण तत्रातिबलेन संगरे निहन्यमानास्तु परश्वधेन ।

हा तात मातस्त्वति जल्पमाना भस्मीबभूवः ।

सुविच्छूणितास्तदा ॥ १७ ॥

मुहूर्त्मात्रेण च भार्गवेण तत्पुष्कराक्षस्य बलं समग्रम् ।

अनेकराजन्यकुलं हतेश्वरं हतं नवाक्षीहिणिकं भृशातुरस् ॥ १८ ॥

पतिते पुष्कराक्षे तु कार्त्तवीर्यार्जुनः स्वयम् ।

आजगम आहनीर्मुदर्परामस्थित ॥ १९ ॥

नानाशस्त्रसमाकीर्णं नानारत्नपरिच्छदम् ।

दशनत्वप्रमाणं च शतवाजियुतं नृपः ॥२०

युते बाहुसहस्रेण नानायुधधरेण च ।

बभौ स्वलोकमारोक्ष्यन्देहांते सुकृती यथा ॥२१

परशुराम ने क्रोध करके उस महाबली पुष्कराक्ष को बिदीण करके फिर क्रुद्ध होकर उसकी जो परम विशाल सेना थी उसको भी भस्मीभूत करके जला दिया जिस तरह से दावाग्नि बड़े भारी बन को जला दिया करता है । १५। मन और वायु के सहश ओज वाले परशुराम जहाँ-जहाँ पर भी दौड़कर जाते थे और अपने फरशा से प्रहार कर रहे थे वहाँ-वहाँ पर अश्व-रथ-हाथी और मानव सेनिक कट-कटकर छिन्न भिन्न शरीर वाले सेकड़ों ही गिर गये थे । १६। अत्यन्त बल वाले राम ने वहाँ युद्ध भूमि में अपने परशु से जिनको मारकर गिरा दिया था अथवा अधमरे होकर गिर गये थे वे उस समय में मूर्च्छित होकर पड़े हुए चीत्कार कर रहे थे और हे तात ! हे माता ! हम मर रहे हैं—यह कहते हुए भस्मीभूत हो गये थे । १७। मुहूर्त मात्र में ही अर्थात् दो घण्टियों के समय में भागेव ने उस पुष्कराक्ष की सम्पूर्ण सेना को तथा बहुत से राजाओं के समुदाय को जिनके स्वामी निहत सो गये हैं एवं अत्यन्त आतुर नौ अक्षीहिणी सैन्य को निहत कर दिया था । १८। जब यह देखा गया था कि पुष्कराक्ष जैसा महाबली मर गया तो कार्त्तवीर्यजुंन जिसका महान बल-वीर्य था स्वयं एक सुबंदर से निर्मित रथ पर समाप्तिहत होकर वहाँ पर युद्ध करने के लिए समागत हो गया था । १९। उसका वह ऐसा रथ था जिसमें अनेक भाँति के शस्त्र भरे हुए थे और विविध भाँति के रत्नों का परिच्छद था । उसका प्रमाण दशनत्व था और उसमें सौ अश्व लगे हुए थे । २०। वह राजा भी अनेक आयुध धारी सहस्र बाहुओं से युक्त था । उसकी उस समय में ऐसी शोभा हो रही थी जैसे कोई पुण्यात्मा देह के अन्त समय में स्वर्गलोक को जा रहा होते । २१।

पुत्रास्तस्य महावीर्या शतं युद्धविशारदाः ।

सेनाः संव्यूह्य संतस्थुः संग्रामे पितुराजया ॥२२

कार्त्तवीर्यस्तु बलवान् दृष्ट्वा रणाजिरे ।

कालांतक्यमप्रख्यं योद्ध ः समुपचक्रमे ॥२३

दक्षे पंचशतं बाणान्वामे पंचशतं धनुः ।

जग्राह भार्गवेद्रस्य समरे जेतुमुद्यतः ॥२४

बाणवर्षं चकाराथ रामस्योपरि भूपते ।

यथा बलाहको वीर पर्वतोपरि वर्षति ॥२५

बाणवर्षेण तेनाजौ सत्कृतो भृगुनन्दनः ।

जग्राह स्वधनुर्दिव्यं बाणवर्षं तथाऽकरोत् ॥२६

तावुभौ रणसंहृष्टौ तदा भार्गवहैहयौ ।

चक्रतुयुद्धमतुलं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥२७

ब्रह्मास्त्रं च स भूपालः संदधे रणमूर्ढनि ।

वधाय भार्गवेद्रस्य सर्वशस्त्रास्त्रधृग्बली ॥२८

उस कार्त्तवीर्य के पुत्र भी सो थे जो महान वीर्य वाले थे और युद्ध करने की विद्या में महान पण्डित थे । वे भी सब अपने पिता की आशा से सेनाओं का संग्रह करके संग्राम में समवस्थित हो गये थे । २२। उस बलवान कार्त्तवीर्य ने रणभूमि में जब परशुराम को देखा था उसको उनका स्वरूप ऐसा प्रतीत होता था मानों वह कालान्तक यम ही होवें फिर भी वह युद्ध करने को प्रस्तुत हो गया था । २३। भार्गव को युद्ध में जीतने के लिए उसके दाहिनी ओर पाँच सौ बाण थे और वामभाग में पाँच सौ धनुष थे । २४। हे भूपते ! उस सहस्राजुन ने परशुराम के ऊपर बाणों का प्रक्षेप ऐसा किया था जैसे मेघ वृष्टि कर रहे होवें । जिस प्रकार बलाहक मेघ किसी पर्वत पर धुआधार जल की वर्षा किया करते हैं । २५। उसने बाणों की वर्षा के द्वारा ही उस रणभूमि में भृगुनन्दन का सत्कार किया था । उसने अपना दिव्य धनुष ग्रहण किया था । और उसी भाँति से बाणों की थी । २६। वे दोनों ही कार्त्तवीर्य और भार्गव राम उस समय में रण करके के दर्प वाले थे और उन दोनों ने अनुपम युद्ध किया था जो बड़ा ही तुमुल और रोम हृषण था उस रण के प्राञ्जन में उस राजा ने ब्रह्मास्त्र का सन्धान किया था । वह राजा सभी शस्त्रों और अस्त्रों के धारण करने वाला और बलवान था जिसने के वध के ही लिए इस अस्त्र का प्रयोग किया था । २६।

रामोऽपि वायुपस्पृश्य ब्राह्म्यं ब्राह्माय संदधे ।

ततो व्योम्नि सदा सत्ते द्वे चाप्यस्त्रे नराधिप ॥२६

व वृद्धाते जगत्प्रांते तेजसा ज्वलनाकर्वत् ।

त्रयो लोकाः सपाताला हृष्वा तन्महदद्भुतम् ॥३०॥

ज्वलदस्त्रयुगं तप्ता मेनिरेऽस्योपसंयमम् ।

रामस्तदा वीक्ष्य चगत्प्रणाशं जगन्निवासोक्त-
मथास्मरतदा ॥३१॥

रक्षा विधेयाऽद्य मयाऽस्य संयमो निवारणीयः
परमांशधारिणा ।

इति व्यवस्थ्य प्रभुरुग्रतेजा नेत्रद्वयेनाथ तदस्त्रयुगम् ॥३२॥

पीत्वातिरामं जगदाकलय्य तस्यौ क्षणं ध्यानगतो महात्मा ।

ध्यानप्रभावेण ततस्तु तस्य ब्रह्मास्त्रयुगमं विगतप्रभावम् ॥३३॥

पपात भूमौ सहसाऽथ यत्क्षणं सर्वं जगत्स्वास्थ्यमुपाजगाम ।

स जामदग्न्यो महतां महीयान्कष्टुं तथा

पालयितुं निहंतुम् ॥३४॥

विभुस्तथापीह निजं प्रभावं गोपायितुं लोकविधि चकार ।

धनुद्धरः शूरतमो महस्वान्सदग्रणीः संसदि तथ्यवत्ता ॥३५॥

इधर परशुराम जो ने भी जल का उपस्पर्शन करके ब्रह्मास्त्र के निराकरण करने के लिए ब्रह्मास्त्र का ही सन्धान किया था । हे नराश्रिप ! उस समय में वे दोनों अस्त्र सदा ही अन्तरिक्ष में प्रसक्त हो गये थे । २६। वे दोनों ही तेज से जाज्वल्यमान सूर्यों के समान जग त्प्रान्त में विशेष रूप से बढ़ रहे थे । उस समय में पाताल के सहित तीनों लोक इस महान अद्भुत अस्त्रों के पारस्परिक संघर्ष को देख रहे थे । ३०। वे दोनों ब्रह्मास्त्र जाज्यल्यमान थे और सभी लोग उनके तेज से संतप्त ही रहे थे । उस समय में इसका उपसंयम सभी ने माना था । परशुराम ने भी तब सम्पूर्ण जगत का प्रकृष्ट नाश देखकर उसी समय में जगन्निवास के कथन का स्मरण किया था । २१। आज मेरे द्वारा किसी भी रीति से सुरक्षा करनी चाहिए और इसका संयम करके निवारण करना ही चाहिए क्योंकि मैं तो परमांश का अर्थात् प्रभु के ही अंश का धारण करने वाला हूँ जिसकी यह सृष्टि है । यह निश्चय करके अतोव उप्र तेज वाले प्रभु ने अपने दोनों नेत्रों से उन दोनों

नेत्रों से उन दोनों अस्त्रों का पान कर लिया था । ३२। जगत के कल्याण का विचार करके ही उनका पान किया और फिर महान आत्मा वाले उनने क्षण भर के लिए ध्यान में अवस्थित होकर चुपचाप वे खड़े रह गये थे । इसके उपरान्त उनके ध्यान के प्रबल प्रभाव से वे दोनों ही ब्रह्मास्त्र प्रभाव हीन हो गये थे । ३३। फिर इसके अनन्तर वह दोनों अस्त्रों का जोड़ा भूमि पर गिर गया था । ३४। वह परशुराम तो महान पुरुषों में भी परम महान थे और इस संसार के सृजन-पालन और निहतन करने में पूर्ण समर्थ थे । ३५। वे साक्षात् विभु थे तो भी अपने वास्तविक प्रभाव को छिपाने के ही लिए इस लौकिक विद्यान को किया करते थे जिससे लोग उनके असली स्वरूप को न पहचान पावें । वह ऐसा ही सबकी हृषि में दर्शित किया करते थे कि वे बड़े धनुर्वारी-विशिष्टशूर-तेजस्वी-सभा में प्रमुख और संसद में तथ्य के बोलने वाले हैं । ३५।

कलाकलापेषु कृतप्रयत्नो विद्यासु शास्त्रेषु बुधो विधिजः
एवं नूलोके प्रथयन्स्वभावं सर्वाणि कल्यानि
करोति नित्यम् ॥३६॥

सर्वे तु लोका विजितास्तु तेन रामेण राजन्यनिषु दनेत ।

एवं स शमः प्रथित प्रभावः प्रशामयित्वा तु तदस्त्रयुगमम् ॥३७॥

पुनः प्रवृत्तो निधनं प्रकतुं रणांगणे हैह्यवंशकेतोः ।

तूणीरतः पत्रियुगं गृहीत्वा पुंखे निधायाथ धनुज्यकायाम् ॥३८॥

आलक्ष्य लक्ष्यं नूपकर्णयुगमं चकर्त्तचडामणिहतुंकामः ।

स कृतकर्णो नूपतिर्महात्मा विनिर्जिताशेषजगत्प्रबीरः ॥३९॥

मेने निजं वीर्यमिह प्रणष्टं रामेण भूमीष तिरस्कृतात्मा ।

क्षणं धराधीशतनुर्विवर्णं गतानुभावा नूपतेर्वभूव ॥४०॥

लेखयेष सच्चिच्चक्रप्रयुक्ता सुदीनचित्तस्य विलक्ष्यतेऽग ।

ततः स राजा निजबीर्यवैभवं समस्तलोकाविकतां

प्रयातम् ॥४१॥

विचित्य पौलस्त्यजयादिलब्धं शोचन्निवासीत्स

जयाभिकांक्षी ।

दध्मो पुनर्मितिलोकनो तप्ते दन्तं तस्मै यस्तपतीम् ॥४२॥

जितनी भी कलायें हैं उन सबके ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करने वाले हैं तथा समस्त विद्याओं में एवं शास्त्रों में बुध है और विद्धि के ज्ञाता हैं। इसी रीति से लोक में अपने प्रभाव एवं स्वभाव को दिखलाते हुए सभी कल्पों नित्य किया करते हैं। ३६। धन्त्रियों का निष्ठूदन करने वाले परशुराम ने समस्त लोकों को जीत लिया है इस प्रकार से ही परशुराम प्रथित प्रभाव वाथे थे। उन्होंने उसी समय में उन दोनों ब्रह्मास्त्रों को प्रशामित कर दिया था। ३७। फिर वे उस रण भूमि में हैह्य वंश के केतु कात्त-वीर्य का निधन करने के लिये युद्ध में प्रवृत्त हो गये थे। तूणीर से दो बाणों को लोकर धनुष की प्रत्यञ्चा को खींचकर उसमें बाणों को चढ़ाया था। ३८। नृप की चूड़ामणि का हरण करने की कामना वाले रामने लक्ष्य पर निशाना लगाकर नृप के दोनों कानों को काट गिराया था। जिस कात्त-वीर्य ने जगत् में समस्त महान् वीरों को पराजित कर लिया था वह महात्मा जब कटे हुए कानों वाला हो गया था तो अपने मन में भयभीत हो गया था तो अपने मन में भयभीत हो गया था। ३९। उस समय में यह मान लिया था कि हे भूमीश ! वह राम के द्वारा तिरस्कृत आत्मा वाला होगया है और अब उसका वीर्य-विक्रम सब नष्ट होगया है। हे नृपते ! एक ही क्षण में उनका शरीर विवर्ण होकर भूमि पर गिर गया था और उनके सभी अनुभाव विगत हो गये थे। ४०। उसके अनन्तर उस कात्त-वीर्य राजाने देखा था कि समस्त लोकों में अधिकता को प्राप्त होने वाला अपने वीर्यविक्रम से सर्वथा गया हुआ है और उस दीनचित्त वाले का शरीर किसी अच्छे चित्रकार के द्वारा निर्मित चित्र के ही समान हो गया है। ४१। वह अपने विजय की आकाङ्क्षा वाला राजा यहीं चिन्तन करके कि मैंने पौलस्त्य रावण जैसे बलवान् पर भी विजय प्राप्त की थी जब मेरी क्या दशा हो रही है-यहीं सोच करता हुआ वह वहाँ पड़ा था। फिर उस राजा ने अपने दोनों नेत्र मूँद लिये थे और आत्रेय कुल के प्रदीप दत्तात्रेय का उसने ध्यान किया था। ४२।

यस्य प्रभावानुगृहीत ओजसा तिरश्चकारा-
खिलयोकपालकान् ।

यदास्य हृद्येष महानुभावो दत्तः प्रयातो न हि
दर्शनं तदा ॥४३॥

खिन्नोऽतिमात्रं धरणीपतिस्तदा पुनः पुनर्ध्यनिपथं जगाम ।

स ध्यायमानोऽपि न चाजगाम दत्तो मनोगोचरमस्य
राजन् ॥४४

तपस्विनो दांततमस्य साधोरनागसो दुष्कृतिकारिणो विभुः ।

एवं यदात्रेस्तनयो महात्मा हृष्टो न ध्यानपथे नृपेण ॥४५

तदाऽतिदुःखेन विद्युयमानः शोकेन मोहेन युतो वभूव ।

तं शोकमग्नं नृपति महात्मा रामो

जगादाखिलचित्तदर्शी ॥४६

मा शोकभावं नृपते प्रयाहि नैवानुशोर्चंति महानुभावाः ।

यस्ते वरायाभवमादिसर्गे स एव चाहं तव सादनाम ॥४७

समागतस्त्वं भव धीरचित्तः संग्रामकाले न विषादचर्चा ।

सर्वो हि लोकः स्वकृतं भुनक्ति शुभाशुभं

दैतकृतं विपाके ॥४८

अन्योन कोऽप्यस्य शुभाशुभस्य विपर्ययं कर्तुमलं नरेश ।

यत्तो सुपुण्यं वहुजन्मसंचितं तेनेहं दत्तास्य वराहंपात्रम् ॥४९

जिस दत्तात्रेय के प्रभाव एवं अनुग्रह से मैंने इतना अधिक अनुपम ओज प्राप्त किया था कि उससे मैंने समस्त लोकपालों का भी तिरस्कार कर दिया था और वे भी मेरे सामने नहीं पड़ते थे । जिस समय में यह यह महापुरुष मेरे हृदय में विराजमान थे वे महानुभाव भी अब मेरे हृदय का त्याग करके प्रयाण कर गये हैं क्योंकि उस समय में उनके भी दर्शन नहीं हो रहे थे । ४३। वह राजा कात्तौरीयं बहुत ही अधिक खिल हो गया था और बार-बार ध्यान करता था । हे राजन् ! बहुत ही अच्छी तरह से ध्यान किये गये भी वे दत्तात्रेय इस राजा के मन में गोचर नहीं हुए थे । ४४। दत्तात्रेय मूलि उसके ध्यान में इसीलिए समागत नहीं हुए थे क्योंकि वे तो विभु थे और यह जानते थे कि यह परमाधिक दमन शील-तपस्वी-निरपराध साधु जमदग्नि के साथ भी इसने परम-दुष्कृत किया है । इसी कारण से राजा के द्वारा बार-बार ध्यान करने पर भी महान् आत्मा वाले अत्रि के पुत्र उसके ध्यान में नहीं आये थे और उस राजा को उनका दर्शन प्राप्त नहीं हुआ था । ४५। उस समय में यह कात्तौरीयं अत्यधिक दुःख से

विशेष परितप्त हो रहा था और शोक एवं मोह से भी युक्त हो गया था । जब वह इस रीति से राजा शोक में मग्न हो रहा था तो सबके चित्तों की गति के बेखने वाले महात्मा राम ने उससे कहा था । ४६। हे राजन् ! अब तुम इतने अधिक शोक को मत करो । जो महानुभाव होते हैं वे कभी भी ऐसा शोक नहीं किया करते हैं आदि सर्व में जो तुझे वरदान देने के लिए हुआ था वही मैं अब तेरे सादन करने के लिए हुआ है । ४७। वही तू यहाँ पर समागत हुआ है । अब तुम चित्त में धैर्य धारण करो । यह तो संग्राम करने का समय है । इसमें विषाद करने की तो कोई चर्चा का अवसर ही नहीं आना चाहिए । तुम तो ज्ञानी हो यह भी भली भाँति समझते ही हो कि सभी प्राणी शपने किये हुए ही कर्मों का योग चाहे वह शुभ हो या अशुभ हो विपाक हो जाने पर देव के द्वारा किये हुए का भोगा करते हैं । ४८। हे नरेश ! इस शुभ और अशुभ का विपर्यय करने के लिये अन्य कोई भी सामर्थ्य नहीं रखता है । जो कुछ भी बहुत से जन्मों में किये गये पुण्य कर्मों का सञ्चय था उसी का यह प्रभाव था कि भगवान् दत्तात्रेय महामुनि का इस लोक में तुम वरदान के योग्य पात्र बन गये थे । तात्पर्य यही है कि सभी फलाफल किये हुए कर्मों के ही अनुसार हुआ करते हैं यह सभी कर्मधीन हैं जिस का विचार कोई भी नहीं किया करता है । ४९।

जातो भवानद्य तु दुष्कृतस्य फलं प्रभुङ्क्व त्वमिहाजितस्य ।

गुरुविमत्यापकृतस्त्वया मे यतस्ततः ।

कर्णनिकृन्तनं ते ॥५०॥

कृतं मया पश्य हरंतमोजसा चूडामणि मामपहृत्य ते यशः ।

इत्येवमुक्त्वा स भृगुर्महात्मा नियोज्य बाणं च

विकृष्य चापम् ॥५१॥

चिक्षेप राजः स तु लाघवेन चिठ्ठत्वा मणि राममुपाजगाम ।

तद्वीक्ष्य कर्माण्य मुनेः सुतस्य स चार्जुनो

हैह्यवंशधत्ता ॥५२॥

समुद्यतोऽभूत्पुनरप्युदायुधस्तं हंतुमाजो द्विजमात्मशत्रुम् ।

शूलशक्तिगदाचक्खड्गपटिटशतोमरैः ॥५३॥

नानाप्रहरणेश्वान्यैराजधान द्विजात्मजम् ।

स रामो लाघवेनैव संप्रक्षिप्तान्यनेन च ॥५४

शूलादीनि चकत्ताशु मध्य एव निजाशुगः ।

स राजा वार्युपस्पृश्य ससज्जिनेयमुत्तमम् ॥५५

अस्त्रं रामो वाहणेन शमयामास सत्वरम् ।

गांधवं विदधे राजा वायव्येनाहनद्विभुम् ॥५६

आज आपको यह परम दुष्कृत का ही फल प्राप्त हुआ है । अब यहाँ पर जो भी पाप किया है उसका फल भोगिए क्योंकि यह दुष्कृत आपने ही जो अजित किया है फिर इसका फल भी आप ही को भोगना है । आपने मेरे गुरु जमदग्नि का अपमान करके बड़ा भारी अपकार किया है । यही कारण है कि आपके कानों का कृन्तन हुआ है ॥५०॥ तुम्हारे यश का अपहरण करके मैंने ओज से तुम्हारी चूड़ामणि का अपहरण किया है यह तुम देख लो । इतना कहकर उन महात्मा भृगु ने वाण चढ़ाकर धनुष की प्रत्यञ्चा को खोंच लिया था ॥५१॥ उन्होंने उस राजा के ऊपर उस वाण का प्रक्षेप किया था और बड़े हो लाघव से उस मणि का छेदन किया था जिससे कि वह मणि परशुराम के समीप में उपागत हो गयी थी । उस मुनि-कुमार के इस कर्म का अभिवीक्षण करके वह हैह्य के बंश के धारण करने वाले सहस्रार्जुन युद्ध को तैयार हो गया था ॥५२॥ वह कात्त्वीर्य राजा आयुध ग्रहण करके युद्ध में उस द्विज सुत को जिसको वह अपना शत्रु समझता था मारने के लिये समुकृत हो गया था । शूल-शक्ति-गदा-चक्र-खड्ड-पट्टि और तोमर तथा अन्यन्य नाना प्रकार के प्रहरणों से उस कात्त्वीर्य द्विजवर के पुत्र परशुराम पर प्रकार किये थे किन्तु परशुराम ने उनके द्वारा जो भी अस्त्रों का प्रक्षेप किया गया था वे सब बहुत ही लाघव से उन सबको काट दिया था और जब तक वे अस्त्र लक्ष्य तक पहुँचने भी नहीं पाये थे तभी तक बीच में ही अपने वाणों के द्वारा उन सबको राम ने काटकर शीघ्र ही गिरा दिया था । उस राजा ने भी जल का उपस्पर्शन करके फिर अपने उत्तम आग्नेय अस्त्र को छोड़ दिया था ॥५३-५५॥ रामने अपने वाहण अस्त्र के द्वारा शीघ्र ही उस आग्नेय अस्त्र का शमन कर दिया था । फिर राजा ने गांधवं अस्त्र को छोड़ा था और वायव्य अस्त्र से विभु परशुराम

नागास्त्रं गारुडेनापि रामश्चिच्छेद भूपते ।

दत्तेन दत्तो यच्छूलमव्यर्थं मंत्रपूर्वकम् ॥५७

जग्राह समरे राजा भार्गवस्य वधाय च ।

तच्छूलं शतसूयभिमनिवार्यं सुरासुरैः ॥५८

चिक्षेप राममुहिष्य समग्रेण वलेन सः ।

मूर्छिन तदभार्नवस्याथ निपपात महीपते ॥५९

तेन शूलप्रहारेण व्यथितो भार्गवस्तदा ।

मूर्छामिवाप राजेन्द्र पपात च हरि स्मरन् ॥६०

पतिते भार्गवे तत्र सर्वे देवा भयाकुलाः ।

समाजगमुः पुरस्कृत्य व्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ॥६१

शंकरस्तु महाज्ञानी साक्षान्मृत्युं जयः प्रभुः ।

भार्गवं जीवयामास संजीवन्या स विद्यया ॥६२

रामस्तु चेतनां प्राप्य ददर्श पुरतः सुरान् ।

प्रणनाम च राजेन्द्र भक्तया व्रह्मादिकांस्तु तान् ॥६३

हे भूपते ! अपने गरुड़ अस्त्र के द्वारा उम नागास्त्र का छेदन कर दिया था । दत्तात्रेत महामुनि ने जो एक शूल इस कात्तंवीर्य को प्रदान किया था वह अव्यर्थ या अर्थात् उस का प्रयोग कभी भी व्यर्थ एवं असफल नहीं हुआ करता था । इस का प्रयोग मन्त्रोच्चारण के ही साथ हुआ करता था ।५७। इस शूल का ग्रहण राजा कात्तंवीर्य ने परशुराम जी के वध करने के लिए किया था । वह शूल बड़ा ही तेज से युक्त था-संकड़ों सूयों की आभा के ही समान उसकी आभा थी और यह ऐसा था कि जिसका प्रयोग किसी प्रकार से भी निवारित नहीं किया जा सकता था और सुर तथा असुर कोई भी उसको विफल नहीं कर सकते थे ।५८। उस कात्तंवीर्य ने अपने सम्पूर्ण बल के द्वारा परशुराम का उद्देश्य करके इसको फेंका था । हे महीपते ! वह शूल भार्गवेन्द्र के मस्तक पर गिरा था ।५९। उस शूल के प्रहार से उस समय में परशुराम बहुत व्यथित हो गये थे और हे राजेन्द्र ! उनको इसके प्रबल प्रहार से मूर्छा हो गयी थी । वे श्री हरि का स्मरण करते हुए भूमि पर गिर गये थे ।६०। वहाँ पर जिस समय में भृगु वंशोद्भूत परशुराम भूमि पर गिर गये थे उस समय में समस्त देवगण महाबृ भय से

समाकुल हो गये थे और वे सब ब्रह्मा-विष्णु और महेश्वर को अपने आगे करके वहाँ पर समागत हो गये थे । ६१। भगवान् शङ्कर तो महाज्ञानी थे और मृत्यु के ऊपर भी विजय प्राप्त करने वाले साक्षात् प्रभु थे । उन्होंने तुरन्त ही अपनी संजीवनी विद्या से भार्गव को जीवन प्रदान करके जीवित कर दिया था । ६२। परशुराम जी को जब चेतना प्राप्त हो गयी थी तो सम्हलकर खड़े हुए थे और उन्होंने अपने आगे सभी सुरगणों को देखा था । हे राजेन्द्र ! उन्होंने ब्रह्मा आदिक उन महान् देवों के चरणों में बड़े ही भक्ति के भाव से प्रणाम किया था । ६३।

ते स्तुता भार्गवेन्द्रेण सद्योऽदर्शनमागताः ।

स रामो वायुस्पृश्य जजाप कवचं तु तत् ॥६४॥

उत्थितश्च सुसंरब्धो निर्देहन्निव चक्षुषा ।

स्मृत्वा पाशुपतं अस्त्रं शिवदत्तं स भार्गवः ॥६५॥

सद्यः संहृतवांस्तत्तु कात्तंवीर्यं महाबलम् ।

स राजा दत्तभक्तस्तु विष्णोश्चकं सुदर्शनम् ।

प्रविष्टो भस्मसाज्जातं शरीरं वाहुनन्दन ॥६६॥

भार्गवेन्द्र के द्वारा उनकी स्तुति की गयी थी और फिर वे सभी सुरगण तुरन्त ही अन्तहित हो गये थे । उन परशुराम प्रभु ने जल का आचमन करके उस समय में उस कवच का जप किया था । ६४। और भली भाँति संरब्ध होकर वे उठ खड़े हुए थे । उस समय में उनके नेत्रों में ऐसा अद्भुत तेज हो गया था जिससे ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों वे चक्षु से सब को दग्ध ही कर रहे होंवे । उन भार्गव ने भगवान् शिव के द्वारा कृपा करके प्रदान किये पाशुपत अस्त्र का स्मरण किया था । ६५। उस पाशुपत अस्त्र ने महान् बलवान् उस कात्तंवीर्य को तुरन्त ही संहृत कर दिया था अर्थात् मार गिराया था । वह राजा दत्तात्रेय महामुनि का परम भक्त था और भगवान् विष्णु के सुदर्शन चक्र में प्रविष्ट हो गया था और सहस्रों बाहुओं के द्वारा आनन्द करने वाले उसका शरीर भस्मसात् हो गया था । ६६।

भार्गव चरित्र वर्णन (१)

वसिष्ठ उवाच—

हृष्ट्वा पितुर्वधं घोरं तत्पुत्रास्ते शतं त्वरा ।

बारयामासुरत्युग्रं भार्गवं स्ववलैः पृथक् ॥१

एकैकाक्षौहिणीयुक्ताः सर्वे ते युद्धदुर्मदाः ।

संग्रामं तुमुलं चक्रः संरब्धास्तु पितुर्वधात् ॥२

रामस्तु हृष्ट्वा तत्पुत्राङ्गूरानुणविशारदान् ।

परश्वधं समादाय युयुधे तैश्च संगरे ॥३

तां सेनां भगवान् रामः शताक्षौहिणिसंभिताम् ।

निजघानं त्वं रायुक्तो मुहूर्तं द्वयमात्रतः ॥४

निःशेषितं स्वसैन्यं तु कुठारेणैव लीलया ।

हृष्ट्वा रामेण ते सर्वे युयुधुर्वर्यांसंमताः ॥५

नानाविधानि दिव्यानि प्रहरंतो महीजसः ।

परितो मंडलं चक्रुभर्गवस्य महात्मनः ॥६

अथ रामोऽपि बलवांस्तेषां मंडलमध्यगः ।

विरेजे भगवान्साक्षाद्यथा नाभिस्तु चक्रगा ॥७

श्री वसिष्ठ जी ने कहा—उसके पुत्रों ने जब यह महान् घोर अपने पिता का वध देखा था तो उन सौ पुत्रों ने पृथक्-पृथक् अपने सैन्य बलों लेकर अतीव उग्र भार्गव का वारण किया था । १। वे सभी युद्ध करने में अत्यन्त दुर्मद थे और सबके साथ एक-एक अक्षौहिणी सेना थी । अपने पिता के वध हो जाने से वे अत्यन्त ही क्रोध में भरे हुए थे और उन्होंने तुमुल संग्राम किया था । २। परशुराम जी ने देखा था कि उसके सभी पुत्र बड़े शूरवीर हैं और रण करने में बहुत कुशल हैं तब उन्होंने अपना फर्श उठा लिया था और उन सबके साथ युद्ध क्षेत्र में घोर युद्ध किया था । ३। भगवान् राम ने सौ अक्षौहिणियों से संयुत उस समग्र सेना को बड़ी ही त्वरा से युक्त होकर दो हो मुहूर्त के समय में विहनन करके मार गिराया था । ४। महान् वीर्य से संमत उन्होंने जब यह देखा था कि परशुराम ने अपने कुठार के

द्वारा खेल ही खेल में लीला से ही विना कुछ अधिक आयास किये सम्पूर्ण अपनी सेना को मारकर समाप्त कर दिया है तो सबने बड़ा भारी घोर युद्ध किया था ।५। महान् आत्मा वाले भार्गव के चारों ओर विविध प्रकार के दिव्य अस्त्रों के द्वारा प्रहार करते हुए उन महान् ओज वालों ने सबने एक मण्डल सा बना लिया था अर्थात् सब ओर से घेर कर श्रीच में दे लिया था ।६। इसके अनन्तर महान् बलशाली परशुराम भी उन सबके मण्डल (घेरा) में मध्य में स्थित होकर वह साक्षात् भगवान् परम सुशोभित हुए ये जिस तरह से समस्त नाड़ियों के चक्र के मध्य में स्थित नाभि जोभा दिया करती है ।७।

नृत्यनिवाजौ विरराज रामः शतं पुनस्ते परितो भ्रमतः ।

रेजुश्च गोपीगणमध्यसंस्थः कुण्ठो यथा ताः

परितो भ्रमत्यः ॥८॥

तदा तु सर्वे द्रुहिणप्रधानाः समागताः स्वस्वविमानसंस्थाः ।

समाकिरन्नस्दनमाल्यवर्णः समततो राममहीनवीर्यम् ॥९॥

यः शस्त्रपादादुदतिष्ठत ध्वनिहुकारगभौ

दिवमस्पृशत्स वै ।

तीर्यंत्रिकस्येव शरक्षतानि भांतीव यद्वन्नखदंतपाताः ॥१०॥

क्रदंति शस्त्रैः क्षतविक्षतांगा गायंति यद्वत्किल गीतविज्ञाः ।

एवं प्रवृत्तं नृपयुद्धमण्डलं पश्यंति देवा

भृणविस्मिताक्षाः ॥११॥

ततस्तु रामोऽवनिपालपुत्राङ्गिजधांसुराजौ विविधास्त्रपूर्णः ।

पृथक्चक्कारातिवलास्तु मंडलाद्विच्छिद्य पक्ति

प्रभुरात्तचापः ॥१२॥

एकेकशस्तान्निजधान वीराङ्गतं तदा पंच

ततः पलायिताः ।

शूरो वृषास्यो वृषशूरसेनौ जयव्वजश्चापि

विभिन्नसर्य ॥१३॥

महाभयेनाथ परीतचित्ता हिमाद्रिपादांतरकाननं च ।
पृथगतास्ते सुपरीप्सवो नृपा न कोऽपि
कांस्वदृशे भृशात्तः ॥१४

उस संग्राम भूमि में परशुराम नृत्य करते हुए जैसे परमाधिक शोभा
को प्राप्त हुए थे और एक सौ वै कात्तंवार्य के पुत्र फिरते हुए चारों ओर
गोभित हो रहे थे । उस समय में उन सब की शोभा ऐसी ही रही थी जैसी
नित्य विहार स्थल वृन्दावन की निकुञ्जों में बजाझना गोपियों के समुदाय
के मध्य में महारास के समय में भगवान् श्री कृष्ण विराजमान थे और
उनके चारों ओर गोपाझनाएँ परिभ्रमण कर रही थीं उनकी शोभा हो
रही । ८। उस समय सब जिनमें द्रुहिण प्रमुख थे अपने-अपने विमानों पर
समवस्थित होकर वहाँ पर समागत हो गये थे और उन अहीनबीये वाले
परशुराम के ऊपर सब ओर से नन्दन बन के कमनोय कुसुमों की वर्षा कर
रहे थे । ९। इस प्रकार जो शस्त्रों का पात उनके ऊपर हो रहा था तब वै
परशुराम उस शरों की वृष्टि में उठकर खड़े हो गये थे और उनकी छवि
हुङ्कार करने वालों थी तब ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों वे स्वर्ग का ही
स्पर्श कर रहे होते । उनके शरों के क्षत ऐसे मालूम हो रहे थे जैसे नृत्यगीत
करने वाले के दन्तों और नखों के पातों के ही चिन्ह दिखाई दे रहे हों । १०।
वे शस्त्रों से क्षत विक्षत अङ्गों वाले क्रन्दन कर रहे थे मानों कोई गीतों के
गान में विज्ञ पुरुष गान कर रहे होते । इसी रीति से उन नृपों के साथ युद्ध
का मण्डल प्रवृत्त हुआ था जिसको देवगण अत्यन्त विस्मित नेत्रों वाले होकर
देख रहे थे । ११। इसके अनन्तर प्रभु राम ने धनुष प्रहण करके विविध अस्त्रों
के समुदाय से उन राजा के पुत्रों का रण में हनन करने की इच्छा वाला
होकर यद्यपि वे अतीव बलवान् थे तो भी उनको उस मण्डल से विच्छिन्न
करके पंक्ति से पृथक् कर दिया था । १२। वे सौ वीर थे उनमें से एक-एक
को पकड़कर उन्होंने मार डाला था । उस समय में केवल उनमें से पाँच ही
बच गये थे जो वहाँ से भाग गये थे । उन पाँचों का धैर्य टूट गया था ।
उनके नाम शूर-वृषास्य-वृष-शूरसेन और जयध्वज थे । १३। वे पाँचों नृप
पृथक् होकर ही चले गये थे और वे सब नृप अपने प्राणों के बचाने की
इच्छा वाले थे । उन में से अत्यन्त आर्त होकर किसी ने भी किन को भी
वहाँ नहीं देखा था । तात्पर्य यह है कि सबको अपनी रक्षा को पड़ी थी और
कोई भी किसी को न देख पाया था । १४।

रामोऽपि हत्वा नृपचकमाजी राज सहायार्थमुपागतं च ।
समन्वितोऽसावकृतव्रणेन सस्नौ मुदाऽगत्य च
नर्मदायाम् ॥१५

स्नात्वा नित्यक्रियां क्रुत्वा संपूज्य वृषभध्वजम् ।

प्रतस्थे द्रष्टुमुर्वीश शिवं कैलासवासिनम् ॥१६

गुरुपत्नीमुमां चापि सुती स्कन्दविनायकी ।

मनोयायी महात्माॽसावकृतव्रणसंयुतः ॥१७

कृतकार्यो मुदा युक्तः कैलासं प्राप्य तत्क्षणम् ।

ददर्श तत्र नगरीं महतीमलकाभिधाम् ॥१८

नानामणिगणाकीर्णभवनैरुपशोभिताम् ।

नानारूपधरैर्यक्षैः शोभितां चित्रभूषणैः ॥१९

नानावृक्षसमाकोणैर्वनैश्चौपवनैर्युताम् ।

दीर्घिकाभिः सुदीर्घाभिस्तडागंश्रोपशोभिताम् ॥२०

सर्वतोऽप्यावृतां बाह्ये सीतयालकनंदया ।

तत्र देवांगनास्नानमुक्तकुं कुमपिजरम् ॥२१

भगवान् परशुराम ने भी उस रण में उस सम्पूर्ण नृपों के चक्र का हनन कर दिया था तथा जो राजा की सहायता करने के लिये वहाँ उपागत हुआ था उसका भी हनन कर डाला था । फिर यह अकृतव्रण के साथ रहकर नर्मदा नदी के समीप में समागत हुए थे और उस नदी में इन्होंने स्नान किया था । १५। वहाँ पर स्नान करके अपना दैनिक कृत्य समाप्त किया था तथा फिर भगवान् वृषभध्वज का भली भाँति अर्चन किया था । इसके उपरान्त कैलाण के निवासी प्रभु शिव का दर्शन प्राप्त करने के लिये वहाँ से परशुराम जी ने प्रस्थान किया था । १६। अपने मन के ही समान शीघ्र गमन करने वाले परशुराम जो अपने पालित अकृतव्रण शिष्य के साथ गुरु पत्नी जगदम्बा उमा देवी—और उनके दोनों पुत्र स्कन्द और विनायक के दर्शनार्थ वह महात्मा वहाँ पर गये थे । १७। अपने सम्पूर्ण कार्यों में सफल होकर समस्त भक्तिय शान्तुओं को निहत करके बड़ी ही प्रसन्नता से युक्त होते हुए उसी क्षण में कैलास गिरि पर पहुंच गये थे और भगवान् शङ्कर की अलका

नाम वाली नगरी को देखा था जो नगरी बहुत ही विशाल थी । १८। उस नगरी की छटा का वर्णन किया जाता है—उस नगरी में अनेक भवन ऐसे बने हुए थे जो नाना भाँति के रत्नों से संयुक्त थे, उन भवनों की शोभा से वह परम सुशोभित थी । उसमें बहुत से यक्ष विद्यमान थे जो विचित्र प्रकार के भूषणों के धारण करने वाले तथा विविध स्वरूपों वाले थे । इनसे भी उसकी बड़ी शोभा हो रही थी । १९। उस नगरी में बहुत तरह के वन और उपवन थे जिनमें अनेक प्रकार के बृक्ष थे । वह नगरी अनेक विशाल वाणियों (वावड़ियों) से तथा तालाबों से भी परम सुशोभित थी । २०। उस पुरी का बाहिरी सब ओर से सीता और अलकनन्दा नाम वाली मुन्दर सरिताओं से समावृत था । वहाँ पर देवों की अङ्गनाएँ स्नान कर रही थीं जिससे उनके अङ्गों में लगा हुआ कुंकुम छूटकर उनके जल में प्रवाहित हो रहा था । २१।

तृष्णाविरहिताश्रांभः पिबन्ति करिणो मुदा ।

यत्र संगीतसंनादा श्रूयन्ते तत्र तत्र ह ॥२२॥

गन्धर्वरप्सरोभिश्च सततं सहकारिभिः ।

तां हृष्ट्वा भार्गवो राजन्मुदा परमया युतः ॥२३॥

ययौ तदूधर्वं शिखरं यत्र शैवपरं गृहम् ।

ततो ददर्श राजेन्द्र स्निग्धच्छायं महावटम् ॥२४॥

तस्याधस्ताद्वारावासं सुसेव्यं सिद्धसंयुतम् ।

ददर्श तत्र प्राकारं शतयोजनमंडलम् ॥२५॥

नानारत्नाचितं रम्यं चतुद्वारं गणावृतम् ।

नन्दीश्वरं महाकालं रत्नाक्षं विकटोदरम् ॥२६॥

पिगलाक्षं विशालाक्षं विरूपाश्रं घटोदरम् ।

मंदारं भैरवं वाण रुहं भैरवमेव च ॥२७॥

वीरकं वीरभद्रं च चांडं भृज्जि रिटि मुखम् ।

सिद्धेनाथरुद्रांश्च विद्याधरमहोरगान् ॥२८॥

उन सरिताओं में तृष्णा से विरहित करी बड़े ही आनन्द से उनका जल पी रहे थे । वहाँ पर जहाँ-तहाँ संगीत की परम मधुर ध्वनियाँ सुनाई दे रही थी । २९। वहाँ पर बहुत से गन्धर्व गण अप्सराओं को अपने साथ में

लिए हुए निरन्तर रंगरेलियाँ कर रहे थे । भार्गव श्री परशुराम जी ने जिस समय में उस परम सुन्दर पुरी का अवलोकन किया उनको अत्यन्त हृष्ण हुआ था । २३। इसके अनन्तर वे उसके ऊपर गये थे जिस शिखर पर भगवान् शिव का परम सुरभ्य निवास करने का गृह था । हे राजेन्द्र ! वहाँ पर एक महान विशाल बहुत ही अनी छाया वाला बट का वृक्ष उन्होंने देखा था । २४। उस बट वृक्ष के नीचे एक आवास गृह बना हुआ था जो भली भाँति सेवन करने के योग्य था और बड़े-बड़े महान् सिद्धगणों से समन्वित था । वहाँ पर उसका एक प्रकार (चहार दीवारी) उन्होंने देखा था जिसका मण्डल (घेरा) एक सौ योजन वाला था । २५। उस नगर में अनेक प्रकार के रत्न खचित हो रहे थे तथा परम रम्य और चार प्रधान द्वारों से वह समन्वित था । वहाँ पर गण सब ओर थे । अब उन प्रधान गणों में नन्दीश्वर-महाकाल-रक्ताक्ष और विकटोदर थे । २६। इनके अतिरिक्त पिंगलाक्ष-विरुपाक्ष-घटोदर-मन्दार-भैरव-बाण-रुह—भैरव भी थे । २७। उन गणों में वीरभद्र-चण्ड-रिटि-मुख भी थे । वहाँ पर सिद्धेन्द्र-नाथ और रुद्र थे तथा विद्याधर और महोरग भी विद्यमान थे । २८।

भूतं तपिशाचांश्च कूज्मांडान्त्रह्यराक्षसान् ।

वेतालान्दानवेद्रांश्च योगीन्द्रांश्च जटाधरान् ॥२६

यक्षकिपुरुषांश्चैव डाकिनीयोगिनीस्तथा ।

दृष्ट्वा नन्द्याज्ञया तत्र प्रविष्टोऽत्तमुदान्वितः ॥२०

ददर्श तत्र भुवनैरावृतं शिवमंदिरम् ।

चतुर्योजनविस्तीर्णं तत्र प्राग्द्वारसंस्थितौ ॥३१

दृष्ट्वा वामे कात्तिकेयं दक्षे चैव विनायकम् ।

ननाम भार्गवस्तो द्वौ शिवतुल्यपराक्रमी ॥३२

पार्षदप्रवरास्तत्र क्षेत्रपालाश्च संस्थितः ।

रत्नसिंहासनस्थाश्च रत्नभूषणभूषिता ॥३३

भार्गवं प्रविशन्तं तु ह्यपृच्छञ्जिशवमंदिरम् ।

विनायको महाराज क्षणं तिष्ठेत्युवाच ह ॥३४

निद्रितो हयुमया युक्तो महादेवोऽधुनेति च ।

वहाँ पर इन उपर्युक्त गणों के अतिरिक्त बहुत से भूत-प्रेत-पिशाच कूष्मांड-प्रह्लादाक्षस-वेताल-दानवेन्द्र और जटाजूट धारी बड़े-बड़े योगीन्द्र भी थे । २६। वहाँ उस शिव की नगरी में यक्ष-किम्पुरुष-डाकिनी और योगिनियाँ भी थीं । इन सबका वहाँ पर परशुरामजी ने अवलोकन किया था । भगवान् शङ्खर के दौहि और स्वामी कालिकेय और उनके दौहि ओर बिघ्नेश्वर विनायक विराजमान थे । भागवेन्द्र ने उन दोनों को प्रणाम किया था क्योंकि ये दोनों शिव के पुत्र शङ्खर के हो समान पराक्रम वाले थे । हससे पूर्व परशुरामजी ने नन्दी की आज्ञा ग्रहण करके ही उस पुर के अन्दर प्रवेश किया था । अन्दर प्रवेश करने की आज्ञा पाकार उनको बहुत ही प्रसन्नता हुई थी । वहाँ पर भुवनों से सदावृत शिवजी के मन्दिर का अवलोकन किया था । यह मन्दिर चार योजन के विस्तार वाला था । ३०-३१-३२। वहाँ पर परम श्रेष्ठ पार्षद और क्लेशपाल भी समवस्थित थे ये लोग रत्न जटित सिंहासनों पर रत्नों के विविध भूषणों में विभूषित होकर विराजमान थे । ३३। जिस समय में भार्गव शिव मन्दिर में प्रवेश कर रहे थे तब उन सबने इनसे पूछा था हे महाराज ! उस समय में विनायक ने उनसे यही कहा था कि एक ऋण मात्र आप यहाँ पर ठहरिए । ३४। इस समय में महादेव जी अपनी प्रिय पत्नी जगदम्बा उमा के साथ शयन किये हुए हैं । मैं एक ही ऋण भर में ईश्वर की आज्ञा प्राप्त करके यहाँ पर समागत होता हूँ । ३५।

त्वया साद्धं प्रवेश्यामि भ्रातस्तिष्ठाव यांप्रतम् ।

विनायकश्चेऽन्त श्रुत्वा ह्ययच्छिटं भार्गवनंदनः ॥ ३६

प्रवक्तुमुपचक्राम गणेशं त्वरयान्वितः ।

राम उवाच—

गत्वा ह्यंतःपुरं भ्रातः प्रणम्य जगदीश्वरौ ॥ ३७

पार्वतीशकरौ सद्गो यास्यामि निजमादिरम् ।

कात्त्वीर्यः सुचन्द्रश्च सपुत्रबलबांधवः ॥ ३८

अन्ये सहस्रशो भूपाः कांबोजाः पह्लवाः शकाः ।

कान्यकुञ्जाः कोशलेणा मायावन्तो महावलाः ॥ ३९

निहताः समरे सर्वे मया शम्भुप्रसादतः ।

तमिमं प्रणिपत्यैव यास्यामि स्वगृहं प्रति ॥४०

इत्युक्त् वा भार्गवस्तत्र तस्थौ गणपतेः पुरः ।

प्रोवाच मधुरं वाक्यं भार्गवे स गणाधिपः ॥४१

विनायक उवाच -

क्षणं तिष्ठ महाभाग दर्शनं ते भविष्यति ।

अद्य विश्वेश्वरो भ्रातर्भवान्या सह वर्त्तते ॥४२

मैं फिर है भाई ! आपको साथ ही लेकर आपका प्रवेश वहाँ पर अभी करा दूँगा । अतएव यहाँ पर कुछ समय तक आप रुकिए । भार्गव नन्दन ने विनायक के इस वचन का श्रवण करके बड़ो ही शीघ्रता से युक्त होकर श्री गणेशजी से कुछ कथन करने का उपक्रम किया था । राम ने कहा—हे भाई ! आप अन्तः पुर में जाकर उन दोनों जगदीश्वरों को प्रणाम करिए अथवा मेरा प्रणिपात निवेदित कर दीजिए । पांचती और शङ्कुर इन दोनों को प्रणाम करके मैं तुरन्त ही अपने मन्दिर को गमन करूँगा । कात्तंबीय और सुचन्द्र जो अपने पुत्रों-संनिकों और बाघबाओं के सहित थे एवं अन्य भी सहस्रों नूप जो कि काम्बोज-पहलव शक-कान्थकुञ्ज-कोशल-श्वर थे जो कि बड़ी ही अधिक माया वाले और महात् बलवान् थे । ३६-३७-३८-३९ । मैंने भगवान् शम्भु की ही कृपा से तथा परिपूर्ण प्रसाद से युद्ध में सबका निहनन किया है । अतएव अब मैं उन्हीं प्रभु के चरणों में प्रणाम करके फिर अपने घर को छला जाऊँगा । ४० । इतना निवेदन करके परशुराम वहाँ पर गणपति के आगे स्थित हो गये थे । फिर उन गणाधिप प्रभु ने भार्गव से बहुत मधुर स्वर में कहा था । ४१ । विनायक ने कहा—हे महाभाग ! एक मात्र आप यहाँ पर ठहरिए आपको भगवान् शङ्कुर का दर्शन हो जायगा । हे भाई ! आज वे विश्वेश्वर प्रभु भवानी के साथ में विद्यमान हैं । ४२ ।

स्त्रीपुं सोर्युक्तयोस्तात् सहैकासनसंस्थयोः ।

करोति सुखभंगं यो नरकं स व्रजेदध्युवम् ॥४३

विशेषतस्तु पितरं गुरुं वा भूपतिं द्विज ।

रहस्यं समुपासीनं न पश्येदिति निश्चयः ॥४४

कामतोऽकामतो वापि पश्येद्यः सुरतोन्मुखम् ।

स्त्रीविच्छेदो भवेत्स्य ध्रुवं सप्तसु जन्मसु ॥४५

श्रोणि वक्षःस्थलं वक्त्रं यः पश्यति परस्त्रियः ।

मातुर्वापि भगिन्या वा दुहितुः स नराधमः ॥४६

भाग्व उवाच—

अहो श्रुतमपूर्वं किं वचनं तव वक्त्रतः ।

भ्रांत्या विनिर्गतं वापि हास्यार्थमथवोदितम् ॥४७

कामिनां सविकाराणामेतच्छास्त्रनिदर्शनम् ।

निविकारस्य च शिशोर्न दोषः कश्चिदेव हि ॥४८

यास्याम्यन्तः पुरं भ्रातस्तव किं तिष्ठ बालक ।

यथादृष्टं करिष्यामि तत्र यत्समयोचितम् ॥४९

हे तात ! पति और पत्नी जब एक ही आसन पर संस्थित होकर मंयुक्त होवें और साथ में निरत होवें उस समय में जो कोई भी सुरत-मुख का भङ्ग किया करता है वह निश्चय ही नरक में गमन किया करता है । ४३। यह तो सबं साधारण के लिए नियम है और विशेष रूप से है द्विज ! जो कोई अपने पिता-गुरु अथवा भूपति को जबकि वे रहस्य में समुपासीन हों तो इनको कभी भी बाधा डालते हुए नहीं देखना चाहिए—यह निश्चित सिद्धान्त की बात है । ४४। चाहे इच्छा से या बिना ही इच्छा के कहीं पर भी सुरत कीड़ा में उन्मुख पति-पत्नी को जो कोई देखता है अर्थात् देखा करता है उसकी स्त्री का विच्छेद सात जन्मों तक हो जाया करता है यह परम निश्चित है । ४५। जो पराई स्त्री के श्रोणि-वक्षः स्थल और मुख को देखता है तात्पर्य यह है कि बुरी हाँसी से देखा करता है वह चाहे अपनी माता हो—भगिनी हो—या दुहिता हो इनमें कोई भी हो तो वह नरों में बड़ा ही अधम होता है । ४६। भाग्व ने कहा—आज मैंने आपके मुख से निकले हुए अपूर्व ही वचन सुने हैं । ये वचन भ्रान्ति से ही निकल गये हैं अथवा आपने हास्य के ही लिये कहे हैं ? । ४७। यह तो सब विकारों से युक्त कामियों के शास्त्र का निदर्शन है अर्थात् कामवासना से वासित अन्तःकरण वाले ही ऐसे विषय की चर्चा किया करते हैं । आप तो विकारों से रहित हैं और शिशु हैं क्या आपको ऐसा कथन करने से कोई दोष नहीं होता है ? । ४८। हे भाई ! मैं तो अन्तः पुर में जाऊँगा । आप तो बालक हैं, आपको इस बात से क्या

प्रयोजन है आप यहाँ पर ही रहिए। मैं वहाँ पर जैसा भी देखूँगा और जो भी उस समय में उचित होगा, करूँगा । ४६।

त्रैव माता तातश्च त्यवा नाम निरूपितो ।

जगतां पितरो तौ च पार्वतीपरमेश्वरो ॥५०॥

इत्युक्त्वा भार्गवो राजन्नंतर्गन्तु समुद्यतः ।

विनायकस्तदोत्थाय वारयामास सत्वरम् ॥५१॥

वाग्युद्धं च तयोरासीन्मयो हस्तविकर्षणम् ।

हष्ट्वा स्कन्दस्तु सञ्चांतो बोधयामास तौ तदा ॥५२॥

बाहुभ्यां द्वौ समुदगृह्य पृथुगुत्सारितौ तथा ।

अथ कुद्धो गणेशाय भार्गवः परवीरहा ।

परश्वधं समादाय संप्रक्षेप्तु समुद्यतः ॥५३॥

तं हष्ट्वा गजाननो भृगुवरं कोधात्क्षिप्तं त्वरा

स्वात्मार्थं परशु तदा निजकरेणोद्धृत्य वेगेन तु ।

भूलोकं भ्रुवः स्वरपि तस्योद्धर्वं महर्वेजनं लोकं

चापि तपोऽथ सत्यमपरं वैकुण्ठमप्यानयत् ॥५४॥

तस्योद्धर्वं च निदर्शयन्भृगुवरं गोलोकमीशात्मजो

निष्पात्या धरलोक सप्तकमपत्थ दर्शयामास च ।

उद्धृत्याथ ततो हि गर्भसलिले प्रक्षिप्तमात्रं त्वरा

भीतं प्राणपरिष्मानयदयो तत्रैव तत्रास्थितः ॥५५॥

वही पर माता जगदम्बा हैं और पिता भगवान शंकर हैं, आपने दोनों के नाम निरूपित कर ही दिये हैं। वे पार्वती और परमेश्वर तो सम्पूर्ण जगतों के पिता-माता हैं । ५०। हे राजन! इतना भर कहकर भार्गव राम अन्दर जाने के लिए उच्चत हो गये थे। उसी समय में विनायक ने शीघ्र ही उठकर उनका वारण कर दिया था अर्थात् अन्तः पुर में जाने से रोक दिया था । ५१। पहिले तो उन दोनों का वाग्युद्ध अर्थात् कहा सुनी हुई और फिर हाथों की खींच तान हुई, जब कात्तिकेय जी ने देखा तो उनको बहुत सम्मानित हुई थी और उस समय में उन्होंने दोनों को समझाया था । ५२। ज्ञानी सत्त्व ने उपनी यात्रों में एक बार MADE TO LOVE भास्ता

कर दिया था। इसके अनन्तर शत्रु वीरों के हमन करने वाले भार्गव गणेश जी पर बहुत क्रुद्ध हो गये थे और अपनी परशु लेकर उसका प्रहार करने के लिए उच्चत हो गये थे । ५३। गजानन ने जब यह देखा था कि भृगुवर बड़ी शीघ्रता से क्रोध में भरकर अपने लिए परशु को प्रक्षिप्त कर रहे हैं तो उन्होंने उसी समय में बड़े ही वेग से अपने हाथ से परशुराम को ऊपर उठा कर भूलोक-भृवलोक-स्वलोक-और उसके भी ऊपर महलोक-जनलोक तप-लोक-सत्यलोक और दूसरे वैकुण्ठ लोक में ले आये थे । ५४। उन भगवान शम्भु के पुत्र गजानन ने उन भृगुवर उसके ऊपर गोलोक को दिखाते हुए फिर गिराकर नीचे के सातों अतल-वितल-सुतल-तला-तल-रसातल-महातल और पाताल लोकों को दिखा दिया था। फिर नीचे के लोकों से ऊपर उठाकर सलिल के गर्भ में शीघ्रता से प्रक्षिप्त किया था। जब यह देखा कि वह भयभीत होकर अपने प्राणों की रक्षा करने की इच्छा वाले हैं तो फिर वहाँ पर उनको लाकर खड़ा कर दिया था जहाँ पर वे पहिले स्थित थे । ५५।

भार्गव-चरित्र वर्णन (२)

वसिष्ठ उवाच—

एवं संचामितो रामो गणाधीशेन भूपते ।

हष्टं शोकसमाविष्टो विच्चित्यात्मपराभवम् ॥१॥

गणेशं चाभितो वीक्ष्य निविकारमवस्थितम् ।

क्रोधाविष्टो भृशं भूत्वा प्राक्षिपत्स्वपरश्वधम् ॥२॥

गणेशस्त्वभिवीक्ष्याथ पित्रा दत्तं परश्वधम् ।

अमोघं कर्तुं कामस्तु वामे तं दण्नेऽग्रहीन् ॥३॥

स तु दत्तः कुठारेण विच्छिन्तो भूत्वेऽपतत् ।

भुवि शोणितसंदिग्धो वज्राहत इवाचलः ॥४॥

दंतपातेन विद्वस्ता साब्धिद्वीपधरा धरा ।

चकंपे पृथिवीपाल लोकास्त्रासमुपागताः ॥५॥

हाहाकारो महानासीदेवानां दिवि पश्यताम् ।

कार्त्तिकेयादयस्तत्र चुक्रुशुभृशमातुराः ॥६

अथ कोलाहलं श्रुत्वा दंतपात्रवनि तथा ।

पार्वतीशंकरौ तत्र समाजग्मतुरीश्वरौ ॥७

वसिष्ठ जी ने कहा—हे भूपते ! इस रीति से गणाधीश के द्वारा परशुराम भली भाँति भ्रमित किये गये थे । तब उनको बहुत से अद्भुत लोकों के दर्शन से हर्ष हुआ था और अपने बल पराक्रम की तुच्छता समझ कर बड़ा भारी शोक भी हुआ था ऐसे हर्ष और शोक से समाविष्ट होकर उन्होंने अपने पराभव का चिन्तन किया था । १। उस समय में गणेश जी को सामने देखा था कि वे बिना विकार वाले अवस्थित हैं तो फिर अत्यन्त क्रोध में भरकर परशुरामजी ने अपने परशु को फेंककर चलाया था । २। गणेशजी ने यह देखा था कि वह परशु अपने पिताजी के द्वारा राम को दिया गया था । उस परशु के प्रहार को अमोघ अर्थात् सफल करने की ही इच्छा वाले गणेशजी ने उस परशु को अपने वर्ये दाँत पर ग्रहण कर लिया था । ३। गणेश जी का वह वर्या दाँत उस कुठार से विच्छिन्न होकर भूतल पर गिर गया था । रुधिर से संदिग्ध (लघुपथ) वह दाँत भूमि पर एक पर्वत के ही समान गिर गया था । ४। उस दाँत का पात ऐसा भीषण हुआ था कि सम्पूर्ण सागरों और द्वीपों के सहित यह धरातल विछ्वस्त हो गया था और पृथिवीपाल कौप उठे थे तथा सभी लोकों को बड़ा भारी आस उत्पन्न हो गया था । ५। स्वर्ग में जो देवगण देख रहे थे उनमें बड़ा भारी हाहाकार मच गया था और वहाँ पर कार्त्तिकेय आदि जो सब थे वे सभी अत्यन्त आतुर होकर क्रन्दन करने लगे थे । ६। इसके अनन्तर जब बड़ा भारी वहाँ पर कोलाहल हो गया था तो उस दाँत के गिरने की छवनि को सुनकर ईश्वर पार्वती तथा भगवान् शङ्कर वहाँ पर समागत हो गये थे । ७।

हेरम्बं पुरतो हृष्ट्वा वक्रतु डंकदंतिनम् ।

पप्रच्छु स्कन्दं पार्वती किमोतदिति कारणम् ॥८

स तु पृष्ठस्तदा मात्रा सेनानीः सर्वमादितः ।

वृत्तांतं कथयामास मात्रे रामस्य शृण्वतः ॥९

सा श्रुत्वोदंतमखिलं जगतां जननी नृप ।

उवाच शंकरं हष्टा पार्वती प्राणनायकम् ॥१०

पार्वत्युवाच—अयं ते भार्गवः शंभो शिष्यः पुत्रः समोऽभवत् ।

त्वत्तो लब्ध्वा परं तेजो वर्म त्रैलोक्यजिद्विभो ॥११

कात्तं वीयजिँनं संख्ये जितवानूजितं नृपम् ।

स्वकार्यं साधयित्वा तु प्रादात्तुभ्यं च दक्षिणाम् ॥१२

तत्ते सुतस्य दशनं कुठारेण न्यपातयत् ।

अनेनैव कृतार्थस्त्वं भविष्यसि न संशयः ॥१३

त्वमिमं भार्गवं शम्भो रक्षांतेवासिसत्तमम् ।

तत्र कार्याणि सर्वाणि साधयिष्यति सदगुरोः ॥१४

भगवान शङ्कुर ने गणेशजी को अपने सामने देखा था जिनका मुख तिरछा हो गया था और केवल एक ही दाँत था । पार्वतीजी ने स्वामी कात्तिकेय से पूछा था कि इस दुष्टेणा के घटित होने का क्या कारण था । दा माताजी द्वारा जब स्वामी कात्तिकेय से पूछा गया तो सेनानी ने आदि से सम्पूर्ण वृत्तान्त माताजी को कहकर सुना दिया था । उस समय में वहाँ पर परशुराम भी इसको सुन ही रहे थे । १। हे नृप ! जगतों की जननी पार्वतीजी ने पूर्ण समाचार श्रवण करके रुष्ट होती हई अपने प्राणनायक भगवान शङ्कुर से बोलीं । १०। पार्वतीजी ने कहा—हे शम्भो ! यह भार्गव तो आपका ही शिष्य है और पुत्र के ही समान हुआ था । हे विभो ! इसने आप ही से ऐसा परम तेज और त्रैलोक्य को जीतने वाला वर्म प्राप्त किया है । ११। इसने महान अर्जित कात्तं वीयजिँनं नृप को युद्ध में जीत लिया है यह आप ही के द्वारा प्रदत्त बलविक्रम से इसकी विजय हुई है । इसने अपने कार्य को साधित करके अर्थात् अपने शत्रु का निहनन करके अब यह आपकी सेवा में दक्षिणा दी है । १२। वह यही तो दक्षिणा है कि आप ही के पुत्र के दाँत को अपने कुठार से तोड़कर नीचे गिरा दिया है । आप इसी कार्य से कृतार्थ होंगे—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है । १३। हे शम्भो ! आप इस परम श्रेष्ठ अपने छात्र तथा शिष्य की रक्षा कीजिए । आप इसके बड़े ही अच्छे गुरु हैं अब आपके समस्त कार्यों को यह ही सिद्ध करेगा । १४।

अहं नैवात्र तिष्ठामि यत्त्वया विमता विभो ।

पुत्राभ्यां सहिता यास्ये पितुः स्वस्य निकेतनम् ॥१५

संतो भुजिष्यातनयं सत्कुर्वत्यात्मपुत्रवत् ।

भवता तु कृतो नैव सत्कारो वचसाऽपि हि ॥१६

आत्मनस्तनयस्यास्य ततो यास्यामि दुःखिता ।

वसिष्ठ उवाच—

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं पार्वत्या भगवान्भवः ॥१७

नोवाच किञ्चिद्वचनं साधु वासाधु भूपते ।

सस्मार मनसा कृष्णं प्रणतक्लेशनाशनम् ॥१८

गोलोकनाथं गोपीशं नानानुनयकोविदम् ।

स्मृतमात्रोऽथ भगवान् केशवः प्रणतात्तिहा ।

आजगाम दयासिधुर्भक्तश्योऽखिलेश्वरः ॥१९

मेघश्यामो विशदवदनो रत्नकेयूरहारो विद्युद्वासा

मकरसट्टे कुण्डले संदधानः ।

बहर्पीडं मणिणगयुतं विभ्रदीषत्स्मतास्यो गोपीनाथो

गदितसुयशाः कौस्तुभोदभासिवक्षाः ॥२०

राधया सहितः श्रीमान् श्रीदाम्ना चापराजितः ॥२१

हे विभो ! मैं अब यहाँ पर नहीं रहूँगी क्योंकि आपने मेरा अपमान कर दिया है अर्थात् मुझको अपनी नहीं समझा है, अब मैं तो अपने दोनों पुत्रों को साथ में लेकर अपने पिताजी के घर में चली जाऊँगी । १५। सत्पुरुष तो अपनी पुत्री के पुत्रों को अपने ही पुत्रों के समान सत्कार किया करते हैं । आपने तो अपने वचनों से भी कभी सत्कार नहीं किया है । १६। यह तो आपका ही पुत्र है फिर भी कभी इसका आदर-सम्मान वाणी के द्वारा भी नहीं किया है । इसी कारण से मैं अधिक दुःखित होकर ही चली जाऊँगी । वसिष्ठ जी ने कहा—भगवान शङ्कर ने अपनी परम प्रिया पत्नी पार्वती के इस वचन का श्रवण किया था । १७। हे राजन् ! किन्तु इस वचन को सुनकर भी उन्होंने पार्वती जी से अच्छा या कुछ भी वचन उत्तर के स्वरूप में नहीं कहा था । और प्रणतों के वलेशों का विनाश कर देने वाले भगवान श्री कृष्णचन्द्र का मन में स्मरण किया था । १८। ब्रज की गोपियों के नाथ और गोलोक के स्वामी तथा उत्तराभिति के अनुयोदियों के लोकां महात-

मनीषी भगवान ने ध्यान में मन के द्वारा स्मरण किया था केवल स्मरण करने ही से अपने चरणों में शिर झुकाकर प्रणत होने वाले भक्तों की पीड़ा का हनन कर देने वाले केशव भगवान् वहाँ पर आकर उपस्थित हो गये थे क्योंकि प्रभु तो समस्त चराचर के ईश्वर हैं—दया के सागर हैं और अपने भक्तों के बश में होने वाले हैं। १६। अब भगवान् के मुन्हर जगत मोहन स्वरूप का वर्णन किया जाता है—उनका वर्ण नील सजल मेघ के समान था—आपका मुख विकसित कमल के सदृश था और आप रत्न जटित केयूर और हार धारण किये हुए थे। सौदामिनी विद्युत के समान पीताम्बर पहिने हुए थे और मकरों की आकृति वाले दो कुण्डल कानों में धारण कर रहे थे। मयूर पिञ्छों से निर्मित और अनेक मणियों से संयुक्त मस्तक पर मुकुट पहिन रहे थे तथा उनके मुख कमल पर मन्द मुस्कान झलक रही थी। वे गोपियों के नाथ जिनके यश का वर्णन किया है कौस्तुभ मणि से उद्भासित वक्षःस्थल वाले थे। २०। अद्भुत श्री से सम्पन्न श्रीकृष्ण के साथ में रासेश्वरी राधा भी थीं और श्रीदामा से अपराजित थे। २१।

मुण्डस्तेजांसि सर्वेषां स्वरुचा ज्ञानवारिधिः ।

अर्थैनमागतं हृष्ट्वा शिवः संहृष्टमानसः ॥२२॥

प्रणिपत्य यथान्यायं पूजयामास चागतम् ।

प्रवेश्याभ्यन्तरे वेशम राधया सहितं विभुम् ॥२३॥

रत्नसिंहासने रम्ये सदारं स न्यवेशयत् ।

अथ तत्र गता देवी पार्वती तनयान्विता ॥२४॥

ननाम चरणान्प्रभ्वोः पुत्राभ्यां सहिता मुदा ।

अथ रामोऽपि तत्रैव गत्वा नमितकंधरः ॥२५॥

पार्वत्याश्चरणोपांते पपाताकुलमानसः ।

सा यदा नाभ्यनन्दत्तं भार्गवं प्रणतं पुरः ॥२६॥

तदोवाच जगन्नाथः पार्वतीं प्रीणयन्निरा ॥२७॥

श्रीकृष्ण उवाच—

अयि नगनंदिनि निदितचंद्रमुखि त्वमिमं जमदग्निसुतम् ।

नय निजहस्तसरोजसमर्पितमस्तकमंकमनन्तगुणे ॥२८॥

भगवान् श्रीकृष्ण ज्ञान के महान् सागर थे और अपने दिव्य देह की कान्ति से सबके तेज को तिरस्कृत कर रहे थे । इसके अनन्तर जिस समय में भगवान् श्रीकृष्ण ने वहाँ पर पदार्पण किया था तो उनका दर्शन करके भगवान् शिव के मन में परमाधिक प्रसन्नता हुई थी । २२। उन वहाँ पर समागत हुए प्रभु को न्याय के अनुसार जैसा भी महापुरुषों के लिये अभिवादन किया जाता है प्रणिपात किया और अर्चन किया था । फिर बड़े ही आदर से राधिकाजी के साथ प्रभु का अपने सदन में प्रवेश कराया था । २३। वहाँ पर एक रत्न जटिल परम सुरम्य सिंहासन पर राधिका जी के सहित उनको विराजमान कराया था । इसके अनन्तर जब पार्वती जी ने साक्षात् प्रभु का आगमन देखा तो वह भी अपने दोनों पुत्रों के सहित वहाँ पर पहुँच गयी थीं । २४। बड़े ही हृषोल्लास के साथ इन्होंने अपने दोनों पुत्रों के सहित श्रीकृष्ण और श्रीराधा चरणों में प्रणाम किया था । इसके उपरान्त परशुराम भी वहाँ पर पहुँच गये थे और अपनी गरदन को नीचे की ओर झुकाये हुए आकुलित मन वाले होकर पार्वती जी के चरणों के समीप में ही भूमि में गिर गये थे । किन्तु जब अपने आगे प्रणिपात करते हुए भार्गव को पार्वती जी ने अभिनन्दित नहीं किया था तो यह भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं उनके हृदगत अमर्ष का अवलोकन किया था । २५-२६। उस समय जगतों के नाथ प्रभु श्रीकृष्ण ने अपनी परम मधुर वाणी से पार्वती जी को प्रसन्न करते हुए उनसे कहा था । २७। श्रीकृष्ण ने कहा—अयि ! नगराज की पुत्रि ! आप तो इतने अधिक सुन्दर मुख वाली हैं कि जिसकी छटा के सामने चन्द्र भी तुच्छ है । आपके अन्दर तो अनन्त गुण गण विद्यमान हैं । अब आप इस जमदग्नि के पुत्र परशुराम को अपने कर कमलों से इसका मस्तक पकड़ कर अपनी गोद में बिठा लीजिए । २८।

भवभयहारिण शंभुविहारिणि कल्मषनाशिनि कुभिगते ।

तव चरणे पतितं सततं कृतकिल्विषमप्यव देहि वरम् ॥२९॥

शृणु देवि महाभागे वेदोक्तं वचनं मम ।

यच्छ्रुत्वा हर्षिता नूनं भविष्यसि न संशयः ।

विनायकस्ते तनयो महात्मा महतां महान् ॥३०॥

यं कामः क्रोध उद्वेगो भयं नाविशते कदा ।

वेदस्मृतिपुराणेषु संहितासु च भामिनि ॥३१॥

नामान्यस्योपदिष्टानि सुपुण्यानि महात्मभिः ।

यानि तानि प्रवक्ष्यामि निखिलाघहराणि च ॥३२

प्रमथानां गणा ये च नानारूपा महाबलाः ।

तेषामीशस्त्वयं यस्माद्गणेशस्तेन कीर्तिः ॥३३

भूतानि च भविष्याणि वर्त्तमानानि यानि च ।

ब्रह्मांडान्यखिलान्येव यस्मैल्लंबोदरः स तु ॥३४

यः स्थिरो देवयोगेन छिन्नं संयोजितं पुनः ।

गजस्य शिरसा देवि तेन प्रोक्तो गजाननः ॥३५

हे शम्भु के साथ बिहार करने वाली देवि ! आप तो समस्त सांसारिक भयों को दूर करने वाली हैं और सभी प्रकार के कल्पणों का विनाश कर देने वाली हैं । हे कुम्भिगते ! अर्थात् मत्तकरिणी के समान मन्द गति वाली ! यह परशुराम अब आपके चरणों में पड़ा हुआ आप को प्रणिपात कर रहा है । यद्यपि इसने निरन्तर आपके अपराध रूपी पाप किया है तथापि इसको क्षमा करके अब वरदान दे दीजिए । २६। हे देवि ! आप तो महान् भाग वाली हैं । अब आप मेरे वेदों में कहे हुए वचन का श्रवण कीजिए । मुझे पूर्ण विश्वास है कि उस मेरे वचन को सुनकर आप निश्चय ही परम हृषित हो जायगी । इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है । यह विनायक (गणेश) आपका पुत्र है और यह महान् आत्मा वाले तथा महान् पुरुषों में भी शिरोमणि महान् पुरुषों में भी शिरोमणि महान् हैं । ३०। इनके हृदय में कभी भी काम-क्रोध-उद्वेग और भय आदि का प्रवेश नहीं हुआ करता है । हे भामिनि ! वेदों में स्मृतियों में पुराणों में तथा संहिताओं में सर्वत्र इनके शुभमानों का वर्णन है । ३१। बड़े-बड़े महात्माओं के द्वारा सुपुण्यमय इनके नामों का उपदेश दिया गया है । वे इनके परम शुभ नाम समस्त अघों के दूर कर देने वाले हैं । जो भी वे नाम हैं उनको मैं अभी आपको बतला दूँगा । ३२। जो भी प्रमथों के गण हैं जिनके विविध स्वरूप हैं और जो महान् बल वाले हैं । उन सबके यह गणेश स्वामी हैं । यही कारण है कि इनका नाम 'गणेश' यह संसार में कहा जाया करता है । ३३। जितने भी जो भी भविष्य में होने वाले हैं और समस्त जो भी ब्रह्माण्ड हैं जिनमें यही लम्बोदर हैं अर्थात् लम्बे विशाल उदर वाले यही हैं । ३४। जो भी इस समय में स्थिर है यह पहिले एक बार देव के योग से इनका मस्तक छिन्न हो गया

या और फिर उसको संयोजित किया था जो कि एक गज के शिर से ही जोड़ दिया गया था । हे देवि ! इसीलिए यह गजानन नाम वाले हैं । ३५।

चतुर्थ्यमुदितश्चन्द्रो दधिणा शप्त आतुरः ।

अनेन विधृतो भाले भालचन्द्रस्ततः स्मृतः ॥ ३६ ॥

शप्तः पुरा सप्तभिस्तु मुनिभिः संक्षयं गतः ।

जातवेदा दीपितोऽभूद्येनासौ शूपंकण्कः ॥ ३७ ॥

पुरा देवासुरे युद्धे पूजितो दिविषद्वगणे ।

विघ्नं निवारयामास विघ्ननाशस्ततः स्मृतः ॥ ३८ ॥

अद्यायं देवि रामेण कुठारेण निपात्य च ।

दशनं दैवतो भद्रे ह्येकदंतः कृतोऽमुना ॥ ३९ ॥

भविष्यत्यथ पर्याये ब्रह्मणो हरवल्लभे ।

वक्तीभविष्यत् उत्त्वाद्वक्रतुङ्गः स्मृतोः बुधः ॥ ४० ॥

एवं तवास्य पुत्रस्य संति नामानि पावर्तति ।

स्मरणात्पापहारीण त्रिकालानुगतान्यपि ॥ ४१ ॥

अस्मात्त्रयोदशीकल्पात्पूर्वस्मिन्दशमीभवे ।

मयास्मै तु वरो दत्तः सर्वदेवाग्रपूजने ॥ ४२ ॥

चतुर्थी तिथि में चन्द्रमा उदित हुआ था और दर्भों के द्वारा इसको शाप दे दिया गया था तब यह अत्यन्त आतुर हो गया था । उस समय में इन्हीं गणेश ने इसको अपने माल में धारण कर लिया था । तभी से इसका नाम भाल चन्द्र कहा गया है । ३६। प्राचीन काल में पहिले सात मुनियों ने एक बार इसको शाप दे दिया था । इसी कारण से यह क्षीणता को प्राप्त हो गया था । इनके द्वारा एक बार जातवेदा (अग्नि) दीपित किया गया था । इसी कारण से तभी से इनका शूपकण्क नाम हो गया था । ३७। पहिले समय में देवों और असुरों का महान् भीषण देवासुर संग्राम हुआ था उसमें देवगणों के द्वारा इनकी बड़ी अचंना हुई थी । उससे परम प्रसन्न होकर इन्होंने सभी विघ्नों का निवारण कर दिया था । फिर तभी से इनका विघ्न नाश—यह शुभ नाम पड़ गया था । ३८। हे देवि ! आज परशुराम के द्वारा इसके ऊपर अपने करात का पतार किया गया है ते भर्ते ! इससे देवकाश उत्तराय एक

दैत टूटकर गिर गया है। इसीलिये इनने इसको एकदन्त कर दिया है । ४६। हे हर ! बल्लभ ! इसके अनन्तर यह ब्रह्मा के पश्यविं में होगे। कुठार के ही प्रहार से इनका मुख कुछ बक़ सा हो गया है तभी से बुधों के द्वारा इनको बक्रतुण्ड कहा गया है । ४०। हे पार्वति ! इसी भाँति से आपके इस पुत्र (गणेश) के अनेक नाम हैं। जिनका तीनों कालों में अथवा प्रातः—मध्याह्न और सायंकाल में स्मरण करने वाले होते हैं । ४१। इस त्रयोदशी कल्प से पूर्व कदमींभव में मैंने ही इनको यह वरदान दे दिया था कि समस्त देवों के पूजन के पहिले इन्हीं का सर्वप्रथम पूजन हुआ करेगा । ४२।

जातकर्मादिसंस्कारे गभधानादिकेऽपि च ।

यात्रायां च वणिज्यादौ युद्धे देवार्चने शुभे ॥४३

संकष्टे काम्यसिद्धयर्थं पूजयेद्यो गजाननम् ।

तस्य सर्वाणि कार्याणि सिद्धयत्येव न संशयः ॥४४

वसिष्ठ उवाच—

इत्युक्तं तु समाकर्ण्य कृष्णेन सुमहात्मना ।

पार्वती जगतां नाथा विस्मिताऽसीच्छुभानना ॥४५

यदा नैवोत्तरं प्रादात्पार्वती शिवसन्निधौ ।

तदा राधाऽब्रवीदेवीं शिवरूपा सनातनी ॥४६

श्री राधोवाच—

प्रकृतिः पुरुषश्चोभावन्योन्याश्रयविग्रहौ ।

द्विधा भिन्नौ प्रकाशेते प्रपञ्चेस्मिन् यथा तथा ॥४७

त्वं चाहमावयोर्देवि भेदो नैवास्ति कश्चन ।

विष्णुस्त्वमहमेवास्मि शिवो द्विगुणतां गतः ॥४८

शिवस्य हृदये विष्णुर्भवत्या रूपमास्थितः ।

मम रूपं समास्थाय विष्णोश्च हृदये शिवः ॥४९

जातकर्म आदि घोडण संस्कारों के कराने के समय में तथा गर्भ के आघान आदि कर्मों में—यात्रा के करने के समय में वाणिज्य आदि व्यापारीं के करने के काल में—संग्राम के आरम्भ करने के समय में एवं किसी भी

शुभ कार्य के करने के समय में तथा सङ्कृट के आ पड़ने पर और किसी भी कामना से युक्त कार्य की सिद्धि के लिए जो भी कोई इन गजानन प्रभु का पूजन करेगा उस पुरुष के समस्त कार्य अवश्यमेव सिद्ध हो जाया करते हैं—इनमें कुछ भी संशय नहीं है । ४३-४४। श्री वसिष्ठजी ने कहा—परम शुभ मुख वाली जगतों की स्वामिनी पार्वती श्रीकृष्ण महान् आत्मा वाले प्रभु के द्वारा इस प्रकार से कहे हुए वचन का अवण करके अत्यन्त विस्मित हो गयी थीं । ४५। जब भगवान् शिव की सन्निधि में पार्वतीजी ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया था उस समय में सनातनी शिव के स्वरूप वाली राधा जी ने देवी से कहा था । ४६। श्री राधाजी ने कहा—जिस रीति से इस प्रपञ्च में पुरुष और प्रकृति दोनों परस्पर में एक दूसरे के आश्रम में विग्रहों (स्वरूपों) को रखने वाले हैं और दो रूपों में भिन्न प्रकाशित हुआ करते हैं उसी रीति से है देवि ! तुम और मैं दोनों में दो रूप तो हैं किन्तु वस्तुत कोई भी भेद नहीं है । तुम विष्णु और मैं ही शिव हूँ और द्विगुणता को प्राप्त हुआ है । ४७-४८। भगवान् शिव के हृदय में विष्णु आपके रूप में समास्थित हैं और मेरे रूप में समास्थित होकर भगवान् विष्णु के हृदय में शिव है । ४९।

एष रामो महाभागे वैष्णवः शैवतां गतः ।

गणेशोऽयं शिवः साक्षाद्वैष्णवत्वं समास्थितः ॥५०॥

एतयोरावयोः प्रभ्वोश्चापि भेदो न दृश्यते ।

एवमुक्त् वा तु सा राधा क्रोडे कृत्वा गजाननम् ॥५१॥

मूर्धन्युं पाद्राय पस्पर्णं स्वहस्तेन कपोलके ।

स्पृष्टमात्रे कपोले तु क्षतं पूर्त्तिमुदागतम् ॥५२॥

पार्वतीसुप्रसन्नाभूदनुनीताऽथ राधया ।

पादयोः पतितं राभमुत्थाण्य निजपाणिना ॥५३॥

क्रोडीचकार सुप्रीता मूर्धन्युं पाद्राय पार्वती ।

एवं तयोस्तु सत्कारं दृष्ट् वा रामगणेणयोः ॥५४॥

कृष्णः स्कन्दमुपाकृष्य स्वांके रूपेणा न्यवेण्यत् ।

अथ गम्भुरपि प्रीतः श्रीदामानमुपस्थितम् ॥५५॥

स्वोत्संगे स्थापयामास प्रेमणा सत्कृत्य मानदः ॥५६॥

हे महाभागे ! यह वैष्णव परशुराम शैवता को प्राप्त हुआ है अर्थात् शिव के स्वरूप को प्राप्त होजाने वाला हो गया है। और साक्षात् यह गणेश शिव हैं जो वैष्णवत्व को प्राप्त हुआ है अर्थात् विष्णु के स्वरूप में समाप्तिष्ठित है। इन हम दोनों प्रभुओं का भी भेद दिखलाई नहीं दिया करता है। इस प्रकार से कहकर श्री राधा ने अपनी गोद में गजानन को बैठा लिया था । ५०-५१। फिर गणेशजी का मस्तक सूँघ कर अपने हाथ से उनके कपोलों का स्पर्श किया था। उनके केवल कर कमल के स्पर्श करते ही तत्क्षण जो भी दाँत के टूट जाने से क्षत हो गया था वह भरकर ठीक हो गया था । ५२। इसके अनन्तर श्री राधा जी के द्वारा अनुनय की गयी पावंतीजी भी परम प्रसन्न हो गयी थीं और अपने चरणों में मस्तक नवाकर पड़े हुए परशुराम को उन्होंने भी अपने करकमल से पकड़ कर उठा लिया था। पावंती जी ने परम प्रसन्न होकर उसको अपनी गोद में बिठाकर उसके शिर का उपग्राह किया था। आर्य संस्कृति में बृद्ध एवं बड़े लोग अपने छोटे बालकों का शिर सूँघ कर उनकी आयु की वृद्धि किया करते थे। इस रीति से उन दोनों राम और गणेश का सत्कार भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने नेत्रों से देखा था। तब श्रीकृष्ण ने भी स्कन्द को अपनी ओर उठाकर बहुत ही प्रेम के साथ अपनी गोद में बैठा लिया था। इसके अनन्तर भगवान् शम्भु ने भी परम प्रसन्न होकर वहाँ पर समुपस्थित श्रीदामा को अपनी गोद में संस्थापित कर लिया था और मान प्रदान करने वाले प्रभु ने उसका बड़ा सत्कार किया था । ५३-५४-५५-५६।

— X —

भार्गव-चरित्र वर्णन (३)

वसिष्ठ उवाच-

एवं सुस्निग्धचित्तोषु तेषु तिष्ठत्सु भूपते ।

भवान्युत्संगतो रामः समुत्थाय कृतांजलिः ॥१॥

तुष्टाव प्रयतो भूत्वा निर्विशेषं विशेषवत् ।

अद्वयं द्वैतमापन्नं निर्गुणं सगुणात्मकम् ॥२॥

राम उवाच-

प्रकृतिविकृतिजातं विश्वमेतद्विधातुं मम कियदनुभातं
वैभवं तत्प्रमातुम् ।

अविदिततनुलामाऽभीष्टवस्त्वेकधामाऽभवदथ भव-
भामा पातु मां पूर्णकामा ॥३

प्रकटितगुणमानं कालसंख्याविधानं सकलभवनिदानं
कीर्त्यते यत्प्रधानम् ।

तदिह निखिलतातः संबभूवोक्षपातः कृतकृतकनिपातः
पातु मामच मातः ॥४

दनुजकुलविनाशी लेखपाताविनाशी प्रथम-
कुलविकाशी सर्वविद्याप्रकाशी ।

प्रसभरचितकाशी भक्तदत्ताखिलाशीरवतु विजितपाशी
मां सदा षण्मुखाशी ॥५

हरनिकटनिवासी कृष्णसेवाविलासी

प्रणतजनविभासी गोपकन्याप्रहासी ।

हरकृतबहुमानो गोपिकेशकतानो विदितबहुविधानो
जायतां कीर्तिहा नो ॥६

प्रभुनियतमना यो नुन्नभक्तांतरायो हृतदुरितनिकायो
ज्ञानदातापरायोः ।

सकलगुणगरिष्ठो राधिकांके निविष्टो मम
कृतमपराधं क्षंतुमर्हत्वगाधम् ॥७

श्री वसिष्ठ जी ने कहा—हे भूपते ! इस रीति से उन सबके परमाधिक स्नेह से युक्त चित्त बाले हो जाने पर समवस्थित हुए देखा था तो परशुराम भवानी की गोद से उतर कर दोनों हाथों को जोड़कर पूर्णतया प्रणत हो गये थे । १। फिर परम प्रयत्नशील होकर विशेषता से रहित की भी विशेष की भौति स्तुति की थी । आप द्वैत से रहित होते हुए भी अथवा एक ही स्वरूप बाले होकर भी इस समय में द्वैत भाव को प्राप्त हो रहे हैं अबति दो स्वरूपों में दर्शन दे रहे हैं । बास्तव में आप गुणों से रहित हैं तो भी अब संगुण स्वरूप से संयुत हैं । २। परशुराम ने कहा—यह सम्पूर्ण विश्व
विशुद्धि के विकास से ही समुद्धरण हुआ है । इसका स्वरूप के सिए जो

भी आपका वैभव है उसके जानने के लिये मेरा जान कितना है अर्थात् मैं बहुत ही तुच्छ ज्ञान वाला उसको नहीं जान सकता हूँ। आपका स्वरूप और नाम किसी को भी विदित नहीं हैं किन्तु फिर भी आप अभीष्ट वस्तुओं के एक ही धाम हैं। आप भगवान् शङ्कुर की भामिनी हैं और पूर्ण काम वाली हैं। आप मेरी रक्षा कीजिए ।३। सत्य-रज और तम-इन गुणों का ज्ञान करने वाला—काल की सख्या का विद्यान करने वाला—इस सम्पूर्ण संसार का जो मूल कारण है वह प्रधान—इस नाम से कीर्त्ति किया जाया करता है वह यहाँ पर पूर्णतया कृतकृतक निपात वाला उक्तपात जिससे हुआ था हे माता ! वह आप आज मेरा परित्राण कीजिए ।४। सम्पूर्ण दनुओं के कुलों का विनाश करने वाले—लेख पातों में अविनाशी-अपने कुल का सर्वप्रथम विकास करने वाले—समस्त विद्याओं के प्रकाश से समन्वित—अपने बल से ही काशी की रचना के कर्त्ता-अपने भक्तों के लिए सभी प्रकार का आशीर्वाद देने वाले और जिन्होंने पाश को भी जीत लिया है ऐसे षण्मुखों से अशन करने वाले स्वामी कात्तिकेय मेरी सदा-सर्वदा रक्षा करें ।५। भगवान् हर के समीप में निवास करने वाले—श्रीकृष्ण की सेवा के विलास वाले—जो भक्त चरणों में प्रणत होते हैं उनको विशेष ज्ञान प्रदान करने वाले—गोपों की कन्याओं के द्वारा प्रहास किये गये—भगवान् शङ्कुर जिनका बड़ा मान दिया करते हैं गोपिकेश्वर के एक ध्यान वाले और जिनको बहुत से विज्ञान ज्ञान हैं वे मेरे कीर्त्तिहा होवे ।६। जो प्रभु के चरणों में नियत मन वाले हैं तथा भक्तों के अन्तःकरण में प्रेरणा प्रदान करने वाले—समस्त पापों के समुदाय का हरण करने वाले—ज्ञान के प्रदान में तत्पर—सब प्रकार के गुणगणों में परमश्रेष्ठ और श्री राधाकाजी को गोद में विराजमान प्रभु मेरे किये हुए अगाध अपराध को क्षमा करने के योग्य होते हैं ।७।

या राधा जगदुद्भवस्थितिलयेष्वाराध्यते वा जने:

शब्दं बोधयतीशवकञ्च विगलत्प्रेमामृतास्वादनम् ।

रासेणी रसिकेश्वरी रमणहृन्निष्ठानिजानंदिनी
नेत्री सा परिपातु मामवनतं राधेति या कीर्त्यते ॥८॥

यस्या गर्भं समुद्भवो ह्यतिविराड्यस्यांशभूतो विराड्

यन्नाभ्यं बुरुहोद्भवेन विविन्नैकांतोपदिष्टेन वै

सृष्टि सर्वमिदं चराचरमयं विश्वं च यद्रोमसु

ब्रह्मांडानि विभांति तस्य जननी शश्वत्प्रसन्नाऽस्तु सा ॥९॥

पायाद्यः स चराचरस्य जगतो व्यापी विभुः सच्चिदा-
नंदाबिधः प्रकटस्थितो विलसति प्रेमांधया राधया ।

कृष्णः पूर्णतमो ममोपरि दयाकिलन्नांतरः स्यात्सदा
येनाहं सुकृती भवामि च भवाम्यानंदलीनांतरः ॥१०

वसिष्ठ उवाच—

स्तुत्वैवं जामदग्न्यस्तु विरराम ह तत्परम् ।

विज्ञाताखिलतत्त्वार्थे हृष्टरोमा कृतार्थवत् ॥११

अथोवाच प्रसन्नात्मा कृष्णः कमललोचनः ।

भार्गवं प्रणतं भक्तया कृपापात्रं पुरःस्थितम् ॥१२

कृष्ण उवाच—

सिद्धोऽसि भार्गवेन्द्र त्वं प्रसादान्मम सांप्रतम् ।

अद्य प्रभृति वत्सास्मिन्लोके श्रेष्ठतमो भव ॥१३

तुभ्यं वरो मया दत्तः पुरा विष्णुपदाश्रमे ।

तत्सर्वं कमतो भाव्यं समा बहवीस्त्वया विभो ॥१४

जो श्री राधा इस जगत् के लय-उद्भव और स्थिति काल में भी जनों के द्वारा समाराधित होती हैं—स्वामी के मुख से विगलित प्रेमरूपी अमृत के रसास्वाद का शब्द से ज्ञान कराती हैं—जो रास लीला की स्वामिनी हैं—रसिकों की ईश्वरी है अपने रमण कराने वाले के हृदय में निष्ठा वाली तथा अपने आपको आनन्द पाने वाली वह नेत्री अर्थात् गोपीगणाधीश्वरी जिनका शुभ नाम श्री राधा कीस्ति किया जाया करता है वह अवनत मेरी की रक्षा करें।८। जिसके गर्भ से अति विराट् स्वरूप का उद्भव हुआ था और जिसका वह विराट् स्वरूप एक अंशभूत ही था—जिसकी नाभि से समुत्पन्न कमल से समुत्पन्न हुए विधाता ने जिसको एकान्त में उपदेश दिया गया था—इस स्थावर जड़म सम्पूर्ण विश्व की रचना की है और जिसके रोमों में ये समस्त ब्रह्माण्ड शोभित हो रहे हैं उस पूर्ण परमेश्वर को जन्म देने वाली जननी मेरे ऊपर निरन्तर प्रसन्न होते ।९। जो इस चराचर जगत् में व्यापक विभु है और जो सत्-चित् और आनन्द का सागर प्रकट स्वरूप में स्थित होकर प्रेमांध श्रीराधा के साथ जोभा प्राप्त करता है वह मेरी रक्षा

करें। परम पूर्णतय परमेश्वर श्रीकृष्ण मेरे ऊपर करुणा से पसीजे हुए हृदय वाले मेरे ऊपर होवें जिसमे मैं कुकृती हो जाऊँ और आनन्द में लीन अन्तः करण वाला बन जाऊँ । १०। वसिष्ठजी ने कहा—इस रीति से जमदग्नि महामुनि के पुत्र परशुराम ने भगवान श्रीकृष्णचन्द्र की स्तुति करके फिर इसके पश्चात् वह विरत होकर चुप हो गए थे। वह सम्पूर्ण तत्वों के अर्थों का ज्ञाता एक सफलता प्राप्त होने वाले के ही समान परम प्रसन्न पुलकोद्गम वाला हो गया था । ११। इसके अनन्तर कमलों के सदृश लोचनों वाले परम प्रसन्न आत्मा से युक्त होते हुए श्रीकृष्ण ने अपने आगे उपस्थित-भक्ति भावना से प्रणत तथा कृपा के पात्र भाग्यव से कहा— । १२। श्रीकृष्ण बोले— हे भाग्यवेन्द्र ! तुम इस समय मेरे प्रसाद (पूर्ण प्रसन्नता) से सिद्ध हो गये हो । हे वत्स ! तुम आज से लेकर इस लोक में सबसे अधिक श्रेष्ठ हो गए हो । १३। पहिले समय में विष्णु महाश्रम में मैंने आपको बर दिया था। वह सब कुछ हे विभो ! क्रम से बहुत से वर्षों में पूर्ण होना चाहिए अर्थात् पूर्ण हो ही जायगा । १४।

दया विद्येया दीनेषु श्रेय उत्तममिच्छता ।

योगश्च साधनीयो वै शंत्रूणां निग्रहस्तथा ॥ १५ ॥

त्वत्समो नास्ति लोकेऽस्मिस्तेजसा च बलेन च ।

ज्ञानेन यगसा वापि सर्वश्रेष्ठतमो भवान् ॥ १६ ॥

अथ स्वगृहमासाद्य पित्रोः शुश्रूषणं कुरु ।

तपश्चर यथाकालं तेन सिद्धिः करस्थिता ॥ १७ ॥

राधोत्संगात्समुत्थाप्य गणेशं राधिकेश्वरः ।

आलिङ्ग गाढं रामेण मैत्रीं तस्य चकार ह ॥ १८ ॥

अथोभावपि संप्रीतीं तदा रामगणेश्वरौ ।

कृष्णाज्ञया महाभागौ बभूवतुरर्दिम ॥ १९ ॥

एतस्मिन्नन्तरे देवी राधा कृष्णप्रिया सती ।

उभाभ्यां च वरं प्रादात्प्रसन्नास्या मुदान्विता ॥ २० ॥

राधोवाच—सर्वस्य जगतो वंद्यौ दुराधिष्ठौ प्रियावही ।

मदभक्तौ च विशेषेण भवती भवतां सुतौ ॥ २१ ॥

अब मेरा तुम्हारे लिए यह उपदेश है कि परम श्रेयकी अभिलाषा रखने वाले आपको जो विचारे दीन प्राणी हैं उन पर दया करनी चाहिए। और तुमको योग की साधना करनी चाहिए तथा अपने अत्रुओं का निग्रह

भी करना चाहिए । १५। इस लोक में आपके समान अन्य कोई भी तेज-बल-ज्ञान और यश में समानता रखने वाला नहीं है और आप सबमें परम श्रेष्ठतम हैं । १६। उसके अनन्तर आप अपने निवास गृह में पहुँचकर अपने माता-पिता की शुश्रूषा करो । और जब भी समय प्राप्त हो तब तपश्चर्या करो । इससे सिद्धि आपके करतल में स्थित हो जायगी । १७। फिर श्री-राधिका के ईश्वर ने भो राधाजी की गोद से गणेशजी को अपनी बाहुओं से स्वयं उठाकर अपने बक्ष-स्थल से लगा लिया था और भली-भाँति स्नेहालिङ्गन करके फिर उनकी मित्रता परशुराम के साथ करादी थी । १८। हे शश्रुओं दमन करने वाले ! इसके उपरान्त उस समय में भगवान श्रीकृष्ण की आकृता से महान भाग वाले वेदोनों ही परशुराम और गणेश बहुत प्रीति वाले हो गये थे अर्थात् उन दोनों की बहुत ही गहरी प्रीतिमयी मित्रता हो गयी थी और पहिले हुआ हृषि भाव बिल्कुल ही उनके हृदयों से निकल गया था । १९। इसी बीच में परम सती-साध्वी श्रीकृष्ण चन्द्र की प्रिया श्रीराधा देवी अधिक आनन्द से समन्वित होकर प्रसन्न मुख कमल वाली ने उन दोनों के लिए वर दिया था । २०। श्रीराधाजी ने कहा—हे पुत्रो ! इस सम्पूर्ण जगत के द्वारा बन्दना करने के योग्य—असह्य तेज वाले और प्रिय कार्य का आवाहन करने वाले तथा आप दोनों ही विशेष रूप से मेरे भक्त हो जावें । २१।

भवतोनमि चोच्चार्य यत्कार्यं यः समारभेत् ।

सिद्धि प्रयातु तत्सर्वं मत्प्रसादाद्वि तस्य तु ॥२२

अयोवाच जगन्माता भवानी भववल्लभा ।

वत्स राम प्रसन्नाऽहं तुभ्यं कं प्रददे वरम् ।

तं प्रबूहि महाभाग भयं त्यक्त्वा सुदूरतः ।

राम उवाच—

जन्मांतरसहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम् ॥२३

कृष्णयोर्भवयोर्भक्तो भविष्यामीति देहि मे ।

अभेदेन च पश्यामि कृष्णो चापि भवौ तथा ॥२४

पार्वत्युवाच—

चिरंजीवी भवाशु त्वं प्रसादान्मम सुद्रत ॥२५

अथोवाच धराधीशः प्रसन्नस्तमुमापतिः ।

प्रणतं भार्गवेन्द्रं तु वराहं जगदीश्वरः ॥२६

शिव उवाच—

रामभक्तोऽसि मे वत्स यस्ते दत्तो वरो मया ।

स भविष्यति कात्स्न्येन सत्यमुक्तं न चान्यथा ॥२७

अद्यप्रभृति लोकेऽस्मिन् भवतो वलवत्तरः ।

न कोऽपि भवताद्वत्स तेजस्वी च भवत्परः ॥२८

जो कोई पुरुष आपके शुभ नाम का उच्चारण करके जो भी कुछ कार्य का समारम्भ किया करता है उसका वह कार्य मेरे प्रसाद से निश्चित रूप से सिद्धि को प्राप्त हो जाता है । २२। इसके उपरान्त भगवान् भव (शिव) की वल्लभा भवानी देवी जो इस समस्त जगत् को जन्म देने वाली माता हैं, बोली थीं । हे राम, हे वत्स ! मैं तुम से बहुत प्रसन्न हूँ, मुझे तुम यह बतला दो कि तुम्हारे लिए मैं क्या वरदान दे दूँ । हे महान् भाग वाले ! उसी वरदान को जो तुमको अभिलाषित हो मुझे स्पष्ट बतलादो और इसमें सर्वथा भय भल करो तथा भय को तो एकदम बहुत दूर हटा दो । परशुराम जी ने कहा—मैं अपने सहस्रों जन्मों में भी जिन जिन देहों में गमन करके समुत्पन्न होऊँ । २३। श्री राधा कृष्ण और भवानी-भव का अनन्य भक्त होऊँ यही वरदान आप मुझे प्रदान कीजिए । श्री राधा कृष्ण और भव-भवानी—इन दोनों युगलों का मैं कोई भेद भी नहीं देखूँ अर्थात् इनका एक ही स्वरूप मेरी हृषि में बना रहे । २४। जगदम्बा पार्वतीजी ने कहा—हे महाभाग ! इसी प्रकार से होगा । तुम तो भगवान् शंकर और श्रीकृष्ण-चन्द्र के परम भक्त हो । हे मुब्रत ! अर्थात् परम सुन्दर ब्रत वाले ! मेरी कृपा के प्रसाद से तुम बहुत शीघ्र चिरकाल पर्यन्त जीवित रहने वाले हो जाओ । २५। इसके पश्चात् इस वसुन्धरा के स्वामी भगवान् उमापति परमाधिक प्रसन्न होकर उस राम से बोले और जगत् के स्वामी ने जब देखा था कि वह भार्गवेन्द्र परशुराम उनके चरणों में प्रणत हो रहा है तथा वरदान प्राप्त करने का परम योग्य पात्र है तो उन्होंने कहा— । २६। भगवान् शिव ने कहा—हे वत्स ! तुम मेरे राम के भक्त हो—यह वरदान मैंने तुमको दिया था । वह वरदान सम्पूर्णतया कहा हुआ सत्य ही होगा और इस वरमें

अन्यथा कुछ भी नहीं होगा अर्थात् इसमें कुछ भी अन्तर न होगा । २७। हे वत्स ! इस समस्त लोक में आज ही से आरम्भ करके आपसे अधिक बलवान कोई भी नहीं होगा और न कोई आपसे अधिक तेज के धारण करने वाला तेजस्वी ही होगा । २८।

वसिष्ठ उवाच-

अथ कृष्णोऽप्यनुजाय शिवं च नगनदिनीम् ।

गोलोकं प्रययौ युक्तः श्रीदाम्ना चापि राध्या ॥ २९ ॥

अथ रामोऽपि धर्मतिमा भवानीं च भवं तथा ।

संपूज्य चाभिवाद्याथ प्रदक्षिणमुपाक्रमीत् ॥ ३० ॥

गणेशं कार्त्तिकेयं च नत्वापृच्छ्य च भूपते ।

अकृतव्रणसंयुक्तो निश्चक्राम गृहांतरात् ॥ ३१ ॥

निष्क्रम्यमाणो रामस्तु नन्दीश्वरमुखेगणैः ।

नमस्कृतो यथौ राजन्स्वगृहं परया मुदा ॥ ३२ ॥

वसिष्ठजी ने कहा—इसके अनन्तर भगवान श्रीकृष्ण शिव और नगराज की पुत्री को अनुजापित करके श्रीराधा और श्री दामा के साथ अपने गोलोक धाम को चले गये थे । २६। इसके पश्चात् धर्मतिमा राम ने भी भगवान शिव और जगदम्बा का भली-भाँति अर्चन करके और अभिवादन करके इसके अनन्तर उन्होंने प्रदक्षिणा करने का उपक्रम किया था । ३०। हे भूपते ! फिर राम ने गणेशजी और स्वामी कर्त्तिकेय की सेवा में प्रणिपात करके तथा उनसे पूछकर उस गृह के मध्य भाग से बाहिर निष्क्रमण किया था । ३१। हे राजन् ! जिस बेला में राम वहाँ से बाहर निकल कर जा रहे थे उस अवसर पर नन्दीश्वर प्रभृति शिव के मुख्य गणों के द्वारा उनको प्रणाम किया गया था और फिर वह राम बड़ी ही प्रसन्नता से अपने गृह को चले गये थे । ३२।

सगरोपाल्यान (१)

वसिष्ठ उवाच-

राजन्नेवं भृगुविद्वान्पश्यञ्जनपदान्वहन् ।

समाजगाम धर्मतिमाऽकृतव्रणसमन्वितः ॥ १ ॥

निलिल्युः क्षत्रियाः सर्वे यत्र तत्र निरीक्ष्य तम् ।

व्रजंतं भागं वं मार्गे प्राणरक्षणतत्पराः ॥२

अथाससाद राजेऽद्वं रामः स्वपितुराश्रमम् ।

शांतसत्त्वसमाकीर्णं वेदध्वनिनिनादितम् ॥३

यत्र सिहा मृगा गावो नागमाजजारिमूषकाः ।

समं चरन्ति संहृष्टा भयं त्यक्त् वा सुदूरतः ॥४

यत्र धूमं समीक्ष्यैव ह्यग्निहोत्रसमुद्भवम् ।

उन्नदंति मयूराश्च नृत्यांति च महीपते ॥५

यत्र सायंतने काले सूर्यस्याभिमुखं द्विजैः ।

जलांजलीन्प्रक्षिपद्धिः क्रियते भूर्जलाविला ॥६

यत्रांतेवासिभिर्नित्यं वेदाः शास्त्राणि संहिताः ।

अभ्यस्य ते मुदा युक्तं ब्रह्माचर्यवते स्थितैः ॥७

श्री वसिष्ठ महामुनि ने कहा—हे राजेन्द्र ! इस प्रकार से विद्वान् भृगु

बहुत-से जन पदों का अबलोकन करते हुए वे धर्मत्मा राम अकृत व्रण से समन्वित होकर समागत हो गये थे ।१। मार्ग में जहाँ पर भी क्षत्रिय मिले थे वे सब उन परशुराम को देखकर छिप गये थे क्योंकि मार्ग में राम गमन करते हुए उन्हें दिखलाई पड़े थे और वे विचारे अपने प्राणों की रक्षा में परायण होकर इघर-उघर भागे-भागे फिर रहे थे ।२। हे राजेन्द्र ! इसके पश्चात् परशुराम अपने पिता के आश्रम में पहुँच गए थे जो आश्रम परम जान्त जीवों से घिरा हुआ था और जिसमें वेद मन्त्रों की ध्वनि गूँज रही थी ।३। उस आश्रम में स्वभाव जनित वैर भाव भी नाम मात्र को भी नहीं था और परस्पर में निसर्ग शत्रु जीव भी जैसे सिंह और मृग तथा गो-सर्प-पाजर और मूषक भी सब मिले-जुले एक साथ सञ्चरण करते थे और अपने स्वाभाविक शत्रुओं का भी भय दूर करके त्याग दिया था ।४। हे महीपते ! जिस आश्रम में निरन्तर अग्नि होत्र के होते रहने से समुत्पन्न हुए धूम (धूंआ) को देखकर ही मेघावरण की आन्ति से अर्थात् वने धूम के द्वारा समावृत अन्तरिक्ष को मेघाच्छब्दन समझकर मयूर बहुत प्रसन्न हो रहे थे और अपने चित्रविचित्र पिच्छों को फैला कर नृत्य कर रहे थे जहाँ पर सायंकाल के समय में द्विजगण सूर्यदेव के सम्मुख में जल की अक्षजलियों

का प्रक्षेप कर रहे थे जिस जल से सारी भूमि आविल हो गई थी अर्थात् भीगकर भट्टमैले रङ्ग की हो रही थी ।६। जहाँ पर अध्ययन शील वटु ब्रह्मचारियों के द्वारा नित्य ही वेदों-शास्त्रों और संहिताओं का अभ्यास किया जाता था । ये सभी छात्र परमाधिक हृष्ट से समन्वित तथा ब्रह्मचर्य व्रत में समाप्ति रहा करते थे ।७।

अथ रामः प्रसन्नात्मा पश्यन्नाश्रमसंपदम् ।

प्रविवेश शनै राजन्नकृतव्रणसंयुतः ॥८॥

जयशब्दं नमः शब्दं प्रोच्चरद्धिंजात्मजैः ।

द्विजश्च सत्कृतो रामः परं हर्षमुपागतः ॥९॥

आश्रमाभ्यन्तरे तत्र संप्रविश्य निजं गृहम् ।

ददर्श पितरं रामो जमदग्निं तपोनिधिम् ॥१०॥

साक्षादभृगुमिवासीनं निग्रहानुग्रहकमम् ।

पपात चरणोपान्ते ह्यष्टांगालिंगितावनिः ॥११॥

रामोऽहं तव दासोऽस्मि प्रोच्चरन्लिति भूपते ।

जग्राह चरणो चापि विधिवत्सज्जनाग्रणीः ॥१२॥

अथ मातुश्च चरणावभिवाद्य कृतांजलिः ।

उवाच प्रणतो वाक्यं तयोः संहर्षकारणम् ॥१३॥

राम उवाच—

पितस्तव प्रभावेण तपसोऽतिदुरासदः ।

कात्त्वीर्यो हतो युद्धे सपुत्रबलवाहनः ॥१४॥

इसके अनन्तर उस परम पुनीत आश्रम की अनिवंचनीय विशाल विभूति का अवलोकन करने से प्रसन्न आत्मा वाले राम ने हे राजन् ! अपने पालित अकृत व्रण के संहित मन्दगति से उस आश्रम में प्रवेश किया था ।८। जैसे ही राम ने भीतर अपना पदार्पण किया था वैसे ही उनका दर्शन करके वहाँ पर स्थित द्विजों के बालकों ने जय-जयकार और नमस्कार की छवनियों को प्रोच्चारण किया था और विप्रों के द्वारा भागंवेन्द्र राम का बड़ा ही अधिक सम्मान-सत्कार किया गया था । इस रीति से अपने स्वागत-समाप्ति को Diwajya से ज्ञान (http://इत्युपरिकार्त्त्वं) कृता या (एस उपरिकार्त्त्वं) MADE WITH LOVE BY Avinash

अन्दर अपने गृह में जब राम ने प्रवेश किया था तो वहाँ पर परशुराम जी ने तपस्या के परम निष्ठि अपने पिताश्री जमदग्नि महामुनि का दर्शन किया था । १०। वे जमदग्नि मुनि साक्षात् अपने पूर्व पुरुष भृगु मुनि के समान वहाँ पर विराजमान थे जो अपने तपोबल से विश्राह और अनुग्रह करने की विशाल सामर्थ्य धारण करने वाले थे । उनके समीप में पहुँचकर राम ने उनके चरण कमलों के निकट में अपने आठों अङ्गों से भूमि का आलिङ्गन करते हुए गिर गये थे अथवा भूमि पड़कर साष्टाङ्ग प्रणाम किया था । ११। हे भूपते ! परशुराम ने प्रणिपात करते हुए—मैं आपका दासानुदास राम हूँ—आपकी सेवा में मेरा सादर प्रणाम निवेदित है—ऐसा मुख से उच्चारण करते हुए उस सज्जनों में प्रभु राम ने प्रणाम करने की विधि से साथ पिताश्री के दोनों चरणों का ग्रहण किया था । १२। इसके अनन्तर उन्होंने अपनी माता श्री के चरणों में करबद्ध होते हुए अभिवादन किया था । फिर परम प्रणत होकर उन दोनों माता-पिता के अतीव हर्ष का कारण स्वरूप वाक्य कहा था । १३। राम ने कहा—हे पिताजी, आपके परम दुरासद तप के प्रभाव से ही मैंने बड़े बलवान कात्तिवार्य राजा का पुत्रों-सैनिकों और वाहनों के सहित हनन कर दिया है । इस निवेदन का तात्पर्य यही है कि उस इतने बलशाली शत्रु^१ के निपातन करने में मेरा पुरुषार्थ कुछ भी नहीं है यह सब कुछ आपके ही तप का प्रभाव है जिस से मेरे द्वारा वह दुष्ट मारा गया है । १४।

यस्तेऽपराधं कृतवान्दुष्टमंत्रिप्रचोचितः ।

तस्य दण्डो मया दत्तः प्रसहा मुनिपुंगव ॥ १५ ॥

भवन्तं तु नमस्कृत्य गतोऽहं ब्रह्मणोऽतिकम् ।

तं नमस्कृत्य विधिवत्स्वकार्यं प्रत्यवेदयम् ॥ १६ ॥

स मामुवाच भगवाञ्छ्रुत्वा व्रतांतमादितः ।

त्रज स्वकार्यसिद्धचर्थं शिवलोकं सनातनम् ॥ १७ ॥

श्रुत्वाऽहं तद्वचस्तात नमस्कृत्य पितामहम् ।

गतवाञ्छ्रुवलोकं वै हरदर्शनकांक्षया ॥ १८ ॥

प्रविश्य तत्र भगवन्नुमया सहितः शिवः ।

नमस्कृतो मया देवो वाञ्छितार्थप्रदायकः ॥ १९ ॥

तदग्रे निखिलः स्वीयो वृत्तांतो विनिवेदितः ।

मया समाहितधिया स सर्वं श्रुतवानपि ॥२०

श्रुत्वा विचार्य तत्सर्वं ददी मह्यं कृपान्वितः ।

त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं सर्वसिद्धिदम् ॥२१

यह वही अधम राजा था । जिसने अपने परम दुष्ट मन्त्री की प्रेरणा से प्रेरित होकर आपका महान् अपराध किया था । उस अपराध का दण्ड मेरे द्वारा उसको दे दिया गया है । हे मुनियों में परम श्रेष्ठ ! मैंने बलपूर्वक उसको दण्डित किया है । मैंने जिस रीति से अब तक जो कुछ भी किया है उसका पूर्ण विवरण क्रमानुसार मैं आपकी सन्निधि में निवेदित करता हूँ । १५। मैंने आपको नमस्कार करके सर्वप्रथम ब्रह्माजी के समीप में गमन किया था क्योंकि समस्त सृष्टि ब्रह्मा जी के ही द्वारा हुई है । अतः उनको उसके निपातन से कुछ बुरा प्रतीत न हो, उनकी आज्ञा प्राप्त करना न्यायोचित एवं आवश्यक था । मैंने वहाँ जाकर उनको विधि के साथ प्रणिपात किया था और अपना सङ्कलिपित कार्य उनसे निवेदित कर दिया था । १६। ब्रह्माजी ने आरम्भ से लेकर सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना था और मुझसे कहा था । समस्त अत्रियगण भगवान् शिव के परम भक्त हैं अतः अपने कार्य को सिद्धि के लिए सनातन शिवलोक में जाना चाहिए । १७। हे तात ! पितामह के इस वचन का श्रवण करके ब्रह्माजी को नमस्कार करके भगवान् शिव के दर्शन की आकाङ्क्षा से फिर मैं शिवजी के लोक में गया था । १८। हे भगवन् ! यहाँ पर शिव लोक में प्रवेश करके उमा देवी के सहित भगवान् शिव को नमस्कार किया था । भगवान् शिव तो ऐसे देव हैं जो सबके लिए वाञ्छित अर्थ का प्रदान कर दिया करते हैं । १९। उन प्रभु के सामने मैंने अपना पूरा वृत्तान्त आवेदित कर दिया था । जो भी उनकी सेवा में निवेदित किया था उस सबको उन्होंने परम समाहित बुद्धि से उस सबका श्रवण भी किया था । उस सम्पूर्ण वृत्तान्त का श्रवण करके उन्होंने एक क्षण तक विचार किया था और फिर परमाधिक कृपा से समन्वित होकर समस्त सिद्धियों के देने वाले त्रिलोक्य विजय नाम वाला कवच मुझे उन्होंने प्रदान किया था । २०-२१।

तल्लब्ध्वा तं नमस्कृत्य पुष्करं समुपागतः ।

तत्राहं साधयित्वा तु कवचं हृष्टमानसः ॥२२

कार्त्तवीर्यं निहत्याजो शिवलोकं पुनर्गंतः ।

तत्र तौ तु मया दृष्टौ द्वारे स्कन्दविनायकौ ॥२३

तौ नमस्कृत्य धर्मज्ञं प्रवेष्टुं चोद्यतोऽभवम् ।

स मामवेक्ष्य गणपो विशन्तं त्वरयान्वितम् ॥२४

वार्यामास सहसा नाद्यावसर इत्यथ ।

मम तेन पितस्तत्र वाग्युद्धं हस्तकर्षणम् ॥२५

सञ्जातपरशुक्षेममतोऽभूदभृगुनन्दन ।

तज्जात्वा समुद्गृह्य मामधश्चोद्धर्वमेव च ॥२६

करेण भ्रामयामास पुनश्चानीतवांस्ततः ।

तं दृष्ट्वातिक्रुधा क्षिप्तः कुठारो हि मया ततः ॥२७

दंतो निपतितस्तस्य ततो देव उपागतः ।

पार्वती तत्र रुषाऽभूतदा कृष्णः समागतः ॥२८

उस कवच की सिद्धि पुष्कर तीर्थ में बतलायी थी अतएव मैंने उस को प्राप्तकर भगवान् शङ्खर को प्रणाम किया और मैं फिर उसकी सिद्धि के लिये पुष्कर में समागत हो गया था । वहाँ पर मैंने उस कवच की सिद्धि प्राप्त कर ली थी । और उसे साधित करके मेरे मन में बड़ी प्रसन्नता हुई थी । २२। फिर संग्राम भूमि में कार्त्तवीर्य का निपातन करके मैं पुनः शिवलोक में गया था कि अपनी विजय का सम्बाद प्रभु को सुनादूँ । वहाँ पर मैंने द्वारपर स्कन्द और विनायक को समवस्थित देखा । २३। हे धर्म के ज्ञान वाले भगवान् ! मैंने उन दोनों की सेवा में प्रणाम किया और मैं अन्दर प्रवेश करने के लिए समुद्रत हो गया था । उस समय में बड़ी शीघ्रता से युक्त होकर अन्दर प्रविष्ट होने वाले मुझ को देखकर गणेश जी ने रोक दिया था । २४। उन्होंने मुझ से यही कह मुझको अन्दर प्रवेश करने से सहसा रोका था कि आज अन्दर गमन करने का अवसर नहीं है । हे पिताजी ! उस समय में मेरा उन गणेश जी के साथ पहिले तो वाग्युद्ध अर्थात् अच्छी तरह से कहा सुनी हुई थी और फिर हाथों का कर्षण अर्थात् मेरा हाथ पकड़कर खींचातानी हुई थी । २५। उस समय में गणेश जी ने यह देखा कि भृगु नन्दन अपने परशु का प्रहार करने वाला हो रहा था । उन्होंने यह जानकर मुझको पकड़ लिया था और ऊपर उठाकर नीचे की ओर कर दिया था । २६।

गणेश जी ने अपने हाथ से उठाकर अच्छी तरह ये ऊपर के अनेक लोकों में धूमाया था और फिर भीखे के लोकों में धूमाकर वहीं पर मुझे लाकर रख दिया था । फिर मुझको बड़ा भारी क्रोध आ गया था और मैंने अपना फुठार उनके ऊपर प्रक्षिप्त कर दिया था ॥२३॥ उस प्रहार से गणेशजी का एक बाया दौत टूटकर भूमि पर गिर गया था । उसी समय में महादेवजी वहीं पर आ गये थे । उस समय में पार्वतीजी ने अपने पुत्र के दौत के टूट जाने को दुष्टेना देखी तो वे बहुत रुष्ट हो गयी थी । उसी समय में भगवान् श्री कृष्ण भी आ गये थे ॥२४॥

राध्या सहितस्तेन सानुनीता वरं ददौ ।

मह्यं कृष्णो जगामाथ तेन मैत्रीं विश्वाय च ॥२५

ततः प्रणम्य देवेजो पार्वतीपरमेष्वरी ।

आगतस्तव सान्निध्यमकृतत्रणसंयुतः ॥२६

बसिष्ठ उवाच—

इत्युक्त्वा भार्गवो रामो विरराम च भूपते ।

जमदग्निरुवाचेदं रामं गत्रुनिबहूणम् ॥२७

जमदग्निरुवाच—

क्षत्रहस्याभिभूतस्त्वं तावद्वोषोपशांतये ।

प्रायश्चित्तं ततस्तावद्यथावस्तु मर्हसि ॥२८

इत्युक्तः । अह पितरं रामो मतिमतां वरः ।

प्रयश्चित्तं तु तद्योग्यं त्वं मे निर्देष्टु मर्हसि ॥२९

जमदग्निरुवाच—

व्रतैश्च नियमैश्चैव कर्षयन्देहमात्मनः ।

आक्षमूलफलाहारो द्रादणाद्वं तपश्चर ॥३०

बसिष्ठ उवाच—

इत्युक्तः प्रणिपत्यैर्न मातरं च भूयूद्धः ।

प्रययौ तपसे राजन्नकृतत्रणसंयुतः ॥३१

कृत्वाऽश्रमपदं तस्मिस्तपस्तेपे सुदुश्चरम् ॥३६

त्रतैस्तपोभिनियमैर्देवताराधनैरपि ।

निन्ये वर्षाणि कति चिद्रामरुतस्मिन्महात्मनाः ॥३७

भगवान् श्रीकृष्ण श्रीराधा जी को साथ में लेकर ही पधारे थे । उनके द्वारा पार्वतीजी का अनुभव किया था और पार्वती जगज्जनी ने मुझे वरदान प्रदान किया था । और भगवान् कृष्ण ने हम दोनों की मित्रता कराकर प्रणाम किया था और वहाँ से वे चले गये थे । २६। इसके अनन्तर देवेश्वर पार्वती और परमेश्वर दोनोंको सादर प्रणिपात करके में अकृत व्रण के ही साथ में उनके समीप में उपस्थित हो गया था । ३०। वसिष्ठजी ने कहा—हे भूपते ! इतना ही सम्पूर्ण अपना वृत्तान्त कहकर फिर परशुराम चुप हो गये थे । इसके अनन्तर महामुनि जमदग्नि ने उन शत्रुओं के विनाश कर देने वाले राम से बोले । ३१। जमदग्नि ने कहा—हे राम ! आप तो अब समस्त क्षत्रियों की हत्या से अभिभूत हो गये हैं अर्थात् क्षत्रियों के वक्ष की हत्या आपके ऊपर छायी हुई है । अतएव अब आप उस की हुई हत्या के निवारण करने के लिये यथाविधि प्रायश्चित्त करने के योग्य हैं अर्थात् उसके शोधन के वास्ते शास्त्रोक्त प्रायश्चित्त करना ही चाहिए । ३२। इस तरह से कथन करने वाले अपने पिताजी से मतिमानों में श्रेष्ठ राम ने यह प्रार्थना की थी कि उस विशाल बध के शोधन के योग्य जो भी कोई प्रायश्चित्त हो उसको आप ही मुझे निर्देश करने के लिए परम योग्य हैं । ३३। महामुनीन्द्र जमदग्नि जी ने कहा—बहुत-से व्रतों और नियमों के द्वारा अपने शरीर का कषण करते हुए केवल वन्य शाकों और मूलों का आहार करने वाले होकर बारह वर्षों तक निरन्तर तपश्चर्या का समाचरण करो । ३४। जब इस प्रकार से आत्म-शोधन के लये पिताश्री के द्वारा कहा गया था तो परशुराम जी ने अपने माता-पिता के चरणों में प्रणिपात किया और अकृतव्रण को अपने साथ में लेकर हेराजन् ! वह तपस्या करने के लिये वहाँ से चले गये थे । ३५। वे परशुराम जिन्होंने अपने समस्त शत्रुओं का विनाश करके पूर्णतया कषणकार दिया था वे अब अपने देह को शुद्धि के लिए कषण करने के वास्ते महेन्द्र नामक पर्वत पर गये थे । उस गिरि पर अपना एक आश्रम बनाकर उन्होंने वहाँ पर परम दुश्चर तप किया था । ३६। वहाँ पर राम ने अनेक व्रत-तप-नियम और देवता के समाराधन के द्वारा उस आश्रम में मंहान् मन वाले भार्गव ने कुछ वर्ष व्यतीत कर दिये थे अर्थात् ऐसे ही अनेक साधनों को करके बहुत से वर्ष बिता दिये थे । ३७।

सगरोपाल्यान् (२)

वसिष्ठ उवाच—

ततः कदाचिद्दिपिने चतुरंगबलान्वितः ।

मृगयामगमच्छूरः शूरसेनादिभिः सह ॥१॥

ते प्रविश्य महारण्यं हत्वा बहुविधान्मृगान् ।

जग्मुस्तृष्टात्तर्ता मध्याहने सरितं नर्मदामनु ॥२॥

तत्र स्नात्वा च पीत्वा च वारि नद्या गतश्रमाः ।

गच्छन्तो ददृशुमर्गे जमदग्नेरथाश्रमम् ॥३॥

दृष्ट्वाश्रमपदं रम्यं मुनीनागच्छतः पथिः ।

कस्येदमिति प्रच्छुभाविकर्मप्रचोदिताः ॥४॥

ते प्रोचुरतिणांतात्मा जमदग्नेर्महातपाः ।

वसत्यस्मिन्सुतो यस्य रामः शस्त्रभृतां वरः ॥५॥

तच्छत्वा भीरभूतेषां रामनामानुकीर्तनात् ।

क्रोधं प्रसह्यानृशंस्य पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥६॥

अथ ते प्रोचुरन्योन्यं पितृहंतुवंधात्पितुः ।

वैर निर्यातिनं किं तु करिष्यामो दिशाधुना ॥७॥

श्री वसिष्ठ जी ने कहा—इसके उपरान्त यह हुआ था कि किसी समय में शूर शूरसेन आदि के साथ चतुरज्ञिणी सेना लेकर उसी वन में मृगया (शिकार) के लिये गया था। जिसमें पैदल-अश्व-हाथी और रथ ये सभी चारों साधन होते हैं वही चतुरज्ञिणी सेना कही जाती है । १। उन्होंने उस महान् विशाल अरण्य में प्रवेश करके बहुत-से मृगों का हनन किया था। जब मध्याहन काल हो गया तो वे सब पिपासा बैरंग होकर नर्मदा नदी की ओर पहुँच गये थे । २। वहाँ पर उन्होंने जल मान किया और स्नान किया था और अपने स्त्रम को दूर किया था। जब वहाँ से बैं जा रहे थे तो भृगुवर जमदग्नि मुनि का आश्रम उनने देखा था । ३। वह आश्रम का स्थान बहुत ही सुरम्य था। उसका अवलोकन करके उन्होंने मार्ग में आगमन करते हुए मुनिगणों से पूछा था कि यह किसका ऐसा परम सुन्दर आश्रम है। उस समय में हानहार ऐसा ही था और भविष्य में होने वाले कर्मों से वे प्रेरित

हो गये थे । ४। उन मुनिगणों ने उस नृप से कहा था कि इस आश्रम में अत्यन्त ही प्रशान्त आत्मा वाले और महान् तपस्वी जमदग्नि मुनि निवास किया करते हैं जिनके पुत्र शस्त्र धारियों में परम श्रेष्ठ परशुराम हैं । ५। यह श्रवण करके परशुराम जी के नाम के अनुकीर्तन से पहिले तो सुनने के साथ ही उनके हृदय में बड़ा भारी भय उत्पन्न हो गया था किन्तु फिर क्रीध को सहन करके उनको परशुराम की बड़ी भारी क्रूरता के साथ किये हुए पूर्व वैर का अनुस्मरण हो गया था । ६। इसके अनन्तर उन्होंने एक दूसरे से आपस में कहा था कि इन्होंने तो हमारे पिता का वध किया था तो ऐसे पिता के हनन करने वाले के पिता का अब इस समय में वध करके हम सब इस रीति से अपने वैर का बदला अवश्य निकालेंगे । ७।

इत्युत्तम् वा खड्गहस्तास्ते संप्रविश्य तदाश्रमम् ।

प्रजच्छिन्ने प्रयातेषु मुनिवीरेषु सर्वतः ॥८

तं हृत्वाऽस्य शिरो हृत्वा निषादा इव निर्दयाः ।

प्रययुस्ते दुरात्मानः सबलाः स्वपुरीं प्रति ॥९

पुत्रास्तस्य महात्मानो हृष्ट्वा स्वपितरं हतम् ।

परिवार्य महाराज रुदुः शोककर्षिताः ॥१०

भर्त्तारं निहतं भूमी पतितं वीक्ष्य रेणका ।

पपात मूर्च्छिता सद्यो लतेवाशनिताडिता ॥११

सा स्वचेतसि संमूर्च्छर्च शोकपावकदीपितान् ।

दूरप्रनष्टसंज्ञेव सद्यः प्राणैव्ययुज्यत ॥१२

अनालपंत्यां तस्यां तु संज्ञां याता हि ते पुनः ।

न्यपतन्मूर्च्छिता भूमी निमग्नाः शोकसागरे ॥१३

ततस्तपोधना येऽन्ये तत्तपोवनवासिनः ।

समेत्याश्वासयामासुस्तुल्यदुःखाः सुतान्मुने ॥१४

इतना कहकर वे सब करों में खड्ग लेकर उस आश्रम के अन्दर प्रविष्ट हो गये थे और सभी ओर से गमनागमन करने वाले मुनियों का हनन किया था । ८। फिर उनने जमदग्नि मुनि का हनन कर दिया था और दया से रहित निषादों के ही समान उस जमदग्नि का मस्तक काटकर हरण कर लिया था । वे महान् दुष्ट आत्मा वाले अपनी सेना के सहित

अपनी नगरी की ओर चले गये थे । १। हे महाराज ! उस महामुनि जमदग्नि के जो अन्य पुत्र थे वे परम साधु प्रकृति से सुसम्पन्न महात्मा बाले तापस ही थे जब उन्होंने देखा कि उनके पिता का बड़ी निर्दयता से हृनन कर दिया गया है तो उस मृत पिता ने शव के चारों बैठकर महान शोक से उत्पीड़ित होते हुए रुदन करने लग गये थे । २। अपने प्राणनाथ स्वामी को निहत और भूमि पर पड़े हुए देखकर मुनि पत्नी रेणुका देवी तुरन्त ही भूमि पर पछाड़ खाकर वज्जाघात से गिरी हुई कोमल लता के ही समान मूर्च्छित होकर गिर गयी थी । ३। उसके मन में मूर्च्छा आ गयी थी और उसको अपने देह का अनुसन्धान नहीं रहा था । वह शोक की अग्नि से दीपित हो गयी थी । वह बहुत अधिक संज्ञा से हीन के समान ही होकर तुरन्त ही अपने प्रिय प्राणों से वियुक्त हो गयी थी अर्थात् उसके प्राण पखेउ तुरन्त ही उड़ गए थे । ४। जब उसके पुत्रों ने देखा कि वह कुछ भी नहीं बोल रही है तो फिर उनको होश आया था और अपनी माता का मृत शरीर देखकर वे सभी शोक के अगाध सागर में निमग्न होते हुए मूर्च्छित होकर भूमि में पछाड़ खाकर गिर गये थे । ५। जब ऐसा शोक से वहाँ बड़ा हाहाकार मच गया तो जो अन्य तप के ही धन बाले तपस्त्री गण ये जो कि उसी तपोवन में निवास करने वाले थे हे मुने ! उन सबको भी उन मुनि पति-पत्नियों के वियोग से समान ही दुःख हो रहा था और वे सब वहीं पर इकट्ठे हो गये थे तथा रेणुका के पुत्रों को समाश्वासन दिया था । ६।

सांत्वयमाना मुनिगणेऽग्निदग्न्या यथाविधि ।

आधुक्षुर्वचसा तेषामग्नी पित्रोः कलेवरे ॥ १५ ॥

चक्रुरेव तदूद्धर्वं वै यत्कर्त्तव्यमनन्तरम् ।

पित्रोर्मरणदुःखेन पीडयमाना दिवानिशम् ॥ १६ ॥

तत काले गते रामः समानां द्वादशावधी ।

निवृत्तस्तपसः सख्या सहागादाश्रमं पितुः ॥ १७ ॥

समस्त समागत मुनिगणों के द्वारा अब अच्छी तरह से उन पुत्रों को सान्त्वना दी गयी थी तो जमदग्नि के उत्त मुनियों के कहने से अपने माता-पिता के शवों का कर्मकाण्ड के अनुसार अग्नि में दाह कर दिया था । ७। अस्त्वेऽहुमेऽवलोक्य एव भी करते हैं कोय एवं शिराम कलाप आ आ

सबको भी पूर्णतया सम्पन्न किया था । वे सभी जमदग्नि के आत्मज अपने दोनों ही माता-पिता के मरण के अस्तु दुःख से रात दिन पीड़ित होते हुए रहा करते थे । १६। इसके अनन्तर कुछ काल के व्यतीत हो जाने पर जबकि बारह वर्षों की अवधि पूर्ण हो गयी थी तो अपनी तपश्चर्या से निवृत्त होकर राम अकृत व्रण के साथ अपने पिता थी में आये थे । १७।

क्षत्रिय वंश नाश प्रतिज्ञा

वसिष्ठ उचाच—

स गच्छन्पथि शुश्राव मुनिष्यस्तत्त्वमादितः ।

राजपुत्रव्यवसितं पित्रोः स्वर्गतिमेव च ॥१॥

पितुस्तु जीवहरणं शिरोहरणमेव च ।

तन्मृतेरेव मरणं श्रुत्वा मातुश्च केवलम् ॥२॥

विललाप महाबाहुदुःखशोकसमन्वितः ।

तमथाश्वासयामास तुल्यदुःखोऽकृतव्रणः ॥३॥

हेतुभिः शास्त्रनिदिष्टैर्वीर्यसामर्थ्यसूचकैः ।

युक्तिलौकिकहृष्टान्तेस्तच्छोकं संव्यशामयत् ॥४॥

सांस्त्वितस्तेन मेधावी धृतिमालंव्य भार्गवः ।

प्रययो सहितः सख्या भ्रातृणां तु दिव्यक्षया ॥५॥

स तान् दृष्ट्वाभिवाद्यताम् भार्गवो दुःखकाषितः ।

गोकामर्षयुतस्तेश्च सह तस्थौ दिनश्रयम् ॥६॥

ततोऽस्य सुमहान्कोष्ठः स्मरतो निधनं पितुः ।

बभूव सहसा सर्वलोकसंहरणक्षमः ॥७॥

श्री महामुनीन्द्र वसिष्ठजी ने कहा—परशुराम ने मार्ग में गमन करते हुए मुनि मण्डल से आरम्भ से सब तत्त्व सुन लिया था अर्थात् वहाँ पर किस तरह से सब घटनाएँ हुईं थीं यह श्रवण कर लिया था । उनको यह भी ज्ञात हो गया था कि उन महान् दृष्टि राज पुत्रों ने यह कुचेष्टाएँ की थीं और उनके द्वारा पिता की मृत्यु तथा शोक में माता का देहान्त हो गया है

।१। अपने पिताजी के जीवन का हरण और उनके शिर को काटकर ले जाने का समाचार भी उन्होंने जानकर यह भी उनको ज्ञात हो गया था कि उनकी माताश्री का मरण पिताजी की मृत्यु हो जाने ही से शोकोद्रेक व्रण हो गयी थी ।२। वह महाबाहु को बड़ा भारी शोक और असह्य दुःख हुआ था । इससे वे राम बहुत अधिक विलाप करने लग गये थे । यद्यपि अकृत व्रण को भी परशुराम के ही समान दुःख हुआ था किन्तु फिर भी उसने राम को बहुत कुछ समाश्वासन दिया था ।३। वीर्य की सामर्थ्य के सूचक शास्त्रों में निर्दिष्ट किये गए हेतुओं के द्वारा और युक्तियों से तथा लोक में होने वाले अनेक दृष्टान्तों के द्वारा परशुराम जी के उस महान शोक को अकृत व्रण ने शमित कर दिया था ।४। उस अकृत व्रण के द्वारा सान्त्वना दिए गए परशुराम ने धैर्य का अवलम्बन लिया था क्योंकि वह बहुत अधिक मेघावी थे । इकके अनन्तर परशुरामजी अपने सखा अकृत व्रण के साथ अपने भाइयों के देखने की इच्छा से अपने गृह की ओर चल दिये थे ।५। वहाँ पर भार्गव ने जाकर अभिवादन किया था और इन सबको परम दुःखित देखकर परशुरामजी को भी अत्यधिक दुःख हुआ था । उन सबके साथ में पुनः उस शोक का नवीनीकरण हो गया था और परम शोक में मग्न होकर वह वहाँ तीन दिन तक स्थित रहे थे ।६। इसके अनन्तर अपने पिता श्री के निधन का स्मरण करते हुए उनको महान क्रोध उत्पन्न हो गया था और तुरन्त ही वह सम्पूर्ण लोक के संहार कर देने में समर्थ हो गये थे ।७।

मातुरर्थे कृतां पूर्वं प्रतिजां सत्यसंगरः ।

दृढीचकार हृदये सर्वक्षत्रवधोद्यतः ॥८॥

क्षत्रवंश्यानशेषेण हृत्वा तद्दे हलोहिते ।

करिष्ये तर्पणं पित्रोरिति निश्चत्य भार्गवः ॥९॥

भ्रातृणां चैव सर्वेषामाख्यायात्मसमीहितम् ।

प्रययौ तदनुज्ञातः कृत्वां संस्थां पितुः क्रियाम् ॥१०॥

अकृतव्रणसंयुक्तः प्राप्य माहिष्मतीं ततः ।

तद्वाह्योपवने स्थित्वा सस्मार स महोदरम् ॥११॥

स तस्मै रथचापाद्यं सहसा श्वसमन्वितम् ।

प्रेषयामास रामाय सर्वसंहननानि च ॥१२॥

रामोऽपि रथमारुद्य सन्नद्धः सशरं धनुः ।

गृहीत्वापूरयच्छुखं रुद्रदत्तममित्रजित् ॥१३॥

ज्याघोषं च चकारोच्चरं रोदसी कंपयन्ति ।

सहसाहोथं सारथ्यं चक्रे सारथिनां वरः ॥१४॥

माता रेणुका ने अपने पति के वियोग में विलाप करते हुए इकोस बार अपने वक्षःस्थल को पीटा था अतः परशुरामजी ने उसी समय में यह प्रतिज्ञा की थी कि मेरे पिता को क्षत्रिय जातीय नृप ने निहत किया है इसलिए मैं भी इकीस बार भूमण्डल को संहार करके क्षत्रियों से रहित कर दूँगा—माता के लिए की हुई इस प्रतिज्ञा को सत्यवादी दिया था । वा ने समस्त क्षत्रियों के वध करने के लिये समुद्यत होकर हृदय में सुहृद कर भाग्वेन्द्र ने ऐसा निश्चय कर लिया था कि क्षत्रियों के वंश में समुत्पन्न सबका निहनन करके उनके शरीरों के रुचिर से मैं अपने माता-पिता का तर्पण करूँगा । १५। अपने समस्त भाइयों से यह अपना समीहित सत्य संकल्प कहकर अपने पिताजी की स्थित क्रिया को पूर्ण करके भाइयों की आज्ञा प्राप्त करके परशुराम चले गये थे । १०। फिर अकृतव्रण की साथ मैं लेकर माहिष्मती नगरी में स्थित होकर उन्होंने महोदर (श्रीगणेश जी) का स्मरण किया था । ११। उन्होंने तुरन्त ही राम के लिए रथ-चाप आदि सभी आयुधों तथा अश्वों आदि को भेज दिया था । १२। फिर परशुराम प्रभु भी उस रथ पर समारुढ़ होकर सन्नद्ध हो गये थे और शत्रुओं पर विजय पाने वाले ने शरके सहित धनुष का ग्रहण कर लिया था तथा भगवान् रुद्र के द्वारा प्रदत्त शंख की छवनि करके उससे सम्पूर्ण भाग को पूरित कर दिया था । १३। अपने धनुष की प्रत्यंचा की टंकार से अन्तरिक्ष और भूमण्डल को प्रकम्पित करते हुए बड़ा ही उच्च घोष किया था । सारथियों में परम श्रेष्ठ सहसाह ने उनके रथ का सारथि होने का कार्य ग्रहण किया था । १४।

रथज्याशंखनादेस्तु वधात्पित्रोरमर्षिणः ।

तस्याभून्नगरी सर्वा संकुब्धाश्च नरद्विपाः ॥१५॥

रामं त्वागतमाज्ञाय सर्वेक्षत्रकुलांतकम् ।

संकुब्धाश्चक्रुरुद्योगं संग्रामाय नृपात्मजाः ॥१६॥

अथ पञ्चरथाः शूराः शूरसेनादयो नृप ।

रामेण योदधुं सहिता राजभिश्चक्रुद्यमम् ॥१७

चतुरंगबलोपेतास्ततस्ते क्षत्रियेष्वभाः ।

राममासादयामासुः पतंगा इव पावकम् ॥१८

निवार्यं तानापतितो रथेनेकेन भार्गवः ।

युयुधे पाथिवं सर्वं समरेऽमितविक्रमः ॥१९

ततः पुनरभूद्युद्धं रामस्य सह राजभिः ।

जघान यत्र संक्रुद्धो राजां शतभुदारधीः ॥२०

ततः स सूरसेनादीन्हत्वा सबलवाहनात् ।

क्षणेन पातयामास क्षितो क्षत्रियमंडलम् ॥२१

अपने माता और पिता दोनों के बध हो जाने से परशुरामजी को बड़ा भारी क्रोध हो गया था । जब परम क्रुद्ध भार्गव के रथ प्रत्यञ्चा और शंख के नाद हुए तो इनसे उस नृप की समस्त नगरी और नर तथा द्विप सभी अत्यन्त संक्षुब्ध हो गये थे । १५। उन नृप के पुत्रों ने जब यह समझ लिया था कि सब क्षत्रियों के कुलों का अन्त कर देने वाले परशुराम समागत हो गये हैं तो वे बहुत ही अनुच्छ हुए थे और फिर उन्होंने राम के साथ संग्राम करने के लिए उद्योग किया था । १६। इसके अनन्तर है नृप ! पञ्चरथ शूरसेन प्रभृति शूरों ने अनेक अन्य राजाओं के साथ परशुरामजी युद्ध करने के लिए उद्यम किया था । १७। इसके उपरान्त वे श्रेष्ठ क्षत्रिय अपनी चतुरज्ञी सेनाओं से समन्वित हुए थे और सब राम के पास प्राप्त हो गये थे । जिस तरह पावक पर गिरने वाले पतञ्जों को अग्नि भस्मसात् करके निवारित कर दिया करता है उसी भाँति भार्गवेन्द्र ने अपने एक ही रथ के द्वारा उस पर संस्थित होकर अपने ऊपर चारों ओर से आक्रमण करके आपतन करने वालों को निवारित कर दिया था । अपरिमित बल-विक्रम से सुसम्पन्न राम ने समराज्ञ में उन सभी नृपों के साथ घोर युद्ध किया था । १८-१९। इसके अनन्तर फिर भार्गव का युद्ध राजाओं के साथ हुआ था और उस उदार बुद्धि वाले परशुराम ने उन सी राजाओं का बध कर दिया था । २०। फिर शूरसेन आदि नृपों का सेना और वाहनों के सहित हनन करके एक ही क्षण में उस पूर्ण क्षत्रियों के मण्डल को भूमि पर गिरा दिया था । २१।

ततस्ते भग्नसंकल्पा हृतम्बवलवाहनाः । २१
 हृतशिष्ठा नृपतयो दुद्वुः सर्वतो दिशम् ॥२२
 एवं विद्राव्य सैन्यानि हृत्वा जित्वाथ संयुगे ।
 जघान शतशो राज्ञः शूराञ्छरवराग्निना ॥२३
 ततः क्रोधपरीतात्मा दग्धुकामोऽखिलां पुरीम् ।
 उदैरयद्भार्गवोऽस्त्रं कालाग्निसृष्टशप्रभम् ॥२४
 ज्वालाकवलितशेषपुरप्राकारमालिनीम् ।
 पुरीं सहस्त्यश्वनरां स ददाहास्त्रपावकः ॥२५
 दग्ध्यमानां पुरीं हृष्ट्वा प्राणत्राणपरायणः ।
 जीवनाय जगामाशु वीतिहोत्रो भयातुरः ॥२६
 अस्त्राग्निना पुरीं सर्वां दग्ध्वा हृत्वा च शान्तवान् ।
 प्राणयानोऽखिलान् लोकान् साक्षात्काल इवांतकः ॥२७
 अकृतव्रणसंयुक्तः सहसाहेन चान्वितः ।
 जगाम रथघोषेण कंपयन्निव मेदिनीम् ॥२८

इसके अनन्तर वे समस्त नृप भग्न सङ्कल्प वाले हो गये थे और उनके सैनिक तथा सब वाहन हाथी घोड़े आदि नष्ट हो गये थे । जो भी नृप हनन करने से बच गये थे वे भय से भीत होकर सब दिशाओं की ओर इधर-उधर भाग गये । २२। इस रीति से सम्पूर्ण सेना के सैनिकों को खड़े कर तथा हनन करके भागेन्द्र ने युद्ध में विजय प्राप्त की थी और अपने वाणों की अग्नि के द्वारा सैकड़ों शूर नृपों का वध कर दिया था । २३। फिर महान् क्रोध से भरी हुई आत्मा वाले परशुराम ने उस पुरी को दध करने की इच्छा की थी तथा भार्गव ने कालाग्नि अपने अस्त्र को छोड़ दिया था । २४। उस अस्त्र की अग्नि ने उस नगरो को जिसमें सभी हाथी-घोड़े और मनुष्य थे जला दिया था और वह पुरी अस्त्राग्नि के जल कर ज्वालाओं से उसके पुरप्राकार आदि की माला से कवलित हो गयी थी अर्थात् उस महान् प्रदीप्त अग्नि ने सबको स्वाहा कर दिया था और वहाँ पर कुछ भी शेष नहीं रहा था । २५। उस समस्त पुरी को जलती हुई देखकर अपने प्राणों की रक्षा में तत्पर वीतिहोत्र भय से आतुर होकर वहाँ से जीवन के परित्राण

करने के लिये शीघ्र ही चला गया था । २६। अपनी अस्त्र की अग्नि से उस समूर्ण नगरी को जलाकर तथा सब शत्रुओं का हनन करके उस समय में भागेन्द्र राम समस्त लोकों का विनाश करते हुए साक्षात् अन्त कर देने वाले काल की ही भौति हो गये थे । २७। फिर अकृतव्रण के सहित और सहस्राह से समन्वित होकर अपने रथ के महान् घोष से समूर्ण पृथ्वी को कम्पित करते हुए वहाँ से गये थे । २८।

विनिघ्नन् ऋत्रियान्सर्वादि संशाम्य पृथिवीतले ।

महेन्द्रादि ययौ रामस्तपसे धृतमानसः ॥ २९

तस्मिन्नष्टचतुष्कं च यावत्क्षत्रसमुद्गमम् ।

प्रत्येत्य भूयस्यद्वत्यै बद्धदीक्षो धृतव्रतः ॥ ३०

क्षत्रक्षेत्रेषु भूयश्च क्षत्रमुत्पादितं द्विजैः ।

निजधानं पुनर्भूमौ राज्ञः गतसहस्रणः ॥ ३१

वर्षद्वयेन भूयोऽपि कृत्वा निःक्षत्रियां महीम् ।

षट्चतुष्टयवषन्ति तपस्तेषे पुनश्च सः ॥ ३२

भूयोऽपि राजव संबुद्धं क्षत्रमुत्पादितं द्विजैः ।

जघानं भूमौ निःशेषं साक्षात्काल इवांतकः ॥ ३३

कालेन तावता भूयः समुत्पन्नं नुपात्त्वयम् ।

निघ्नं श्चचार पृथिवीं वर्षद्वयमनारतम् ॥ ३४

अलं रामेण राजेन्द्र स्मरता निघनं पितुः ।

त्रिसप्तकृत्वः पृथिवी तेन निःक्षत्रिया कृता ॥ ३५

इस पृथ्वी तल पर क्षत्रियों का निहनन करते हुए पूर्णतया इस भूमि पर शान्ति स्थापित करके फिर भारवि राम तपश्चर्या करने के लिये मन में निश्चय करके महेन्द्र पर्वत पर वहाँ से चले गये थे । २६। उसमें जितना भी क्षत्रियों का समुद्रय था वारह थे उनके प्रति भी आकर फिर उनके हनन करने के बास्ते व्रत धारण करने वाले परशुराम बद्ध दीक्षा वाले हुए थे । ३०। और द्विजों ने क्षत्रियों के क्षेत्रों में फिर क्षत्रियों का उत्पादन कर दिया था । जब परशुरामजी को क्षत्रियों की उत्पत्ति का ज्ञान हुआ था कि अभी और भी क्षत्रिय समुत्पन्न हो गये हैं तो पुनः उन्होंने सैकड़ों और

सहजों क्षत्रिय नृपों क। भूमि पर हनन कर दिया था । ३१। फिर भी दो वर्षों में इस भूमि को क्षत्रियों का वध करके क्षत्रियों से रहित बना दिया था और फिर दश वर्षों के लम्बे समय तक तपस्या का तपन किया था । ३२। हे राजन् ! जब फिर भी उनको यह ज्ञान हुआ था कि ब्राह्मणों ने क्षत्रियों को अपने तपोबल से समुत्पन्न कर दिया है तो फिर भी उन्होंने साक्षात् विनाश करने वाले काल के ही समान इस भूमण्डल में क्षत्रियों को मार-काटकर समाप्त कर दिया था । ३३। उतने में समय में फिर क्षत्रिय लोग समुत्पन्न हो गये थे तब दो वर्ष पर्यन्त निरन्तर पृथ्वी पर उन सबका हनन करते भार्गवेन्द्र ने किया था । ३४। हे राजेन्द्र ! अपने पिताश्री के क्षत्रियों के द्वारा निधन का स्मरण करते हुए पूर्ण रूप से उन्होंने इक्कीस बार इस भूमि को इसी रीति से क्षत्रियों से रहित कर दिया था । उनकी माता रेणुका ने अपने पति के वियोग के शोक में रुदन करते हुए इक्कीस बार अपने वक्षःस्थल को करों से प्रताढ़ित किया था उतनी ही बार परशुरामजी ने इस भूमण्डल क्षणियों से रहित कर दिया था । ३५।

— X —

॥ वसिष्ठ गमन वर्णन ॥

वसिष्ठ उवाच-

ततो मूढाभिषिक्तानां राजामभिततेजसाम् ।

षट्सहस्रद्वयं रामो जीवयाहं गृहीतवान् ॥१॥

ततो राजसहस्राणि गृहीत्वा मुनिभिः सह ।

स जगाम महातेजाः कुरुशेत्रं तपोमयम् ॥२॥

सरसां पञ्चकं तत्र खानयित्वा भृगुद्रहः ।

मुखावगाहतीर्थानि तानि चक्रे समततः ॥३॥

जघान तत्र वै राजः शरीरप्रभवासृजा ।

सरांसि तानि वै पञ्च पूरयामास भार्गवः ॥४॥

स्नात्वा तेषु यथान्यायं जामदग्न्यः प्रतापवान् ।

पितृन्संतर्पयामास यत्राशास्त्रमतंद्रितः ॥५॥

पितुः प्रेतस्य राजेन्द्र श्राद्धादिकमशेषतः ।

ब्राह्मणैः सह मातुश्च तत्र चक्रे यथोदितम् ॥६

एवं तीर्णप्रतीकः स कुरुक्षेत्रे तपोमये ।

उवासातंद्रितः सम्यक् पितृपूजापरायणः ॥७

श्री वसिष्ठ जी ने कहा—इसके अनन्तर अपरिमित तेज वाले मूर्द्धि-भिषित्त अर्थात् सबं शिरोमणि बारह सहस्र राजाओं का परशुरामजी ने जीवनों का ग्रहण किया था अर्थात् मार गिराया था ।१। इसके अनन्तर एक सहस्र राजाओं को पकड़ कर मुनिगणों के साथ महान् तेजस्वी वे परशुराम जी तपोमय कुरुक्षेत्र में गमन कर गये थे ।२। भृगुद्वह ने वहीं पर पाँच सरोवर खुदवा कर उनको सब और परम सुख का आवाहन करने वाले तीर्थ कर दिया था ।३। वहीं पर उन सहस्र नृपों का हनन किया था और उनके शरीरों से निकले हुए रुधिर से भागवि ने उन पाँचों सरोवरों को भर दिया था ।४। परमाधिक प्रतापी जमदग्नि के पुत्र ने न्यायानुसार उन सरोवरों में स्नान किया था और तन्द्रा से रहित होकर शास्त्रोक्त विधान से अपने पितरों को तृप्ति किया था अर्थात् पितृगणों के लिए तर्पण किया था ।५। हे राजेन्द्र ! वहीं पर परशुरामजी ने जैसा भी शास्त्र में कहा गया है वही ब्राह्मणों के साथ रहकर अपने मृत पिता का और माता का श्राद्ध आदि पूर्ण रूप से सुसम्पन्न किया था ।६। इस रीति से पितृऋण से उत्तीर्ण होने वाले उन्होंने उस तप से परिपूर्ण कुरुक्षेत्र में पितृगणों की अचंना में तत्पर होते हुए अतन्द्रित रहकर भली भाँति निवास किया था ।७।

ततः प्रभृत्यभूद्राजं स्तीर्थनामुत्तमोत्तमम् ।

विहितं जामदग्न्येन कुरुक्षेत्रे तपोवने ॥८

स्थमंतपं चकमिति स्थानं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।

यत्र चक्रे भृगुश्रेष्ठः पितृणां तृप्तिमक्षयाम् ॥९

स्नानदानतपोहोमद्विजभोजनतर्पणैः ।

भृशमाप्यायितास्तेन यत्र ते पितरोऽखिलाः ॥१०

अवापुरक्षयां तृप्ति पितृलोकं च शाश्वतम् ।

स्तुतं तत्काम तीर्थं लोके भास्ति शुतम् ॥११

सर्वपापक्षयकरं महापुण्योपबृंहितम् ।

मत्यनां यत्र यातानामेनांसि निखिलानि तु ॥१२॥

दूरादेवापयास्यंति प्रवाते शुष्कपर्णवत् ।

तत्क्षेत्रचर्चयागमनं मत्यनामसतामिह ॥१३॥

न लभ्यते महाराज जातु जन्मशतैरपि ।

समंतपंचकं तीर्थं कुरुक्षेत्रेऽतिपावनम् ॥१४॥

इसके पश्चात् हे राजन् ! तपश्चर्चया करने के उस बन कुरुक्षेत्र में जमदग्नि के पुत्र के द्वारा किया हुआ वह कुरु क्षेत्रधाम तभी से आरम्भ करके तीर्थों से सबसे परम श्रेष्ठ तीर्थ बन गया था । वह स्थान स्यमन्तक—इस नाम से तीनों लोकों में प्रख्यात हो गया था । क्योंकि वहाँ पर परशुरामजी ने अपने पितृगणों की अक्षय त्रुप्ति की थी । ही वहाँ पर उन्होंने पितरों को बहुत ही अच्छी तरह से स्नान-दान-तप-होम-विप्रों के लिए भोजन और तपेण आदि के द्वारा सन्तुष्ट कर दिया था । १०। और पितृगणों के लोक ने निरन्तर अक्षय त्रुमि प्राप्त की थी । स्यमन्तक नाम वाला तीर्थ लोक से परिश्रुत है । ११। यह तीर्थ समस्त पापों के क्षय का करने वाला है और महान् पुण्य से उपबृहन्ति है । जहाँ पर समागत हुए मनुष्यों के सम्पूर्ण से उपबृहन्ति है । जहाँ पर समागत हुए मनुष्यों के सम्पूर्ण पार दूर से ही बायु में शुष्क पत्रों की ही भाँति उपगत हो जाता करते हैं । मनुष्यों का जो असत् है उनकी चर्चा तथा गमन बड़ी ही कठिनाई से प्राप्त हुआ करता है । यह हे महाराज ! कभी भी सौ में जन्मों भी प्राप्त नहीं करता है । स्यमन्तक पंचक तीर्थ कुरुक्षेत्र में बहुत ही अधिक पावन है । १२-१४।

यत्र स्नातः सर्वतीर्थः स्नातो भवति मानवः ।

कृतकृत्यस्ततो रामः सम्यक् पूर्णमनोरथः ॥१५॥

उवास तत्र नियतः कंचित्कालं महामतिः ।

ततः संवत्सरस्यांते ब्राह्मणः सहितो वशी ॥१६॥

पितृपिङ्गप्रदानाय जामदग्न्योऽगमदग्याम् ।

ततो गत्वा ततः श्राद्धे यथाशास्त्रमर्दिमः ॥१७॥

ब्राह्मणांस्तर्पयामास पितृं नुदिश्य सत्कृतान् ।

शैवं तत्र परं स्थानं चन्द्रपादमिति स्मृतम् ॥ १८

पितृतृप्तिकरं क्षेत्रं ताहग्लोके न विद्यते ।

यत्राचिताः स्वकुलजेर्यथाशक्ति मनागमि ॥ १९

पितरः पिङ्डदानाद्यैः प्राप्स्यन्ति गतिमक्षयाम् ।

पितृं नुदिश्य तत्रासौ तर्पितेषु द्विजातेषु ॥ २०

ददौ च विधिवत्पिंडं पितृभक्तिसमन्वितः ।

ततस्तत्पितरः सर्वे पितृलोकादुपागताः ॥ २१

वह तीर्थ ऐसा महिमामय है कि जहाँ पर स्नान कर लेने वाला मनुष्य संसार के समस्त तीर्थों के स्नान का पुण्य फल प्राप्त कर लेने वाला हो जाता है । इसके अनन्तर राम अपने सब कृत्यों को पूर्ण कर लेने वाले सफल तथा भली भाँति पूर्ण मनोरथों वाले हो गये थे । १५। फिर वे महती मति वाले नियत होकर कुछ काल तक निवासी हो गये थे । फिर सम्बत्सर के अन्त में वशी ब्राह्मणों के सहित पितृगणों के लिए पिण्ठु समर्पित करने के लिये जमदग्नि के पुत्र गया गये थे । वहाँ पर जाकर शत्रुओं के दमन करने वाले ने शास्त्र की पढ़ति के ही अनुसार श्राद्ध किया था । १६-१७। उन्होंने श्राद्ध से अपने पितृगणों का उद्देश्य ग्रहण करके ब्राह्मणों का सत्कार किया था और उनको संतृप्त किया था । उसके आगे शैव स्थान है जो चन्द्रपाद नाम से कहा गया है । १८। पितृगणों की तृप्ति करने वाला उसके समान लोक में अन्य कोई भी क्षेत्र नहीं है । यह ऐसा स्थान है जहाँ पर अपने कुल में समुत्पन्न मानवों के द्वारा शक्ति के अनुसार अत्यल्प रूप से भी अचित हुए पितृगण पिण्ड दानादिक के द्वारा अक्षय गति को प्राप्त कर लेंगे । वहाँ पर पितृगणों का उद्देश्य लेकर द्विजातियों को तृप्ति किया था । जब वे पूर्णतया तृप्त हो गये थे तो पितृगण के प्रति भक्तिभाव से समन्वित होकर विधि पूर्वक पिण्डदान दिया था । इसके अनन्तर सभी पितृलोक से वहाँ पर उपागत हो गये थे । १९-२१।

जुगृहुस्तत्कृतां पूजां जमदग्निपुरोगमाः ।

अथ संप्रीतमनसः समेत्य भृगुनन्दनम् ॥ २२

ऊचुस्तत्पितरः सर्वेऽहश्या भूत्वांतरिक्षगाः ।

पितर ऊचु :-

महत्कर्म कृतं वीर भवतान्यैः सुदुष्करम् ॥२३

अस्मानपि यथान्यायं सम्यक् तपितवानसि ।

अस्माकमक्षयां प्रीति तथापि त्वं न यच्छसि ॥२४

क्षत्रहत्यां हि कृत्वा तु कृतकर्मभिवद्यतः ।

ओत्रस्यास्य प्रभावेण भक्त्या च तव दर्शनम् ॥२५

प्राप्ताः स्म पूजिताः किं तु नाक्षय्यफलभागिनः ।

तस्मात्त्वं वीरहत्यादिपापप्रशमनाय हि ॥२६

प्रायश्चित्तं यथान्यायं कुरु धर्मं च शाश्वतम् ।

वधाच्च विनिवर्तस्व क्षत्रियाणामतः परम् ॥२७

पितुन्नं तेऽपराध्यंते न स्वतंत्रं यतो जगत् ।

तन्निमित्तं तु मरणं पितुस्ते विहितं पुरा ॥२८

जमदग्नि जिनमें आग्रगामी थे ऐसे उन सब पितृगणों ने वहाँ पर आकर उसके द्वारा की गयी पूजा का ग्रहण किया था और वे सब भृगुनन्दन पर बहुत अधिक प्रसन्न मन बाले हो गये थे । २२। उन समस्त पितृगणों ने आकाश में स्थित होते हुए अदृश्य होकर ही उससे कहा था । पितृगण ने कहा—हे वीर ! तुमने बहुत ही बड़ा कार्य किया है जो कि अन्य जनों के द्वारा कभी भी नहीं हो सकता है अर्थात् महान् कठिन है । २३। आपने न्याय पूर्वक बहुत ही अच्छी तरह से सन्तुष्ट किया है तो भी हमारी कभी क्षीण न होने वाली प्रीति तुमने हमको नहीं दी है । २४। कारण यह है कि आपने समस्त क्षत्रियों की हत्या करके ही आप कर्म करने वाले हुए हैं । यह तो इस क्षेत्र का ही प्रभाव है कि हमने आपको दर्शन दिया है तथा भक्ति भी इसका एक कारण है । २५। हम लोग यहाँ पर पूजित तो अवश्य हुए हैं किन्तु किर भी अक्षय फल के भागी नहीं हुए हैं । इस कारण से आपको उस महान् पाप के निवारण करने के लिये कुछ अवश्य ही कुछ करना ही होगा जो कि बड़े-बड़े वीरों की हत्या के प्रशमन के लिये होना चाहिए । २६। अब आपका कर्त्तव्य है कि न्याय के अनुरूप इसका प्रायश्चित्त करो और निरन्तर रहने वाला धर्म का कर्म करो । तथा इससे आगे भविष्य में क्षत्रियों के वध करने के कार्य से दूर हो जाओ । अर्थात् क्षत्रियों की हत्या

करना बन्द कर दो । २७। इन विचारों के द्वारा तुम्हारे पिता का कोई भी अपराध नहीं किया गया है क्योंकि यह जगत् स्वतन्त्र नहीं हैं अथवा जगत् के प्राणी स्वेच्छा से ही कर्मों के करने में कभी भी स्वतन्त्र नहीं हुआ करते हैं । पहले आपके पिता का जो मरण हुआ है उसके यह कोई भी निमित्त नहीं है क्योंकि स्वाधीनता किसी में भी कर्मों के करने की हुआ ही नहीं करती है । २८।

हंतुं कं कः समर्थः स्याल्लोके रक्षितुमेव वा ।

निमित्तमात्रमेवेह सर्वः सर्वस्य चैतयोः ॥२९॥

ध्रुवं कर्मानुरूपं ते चेष्टते सर्वं एव हि ।

कालानुवृत्तं बलवान्नृलोको नात्र संशयः ॥३०॥

बाधितुं भुवि भूतानि भूतानां न विधि विना ।

शक्यते वत्स सर्वोऽपि यतः शक्त्या स्वकर्मकृत् ॥३१॥

क्षत्रं प्रति ततो रोषं विमुच्यास्मत्प्रियेष्यथा ।

शममाप्नुहि भद्रं ते स ह्यस्माकं परं बलम् ॥३२॥

वसिष्ठ उवाच—

इत्युक्त्वांतर्दंधुः सर्वे पितरो भृगुनन्दनम् ।

स चापि तद्वचः सर्वं प्रतिजग्राह सादरम् ॥३३॥

अकृतवरणसंयुक्तो मुदा परमया युतः ।

प्रययो च तदा रामस्तस्मात्सद्वनाश्रमम् ॥३४॥

तस्मिन्स्थित्वा भृगुश्रेष्ठो ब्राह्मणः सहितो नृप ।

तपसे धृतसंकल्पो बभूव स महामनाः ॥३५॥

इस लोक में कौन है जो किसी का हनन या रक्षण करने की सामर्थ्य रखता है । तात्पर्य यही है कि किसी में भी किसी के मारने या रक्षा करने की शक्ति नहीं है । मरण और संरक्षण इन दोनों के विषय में सभी केवल इस लोक में एक निमित्त ही हुआ करते हैं और वस्तुतः स्वयं कोई भी कुछ करने वाला नहीं होता है । २९। जो भी कोई यहाँ पर किया करते हैं वे सभी यह निश्चय है कि अपने पूर्व कुत कर्मों के ही अनुसार चेष्टा किया करते हैं । तामाम यही है कि जैसा भी निमित्त कर्म ऐसे में किए हुए होता

है वही करने के लिए सबको यहाँ पर विवश होना हो पड़ता है । यहाँ पर मानवगण काल के ही अनुसार चला करते हैं । यह निस्सन्देह सत्य है कि नृलोक बलवान् है । ३०। इस भूमण्डल में कोई भी है वत्स ! विधि के बिना प्राणियों को कोई बाधा पहुँचा कर शक्ति के द्वारा सामर्थ्य नहीं रखा करता है कारण यही है कि यहाँ पर सभी अपने कृत कर्मों के अनुसार ही सब किया करते हैं । तात्पर्य यही है कि कर्म ही बड़ा बलवान् है जिसके बशीभूत होकर प्राणी कायं करने को प्रेरित होता है । ३१। आपने जो क्षत्रियों के वध करने का क्रोध किया है उसको अब त्याग दो यदि आपके मन में हमारे प्रिय करने की अभिलाषा है । अब आप शम को ग्रहण करो । इस भूमण्डल में इसी शम से आपका श्रेय होगा । यह शम तो हमारा बड़ा भारी बल है । ३२। वसिष्ठजी ने कहा—उन भृगुनन्दन जी से इतना ही कहकर सब पितृ-गण अन्तहित हो गये थे । फिर उन परशुरामजी ने भी बहुत ही आदर के साथ उनके उस वचन का ग्रहण किया था । ३३। अकृतव्यण को अपने साथ में लेकर परमाधिक प्रसन्नता से संयुत होकर उसी समय में परशुराम वहाँ से सिद्धों के बन में स्थित आश्रम को चले गये थे । ३४। महान् विशाल मन वाले राम उस आश्रम में समवस्थित होकर जहाँ कि बहुत से ब्राह्मण भी उनके साथ में थे हे नृप ! फिर वे तप करने के लिए मन में सञ्चल्प धारण करने वाले हो गये थे । ३५।

सरथं सहसाहं च धनुः संहननानि च ।

पुनरागमसंकेतं कृत्वा प्रास्थापयत्तदा ॥३६॥

ततः स सर्वतीर्थेषु चक्रे स्नानमतंद्रितः ।

परीत्य पृथिवीं सर्वां पितृदेवादिपूजकः ॥३७॥

एवं क्रमेण पृथिवीं त्रिवारं भृगुनन्दनः ।

परिचक्राम राजेन्द्र लोकवृत्तमनुव्रतः ॥३८॥

ततः स पर्वतश्रेष्ठं महेन्द्रं पुनरप्यथ ।

जगाम तपसे राजन्नाह्यणैरभिसंवृतः ॥३९॥

स तस्मिश्चररात्राय मुनिसिद्धनिषेविते ।

निवासमात्मनो राजन्कल्पयामास धर्मवित् ॥४०॥

मुनयस्तं तपस्यंतं सर्वथेत्रनिवासिनः ।

द्रष्टुकामा समाजमुनियता ब्रह्मवादिनः ॥ ४१

ददृशुस्ते मुनिगणास्तपस्यासक्तमानसम् ।

क्षात्रं कक्षमेषेण दग्धवा शांतमिवानलम् ॥ ४२

उस समय में परशुरामजी ने रथ के सहित सहस्राह को और धनुष तथा समस्त आयुधों को पुनः आवश्यकता पड़ने पर आगमन का संकेत करके वहाँ से प्रस्थापित कर दिया था । ३६। इसके पश्चात् उन्होंने सभी तीर्थों में अतन्द्रित होकर स्नान किया था और पितृगण तथा देवों का पूजन रीति से हे राजेन्द्र ! भृगुनन्दन ने लोक व्रत का अनुवत्तन करते हुए तीन बार सम्पूर्ण पृथ्वी का परिक्रमण किया था । ३८। हे राजन् ! इसके अनन्तर उन्होंने त्राह्णों से अभिसंवृत होकर फिर तपस्या करने के लिए महेन्द्र पर्वत पर जो कि पर्वतोंमें परमश्रेष्ठ था आगमन किया था । ३९। हे राजन् ! धर्म के ज्ञाता उन्होंने मुनिगण और सिद्ध-समुदायों के द्वारा सेवित उस पर्वत पर अधिक समय तक अपने निवास करने का विचार कर लिया था । ४०। फिर वहाँ पर समस्त ऐत्रों के निवासी नियत और ब्रह्मवादी मुनियों ने तपश्चर्या करने वाले उन भागवेन्द्र के दर्शन करने की कामना रखकर वहाँ पर समागमन किया था । ४१। उन मुनिगणों ने तपश्चर्या में समाप्त उनका पूर्ण रूप से क्षत्रियों के कक्ष को दग्ध करके परम शान्त अग्नि की भाँति दर्शन किया था । ४२।

अथ तानागतान्वष्टवा मुनीन्द्रिव्यास्तपोमयान् ।

अध्यादिसमुदाचारैः पूजयामास भाग्वतः ॥ ४३

कृतकौशलसंप्रश्नपूर्वकाः सुमहोदयाः ।

तेषां तस्य च संवृत्ताः कथाः पुण्या मनोहराः ॥ ४४

ततस्तेषामनुमते मुनीनां भावितात्मनाम् ।

हयमेधं महायजमाहतुं मुपचक्रमे ॥ ४५

संभूत्य सर्वसंभारानौवर्द्यैः सहितो नूप ।

विश्वामित्रभरद्वाजमाकडियादिभिस्तथा ॥ ४६

तेषामनुमते कृत्वा काश्यपं गुरुमात्मनः ।

वाजिमेधं ततो राजन्नाजहार महाकतुम् ॥ ४७

तस्याभूत्काशयपोऽध्वर्युरुद्दगाता गौतमो मुनिः ।
 विश्वामित्रोऽभवद्वोता रामस्य विदितात्मनः ॥४५
 ब्रह्मत्वमकरोत्स्य मार्कण्डेयो महामुनिः ।
 भरद्वाजाग्निवेश्याद्या वेदवेदांगपारगः ॥४६

भार्गवेन्द्र मुनि ने जिस समय में उन समस्त परम दिव्य तप से परिपूर्ण मुनियों को वहाँ पर समागत हुए देखा था तो उन्होंने अर्घ्य आदि सब उपचारों के द्वारा सहजं उनका अचंत किया था । ४३। उन समस्त महोदयों ने सर्वं प्रथम तो क्षेम-कुशल का प्रश्नोत्तर किया था फिर उन सबकी और भार्गवेन्द्र की परस्पर में परम पुण्यमय मनोहर कथाएँ हुई थीं । ४४। इसको उपरान्त भावित आत्मा वाले उन्हें मुनियों की अनुमति से भृगुनन्दन ने महायज्ञ के आहरण करने का उपक्रम दिया था । ४५। इसके अनन्तर हे नृप ! और्वादि तथा विश्वामित्र—भरद्वाज और मार्कण्डेय आदि के सहित यज्ञ के उपयुक्त समस्त संभारों का संग्रह किया गया था । ४६। फिर उन्हीं सबकी अनुमति हो जाने पर भृगुनन्दन ने काश्यप को अपना गुरु बनाकर हे राजन् ! फिर वाजिमेध महान ऋतु का समाहरण किया था । ४७। विदित आत्मा वाले भृगुनन्दन के गुरु तो काश्यप हुए थे और उद्दगाता गौतम मुनि हुए थे और उस यज्ञ में विश्वामित्र ऋषि होता हुए थे । ४८। महामुनि मार्कण्डेय ने वहाँ पर ब्रह्मा के पद को ग्रहण किया था । भरद्वाज-अग्निवेश्य आदि जो भी वेदों तथा वेदों के अङ्ग शास्त्रों के पारगामी प्रकाण्ड पण्डित थे । ४९।

मुनयश्चक्रुरन्यानि कर्मण्यन्ये यथाक्रमम् ।

पुत्रैः शिष्यैः प्रशिष्यैश्च सहितो भगवान्भृगुः ॥५०

सादस्यमकरोद्राजन्नन्यैश्च मुनिभिः सह ।

स तैः सहाखिलं कर्म समाप्य भृगुपुरगवः ॥५१

ब्रह्माणं पूजयामास यथावद्गुरुणा सह ।

अलंकृत्य यथान्यायं कन्यां रूपवतीं महीम् ॥५२

पुरनामशतोपेतां समुद्रांबरमालिनीम् ।

आहूय भृगुशार्दूलः सशैलवनकाननाम् ॥५३

काश्यपाय ददो सवमृते तं शैलमुत्तमम् ।

आत्मनः सन्निवासार्थं तं रामः पर्यकल्पयत् ॥५४

ततः प्रभृति राजेन्द्रं पूजयामास ग्रास्त्रतः ।

हिरण्यरत्नवस्त्राश्वगोगजान्नादिभिस्तथा ॥५५

पुरा समाप्य यज्ञांते तथा चावभृथाप्लुतः ।

चक्रे द्रव्यपरित्यागं तेषामनुमते तदा ॥५६

इन समस्त मुनियों ने तथा अन्यों ने क्रम के अनुसार अन्यान्य जो भी कर्म उस यज्ञशाला में थे उनको किया था । उस यज्ञ में भगवान् भृगु भी अपने पुत्रों-शिष्यों और प्रशिष्यों के सहित पधारे थे । उन्होंने अन्यान्य मुनियों के साथ हे राजन् ! यज्ञ की सदस्यता की यी अर्थात् सब सदस्य बन गये थे और उन सबके साथ मिलकर भृगुपुज्ज्व परशुरामजी ने उस सम्पूर्ण कर्म को सुसम्पन्न किया था । ५०-५१। जब सम्पूर्ण कर्म समाप्त हो गया था यथा रीति अपने गुरुदेव के ही साथ ब्रह्माजी का पूजन किया था । फिर रूप लावण्य वाली मही कन्या को महामूल्यवान् आभूषणों से समलंकृत किया था । ५२। फिर उस मही कन्या को जो सहस्रों पुरों और ग्रामों से समन्वित एवं सागरों और अम्बर की माला वाली थी तथा उसमें अनेकों शैल-बन और कानन थी थे । उन मुनि शार्दूल ने उसको अपने समीप में बुला लिया था । ५३। फिर सम्पूर्ण उसको काश्यप मुनि को दे दिया था केवल उस उत्तम महेन्द्र पर्वत को नहीं दिया था जिस पर वे स्वयं निवास किया करते थे क्यों कि परशुरामजी ने उस पर्वत को अपने ही निवास करने के लिए कल्पित कर लिया था । ५४। तभी से लेकर हे राजेन्द्र ! शास्त्रानुसार सुवर्ण-रत्न-वस्त्र-अश्व-गौ-गज आदि के द्वारा उसका पूजन किया था । पहिले इस सब कर्म को समाप्त करके फिर यज्ञ के अवसान समय में वे यज्ञान्त अवभृथ स्नान से आप्लुत हुए थे और उसी अवसर पर उन समस्त महा मुनियों के अनुमति से फिर द्रव्य का परित्याग कर दिया था । ५५-५६।

दत्त्वा च सर्वभूतानामभयं भृगुनन्दनः ।

तत्रापि पर्वतवरे तपश्चर्तुं समारभत् ॥५७

ततस्तं समनुज्ञाय सदस्या ऋत्विजस्तथा ।

यगुर्यथागतं मर्त्यं मुनय रांसित्रपता ॥५८

गतेषु तेषु भगवानकृतव्रणसंयुतः । ४६
 तपो महत्समास्थाय तत्रैव न्यवसत्सुखी ॥४६
 काश्यपी तु ततो भूमिर्जननाथा ह्यनेकणः ।
 सर्वदुःखप्रशांत्यर्थं मारीचानुमतेन तु ॥६०
 तत्र दीपप्रतिष्ठाख्यव्रतं विष्णुमुखोदितम् ।
 चचार धरणीं सम्यक् दुखेऽमुक्ताऽभवत्त्वं सा ॥६१
 इत्येष जामदग्न्यस्य प्रादुर्भवि उदाहृतः ।
 यस्मिन्श्रुते नरः सर्वपातकंविप्रमुच्यते ॥६२
 प्रभावः कार्त्तवीर्यस्य लोके प्रथिततेजसः ।
 प्रसंगात्कथितः सम्यड्नातिसंक्षेपविस्तरः ॥६३

इसके पश्चात् भृगुनन्दन ने समस्त प्राणियों के लिए अभय का दान दे दिया था और वहाँ ही उस पर्वत पर तपस्या करने का आरम्भ कर दिया था ।५७। इसके अनन्तर जो भी यज्ञ में समागत सदस्य तथा ऋत्विज ये उन्होंने एवं शंसित व्रतों वाले मुनियों ने सभी ने जैसे-जैसे जहाँ से वहाँ आगमन किया वैसे ही विदा होकर चले गये थे ।५८। उन सबके चले जाने पर भगवान ने अकृतव्रण से संयुत होकर महान् तप में समाप्तिवृत्त होकर मुख से सभ्यक्ष उसी स्थान पर निवास किया करते थे ।५९। इसके पश्चात् जानना था काश्यपी भूमि ने अनेक प्रकार के समस्त दुःखों की प्रशान्ति के लिए मारीच की अनुमति से एक व्रत किया था ।६०। वहाँ पर दीप प्रतिष्ठा नाम वाला व्रत जो कि भगवान् विष्णु के मुख से कहा गया था उसको धरणी ने भली भाँति किया था और फिर समस्त दुःखों से मुक्त हो गयी थी ।६१। वह भगवान् जामदग्न्य का प्रादुर्भवि सब बता दिया गया है जिसके अवण करने पर मनुष्य समस्त पातकों से मुक्त हो जाया करता है ।६२। अपरिमित तेज वाले कार्त्तवीर्य का लोक में जो प्रबल प्रभाव था वह भी प्रसङ्ग से दिया गया था जो न तो अति संक्षिप्त था और न विशेष विस्तृत ही था ।६३।

एवंप्रभावः स तृपः कार्त्तवीर्योऽभवद्भुवि ।

न तात्त्वः पुमान्कश्चद्भावी भूतोऽथवा श्रुतः ॥६४

दत्तात्रेयाद्वरं वत्रे मृतिमुतमपूरुषात् । ॥६४
 यत्पुरा सोऽगमन्मुक्ति रणे रामेण घातितः ॥६५
 तस्यासीत्पञ्चमः पुत्रः प्रख्यातो यो जयध्वजः ।
 पुत्रस्तस्य महाबाहुस्तालजंघोऽभवन्नृप ॥६६
 अभूतस्यापि पुत्राणां शतमुत्तमधन्त्विनाम् ।
 तालजंघाभिधा येषां वीतिहोत्रोऽग्रजोऽभवत् ॥६७
 पुत्रैः सवीतिहोत्राद्यै हैहयाद्यै श्र राजभिः ।
 कालं महांतमवसद्विमाद्रिवनगट्वरे ॥६८
 यः पूर्वं रामबाणेन द्रवन्पृष्ठेऽभिताङ्गितः ।
 तालजंघोऽपतदभूमौ मूर्छितो गाढवेदनः ॥६९
 ददर्श वीतिहोत्रस्तं द्रवन्द्रेववशादिव ।
 रथमारोप्य वेगेन पलायनपरोऽभवत् ॥७०

वह नृप कार्त्तवीर्य इस भूमण्डल में इस प्रकार के प्रभाव वाला हुआ था कि उस प्रकार का कोई भी पुरुष न कभी हुआ और न भविष्य में भी होगा तथा न कभी सुना ही गया है । ६४। उसने दत्तात्रेय मुनीन्द्र से यह वरदान प्राप्त किया था कि उसकी मृत्यु किसी महान उत्तम पुरुष से होवे । रण से वह परशुरामजी के द्वारा निहत होकर पहिले मुक्ति को प्राप्त हो गया था । ६५। उस राजा का पाँचवां पुत्र प्रख्यात था जिसका नाम जयध्वज था । हे नृप ! उसका पुत्र महाबाहु तालजंघ हुआ था । ६६। उसके भी उत्तम धनुधरी सी पुत्र हुए थे । उन सबके नाम तालजंघ था उनमें वीतिहोत्र सबमें बड़ा भाई था । ६७। वह वीतिहोत्र प्रभृति पुत्रों के तथा हैहय वंशश नृपों के सहित उस हिमाद्रि पर्वत के बन गट्वर में बहुत लम्बे समय तक उसने निवास किया था । ६८। जो पहिले राम के बाण के द्वारा भागता हुआ भी पृष्ठ भाग में प्रताङ्गित हो गया था । फिर वह तालजंघ गहरी वेदना से युक्त होकर मूर्छितों को प्राप्त हो गया था और भूमि पर गिर गया था । ६९। भाग्यवश उसको भागते हुए वीतिहोत्र ने देखा था । बड़े ही वेग से उसको रथ पर समारोपित करके वह भाग जाने में तत्पर हो गया था । ७०।

ते तत्र न्यवसन्सर्वे हिमाद्री भयपीडिताः ।

कृच्छ्र महांतमासाद्य शाकमूलफलाशनः ॥७१

ततः शांति गते रामे तपस्यासत्तमानसे ।

तालजंघः स्वकं रांज्यं सपुत्रः प्रत्यपद्यत ॥७२

सन्निवेश्य पुरीं भूयः पूर्ववन्नृपसत्तमः ।

वसंस्तदा निजं राज्यमपालयदर्दिदमः ॥७३

सुपुत्रः सानुगबलः पूर्ववैरमनुस्मरन् ।

अभ्याययौ महाराज तालजंघः पुरं तव ॥७४

चतुरंगबलोपेतः कंपयन्निव मेदिनीम् ।

रुरोदाभ्येत्य नगरीमयोध्यां स महीपतिः ॥७५

ततो निष्क्रम्य नगरात्कल्पुत्रोऽपि ते पिता ।

युयुधे तेनृपैः सर्वेवं द्वोऽपि तरुणो यथा ॥७६

निहतानेकमातं गतुरंगरथसैनिकः ।

शत्रुभिन्निजितो वृद्धः पलायनपरोऽभवत ॥७७

वे सभी भागते हुए आकर भय से बहुत पीड़ित हो गये थे और हिमाद्रि पर्वत में बस गये थे । उन सबको महान कष्ट प्राप्त हुआ था और वहाँ पर वे सब शाक-मूल और फलों का अशन करने वाले हुए थे । ७१। जब वहाँ पर परशुराम परत शान्ति को प्राप्त हो जाने पर केवल तपस्या में ही आसत्त मन वाले हो गये थे और फिर उनका कोई भी भय नहीं रहा था तो तालजङ्घ ने अपने पुत्रों के सहित अपना राज्य कर लिया था । ७२। उस श्रेष्ठ राजा ने फिर पूर्व की ही भाँति अपनी नगरी को सन्निवेशित करके उस समय में वहीं पर निवास करते हुए उस अरिन्दम ने अपने राज्य का परिपालन किया था । ७३। हे महाराज ! सुन्दर पुत्र वाले और अपने अनुचरों तथा सेना से युक्त होकर उस तालजङ्घ ने पूर्व वैर का अनुस्मर करके वह तालजङ्घ आपके पुर में अभ्यागत हो गया था । ७४। वह चतुरज्ञिणी सेना से संयुत होकर भूमि को कंपाता हुआ जैसे हो चला था । जब वह अयोध्या नगरी में पहुँचा तो वह राजा रोने लग गया था । ७५। इसके पश्चात् आपके पिता के पास बहुत कम साधन थे तो भी वह नगर से निकल

आये थे और उन समस्त नृपों के साथ वृद्ध होते हुए भी तरुण पुरुष के ही समान उसने घोर युद्ध किया था । ७६। उसके बहुत से हाथी-अश्व-रथ और सेनिक जंब निहत हो गये थे तो वह शत्रुओं के द्वारा निजित हो गया था और फिर वह वृद्ध वहां से भागने लग गया । ७७।

त्यक्त्वा स नगरं राज्यं सकोशब्लवाहनम् ।

अंतर्वर्त्त्या च ते मात्रा सहितो वनमाविशत् ॥ ७८ ॥

तत्र चौवश्रिमोपाते निवसन्नचिरादिव ।

शोकामर्षसमाविष्टो वृद्धभावेन च स्वयम् ॥ ७९ ॥

विलोक्यमानो मात्रा ते वाष्पगत्गदकंठया ।

अनाथ इव राजेन्द्र स्वर्गलोकमितो गतः ॥ ८० ॥

ततस्ते जननी राजन्दुःखशोकसमन्विता ।

चितामारोपयद्भर्तु रुदती सा कलेवरम् ॥ ८१ ॥

अनशनादिदुःखेन भर्तुव्यंसनकशिता ।

चकाराग्निप्रवेणाय सुहृदां मतिमात्मनः ॥ ८२ ॥

और्वरुतदखिलं श्रुत्वा स्वयमेव महामुनि ।

निर्गत्य चाश्रमात्मां च वारयन्निदमव्रवीत् ॥ ८३ ॥

न मर्त्तव्यं त्वया राजि सांप्रतं जठरे तव ।

पुत्रस्तिष्ठति सर्वेषां प्रवरञ्चकवर्त्तिनाम् ॥ ८४ ॥

उस वृद्ध नृप ने अपना सम्पूर्ण राज्य-नगर-कोष-बल समस्त वाहनों को छोड़कर गर्भवती तुम्हारी माता को साथ में लेकर वन में प्रवेश कर कर लिया था । ७८। वहाँ वन में और्व मुनि के आश्रम के समीप में अल्प समय तक ही उसने निवास किया था और वह स्वयं वृद्धता के कारण से बहुत ही अधिक शोक तथा अमर्ष से समाविष्ट हो गया था । तुम्हारी माता उसको देख रही थी और उसके नेत्रों से अश्रुपात हो रहा था । उसका कण्ठ गदगद हो गया था । हे राजेन्द्र ! वह वृद्ध नृप एक अनाथ के ही समान यहाँ से स्वर्गलोक में चल वसा था । ७९-८०। इसके अनन्तर हे राजन् ! तुम्हारी माता विचारी पति वियोग के महा दुःख और शोक से समन्वित हो गयी थी । फिर करुण कदम्बी हुई उसने स्वामी के मृत गणित के निता

पर समारोपित कर दिया था । ८१। पति के मृत हो जाने पर उसने कुछ भी खाया नहीं था—शोक हृदय में बैठा ही था—ऐसे दुःखों से अपने स्वामी से वियोग के दुःख से वह बहुत कष्टित हो गयी थी । अतः उसने भी अपने आपको भी अग्नि में पति के ही शव के साथ प्रवेश कर सती हो जाने का सुहृद निश्चय कर लिया था । ८२। और महामुनि ने यह सम्पूर्ण समाचार सुना तो वे महामुनि स्वयं ही अपने आश्रम से बाहिर निकलकर आ गये थे और उससे यह बचन कहा था । ८३। हे राजि ! तुमको इस समय में पति के साथ प्राणत्याग नहीं करना चाहिए कारण यह है कि तुम्हारे उदर में पुत्र स्थित है जो कि समस्त चक्रवर्तियों में परम श्रेष्ठ होगा । ८४।

इति तद्वचनं श्रुत्वा माता तव मनस्त्वनी ।

विरराम मृतेस्तां तु मुनिः स्वाश्रममानयत् ।

ततः सा सर्वदुःखानि नियम्य त्वन्मुखांबुजम् ॥८५॥

दिव्यक्षुराश्रमोपांते तस्यैव न्यवसत्सुखम् ।

सुषाव च ततः काले सा त्वामौर्वाश्रिमे तदा ॥८६॥

जातकर्मादिकं सर्वं भवतः सोऽकरोन्मुनिः ।

औरश्रिमे विवृद्धश्च भवांस्तेनानुकंपितः ॥८७॥

त्वयैव विदितं सर्वमतः परमरिदम् ।

एवं प्रभावो नृपतिः कार्त्त्वीर्योऽभवद्भुवि ॥८८॥

व्रतस्यास्य प्रभावेण सर्वलोकेषु विश्रुतः ।

यद्वंशजीर्जितो युद्धे पिता ते वनमाविश्वत् ॥८९॥

तद्वृत्तांतमशेषेण मया ते समुदीरितम् ।

एतच्च सर्वमाख्यातं व्रतानामुत्तमं तव ॥९०॥

समन्वतन्त्रं लोकेषु सर्वलोकफलप्रदम् ।

न ह्यस्य कत्तुं न् पतेः पुरुषार्थं चतुष्टये ॥९१॥

तुम्हारी मनस्त्वनी माता ने इस उस मुनि के बचन का श्रवण किया था तो फिर वह सती होकर दग्ध होने से कायं से विरत हो गयी थी और फिर उसको वह मुनि अपने आश्रम में ले आये थे । इसके पश्चात् उसने सब दुःखों की ओर से अपने मन को नियमित कर लिया था तथा उस गर्भस्थ

अपने बालक के मुख कमल की देखने की इच्छा वाली होकर उसी आश्रम के समीप में सुख पूर्वक निवास कर रही थी । ६५। जब प्रसव काल उपस्थित हुआ तो उसने उसी औरंग मुनि के आश्रम में प्रसव किया था । ६६। उसी मुनि ने आपका समस्त जातकर्म आदि संस्कार किया था और आप उसी मुनि की कृपा के भाजन होते हुए और्वाश्रिय में ही पालित होकर बड़े हुए हैं । ६७। हे अरिन्दम ! इसके पश्चात् जो भी कुछ हुआ है वह आपको सब जात ही है । इस प्रकार के प्रभाव वाला राजा कार्त्तवीर्य इस भूमण्डल पर हुआ था । ६८। इसी व्रत के प्रभाव से वह लोकों में प्रखण्डत हुआ है । जिसके बंश में समुपत्न होने वालों के द्वारा आपके पिता को युद्ध में जीत लिया गया है और वन में चले गये थे । ६९। उसका सम्पूर्ण वृत्तान्त मैंने आपको कहकर सुना दिया है और यह सब व्रतों में उत्तम व्रत मैंने आपको बतला दिया है । ७०। यह ऐसा व्रत है कि लोकों में मन्त्रों और तन्त्रों के सहित सब ही लौकिक फल को प्रदान कर देने वाला है । जो इस व्रत को राजा किया करता है उसको चारों (धर्म-अर्थ—काम—मोक्ष) पुरुषार्थों की प्राप्ति हो जाया करती है । ७१।

भवत्यभीप्सितं किञ्चिदुल्लभं भ्रुवनत्रये ।

संक्षेपेण मयाख्यातं व्रतं हैहयभूमुजः ।

जामदग्न्यस्य च मुने किमन्यत्कथयामि ते ॥६२

जीमिनिरुद्वाच—

ततः स सगरो राजा कृतांजलिपुटो मुनिम् ॥६३

उवाच भगवन्नेतत्कर्तुं मिच्छाम्यहं व्रतम् ।

सम्यक्तमुपदेशेन तत्रानुजां प्रयच्छ मे ॥६४

कर्मणानेन विप्रर्थे कृतार्थोऽस्मि न संशयः ।

इत्युक्तस्तेन राजा तु तथेत्युक्त्वा महामुनिः ॥६५

दीक्षयामास राजानं शास्त्रोक्तेनैव वर्तमना ।

स दीक्षितो वसिष्ठेन सगरो राजसत्तमः ॥६६

द्रव्याण्यानीय विधिवत्प्रचार शुभव्रतम् ।

पूजयित्वा जगन्नाथं विधिना तेन पाठिवः ॥६७

समाप्य च यथायोग्यमनुजाय गुरुं ततः ।

प्रतिज्ञामकरोद्राजा व्रतमेतदनुत्तमम् ॥६८

आजीवांतं धरिष्यामि यन्नेनेति महामतिः ।

अथानुजाप्य राजानं वसिष्ठो भगवान् षिः ॥६९

सन्निवत्यनुगच्छ तं प्रजगाम निजाश्रमम् ॥१००

फिर इन तीनों भ्रुवनों में कुछ भी ऐसी अभीत्प्रियत वस्तु नहीं है जिसका प्राप्त करना दुर्लभ हो अर्थात् सभी कुछ प्राप्त हो जाया करता है । यह हैहय राजा का व्रत मैंने संक्षेप से कह दिया है और अब जमदग्नि के पुत्र परशुराम मुनि के विषय में मैं आपको क्या बतलाऊँ ? । ६२। जैमिनि ने कहा—इसके अनन्तर राजा सगर अपने हाथों की अञ्जलि को जोड़कर मुनिवर से कहने लगा था । ६३। उसने कहा—हे भगवन् ! मैं इस व्रत के करने की इच्छा करता हूँ सो आप भली भाँति उपदेश के द्वारा इसके करने में मुझे अपनी अनुज्ञा प्रदान कीजिए । ६४। हे विप्रर्षें ! इस कर्म से मैं कृतार्थ हो गया हूँ—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है । जब राजा के द्वारा इस रीति से प्रार्थना की गयी तो उस मुनि ने भी ऐसा ही होगा—यह कह दिया था । फिर उस मुनि ने शास्त्रोक्त मार्ग के द्वारा उस राजा को दीक्षा दी थी और श्रेष्ठ राजा सगर वसिष्ठ मुनि के द्वारा दीक्षित होगया था । ६५-६६। फिर समस्त द्रव्यों को मंगा कर विधि-विधान के साथ उस शुभ व्रतका समाचरण किया था । राजा ने उसी विधि से भगवान् जगन्नाथ का पूजन किया । ६७। यथा योग्य उसको सङ्क्ष समाप्त करके फिर अपने गुरुदेव की आज्ञा प्राप्त की थी और उस राजा ने उस सर्वोत्तम व्रत के करने की हड़ प्रतिज्ञा की थी । ६८। महामति उस नृप ने यही प्रतिज्ञा की थी कि मैं इस व्रत को जन्म तक मेरा जीवन रहेगा तब तक धारण करूँगा और यत्न पूर्वक करता रहूँगा । फिर भगवान् वसिष्ठ ऋषि ने उस राजा को अपनी आज्ञा प्रदान कर दी थी । ६९। फिर अपने पीछे अनुगमन करने वाले राजा को वापिस लौटाकर वसिष्ठ जो अपने आश्रम को छले गये थे । १००।

सगर-प्रतिज्ञा पालन

जैमिनिरुचाच—

गते तस्मिन्मुनिवरे सगरो राजसत्तमः ।

अयोध्यायामधिवसन्पालयामास मेदिनीम् ॥१

सर्वसंपदगणोपेतः सर्वधर्मार्थितत्त्ववित् ।

वयसैव स बालोऽभूत्कर्मणा वृद्धसंमतः ॥२

तथापि न दिवा भुक्ते शेते वा निशि संस्मरन् ।

सुदीर्घं निःश्वसित्युष्णमुद्गिनहृदयोऽनिशम् ॥३

श्रुत्वा राजा स्वराज्यं निजगुरुमवजित्यारिभिः

संगृहीतं मात्रा साद्वं प्रयातं वनमतिगहनं स्वर्गतं

तं च तस्मिन् ।

शोकाविष्टः सरोषं सकलरिपुकुलोच्छित्तये

सत्प्रतिज्ञश्वके सद्यः प्रतिज्ञां परिभवमनलं

सोदुमिष्वाकुवंश्यः ॥४

स कदाचिन्महीपालः कृतकीतुकमंगलः ।

रिषुं जेतुं मनश्वके दिशश्च सकलाः क्रमात् ॥५

अनेकरथसाहस्रगंजाश्वरथसैनिकैः ।

सर्वतः संवृतो राजा निश्चक्राम पुरोत्तामात् ॥६

शत्रून्हंतुं प्रतस्थे निजबलनिवहेनोत्पतदिभस्तुरंगे-

नसित्वोमिजालाकुलजलनिधिनिभेनाथ षाढंगिकेन ।

मत्तैमतिंगयूथैः सकूलगिरिकुलेनैव भूमंडलेन ।

श्वेतच्छत्रध्वजौषंरपि शशिसुकराभातखेनैव साद्वंम् ॥७

जैमिनि मुनि ने कहा—उस मुनिवर के चले जाने पर श्रेष्ठ नृप सगर ने अयोध्या पुरी में अधिवास करते हुए इस मेदिनी का परिपालन किया था । १। वह सभी प्रकार की सम्पदाओं से संयुत था और सम्पूर्ण धर्म के तात्त्विक अर्थ का ज्ञाता था । वह उत्तमा से ही उत्तमा था । जिसके

कर्म ऐसे थे कि वह वृद्धों के सम्मत थे । २। वह दिन में भोजन नहीं करता है अथवा रात्रि में शयन भी नहीं किया करता है और स्मरण करता हुआ बहुत लम्बी श्वास लिया करता है जो कि बहुत गर्म होती हैं तथा उसका हृदय रात दिन अत्यन्त ही उद्धिङ्ग रहता है । ३। जब राजा ने यह श्रवण किया था कि अपने गुरु को अवजित करके अपना सम्पूर्ण राज्य शत्रुओं ने ले लिया है । वह पिता पराजित होकर मेरी माता के सहित बहुत ही गहन बन में प्रयाण कर गये हैं और वहाँ पर ही स्वर्गलोक के प्रवासी हो गये हैं । उस पर इक्ष्वाकु के वंश में समुत्पन्न उसने महान् क्रोध से युक्त होकर तथा शोक से संविष्ट होते हुए सत्प्रतिज्ञा वाले ने समस्त शत्रुओं के कुल का उच्छेदन करने के लिये तुरन्त ही प्रतिज्ञा की थी और इस परिभव की थी और इस परिभव की अविन को कठिनाई से सहन किया था । ४। फिर किसी समय में उस महीपाल ने मङ्गल कीतुक करके सब दिग्गजों में क्रम में जाकर शत्रु के जीतने का मन में विचार किया था । ५। वह राजा अनेकों सहस्र रथ-अञ्चल-गज और सैनिकों से सब ओर से संबृत होकर अपने उत्तम-पुर से निकल दिया था । ६। उस राजाने शत्रुओं को जीतने के लिए प्रस्थान कर दिया था । जिस समय में वहाँ से चला है उस समय में उसकी सेनाओं का ऐसा विशाल समुदाय उसके साथ में था कि उसमें जो अश्व थे वे ऊपर की ओर उछालें मार रहे थे कि ऐसा प्रतीत होता था मानों अत्युच्च तरङ्गों से समाकुल जलनिधि ही होवे । वह सेना छओं अङ्गों से युक्त थी । मत्त हाथियों के समूह ऐसे थे मानों भूमण्डल कुलगिरियों के समुदाय से संयुक्त है । उसकी सेनामें श्वेत छवजाओं के समूह आकाश में फहरा रहे थे जो ऐसा आभास हो रहा था कि पूर्ण अन्तरिक्ष चन्द्रमा की किरणों से श्वेत चमक रहा हो । ऐसी महान् विशाल सेना को साथ लेकर ही वह चला था । ७।

तस्याग्रे सरसैन्ययूथचरणप्रक्षुण्णशैलोच्चयः

क्षोदापूरितनिम्नभागमवनीपालस्य संयास्यतः ।

प्रत्येकं चतुरंगसैन्यनिकरप्रक्षोदसंभूतरेणुप्रावृतिरुत्स्थली
समभवद्भूमिस्तु तत्रानिशम् ॥८॥

निधनन्वप्ताननेकान्द्विपतुरुगरथव्यहसंभिन्नवीरान्सद्यः

शोभां दधानोऽसुरनिकरचमूनिधनतश्चन्द्रमौलिः ।

दूरादेवाभिषंसन्नरिनगरनिरोधेषु कर्माभिषंगे

तेषां श्रीघ्रापयानक्षणमभिदिशति प्राणधीर्यं विघत्ते ॥९॥

विजिगीषुदिशो राजा राजो यस्याभियास्यति ॥१०

विषयं स नृपस्तस्य सद्यः प्रणतिमेष्यति ।

विजित्य नृपतीन्सवन्कृत्वा च स्वपदानुगाम ॥११

संकेतगामिनः कांशिचत्कृत्वा राज्ये न्यवत्त्तत ।

एवं स विसरन्दिक्षु दक्षिणाभिमुखो नृपः ॥१२

स्मरन्पूर्वकृतं वैरं हैहयानभ्यवत्तन ।

ततस्तस्य नृपः साढ़॑ समग्ररथकुर्जरैः ॥१३

बभूव हैहयैर्वर्णैः संग्रामो रोमहर्षणः ।

राजां यत्र सहस्राणि स वलानि महाहवे ॥१४

जिस समय में वह राजा सम्प्रयाण कर रहा था उस समय में उसकी जो सबसे आगे चलने वाली सेना के समुदायों के चरणों से शैलों के उच्च-भाग क्षुण्ण हुए थे उनके ओढ़ों से निम्न भाग जो भूमि में थे वे भर गये थे और चतुरज्ज्ञी सेना के हाथी-अश्व-रथ और पैदल सैनिकों के हर एक के एक के चरणों से जो भूमि खुदकर प्रक्षोद रेणु उठी थी उससे ऊंचे स्थल ढक गये थे । इस तरह से वह भूमि निरन्तर ऐसी ही होगयी थी । १। अनेक दृष्ट अर्थात् दर्प से परिपूर्ण हाथी-घोड़े और रथों के व्यूह से संभिन्न वीरों को निहनन करने वाले उसकी शोभा तुरन्त ही असुरों के समूहों की सेनाओं का हनन करने वाले भगवान् शिव की शोभा को धारण वह नृप कर रहा था । उनके कमों के अभिषज्ज्ञ होने पर दूर से ही शत्रुओं के नगर के विरोधों में ऐसा अभिशंसन करते हुए कि यहाँ से शीघ्र ही कहीं से भाग जाने के क्षणों का निर्देश करता है और प्राणियों के धैर्य का किया करता है । २। वह राजा जिसको सब दिशाओं में विजय प्राप्त करने की इच्छा है जिस राजा के ऊपर अभिमान करेगा । ३। वह राजा उसके देश को प्रणति को प्राप्त करा देगा । उस नृप ने सभी नृपतियों को जीतकर उनको अपने चरणों का अनुचर बना लिया था । ४। उसे महान् वीर राजा ने कुछ नृपों की सङ्क्षेत पर गमन करने वाले बनाकर उनको अपने ही राज्य पर भेज दिया था अर्थात् अपनी आज्ञा के इशारे वाले होना उन्होंने स्वीकार कर लिया था तो उनको राज्य पर बिठा दिया था । इस रीति से विसरण सब दिशाओं में करके फिर राजा दक्षिण की ओर अभिमुख हुआ था । ५। उस राजा ने अपने साथ पूर्व में की हुई शत्रुता स्मरण करके हैहय राजाओं के ऊपर

आक्रमण किया था । फिर उन सबके साथ जो पूर्णतया रथों और हाथियों से संयुक्त थे इसका महान् युद्ध हुआ था । १३। उन हैह्य वीरों के साथ उसका बड़ा ही रोमाञ्चकारी भीषण युद्ध हुआ था जिस युद्ध में सहस्रों राजा थे और बड़ी विशाल सेनाएँ भी थीं । १४।

निजघान महाबाहुः संकुद्धः कोसलेश्वरः ।

जित्वा हैह्यभूपालान्भवत्वा दग्धवा च तत्पुरीम् ॥१५

निःशेषशून्यामकरोद्द्वैरातकरणो नृपः ।

समग्रबलसंमर्द्दप्रमृष्टाशेषभूतलः ॥१६

हैह्यानामशेषं तु चक्रे राज्यं रजः समम् ।

राज्य पुरीं चापहाय भ्रष्टैश्वर्या हृतत्विषः ॥१७

राजानो हृतभूयिष्ठा व्यद्रवंतं समंततः ।

अभिद्रुत्य नृपांस्तांस्तु द्रवमाणान्महीपतिः ॥१८

जघान सानुगान्मत्तः प्रजाः क्रुद्ध इवांतकः ।

ततस्तान्प्रति सक्रोधः संगरः समरेऽरिहा ॥१९

मुमोचास्त्रं महारौद्रं भार्गवं रिपुभीषणम् ।

तेनोत्सृष्टिरीद्रत्रिभुवनभयदप्रस्फुरदभागैवास्त्र-

ज्वालादंदद्यमानावशतनुततयस्ते नृपाः सद्य एव ।

वाय्वस्त्रावुत्तधूमोद्गमपटलतमोमुष्टदृष्टिप्रसारा

भ्रेमुर्भूपृष्ठलोठद्वहुलतमरजो गूढमात्रा मुहूर्तम् ॥२०

आग्नेयास्त्रप्रतापप्रतिहृतगतयोऽहृष्टमार्गाः समंता-

दभूपाला नष्टसंघाः परवशतनवो व्याकुलीभूतचित्ताः ।

भीताः संत्युक्तवस्त्रायुधकवचविभूषादिका मुक्तकेशा

विस्पष्टोन्मत्तमावान्भृशतरमनुकुर्वत्यग्रतः

णात्रवाणाम् ॥२१

उन सभी का निहनन महान् बाहुओं वाले कोसलेश्वर ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर कर दिया था । फिर हैह्य नृपों को जीतकर उनकी पुरी को तोड़-कर दग्ध कर दिया था । १५। वैर के अन्त करने वाले नृप ने उनकी पुरी

को पूर्णतया शून्य कर दिया था । वह राजा ऐसा बलवान् था कि उसने अपनी समग्र सेना के द्वारा मर्दन करके सबको भीड़ डाला था और सम्पूर्ण भूतल को प्रमृष्ट कर दिया था । १६। उस राजा ने हैहयों के समस्त राज्य को धूल में मिला दिया था । जब वही कुछ भी शेष न रहा तो वे सब अपने राज्य और पुरोंको छोड़कर क्षीण कान्ति वाले और विनष्ट ऐश्वर्यं वाले हो गये थे । १७। जो राजा मरने से बच गये थे, ऐसे बहुत से वहाँ चारों ओर भाग गये थे । उस महीपति ने जो भी वहाँ से भाग रहे थे उनको वेग से आगे बढ़कर निप्रहीत कर लिया था । १८। इस मदोन्मत्त बलवान् नृप ने क्रुद्ध अन्तक जैसे प्रजाओं को मार दिया करता है वैसे ही इसने भी सबका संहार कर दिया था । समर में शत्रुओं के हनन करने वाले राजा सगर ने उन पर बड़ा भारी क्रोध किया था । १९। फिर सगर नृप ने महान् रौद्र-शत्रुओं के लिये बहुत ही भीषण भार्गव अस्त्र को उन पर छोड़ा था । इस महास्त्र का बड़ा भारी सब पर प्रभाव पड़ा था । उसके छोड़े जाने पर जो कि अत्यन्त ही रौद्र था, वह तीनों भ्रुवनों को भय देने वाला था । ऐसा प्रस्फुरण करता हुआ जो भार्गव अस्त्र था उसकी ज्वालाओं से दग्ध होते हुए और अवश शरीरों वाले वे समस्त नृपगण हो गये थे । इसके उपरान्त जो वायु-अस्त्र का प्रयोग करने से चारों ओर धूम के समूह ने उनको ऐसा घेर लिया था कि वहाँ पर धोर अन्धकार से उन को छाप्ति भी मुष्ट हो गयी थी अथवा देखने की शक्ति समाप्त हो गयी थी और मुहूर्त भर तक तो वे सब अधिक अन्धकार और रज से ढके हुए होकर भूमि के पृष्ठ पर लोटते हुए चक्कर काट रहे थे । २०। शत्रुओं के सेनिकों की दशा उस समय में ऐसी हो गयी थी कि छोड़े हुए आग्नेयास्त्र के प्रताप से जिनकी गति प्रतिहत हो गयी है अथवा वे चलने में असमर्थ हो गये थे क्योंकि उनको उस समय में मार्ग दिखलाई नहीं दे रहा था—चारों ओर उन नृपों के सङ्ग नष्ट हो गये थे और उनके शरीर परवण हो गये थे तथा उनके चित्त व्याकुल हो गये थे । वे ऐसे भीत हो गये थे कि उन्होंने अपने वस्त्र-आयुध-कवच और विभूषा आदि सबका त्याग कर दिया था—उनके मस्तकों के केश खुले हुए थे—वे सब अत्यन्त उन्मत्तों के ही भावों का उस समय में अनुकरण कर रहे थे । २१।

विजित्य हैह्यान्सर्वान्समरे सगरो बली ।

नानावादित्रघोषाहृतपटहरवाकर्णनध्वस्तधीर्या:

सद्यः संत्यक्तराज्यस्वबलपुरपुरंध्रीसमूहा विमूढाः ।

कांबोजास्तालजंघाः शकयवनकिरातादयः

साकमेते भ्रो मुर्भूर्यस्त्रभीत्या दिशि दिशि रिपवो
यस्य पूर्वपिराधाः ॥२३

भीतास्तस्त नरेश्वरस्य रिपवः केचित्प्रता

पानलज्वालामुष्टुकशो विसृज्य वसति राज्यं च पुत्रादिभिः ।

द्विद्सैन्यैः समभिद्रुता वनमुवं संप्राप्य तत्रापि तेऽ-
स्तमित्यं समुपागता गिरिगुहासुप्तोत्थितेन द्विषः ॥२४

तालजंघान्निहत्याजौ राजा सबलवाहनान् ।

क्रमेण नाशयामास तद्राज्यमरिकर्षणः ॥२५

ततो यवनकांबोजकिरादीननेकशः ।

निजघान रुषाविष्टः पल्हवान्पारदानपि ॥२६

हन्यमानास्तु ते सर्वे राजानस्तेन संयुगे ।

द्रुद्रुवुः संघशो भीता हयशिष्ठाः समंततः ॥२७

युष्माभिर्यस्य राज्यं बहुभिरपहृतं तस्य

पुत्रोऽध्युनाऽहं हन्तुं वः सप्रतिज्ञं प्रसभमुपगतो

वैरनिर्यातनेषी ।

इत्युच्चैः श्रावयाणो युधि निजचरितं वैरिभिनगिवीर्यः

अत्रैविष्टवंसितेजाः सगरनरपतिः स्मारयामास भूपः ॥२८

समर में उस समय में सगर नूप ने सब हैय्य नूपों को पराजित करके वह बलवान् नूप संक्षुध्वसागर के समान आकार बाला हो गया था और फिर उसने काम्बोजों पर आक्रमण किया था । २१। जिन्होंने सगर नूप का पहिले अपराध किया था वे सब इस समय में बहुत ही बुरी दणा में पड़कर दिशाओं में मारे-मारे इसके जात्रुगण भूमि पर छमण कर रहे थे अर्थात् प्राणों की रक्षा के लिए भटकते हुए घूम रहे थे । जब युद्ध में अनेक तरह के वादों के घोष से और पटहों की छवनि के श्रवण करने से उन सब

की धीरज छूट गया था—उन्होंने तुरन्त ही अपना राज्य-सेना और स्त्रियों का भी त्याग कर दिया और किकत्तव्य विमृढ़ हो गये थे। इनके अतिरिक्त तालजड़—काम्बोज—शक—पवन और किरात आदि सब साथ ही साथ अस्त्रों के भय से भ्रमण करे रहे थे । २३। उस सगर नरेश्वर के भय से डरे हुए शत्रुगण उस समय में ऐसे हो गये कि कुछ की तो प्रताप की अग्नि की ज्वाला से हष्टि ही नष्ट हो गयी थी और वे सब अपना राज्य-वस्ति का त्यागकर के पुत्रादि के साथ शत्रु की सेनाओं से खदेढ़े हुए जड़म में पहुँच गये थे वहाँ पर भी उनके नेत्रों में स्तिमता छाया हुआ था जैसे कि गिरियों की गुफाओं में सोकर उठने पर होता है। तात्पर्य यह है कि वन में भी उनको कुछ सूझ नहीं रहा था । २४। शत्रुओं से कर्षण करने वाले उस राजा ने रण में तालजड़ों को निहत करके और उनके सैनिक तथा वाहनों का विनाश करके उसने क्रम से उनके राज्य का छ्वास कर दिया था । २५। इसके अनन्तर पवन—काम्बोज और किरात आदि तथा वल्हव एवं पारद प्रभृति को सब को क्रोध में समाविष्ट होकर राजा सगर ने मार गिराया था । २६। उस महायुद्ध में मारे जाते हुए वे सब राजा लोग उस प्रतापी राजाके द्वारा प्रताड़ित होकर मरने से जो भी कुछ बच गये थे भयभीत होते हुए समुदाय के समुदाय चारों ओर भाग गये थे । २७। वे सब परस्पर में यह कहते हुए और बहुत ही ऊँचे स्वर से चिल्लाते हुए भाग रहे थे कि आप सब ने जिसके राज्य को वर वश छीन लिया था उसी का पुत्र यह है जो इस समय के अपने बैर को निकालने की इच्छा वाला होकर जबरदस्ती से यहाँ उपगत हुआ है—हाथियों के समान बीर्यवाले सगर नृप ने जिसका तेज ही विघ्वस-कारी है उस युद्ध क्षेत्र में बैरियों के द्वारा अपना चरित सुनाता हुआ उन्हें याद करा रहा था । २८।

तं दृष्ट्वा राजवर्यं सकलरिपुकुलप्रक्षयोपात्तदोक्षं
भीताः स्त्रीदालपूर्वं शरणमभिययुः स्वासुसंरक्षणाय ।

इक्ष्वाकूणां वसिष्ठं कुलगुरुमभितः सप्त राजा-

कुलेषु प्रख्याताः संप्रसूता नृपवररिपवः

पारदाः पल्हवाद्याः ॥ २६ ॥

वसिष्ठमाश्रमोपांते वसंतमृषिभिर्वृतम् ।

उपगम्याब्रुवन्सर्वे कृतां जलिपुटा त्रुपाः ॥ ३० ॥

शरणं भव नो ब्रह्मनात्तिनामभयेषिणाम् ।

सगरास्त्राभिननिर्दधशरीराणां मुमूर्षताम् ॥३१

स हत्यस्मानशेषेण वैरांतकरणोन्मुखः ।

तस्माद्भयाद्वि निष्क्रान्ता वयं जीवितक्रान्तिणः ॥३२

विभिन्नराज्यभोगद्विस्वदारापत्यबांधवाः ।

केवलं प्राणरक्षार्थं त्वां त्वयं शरणं गतः ॥३३

न ह्यन्योऽस्ति पुमांल्लोके सौहृदेन बलेन वा ।

यस्तं निवर्त्तयित्वास्मान्पालयेन्महतो भयात् ॥३४

त्वं किलार्कान्त्वयभूवां राजां कुलगुरुवृतः ।

तद्वशपूर्वजैभूपैस्त्वत्प्रभावश्च ताटशः ॥३५

समस्त शत्रुओं के कुलों का पूर्णतया भय करने को दीक्षा प्रहृण करने वाले उस राजा को देखकर डरे हुए सब शत्रुगण स्त्री और बच्चों को आगे करके अपने प्राणों की रक्षा के लिए सगर नृप की शरणागति में आ गये । इक्षवाकु के वंशजों के कुलगुरु वसिष्ठजी के चारों ओर वे सात राजाओं के कुलों में परम प्रसिद्ध समुत्पन्न हुए पारद और बल्हव आदि सगर के शत्रु राजा उपस्थित हुए थे । २१। वसिष्ठजी के समीप में ही ऋषियों से घिरे हुए निवास कर रहे थे । वहाँ पर उन सबने उपगत होकर हाथ जोड़कर उनसे कहा था । ३०। हे ब्रह्मन् आप ही हमारे रक्षा करने वाले होंवे । हम बहुत ही आत्म हैं और अभय दान के इच्छुक हैं । हम सब राजा सगर के अस्त्र को अग्नि से निर्दध शरोर वाले हैं और मर रहे हैं । ३१। वह राजा सगर तो अपने वैर का अन्त करने के लिए उन्मुख हो रहा है और हम सबको ही मार रहा है । उसी के भय से हम निकलकर भागे हुए हैं और अपने जीवन की रक्षा के चाहने वाले हैं । ३२। हमारा सबका राज्य-भोग-समृद्धि-स्त्री-सन्तति और बान्धव सभी कुछ विभिन्न हो गया है । अब तो हम केवल अपने प्राणों की रक्षा के लिए आपको शरणागति में आये हैं । ३३। इस लोक में आपके सिवाय अन्य कोई भी पुरुष ऐसा नहीं है जो सौहार्द से तथा बल-विक्रम से उसको हटाकर इस महान भय से हमारी रक्षा कर सके । ३४। आप तो निश्चित रूप से सूर्य वंश के भूपों के कुलगुरु माने गये हैं और उस राजा के वंश में जो भी पूर्वज हुए थे उन सबने आपको कुलगुरु बनाया है और इन सब पर भी आपका प्रभाव उसी प्रकार का है । ३५।

तेनायं सगरोऽप्यद्य गुरुगौरवयंत्रितः ।

भवन्निदेशं नात्येति वेलामिव महोदधिः ॥३६

त्वं नः सुहृत्पिता माता लोकानां च गुरुविभो ।

तस्मादस्मान्महाभाग परित्रातुं त्वमहंसि ॥३७

जैमिनिरुचाच—

इति तेषां वचः श्रुत्वा वसिष्ठो भगवान् विः ।

शनैर्विलोकयामास शरणं समुपागतान् ॥३८

वृद्धस्त्रीबालभूयिष्ठान्हतशेषान्नपान्वयान् ।

हृष्ट्वा त्वतप्यद्भगवान्सर्वभूतानुकंपकः ॥३९

चिरं निरूप्य मनसा तान्विलोक्य च सादरम् ।

उज्ज्रीवयञ्छनैर्वाचा मा भैष्टेति महामतिः ॥४०

अथावोचन्महाभागः कृपया परयान्वितः ।

समये स्थापयामास राजस्ताञ्जीवितार्थिनः ॥४१

भूपव्याकोपदग्धं नृपकुलविहिताशेषधर्मदिपेतं

कृत्वा तेषां वसिष्ठः समयमवनिपालप्रतिज्ञानिवृत्त्ये ।

गत्वा तं राजवर्यं स्वयमथ शनकैः सांत्वयित्वा यथावत् ।

सप्राणानामरीणामपगमनविधावभ्यनुज्ञां यथाचे ॥४२

इस कारण से आज भी यह राजा सगर अपने कुलगुरु आपके गौरव थे यन्त्रित हैं । यह कभी भी आपके आदेश का उलंघन अपनी मर्यादा को समुद्र की भाँति नहीं करता है । ३६। हे विभो ! हमारे तो इस समय में आप लोगों के गुरु हैं । इसलिए हे महाभाग ! आप हीं इससे हमारी रक्षा करने के योग्य होते हैं । ३७। जैमिनि ने कहा—ऋषिवर भगवान् वसिष्ठजी ने उनके इस वचन का श्रवण करके शरणागति में समागत उनको धीरे से अवलौकित किया था । ३८। उनसे सभी वृद्ध-स्त्री-और बालक बहुत से थे और भरने से बचे-बचाये नृप वंशज थे । ऐसो दुर्वस्था में स्थित उन सबको देखा था तो वसिष्ठजी का हृदय करुणाद्र हो गया था क्योंकि यह तो सभी प्राणिमात्र पर अनुकूलगता दिलेवाले वहां पुराणे विषय का विषय है।

किया था और मन में बड़ा आदर करके उनका विलोकन किया था । फिर उन महती मति वाले वसिष्ठजी ने उनको उज्जीवित करते हुए धीरे से कहा था—आप लोग डरो मत ॥४०। इसके पश्चात् उन महाभाग ने अत्यधिक कृपा से समन्वित होकर कहा था तथा जीवन के चाहने वाले उन समस्त नृपों को समय में (सन्धि करने में) स्थापित कर दिया था ॥४१। वसिष्ठजी ने राजा सगर की प्रतिज्ञा की निवृत्ति के लिए ऐसा समय किया था कि वह राजा सगर की क्रोधाभिन्न से दग्ध नृप समुदाय नृपों के कुल में किए हुए सम्पूर्ण धर्म से अपेत हो गया था । फिर वे स्वयं ही धीरे से उस नृप श्रेष्ठ सगर के समीप में प्राप्त हुए थे और उनको यथा-रीति सान्त्वना दी थी तथा जीवित शत्रुओं के अपगमन के विधान में उनकी आज्ञा की याचना की थी । अर्थात् वे सभी जीवित ही चले जायें—ऐसी याचना की थी ॥४२।

सकोधोऽपि महोपतिर्गुरुर्खचः संभावयस्तानरीन्
 धर्मस्य स्वकुलोचितस्य च तथा वेषस्य सत्यागतः ।
 श्रौतस्मार्तविभिन्नकर्मनिरतान्विप्रैश्च दूरोज्ज्ञतान्
 सासून्केवलमत्यजन्मृतसमानेकैकशः पार्थिवान् ॥४३
 अर्द्धमुण्डाङ्गकांश्चके पलहवान् श्मश्रुधारिणः ।
 यवनान्विगतश्मश्रून्कांवोजांश्चबुकान्वितान् ॥४४
 एवं विरूपानन्यांश्च स चकार नृपान्वयान् ।
 वेदोक्तकर्मनिमुक्तान्विप्रैश्च परिवर्जितान् ॥४५
 कृत्वा संस्थाप्य समये जीवतस्तान्व्यसर्जयत् ।
 ततस्ते रिपवस्तस्य त्यक्तस्वाचारलक्षणाः ॥४६
 ब्रात्यतां समनुप्राप्ताः सर्ववर्णविनिदिताः ।
 धिकृताः सततं सर्वे नृशंसा निरपत्रपाः ॥४७
 क्रूराश्च संघशो लोके बभूवुम्लेष्टजातयः ॥४८
 मुक्तास्तेनाथ राजा शक्यवनकिरातादयः सद्य एव
 त्यक्तस्वाचारवेषा गिरिगहनगुहाद्याश्रयाः सद्यभूवुः ।
 एता अद्यापि सद्गुः सततमवस्था जातयोऽसत्प्रवृत्त्या
 वर्त्तन्ते दुष्टचेष्टा जगति नरपतेः पालयन्तः प्रतिज्ञाम् ॥४९

यद्यपि राजा सगर को बहुत अधिक क्रोध हो रहा था तो भी उस नृप ने अपने गुरुदेव की आज्ञा का समादर करते हुए ऐसा स्वीकार कर लिया था वे सब शत्रु तथो जीवित एक-एक छोड़े जा सकते हैं जब कि वे अपने कुल के उचित धर्म और वेष का त्याग कर देवें और श्रोत तथा स्मात् कर्मों से भिन्न कर्मों में निरत रहें और विप्रों के द्वारा दूर ही से त्यागे हुए रहें मृत के ही समान रहे तो रह सकते हैं । ४३। उसमें जो शक जाति वाले थे उनके शिर तो आधे मुण्डित कर दिये गये थे और जो पलहव थे उनको श्मशुद्धारी करा दिया था । जो गवन थे उनकी श्मशुओं को मुँडा दिया गया था और काम्बोज को बुकान्वित करा दिया था । ४४। इस तरह से उस सगर ने अन्यों को विरूप विप्रों के द्वारा परिवर्तित बना दिये गये थे । ४५। ऐसा ही सबको बनाकर समय में (सन्धि में) अर्थात् इस प्रकार की शर्त में बांधकर संस्थापित करते हुए जीवित ही छोड़ दिया था अर्थात् ऐसे ढंग से ही उनके रहने पर उनका हनन नहीं किया था । इसके अनन्तर उसके वे समस्त शत्रुगण आचार के लक्षणों के परित्याग कर देने वाले हो गए थे । ४६। इस तरह से रहने पर वे सभी द्रात्य हो गये थे और सभी वर्णों के द्वारा विनिन्दित बन गये थे अर्थात् किसी भी वर्ण वाले नहीं रहे थे । सर्वदा उनको धिक्कार दिया जा जाता था—वे बहुत क्रूर हो गये थे तथा एकदम निलंज भी बन गये थे । ४७। वे सभी अत्यन्त क्रूरों के समुदायों वाले हो गये थे जो कि लोक में म्लेच्छ जाति वाले हुए थे । ४८। उस समय में जो भी राजा सगर के द्वारा जीवित ही छोड़ दिये गये थे । वे शक्यवन और किरात आदि थे वे तुरन्त ही आचार और वेष के त्याग देने वाले हो गये और फिर वे पर्वतों की गुफाओं में आश्रय लेने वाले हो गये थे । ये जातियाँ अब भी सत्पुरुषों के द्वारा बहुत ही नीच मानी जाती है क्योंकि बहुत ही बुरी प्रवृत्ति होती है और उनकी चेष्टाएँ भी दुष्ट हैं । ये जगत् में राजा सगर की प्रतिज्ञा का पालन किया करते हैं । ४९।

—X—

सगर को दिग्बिजय

जंमिनिरुवाच—

अथानुज्ञाय सगरो वसिष्ठमृषिसंतमप् ।

बलेन महता युक्तो विदर्भनिभ्यवत्तंत ॥१॥

ततो विदर्भराट् तस्मै स्वसुतां प्रीतिपर्वकम् ।

केशिन्याख्यामनुपमामनुरूपां न्यवेदयत् ॥२

स तस्या राजशार्दूलो विधिवद्विनसाक्षिकम् ।

शुभे मुहूर्ते केशिन्याः पाणि जग्राह भूमिपः ॥३

स्थित्वा दिनानि कृतिचिद्गृहे तस्यातिसत्कृतः ।

विदर्भराजा संमन्त्र्य ततो गंतुं प्रचक्रमे ॥४

अनुजातस्ततस्तेन पारिवह्नेष्वच सत्कृतः ।

निष्कम्य तत्पुराद्राजा शूरसेनानुपेयिवात् ॥५

संभावितस्ततश्चैव यादवैमर्तुसौदरेः ।

धनोघैस्तपितस्तैष्च मधुराया विनिर्ययो ॥६

एवं स सगरो राजा विजित्य वसुधामिमाम् ।

करेष्वच स नृपान्सवाँश्चक्रे संकेतगातपि ॥७

जैमिनी मुनि ने कहा—इसके अनन्तर नृप सगर ने परम श्रेष्ठ ऋषि वसिष्ठजी की अनुजा प्राप्त करके महान सेना में समन्वित होकर विदर्भ देश पर आक्रमण किया था । १। फिर विदर्भ के नृप ने अपनी केजिनी नाम वाली पुत्री को बहुत ही प्रीति के साथ उनकी सेवा में समर्पित कर दी थी । यह कन्या रूप लावण्यादि सब गुणों में अनुपम थी और उस नृप के सर्वथा अनुरूप थी । २। उस राजशार्दूल नृप सगर ने अरिन को साक्षी करके परम शुभ मुहूर्त में उस का पाणिग्रहण किया था । ३। वहाँ पर सुराल ही में कुछ दिन तक स्थित रहकर उस विदर्भेश्वर के द्वारा बड़ा सत्कार प्राप्त किया था फिर विदर्भीषि अनुमति पाकर वहाँ से गमन करने का उपक्रम किया था । ४। उस राजा ने भी आज्ञा देवी थी तथा पारिवहों के अर्थात् दायों के द्वारा उसका अच्छा सत्कार किया था । फिर वहाँ पुर से राजा ने निकल कर शूरसेन देशों में पहुँचा था । ५। वहाँ पर भी माता के सादरों के द्वारा यादवों से असका सम्मान किया गया था और बहुत-सा धन देकर उन्होंने भी उसको पूर्ण सन्तुष्ट किया था । इसके पश्चात् वहाँ से निकल कर चल दिया था । ६। मधुरा से चलकर इस रीति से उस राजा सगर ने इस सम्पूर्ण वसुधा पर विजय प्राप्त की थी और समस्त नृपों पर कर लगाकर उनको अपने ही सकेतों पर चलने वाले अनुगामी बना दिया था । ७।

ततोऽनुमान्य नृपतीन्निजराज्याय सानुगान् ।
 अनुजने नरपतिः समस्ताननुयायिनः ॥६
 ततो बलेन महता स्कंधावारसमन्वितः ।
 शनैरपीड्यन्देशान्त्स्वराज्यमुपजिमवान् ॥७
 संभाव्यमानश्च मूहुरूपदाभिरनेकणः ।
 नानाजनपदैस्तूर्णमयोध्यां समुपागमत् ॥८
 तदागमनमाज्ञाय नागरः सकलो जनः ।
 नगरी तामलंचक्रे महोत्सवसमुत्सुकः ॥९
 ततः स नगरी सर्वा कृतकौतुकमंगला ।
 सित्कसंमृष्टभूभागा पूर्णकुम्भशतावृता ॥१०
 समुचित्तध्वजशता पताकाभिरलंकृता ।
 सर्वंत्रागरुद्धूपाद्धा विच्चित्रकुसुमोज्ज्वला ॥११
 सद्रतनतोरणोत्तुंगगोपुराद्टालभूषिता ।
 प्रसूनलाजवर्षेश्च स्वलंकृतमहापथा ॥१२

इसके उपरान्त उन नृपों को अपने राज्य पर स्थित बने रहने का आदेश देकर तथा सम्मान प्रदान करके कि वे अपने अनुगों के साथ अनुयायी रहें राजा ने प्रस्थान किया था इसके पश्चात् स्कंधावार से संयुत उसने महान् सेन्य के साथ सब देशों को पीड़ित करते हुए अन्त में अपनी ही राजधानी में आकर प्राप्त हो गया था ॥६-११। उस राजा का अनेक प्रकार की भेटों से बड़ा सत्कार अनेक जनपदों के द्वारा किया गया था और फिर वह शीघ्र ही अयोध्या में आ गया था ॥१०। वहाँ पर समस्त नागरिक जनों को जब ज्ञात हुआ कि राजा अयोध्या में आ गये हैं तो सबने बड़ा महान् उत्सव किया था और बड़ी उत्सुकता के साथ उस अयोध्यापुरी को सजाया था ॥११। फिर वह समग्र नगरी माझलिक कौतुकों से समलंकृत हुई थी। उसकी समस्त भूमि पर स्वच्छता हुई थी और छिड़काव किया गया था तथा जहाँ-तहाँ सैकड़ों ही पूर्ण कुम्भ स्थापित किये गये थे ॥१२। उसमें सैकड़ों ध्वजाएँ फहराई गयी थीं तथा अनेक पताकाओं से वह विभूषित बनायी गयी थी। वहाँ पर सभी अग्रणी धर्मों की महक हो ऊर्ध्वी थी एवं

नाना भाँति के सुन्दर सुमनों की मालाओं से वह समुज्ज्वल बनायी गयी थी। १३। अच्छे-अच्छे रत्नों के द्वारा निर्मित तोरण बन्दनबारें लगायी गयी थी तथा ऊँचे-ऊँचे गोपुर और अट्टालिकाओं से वह परम भूषित थी जो महापथ थे उनमें पुष्पों और लाजाओं की वर्षी की थी जिससे वे बहुत ही सुन्दर एवं सुशोभित हो रहे थे। १४।

महोत्सवसमायुक्ता प्रतिगेहमभूत्पुरी ।

संपूजिताशेषवास्तुदेवतागृहमालिनी ॥ १५

दिक्चक्रजयिनो राजः संदर्शनमुदान्वितैः ।

पौरजानपदंहृष्टैः सर्वतः समलंकृता ॥ १६

ततः प्रकृतयः सर्वे तर्थातः पुरवासिनः ।

वारकांताकदंबैश्च नगरीभिश्च संवृताः ॥ १७

अभ्याययुस्ततः सर्वे समेत्य पुरवासिनः ।

स तैः समेत्य नृपतिर्लब्धार्शीर्वादिसत्क्रियः ॥ १८

बधिरीकृतदिक्चक्रो जयजाग्रेन भूरिणा ।

नानावादित्रसंघोषमिश्रेण मधुरेण च ॥ १९

सत्कृत्य तान्यथायोगं सहितस्तैमुंदान्वितैः ।

आनन्दयन्प्रजाः सर्वाः प्रविवेश पुरोत्तमम् ॥ २०

वेदघोषः सुमधुरैब्रह्मण्ठरभिनन्दितः ।

संस्तुयमानः सुभृशं सूतमागधवंदिभिः ॥ २१

उस समय से अयोध्या पुरी में महान् उल्लास छाया हुआ था तथा प्रत्येक घर में महोत्सव मनाया जा रहा था। वहाँ पर सभी गृहों की पंक्तियों में भलीभाँति समस्त वास्तु देवताओं का पूजन किया गया था। १५। दिग्विजय करने वाले चक्रवर्ती राजा सगर के दर्शन करने के आनन्द से युक्त नागरिक और देशवासी बहुत ही प्रसन्न थे और इनसे सभी और वह पुरी समलंकृत थी। १६। फिर वहाँ पर सभी प्रकृतियाँ तथा अन्तःपुर के निवासी परम प्रसन्न थे और वार कान्ताओं के समुदायों से और नगरियों से संवृत थी। अर्थात् बहुत सी नक्तिका वेश्या से भी एकत्रित थीं। १७। इसके पश्चात् सभी पुरवासी इकट्ठे होकर वहाँ पर आ गये थे और सबने एकत्रित होकर उस राजा को सत्कृत किया था तथा आशीर्वादों से मुदित किया था। १८।

उस समय में जयजयकार की समुच्च ध्वनि से सभी दिशाएँ वधिर हो गयी थीं अथवा जयघोष में कहीं पर भी कुछ भी सुनायी नहीं दे रहा था । वहाँ पर बहुत से प्रकार के वाच वज रहे थे उनकी भी ध्वनि बहुत मधुर उसी जयघोष में मिल रही थी । १६। राजा ने भी उन समस्त स्वागत करने वालों का योग्यता के अनुसार सत्कार किया था जिसमें उनको भी परमाधिक हृषि हो रहा था । इन प्रसन्न पुर वासियों के ही साथ में समस्त प्रजाजनों को आनन्दित करते हुए राजा ने पुर में प्रवेश किया था । २०। उस समय में ब्राह्मणों ने भी परम मधुर वेद के मन्त्रों की ध्वनि से राजा का अभिनवदन किया था । तथा सूत-मागव और वन्दियों के द्वारा उस शुभ समागमन के समय में राजा का संस्तवन किया जा रहा था । २१।

जयगब्दैश्च परितो नानाजनपदेरिते ।

करतालरचोन्मश्रवीणावेणुतलस्वने ॥ २२

गायदिभग्यिकजनेनृत्यदिभग्णिकाजने ।

अन्वीयमानो विलसच्छ्वेतच्छत्रविराजितः ॥ २३

विकीर्यमाणः परितः सल्लाजकुसुमोत्करे ।

पुरीमयोध्यामविगतस्वपुरोमिव वासवः ॥ २४

हष्टिपूतेन गंधेन ब्राह्मणानां च वर्त्मना ।

जगाम मध्येनगरं गृहं श्रीमदलकृतम् ॥ २५

अवरुहा ततो यानादभायम्भिं सहितो मुदा ।

प्रविवेश गृहं मातुर्हृष्टपुष्टजनायुतम् ॥ २६

पर्यंकस्थामुपागम्य मातरं विनयान्वितः ।

तत्पादी संसृशन्मूर्धना प्रणाममकरोत्तदा ॥ २७

साभिनंद्य तमार्णीभिर्हर्षगदगदयो गिरा ।

ससंध्रामं समुत्थाय पर्यष्वजत चात्मजम् ॥ २८

उस नृगति के दोनों ओर अनेक जनपदों के द्वारा कहे गये जयजयकार का घोष हो रहा था और करताल—की ध्वनि से मिले हुए वीणा और वेणु के मधुर स्वर मिकल रहे थे । २२। राजा के पीछे-पीछे गान करने वाले गान कर रहे थे और गणिकाएँ नृत्य करती हुई चली जा रही थीं । राजा के

ऊपर इवेत लूक लगा हुआ था ॥२३। राजा के ऊपर लाजा और पुष्पों की वर्षी की जारही थी । इस रोति से राजा ने अपनी पुरी जियोध्य में भगेन्द्र देव के जिस तरह से इन्द्रपरी में गमन कर रहे हों उसी भाँति श्रिवेश किया था ॥२४। हिटपूत् गन्ध से युक्त ब्राह्मणों के मार्ग से नगर के बैद्य में जिओंभी सम्पन्न एवं अलकृत गृह था उसमें राजा ने गमन किया था ॥२५। फिर अपनी दोतों भार्याओं के साथ प्रसन्नता से यात्रा से नीचे उत्तरकिर अपनी माताश्री के घर में राजा ने प्रवेश किया था जहाँ पर सहस्रों परम तृष्णु जन किया मान थे ॥२६। उनकी माताजी एक पैर्यङ्क पर विराजमान थी उनके समीप में परम विनय से युक्त होकर उस समय में उनके चरणों का स्पर्श करके माथा टेककर प्रणाम किया था ॥२७। माताजी ने भी पशुभाषीवदि देकर उसका अभिनन्दन किया था और फिर अत्यधिक हृषि से गदगद बाणी के द्वारा बड़े ही सम्भ्रम के साथ उठकर अपने परम प्रिये पुत्र को छाती से लगाकर परिष्वन किया था ॥२८।

अपकी सहर्ष बहुधाशीभिरुभ्यन ददुभे स्नपे ।
अपकी सन्तान संभाव्य कथयावत्कु स्थित्वा चिरादिव ॥२६
अनेजातस्तया राजा निश्चकाम लक्ष्यात् । अपकी सार कि माक
ततः सानुचरा राजा इवेतव्यजनवीजितः ॥२७। इनका ऐसी ही राजा

सुरराज इव श्रीमान्सभां समगमच्छनैः ।
संप्रविश्य सभां दिव्यामनेकनृपसेविताम् ॥२१।

नत्वा गुहजनं सर्वमाणीभिश्चाभिनंदितः ।

सिहासने शभे दिव्ये निषसाद नरेश्वरः ॥२२।

संसेव्यमानश्च नृपेननिजिनपदेश्वरः ।

नानाविधा कथा कवेन्स तत्र नृपसत्तमः ॥२३। इनकी

संप्रीयमोणि सुतेन मुव्रासि सह वैधुमितीक तैरता हुए

प्रतिजां पालयित्वैर्जितिदिष्टमहलीं नृपः मध्यभास्तु

अन्वतिष्ठत्वा न्यायमर्थं व्रय मुद्दारधीः ॥२४। नीमहांसाम

स्वप्रभावजिता शेषवैरिविष्टमाङ्गलाधिषः ॥२५।

इसके अनन्त हजारों पुरमा सुन्दर दो पुत्र वधुए साथ में ही समृपस्थित हुई थीं उनको भी बहुत आशीर्वदों से माताजी ने अभिनन्दित किया था ।

फिर राजा ने अपनी सब सुनकर कुछ काल पर्यंत वहाँ पर स्थिति की थी । ३१। फिर माताजी से अनुशा प्राप्त करके राजा उनके घर से बाहिर निकल आये थे और इसके अनन्तर अनुचरों के सहित वहाँ से गमन कर रहे थे और श्वेत व्यजनों के द्वारा सेवणगण उनकी हवा करते जा रहे थे । ३०। देवराज इन्द्र के ही समान श्री समरन राजा धीरे-धीरे अपनी सभा के मण्डप में समागत हो गये थे । राजा ने अनेक अधीन नृपों से संसेवित परम दिव्य सभा में प्रवेश किया था । ३१। सर्व प्रथम वहाँ पर जो गुरुजन विराजमान थे उनको प्रणाम किया था और उनके द्वारा दिये हुए आशीर्वाद प्राप्त कर अभिनन्दित हुए थे । फिर नरेश्वर ने परम शुभ एवं अतीव दिव्य सिंहासन पर अपनी संस्थिति की थी । ३२। वहाँ पर अनेक जनपदों के स्वामी नृपों के द्वारा वह भली-भाँति सेव्यमान हुए थे और अनेक प्रकार की उस शेष नृप ने वहाँ पर कथालाप किया था । ३३। इस तरह से बन्धुओं के साफ सुतरा परम प्रसन्नता प्राप्त करते हुए वहाँ पर निवास किया था । इस रीति से नृप ने समस्त दिशाओं को जीतकर अपनी की हुई प्रतिज्ञा का पालन किया था । ३४। न्याय के अनुसार उस उदार बुद्धि वाले नृप ने तीनों धर्म-अर्थ और काम को प्राप्त किया था । उस राजा का प्रभाव ही ऐसा था कि जिसके द्वारा विविध एवं समस्त दिशाओं के मण्डल के स्वामियों को पराजित कर दिया था । ३५।

एकातपत्रां पृथिवीमन्वशासद् द्रुषो यथा ।

स्वर्यतिस्य पितुः पूर्वं परिभावमर्षितः ॥ ३६ ॥

स यां प्रतिज्ञामारुद्धस्तां सम्यक्परिपूर्यं च ।

सप्तद्वीपाब्धिनगरग्रामायतनमालिनीम् ॥ ३७ ॥

जित्वा शत्रूनशेषेण पालयामास मेदिनीम् ।

एवं गच्छति काले च वसिष्ठो भगवानृषिः ॥ ३८ ॥

अध्याजगाम तं भूयो द्रष्टुकामो जनेश्वरम् ।

तमायांतमति क्ष्य मुनिवर्यं ससंभ्रमः ॥ ३९ ॥

प्रत्युजजगामार्धंहस्तः सहितस्तर्नपैर्नृपः ।

अर्ध्यंपाद्यादिभिः सम्यक्पूजयित्वा महामतिः ॥ ४० ॥

आशीभिर्बद्धयित्वा तं वसिष्ठः सगरे तदा ॥४१

आस्यतामिति होवाच सह सर्वेन्नरेश्वरैः ।

उपाविशत्ततो राजा कांचने परमासने ॥४२

स्वर्ग में गये हुए पिताजी के पूर्व में परिभव से यह सगर अत्यन्त क्रुद्ध हुए थे और फिर दिविजय करके एक छत्र समग्र वसुधा पर इसने अनुशासन किया था । ३६। उसने जिस प्रतिज्ञा को किया था उसको अचली तरह परिपूर्ण करके ही छोड़ा था । समस्त शत्रुओं को जीतकर सातों द्वीप और सागर से युक्त नगर-ग्राम और आयतनों की माला मेदिनों का पालन किया था । इस रीति से जब कुछ काल व्यतीत हो गया था तब भगवान् वसिष्ठ ऋषि ने वहाँ पर पदार्पण किया था । ३७-३८। उस राजा को पुनः देखने की कामना वाले ऋषि वहाँ पर समागम हुए थे । जैसे ही वहाँ पर पदार्पण करते हुए ऋषि का अवलोकन राजा ने किया था वैसे ही सम्भ्रम के साथ राजा ने अपने हाथों में अर्ध-सामग्री ग्रहण कर तुरन्त ही उनका शुभागमन किया था उस समय में उसके साथ अन्य सभी नृप विद्यमान थे । महामति नृप ने अधि-पाद आदि समग्र उपचारों से भली भौति उन ऋषि-वर का अचंन किया था । ३९-४०। गुरुदेव की भक्ति से युक्त होकर उनको प्रणाम किया था । उस समय में वसिष्ठ जी ने भी आशीर्वचनों से सगर का वर्धन किया था । ४१। मुनि ने राजा को आज्ञा दी थी कि आठ बैठ जाइए तब फिर सब नृपों के सहित राजा सुवर्ण निमित आसन पर उपविष्ट हो गये थे । ४२।

मुनिना समनुज्ञातः सभार्य सह राजभिः ।

आगतस्तु नृपश्चेष्टुमुपासीनमुपह्वरे ॥४३

उवाच श्रुण्वता राजा गनैमृद्धिकारं वचः ।

वसिष्ठ उवाच-

कुशलं ननु ते राजन्बाह्येष्वाभ्यन्तरेषु च ॥४४

मंत्रिष्वमात्यवगेषु राज्ये वा सकलेऽधुना ।

दिष्ठाच्च विजिताः सर्वे समग्रबलवाहनाः ॥४५

अयत्नेनैव युद्धेषु भवता रिपवो हि यत् ।

दिष्ठाच्चरुहप्रतिज्ञेन मम मानयता वचः ॥४६

अरयस्त्यक्तधमणिस्त्वया जीवविसज्जिता ।

तान्विं जिस्येत् । राज्ञैतुः पुनर्दिग्भवं येच्छयोः ॥४७३॥
 गतस्सवाहनवलस्त्वमित्यशृणवं वच्च ॥४८॥ तीसीत्वा भव
 जितदिङ्मंडलं भूयः श्रत्वा त्वां नगरस्थितम् ॥४९॥
 प्रीत्याहमागतो द्रष्टुमिहानीं राजसत्तम् ॥५०॥
 जैमिति रुदाचना ॥ हठ कम किंक प्राचामैही रुदो एव इ प्रह इ इ
 लित्वा वसिष्ठनैव मृत्कस्तु सगरस्तालं धजित् ॥५१॥ १४३ तीसीत्वा भव
 प्रहित विजय मुनिवर ने अपनी आज्ञा प्रदान की थी तो नृप मायथिं तथा
 अश्रीम नृपों के सहित मुनि के ही समीप में नीले की ओर उफासीत हो गये
 के आश्रा कहा पर समहत नृपों का समुदाय श्रवण कर रही था तभी मुनिवर
 ने अश्रीरेसि कोयल कान्त वज्रन राजा से कहे थे ॥५२॥ कसिष्ठजी ने कहा—हे
 राजमहाबाहिर्भीतर राजसवंत्र कुणल—कोम तो है न परि ॥५३॥ समहत मन्त्रियों
 में स्थामात्याविगों में अश्रीवास समग्र राज्य में इस समय कुणल तो है न कै यह
 तो परमाहुर्णी की बात है कि आपसे युद्धों में सेना और वाहनों के सहित सब
 अपनी खात्रियों को बिका ही किसी प्रयत्न के बहुत ही साधारण कर्मों द्वारा
 पराजित कर दिया है मिथि घड़ी प्रसन्नता इसकी है कि अपनी प्रतिज्ञा पर
 समाझूहोंके हुए ही आपने मेरे क्रमित वचनों को मान लिया है ॥५४-५६॥
 अपने अत्रियों यह विजय प्राप्त करके उनको समस्त शमों कान्त्याग कर देने
 वाले बद्धकर जीवित ही रहने वाले छोड़ दिये हैं ॥ इस रीति से उन
 सत्रों को जीत कर आप अन्यों को पराजित करते ही के बास्ते आप दिग्भवजय
 करने की इच्छा से सेना और वाहनों से संयुत होकर गये हैं—यह भी विचर्म
 मैंने सुन लिया है । फिर मैंने यह शब्द किया है कि आप दिग्भवजय करके
 वापिस लौट आये हैं और अपने ही नगर में हस्त लूपय समवस्थित हैं ॥५७-
 ५८॥ हे परम श्रेष्ठ राजन् ! इस वर्त्तमान काल में प्रीति से ही आपसे मिलने
 के ही लिये यहाँ पर समागत हुआ है । जैमिनि मुनि ने कहा—महामुनीन्द्र
 वसिष्ठ जी ने जब इस रीति से कहा था तो तालजङ्घ पर विजय पाने वाले
 राजा सगर ने उनसे निवेदन किया था ॥५९॥

कृतांजलिपुटो भूत्वा प्रत्यवाच महामनिष् ॥
 सगर उवाच—
 कुणलं ननु सर्वत्र महीर्जीश्च संशयः ॥५१॥ तीसीत्वा भव
 कल्याणाभिमुखा सर्वे देवताश्च मुनेऽनिश्चिरज्ञात्वा इहै
 भवान्द्यायति कल्योगं भेदस्थ यस्य संततम् ॥५२॥

तस्य मे चोपसर्गमश्च संभीवंतिकथं मुनेम ॥५२॥
भवताऽनुगृहीतोऽमि ॥ कृतिर्थश्चाधुना कृते ॥५३॥
यन्मां द्रष्टुभिहायातः स्वयमेव भवान्गरो ।
यन्मह्यमाह भगवान्विष्वक्षविजयादिकम् ॥५३॥

तत्थाऽनुष्ठितं किञ्चु सर्वं भवदनुग्रहात् ।
भवतप्रसादतः सर्वं मन्ये प्राप्तं महीक्षिताम् ॥५४॥
अन्यथा मम का शक्ति शत्रुन्हतुं तथा विघाने ।
अनल्पी कुरुते फल्यं यन्मे व्यबसितं भवान्त् ॥५५॥
फलमल्पेमपि प्रीत्ये स्यादेगस्याधिरोपितुःशीघ्री ।
जैमिनिरुवाच—

एवं सभावितः सम्यवसगरेण महामुनिः ॥५६॥

दोनों ह्यपां को जोड़कर महामुनि को सगर ने उत्तर दिया था ।
सगर ने कहा—हे महेष ! मेरा सर्वत्र कुशल है—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है ॥५०॥ जिस मुझ सेवक का निरन्तर ही आप जैसे महामुख कल्याण की कामन्य का ध्यान उखाड़ करते हैं उस सेवक मेरे प्रति सभी देवमण कल्याणभिमुख भवति श्रेय करने वाले सदा ही रहा करते हैं ॥५१॥ हे मुने ! ऐसे मुख के उपद्रव कैसे हो सकते हैं । मैं तो आपके परमाधिक अनुग्रह का मुज्जन हो गया हूँ और अब अपने समस्त कायों में सफल भी बना दिया गया हूँ ॥५२॥ हे गुरुदेव ! आप जो स्वयं ही मुझको अपना दर्शन देने के लिए यहाँ परमधारे हैं और जो आपने विपक्षियों पर विजय आदि प्राप्त करने की बात मुझसे कही है ॥५३॥ यह सभी कुछ वैसा ही किया गया है किंचु यह सब आपकी ही अनुकरण से हुआ है ॥५४॥ नहीं तो ऐसे-ऐसे प्रबल शत्रुओं का हन्त कर पराजित करने की मेरे जैसे की वया शक्ति है । जो भी मेरा व्यबसित है उसको सफल आप जैसे महान् पुरुष ही किया करते हैं ॥५५॥ अगु अविरोपिता का अनल्प भी फल प्रीति के लिए ही होता है ॥ जैमिनी मुनि ने कहा—इस लिंगि से दृश्य सुगर के हारा हूँ महामुनि का समाझ किया गया था ।

अभ्यनुज्ञाय तं भूयः प्रजगाम निजाश्रमम् ।

वसिष्ठे तु गते राजा सगरं प्रीतमानसः ॥५७

अयोध्यायामभिवसन्प्रशंशासाखिलां भुवम् ।

भार्याभ्यां समुपेताभ्यां रूपशीलगुणादिभिः ॥५८

वृभुजे विषयानृभ्यान्यथाकामं यथासुखम् ।

सुमतिकेशिनी चोभे विकसद्वनांबुजे ॥५९

रूपौदायर्यगुणोपेते पीनवृत्तपयोधरे ।

नील कुचितकेशाद्ये सर्वाभिरणभूषिते ॥६०

सर्वलक्षणसपन्ने नवयौवनगोचरे ।

प्रिये सन्निहिते तस्य नित्यं प्रियहिते रते ॥६१

स्वाचारभावचेष्टाभिर्जह्नतुस्तुस्तन्मनोऽनिशम् ।

स चापि भरणोत्कर्षं प्रतीतात्मा महीततिः ॥६२

फिर वह मुनि नूप सगर से आज्ञा ग्रहण करके अपने आश्रम को छले गये थे । वसिष्ठ मुनि के गमन कर जाने पर राजा के मन में परम हृष्ण हुआ था ।५७। वह राजा फिर अयोध्या पुरी अपनी राजधानी में निवास करता था और उसने समस्त भूमण्डल पर प्रशासन किया था । दोनों भार्याओं को भी अपने पास में रखता था जो रूप लावण्य, शील स्वभाव और गुण गण आदि से सुसम्पन्न थीं ।५८। उस राजा सगर ने ग्राम्य विषयों के सुख का पूर्ण अपनी इच्छा के अनुरूप हो उपभोग किया था । सुमति और केशिनी ये दोनों ही विकसित कमल के समान परम सुन्दर मुखों वाली थीं ।५९। सुन्दर स्वरूप के साथ-साथ इन दोनों पत्नियों में विशाल उदारता भी थी । इनके उरोज युग्म परिपृष्ठ वृत्ताकर एवं समुन्नत थे । इनके केशपाश नील वर्ण के कुञ्जित अर्थात् छलेदार परम सुहावने थे । ये सभी आभरणों से विभूषित रहा करती थीं ।६०। नूतन यौवन के उदगम में दिखलाई देने वाली नारियों में जो गुण गण हुआ करते हैं । उन सभी से ये दोनों रानियाँ सुसम्पन्न थीं । ये दोनों बहुत ही प्रिय थीं और सदा राजा के समीप में रहा करती थीं तथा नित्य ही अपने परम प्रिय स्वामी के हित कायं में रति रखने वाली थीं ।६१। इन दोनों के अपने आचरण राजा के प्रति इतने सुन्दर ये वे अपने हाव-भाव और चेष्टाओं के द्वारा निरन्तर ही राजा के मन को अपनी ओर आकृषित रखा करती थीं । वह राजा भी उन दोनों के भरण के उत्कर्ष से प्रस्तुत था ।

रममाणो यथाकामं सह ताष्यां पुरेऽवसद् ।

अन्येषां भुवि राजां तु राजशब्दो न चाप्यभूत् ॥६३

गृणेत चाभवत्स्य सगरस्य महात्मनः ।

अल्पोऽपि धर्मः सततं यथा भवति मानसे ॥६४

राजस्तस्यार्थकामौ तु न तथा विपुलावपि ।

अलुब्धमानसोऽर्थं च भेजे धर्ममणीडयन् ॥६५

तदर्थमेव राजेन्द्र कामं चापीडयस्तयोः ॥६६

वह राजा सगर उन दोनों अपनी परम प्रिय पत्नियों के साथ अपनी इच्छा के अनुसार रमण करता हुआ अपने नगर में निवास किया करता था । इस भूमि में अन्य राजा के लिए राजा—यह शब्द ही नहीं था । राजा का अर्थ होता जो राजित (णोभित) होता है । वह अर्थ इसी में घटित होता है । अन्य अर्थ यह भी है कि यही एक चक्रवर्ती राजा था । ६३। इस राजा में ही ऐसे गुण गण विद्यमान थे कि महान् आत्मा वाले इसके लिए ही राजा शब्द अन्वर्थ होता था । इसके मन ने अल्प भी धर्म निरन्तर रहा करता था । ६४। इस राजा में विशेष अधिक भी अर्थ और काम वैसे नहीं थे जो उसके मन को अधिक समाप्त कर सके । इतना लुब्धक नहीं था कि अर्थ संघर्ष में ही व्यस्त रहे । यह तो धर्म में कुछ भी बाधा न करके ही अर्थ का सेवन किया करता था । इसमें काम वासना भी उतनी ही थी कि हे राजेन्द्र ! जिससे दोनों पत्नियों को सर्वदा आश्यामित करता रहे । ६५-६६।

—X—

॥ सगर का औद्योग्यमें आगमन ॥

जैमिविश्वार्थ—

एवं स राजा विधिवत्पात्रयामास मेदिनीम् ।

सप्तद्वीपवती सम्यक्साधाद्वर्म इवापरः ॥१

त्राह्यणादीस्तथा वर्णन्स्वेस्वे धर्मे पृथक्पृथक् ।

स्थापित्वा यथान्यायं रक्षाव्याहतेद्विषः ॥२

प्रजाश्च सर्ववर्णेषु यथाश्रेष्ठानुवत्तिः ।

वर्णश्चैवानुलोम्येन तद्वदर्थेषु च क्रमात् ॥३

न सति स्थविरं वालं मृत्युरभ्युपगच्छति ।
सर्ववेणषु भूपाले महों तस्मिन्प्रशासति ॥४

स्फीतान्यपेतवाधानि तदा राष्ट्राणि कृत्स्नयः ।
तेष्वसंख्या जनपदाश्चातुर्वर्णं जनावृताः ॥५

ते चासंख्यगृह्यामण्डतोपेता विभागतः । काशमध्याद्याम्

देशाश्चावासभूयिष्ठा नृणां तस्मिन्प्रशासति ॥६

अनाश्रमी द्विजः कर्णिचम्भं वभूव तदा भुविः ॥७

प्रजानां सर्ववेणेषु प्रारंभाः फलदायिनः ॥८

जेमिनि मुनि ने कहा—उस राजा ने सात द्वीपों वाली मेदिनों का विभिन्न के साथ परिपालनी साक्षात् दूसरे मूर्तिमान् धर्म के ही समान किया था ॥१। अब्याहेत हन्दियों वाले उस नृप संगर ने न्यौयानुरूप ब्राह्मण आदि चारों वर्णों की अपने अपने धर्म में पृथक्-पृथक् स्थापित करादिया था ॥२। सब ही वर्णों में जो भी प्रजाजन थे वे उचित रीति से अपने से श्रेष्ठों के अनुबृत्संन करने वाले थे । जो वर्ण अनुलोमंश से हुए थे उनकी थी उसी भाँति कार्यों में क्रम से लगा दिया था ॥३। उचित वर्ण वाले से नीचे वर्ण वाली स्त्री में जो समुत्पन्न होते हैं वे अनुलोम सृष्टि वाले होते हैं । इसके विपरीत क्षत्रिय से ब्राह्मणी आदि में समुत्पन्न विलोम है, जिसका शास्त्र में सर्वआनिवेद्य है ॥४। बृद्ध मातापिता के जीवित रहने पर उस नृप के राज्य में वालक की मृत्यु नहीं हुआ करती थी ॥५। यह बात । उस भूमीपति के शासन करने पर सभी वर्णों में हुआ करती थी ॥६। उस समय में राष्ट्र पूर्णतया बाधा रहित और स्वीकृत्यर्थत्वे विस्तृत किए ॥७। उन राष्ट्रों में अगणित जनपद ये जिनमें चारों वर्णों के मानव रहा करते थे ॥८। उस नृप के प्रशासन करने पर सभी देशों में बहुत अधिक आवास गृह थे तथा विभक्त रूप से संख्या रहित सैकड़ों ही गृह और ग्राम थे ॥९। वह ऐसा समय था कि इस भू मण्डल में कोई भी द्विज ऐसा नहीं था जिसका कोई आधमनि होवे । ब्रह्माचर्य—गाहूस्थ्य-वानप्रस्थ-ओरंगम्भासु ये ज्ञात ही आश्रम थे । सभी वर्णों की प्रजाओं में जो भी आरम्भ होते हैं वे सभी निष्कल न होकर फल देने वाले हुआ करते थे ॥१०।

स्वोचितान्येव कर्मणि प्रारभत च मानवः ।

पुरुषाधर्मोपन्नानि कर्मणि च तदा नृणाम् ॥११

महोत्सवम् सुयुक्ता । पुरग्रामव्रजाकरा ॥
 अन्योन्यप्रियकामाण्च राजभक्तिसमन्विता ॥ ६
 न निदितोऽभिशस्तो वा दरिद्रो व्याधितोऽपि वा ।
 प्रजासु कष्ठिचल्लुब्धो वा कृपणो वाऽपि नप्तवत् ॥ ७
 जनाः परगुणप्रीताः स्वसंपर्काभिकांक्षिणः ।
 गुरुषां प्राप्तिः नित्यं सद्विद्याव्यसनेहिताः ॥ ८
 परापवादभीताण्च स्वेदारंतर्योऽनिश्चम् ।
 निसंघतिखलये सर्वविरुद्धता धर्मतंतपरान् ॥ ९
 आस्तिकाः सर्वेणोऽभवन् । प्रजास्तस्मन्प्रणासति ॥ १०
 एवं सुब्रह्मतनये स्वप्रतापाजितां महीम् ॥ ११
 कृतवश्च महाभाग यथाकालानुवर्तिनः ।
 यानिभूयिष्ठसस्याद्या सदेव सकला मही ॥ १२

सभी मानव उस ज्ञासन में अपने जो भी समुचित कर्म थे उन्हीं का प्रारम्भ किया करते थे । उस काल में मनिवों के सभी कर्म पुरुषार्थ से समुत्पन्न हुआ करते थे । नगर-ग्राम-ब्रज और आकर सब महोत्सवों से समुयुक्त थे । उनमें सभी मानव परस्पर में एक दूसरे के प्रियतंत्रने की कामना वाले थे और सबके मनों में अपने रीजाके प्रति भक्ति की भावना विद्यमान रहा करती थी था । उस समर्थ्य में प्रजाओं में कोई शीमसुख्य ऐसा नहीं दिखाई पड़ता था कि जो नित्यित-अभिशस्त-दरिद्र-व्याधित लुधक अथवा कृपण होते । तात्पर्य यही है कि किसी भी प्रकार से हीतता या खिलता आदि तहीं थी ॥ १० ॥ उस काल में सभी जन ऐसे थे जो दूसरों के गणों को देख या जानकर प्रत्यक्षित हुआ करते थे तथा अपने से सम्पर्क करने की अभिकाङ्क्षा रक्खा करते थे । सभी मानव सद्विद्या के व्यसन से समाहृत और जानदाता गुरुजनों में उनकी नित्य ही प्रणत भावना रहा करता था ॥ ११ ॥ सभी जन दूसरों की बुराई से डरा करते थे—सब लोग निरन्तर अपनों ही स्त्री में रति रखने वाले थे अथवा पर स्त्री गमिता का नाम भी नहीं था ॥ सबको स्वाभाविक रूप से खलौं की संसर से विरक्तता होती है और सभी धर्म में परायण रहा करते थे ॥ १२ ॥ उस धार्मिक नृप के शासन काल में सभी प्रजा सभी और आस्तिक अथवा परम प्रभु के अस्तिरेव को मानने वाले थे अपने प्रताप से अजित मही भर सवाय तनय के शासन में इस प्रकार के सब व्यक्तुएँ हे महाभाग ॥ ठीकलीक समय पर अनुदत्त न

किया करती थीं और सम्पूर्ण भूमि सदा ही शाली और सस्य की बहुलता वाली थी। अथवा धान्य परिपूर्ण था । १३-१४।

बभूव नृपशार्दूले तस्मिन् राज्यानि शासति ॥१५

यस्याष्टादशमंडलाधिपतिभिः सेवार्थमभ्यागतैः

प्रख्यातोरुपराक्रमेन् पशतैर्मूर्द्धभिषिक्तैः पृथक् ।

संविष्टं मणिविष्टरेषु नितरामध्यास्यमानाऽमरे:

शक्तस्येव विराजते दिवि सभा रत्नप्रभोदभासिता ॥१६

संकेतादपयांतराभ्युपगमाः सर्वेऽपि सोपायनाः

कृत्वा संन्यनिवेशनानि परितः पुर्याः पृथक् पार्थिवाः ।

द्रष्टुं कांक्षितराजकाः सततया विजापयन्तो मुहु-

द्वास्थैरेव नरेश्वराय सुचिरं वत्स्यन्तमतः पुरे ॥१७

नमन्नरेंद्रमुकुटश्रेणीनामतिघर्षणात् ।

किणीकृतौ विराजते चरणौ तेस्य भूमुजः ॥१८

सेवागतनरेंद्रीघविनिकीर्णः समंततः ।

रत्ने भाँति सभा तस्य गुहा सोमे रवी यथा ॥१९

एवं स राजा धर्मेण भानुवेशशिखामणिः ।

अनन्यशासनामुर्वीमन्वशासदरिदमः ॥२०

इत्थं पालयतः पृथ्वीं सगरस्य महीपतेः ।

न चापपात मृतं पुत्रमुखालोकनजूंभिता ॥२१

जब यह राजशार्दूल इस भूमि पर शाशन कर रहा था उस समय में भूमि धान्योत्पत्ति करके सबको सुखी करता था । १५। उस राजा की सभा रत्नों की प्रभा से उद्भासित स्वर्ग में इन्द्र को सभा के ही समान शोभा दे रही थी जिसमें अठारह मण्डलों की अधिपति राजा की सेवा के लिये समागत हुए विद्यमान थे। इनके अतिरिक्त मूर्द्धभिषिक्त सैकड़ों ही नृप पृथक् विराजमान थे जिनके विशाल पराक्रम प्रख्यात थे—जिस सभा में मणि मण्डित आसनों पर नृपगण ऐसे ही संस्थित थे जैसे देवगण निरन्तर इन्द्र देवकी सभा में समवस्थित रहा करते हैं । १६। वे सभी नृप सङ्केत से ही अन्य विषयों का ज्ञान प्राप्त कर लेने वाले अपने-अपने उपायनों को साथ में लिये हुए थे और उन पार्थिवों ने उस पुरो के चारों ओर अपनी सेनाओं का पृथक् निवेशन कर दिया था। राजा सगर उस समय में अन्तःपुर में थे तो वे नृप गण उपने पुत्रों के सहित राजा के दर्शन करने की इच्छा लाजे थे।

और द्वार पर स्थित द्वारपालों के द्वारा बारम्बार बहुत काल पर्यन्त राजा को विज्ञापन करते हुए स्थित थे । १७। उस राजा संगर के चरण युग्म समागत नृपों के मस्तक सुकाने से उनके मुङ्कटों से रत्नों की अतिवृष्टि होने से किणीकृत हो गये थे अर्थात् रत्नों के कण उन पर बिखरे हुए थे जिससे एक अद्भुत शोभा हो रही थी । १८। नृप की सेवा करने के लिए जो नृपों का समुदाय वहाँ पर समागत हुआ था उनके द्वारा सभी ओर बिखर गये रत्नों से उस संगर की सभा ऐसी शोभित हो रही थी जैसे चन्द्र और सूर्य के प्रकाश में गुहा विभात हुआ करती है । १९। इस रीति से अरियों का दमन करने वाला सूर्य वंश का शिरोमणि वह नृप धर्म से इस भूमि का जो किसी भी अन्य के शासन में न होकर इसी नृप के प्रशासन में थी शासन किया करता था । २०। इस प्रकार से पृथ्वी के पालन करने वाले राजा संगर की उत्कंठा अपने एक पुत्र के मुख का अवलोकन करने छो हुई थी क्यों कि उसके कोई भी पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ था । २१।

विना तां दुःखितोऽत्यर्थं चितयामास नैकधा ।

अहो कष्टपुत्रोऽहमस्मिन्वशे ध्रुवं तु यत् ॥२२॥

प्रयांति नन्मस्माकं पितरः पिंडविष्ळवम् ।

निरयादपि सत्पुत्रे संजाते पितरः किल ॥२३॥

प्रोत्या प्रयांति तद्गेहं जातकर्मक्रियोत्सुकाः ।

महता सुकृतेनापि संप्राप्तस्य दिवं किल ॥२४॥

अपुत्रस्यामराः स्वर्गे द्वारं नोद्घाटयति हि ।

पिता तु लोकमुभयोः स्वर्लोकं तत्पितामहाः ॥२५॥

जेष्यन्ति किल सत्पुत्रे जाते वंशद्वयेऽपि च ।

अनपत्यतयाऽहं तु पुत्रिणां या भवेदगतिः ॥२६॥

न तां प्राप्स्यामि वै नूनं सुदुर्लभतरा हि सा ।

पदादेद्रात्किलाभिन्नमृद्धं राज्यमखंडितम् ॥२७॥

मम यत्तदपुण्यस्य याति निष्फलतामिह ।

इदं मत्पूर्वं जैरेव सिंहासनमधिष्ठितम् ॥२८॥

पुत्रोत्पत्ति के बिना वह अस्थधिक दुःखित रहा करता था और अनेक प्रकार से उसने चिन्तन किया था । अहो ! बड़ा ही कष्ट है इस वंश में मैं बिना पुत्र वाला हूँ । यह परम ध्रुव है कि मैं बड़ा भाग्यहीन हूँ । २२। निश्चय

ही हमारे पितृगण पिण्डेदान के विष्ववैकर्णी प्राप्त होते ही पदि सत्पुत्र जन्म ग्रहण कर लेता है तो फिर वे नरक से भी निकल आया करते हैं। वे प्रीति से जातकम में सभुत्सुक होकर उसके घर में प्रयाण किया करते हैं। यदि कोई महान् पुण्य उन्होंने किया हो तो उसके प्रभाव से वे स्वर्ग को प्राप्त होते हैं। २३-२४। किन्तु जिसके पुत्र नहीं होता है वह सुकृत के प्रभाव से स्वर्ग के द्वारा तक ही पहुँच पाता है और फिर पुत्रहीन के लिए देवगण स्वर्ग का द्वार नहीं खोला करते हैं और अन्दर प्रवेश नहीं कर पाता है। पिता की दोनों लोकों में और उसके पिता मह स्वर्गलोक को दोनों वंशों में सत्पुत्र के समृद्धपन्न हीन पर ही जय प्राप्त करेगे। मैं तो सन्तान हीन होने से पुत्र विलोकी की जो गति होती है उसको मैं निश्चय ही प्राप्त नहीं करूँगा क्योंकि पुत्रहीन के लिए वह गति अतीव दुर्लभ है। हम्द के पद से अभिन्न यह अखण्ड और समृद्ध राज्य भी व्यर्थ ही है। २५-२७। पुण्यहीन मेरा यह सब कुछ यहाँ पर निष्फलता को ही प्राप्त हो रहा है। यह राज्यासने जिसपर मेरे पूर्वज पुरुष विराजमान हुए थे, सब व्यर्थ ही है। २८। अबी

अपुत्रत्वेन राज्यं च प्राधीनत्वमेष्यति ॥ २८ ॥ १५४

तस्मादौवर्ध्ममहं भर्त्वाति मुनिपुत्रवर्षम् भर्त्वक्तीप्राप्त

प्रसादयिष्ये पुत्रार्थभायश्चांसहितोऽधुनम् भैश्चक्षने

गत्वा तस्मै स्वपुत्रत्वं विनिवेद्य महात्मने ॥ २९ ॥ १५५ ॥

स यद्वद्यति तत्सर्वं करिष्ये नात्र संशय ॥ ३० ॥ १५६ ॥

इति सञ्जित्य सनसा सगरो राजसत्तम ॥ ३१ ॥ १५७ ॥

इत्येष कृत्यविद्वाजन्तुमौर्वित्यम् प्रति ॥ ३२ ॥ १५८ ॥

स मन्त्रप्रवरे राज्यं प्रतिष्ठाप्य ततो वनम् ॥ ३३ ॥ १५९ ॥

प्रययो रथमारुद्य भायश्चांसहितो मूदा ॥ ३४ ॥ १६० ॥

जगाम रथघोषण मध्यनादातिशक्तिभिः ॥ ३५ ॥ १६१ ॥

स्तव्येक्षणीलक्ष्यमाणा मार्गिषांते शिखिष्टिभिः ॥ ३६ ॥ १६२ ॥

प्रियाश्चांदश्चयनाजन्सारगोस्तिमितेक्षणान् ॥ ३७ ॥ १६३ ॥

अणमूर्धव्युत्खान्सद्यो पलायनपैरान्पुनः ॥ ३८ ॥ १६४ ॥

वृक्षान्पुष्पफलोपेतान्विलोक्य मुदितोऽभवत् ॥ ३९ ॥ १६५ ॥

जब मेरे कोई पुत्र ही नहीं है तो इस सिंहासन पर भविष्य में कौन बैठेगा। बड़े दुःख का विषय है यह भी आगे किसी दूसरे की ही अधीनता में चला जायेगा। इसलिए मैं अब और्व मुनि के समीप में जाकर उससे ही

यह प्रार्थना करूँ । २६। इस समय में दोनों अपनी पत्तियों के सहित वहाँ पहुँच कर उन महामृति को प्रसन्न करूँगा । वे महान् आत्मा वाले महापुरुष हैं वहाँ जाकर अपने पुत्र दीनता के विषय में उनसे विशेष निवेदन करता ही उन्नित है । ३०। वे इसके लिए जो भी कुछ उपाय बतलायेंगे वह सभी में करूँगा इसमें तनिक भी संशय नहीं है । न पथर्थ सगर ने ऐसा विचार अपने मन में किया था । हे राजन् ! इसलिए कृत्यों के ज्ञाता उस न प सगर ने और महामृति की गन्तियि में गमन करने का निश्चय कर लिया था । उसने जो परम शेष मन्त्री था उसकी राज्य के प्रणासन का भार सौंपकर फिर वन में चल दिया था । ३१-३२। बड़ो प्रसन्नता से अपनी दोनों पत्तियों को साथ में लेकर रथ पर समारूढ़ हो गया था और वहाँ से चल दिया था । जिस समय में उसका रथ चला है उसका ऐसा महान् घोष हुआ था कि मयूरों को मेघों की गजना की जंका हो गयी थी । ३३। मार्ग के समीप में मयूरों ने एकटक होकर उसको देखा था । राजा भी उन स्त्रिमित तेत्रों वाले मयूरों को ओर संकेत करके अपनी पत्तियों को उनकी इस तरह से दृष्टि करते को दिखाता रहा था । ३४। उन वन्य मयूरों ने एक क्षण तक वो झगर की ओर अपने मुख किये थे और फिर वे वहाँ से पलायन करते में तत्पर हो गये थे । राजा भा उम वन में विविध भाँति के पुष्पों से और फलों से लड़े हुए वृक्षों को अवलोकित करके अत्यन्त प्रसन्न हुआ था । ३५। स्वदुकृतिः स्वादुकृतिः शादुलभूमिकः ।

सुस्तिग्रहपल्लवच्छायरभितः सभृतं नगः ॥३६॥

चताग्रपल्लवास्वदुस्तिभूकं द्विक्या रक्तैः ।

श्रीवाभिरामज्ञनकैस्त्वयुष्टं सवंतो दिग्मुकु ॥३७॥

सर्वं तु कुसुमोपेतं श्रगद्विमरमं डितम् ।

प्रसूनस्तवकान्त्रिवर्णयीत्रेलितद्वमस् ॥३८॥

कपियूथसमाकांतवनस्पतिशताव्रतम् ।

उन्मत्तिशिखिसारं गव्यज्ञतपक्षिगणा निवितम् ॥३९॥

गायद्विद्याधरवधुमीतिकासुमत्तोहरम् ।

मंचरत्कृत्त्वरीद्वद्विराजद्वहमहवद्मस् ॥४०॥

हंससारसचक्राहवकारपङ्गवशुक्राचिभिर्मन्त्रम्

सुस्वरं रात्रुतोषांतः उत्तरोभिः प्ररिवारितम् ॥४१॥

सरः स्वम्बुजकट्टलरकुमुदोत्पलराशिषु ।

शनैः परिवहन्मंदमारुतापूर्णदिङ् मुखम् ॥४२

बहु अरण्य वृक्षों से चिरा हुआ था जिनमें अनेक अम्लान पूष्प थे—
स्वादिष्ट फल थे और हरी-हरी धास वाली भूमि थी तथा बहुत धनी सुस्तिग्नि
पत्रों की छाया से सब वृक्ष संयुत थे । ३६। वहाँ पर सभी ओर कानों को
श्रवण करने में परम प्रिय लगाने वाली आम्र वृक्षों के कोमल पत्रों के खाने
से स्तिरध कण्ठों वाली कोमलों की मधुर इवनि थी इससे वह बन संपुष्ट हो
रहा था । ३७। उसमें सभी ऋतुओं के कुसुम खिल रहे थे जिन पर भ्रमर
गुञ्जार करते हुए झूल रहे थे । बहुत सी लताएँ द्रुमों से लिपटी हुई थीं
जो अपने ही प्रमूरों के गुच्छों के भार से नीचे की ओर झुक रही थीं । ३८।
वह महारण्य ऐसा ही सुषमा सम्पन्न था कि वहाँ के वृक्षों पर सैकड़ों वानरों
के झुण्ड बैठे हुए थे और उस बन में उन्मत्त शिखी- सारङ्ग भ्रमण कर रहे
थे तथा पक्षियों का कल कूजन चहूँ ओर हो रहा था । ३९। उस बन में विद्या-
धरों की वद्यूटियाँ गीत गा रही थीं जिससे वह बन मन का हरण करने
वाला हो रहा था । उस परम गहन बन में किन्नर-किन्नरियों के जोड़े
सञ्चरण करते हुए जोभित हो रहे थे । ४०। उस बन में बहुत से सरोवर थे
जिनसे चारों ओर बन चिरा हुआ था जिनका उपान्त मुख्वरों वाले हंस-
सारस-चक्रवाक-कारण्डव और शुक आदि से समावृत हो रहा था । ४१। उन
सरोवरों में कमल-कलहार-कुमुद और उत्पल बहुत अधिक परिमाण में विक-
सित हो रहे थे । वहाँ पर मन्द मारुत के परिवहन से सभी दिशायें पूरित
हो रही थीं । ४२।

एवंविद्वगुणोपेतमधिगाह्य तपोवनम् ।

गच्छन्थेनाथ नृपः प्रहर्षं परमं ययौ ॥४३

उपशत्तिथयः सोऽथ संप्राप्याश्रममंडलम् ।

भायधियां सहितः श्रीमान्वाहादवरुरोह वै ॥४४

ध्युर्यान्वश्रामयेत्युक्त् वा यंतारमवनीपतिः ।

आससादाश्रमोपातं महर्षेभावितात्मनः ॥४५

स श्रुत्वा मुनिजिज्येभ्यः क्रुतनित्यकियादरम् ।

मुनि इष्टु विनीतात्मा प्रविवेशाश्रमं तदा ॥४६

मुनिमध्ये समासीनमृषिवृद्देः समन्वितम् ।

ननाम शिरसा राजा प्रार्थिता सहिते तुल्म ॥४७

कुलप्रणामं नृपतिमूषिरोद्देशं प्रतापवान् ।

उपविशेति लेखणा वै सह ताभ्यां समादिष्टत् ॥४८

अध्यंपाद्यादिभिः सम्यक्पूजयित्वा महामुनि ।

आतिथ्येन च वन्येन सभार्यं तमतोष्यत् ॥४९

इस प्रकार के गुणों से सुसम्पन्न उस तपोवन का अधिगाहन करके रथ के हारा गमन करते हुए नृप लगर को परमाधिक प्रसन्नता प्राप्त हुई थी । ४३। उपगात्त आश्रम के मण्डल में पहुँचकर फिर श्री सम्पन्न वह राजा अपने यान से नीचे उतर गया था । ४४। उस नृप ने सारथि से कहा था कि इन अश्रवों को विश्राम करने वाले और फिर भावितात्मा महायि के आश्रम के उपान्त में पहुँच गया था । ४५। उस राजा ने यह मुनि के शिष्यों से सुन लिया था कि मुनिवर नित्य किया कर चुके हैं तभी उस विनीत आत्मा वाले नृप ने मुनि के दर्शन करने के लिए उस आश्रम में प्रवेश किया था । ४६। वे महामुनीं अनेक मुनियों के मध्य में विराजमान थे और चारों ओर श्रृंगियों के समुदाय वहाँ पर स्थित थे । उसी समय में राजा ने भाग्यों के साथ बड़ी ही प्रसन्नता से मुनिवर के वरणों में ऊर छुकाकर प्रणाम किया था । ४७। जब राजा ने प्रणाम किया था तो प्रताप वाले और श्रृंगि ने बड़े ही त्रैन से दोनों पत्नियों के सहित उस नृप को 'बैठ जाओ' यह आज्ञा दी थी । ४८। उस महामुनि ने समाप्त उस अविद्या नृप का भारतीय मंस्कृति की मर्यादानुसारता से अध्यं पाद्य आदि से भली-भौति अर्चन करके भाग्यों के सहित उस नृप को वर्ण आतिथ्य सरकार से भली-भौति किया था । ४९।

अथातिथ्योपविद्यांतं प्रणम्यासीनमग्रतः ।

राजानमवृद्धीदीर्घं अनीर्मद्वक्षरं वच ॥५०

कुशलं ननु ते राज्ये वाह्येष्वाभ्यन्तरेषु च ।

अपि धर्मेण सकलाः प्रजास्त्वं परिरक्षसि ॥५१

अपि जेतुं शिवर्गं त्वमुपायैः सम्यगीहसे ।

फलंति हि गुणास्तुभ्यं त्वया सम्यवप्रचोदिताः ॥५२

दिष्ट्या त्वया जिताः सर्वे रिपवो नृपसक्तम् ।

दिष्ट्या च सकलं राज्यं त्वया धर्मेण रक्षयते ॥५३

धर्मं एव स्थितिर्येषां लेषां नास्त्यथ विलवः ।

न तं रक्षति कि धर्मः स्वयं येनाभिरक्षितः ॥५४



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

I creator of
hinduism
server!



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

I creator of
hinduism
server!

पूर्वमेवाहमश्रीषं विजित्य सकलां सहीम् ।

सबलो नगरीं प्राप्तः कृतदारो भवानिति ॥ ५५

राजां तु प्रवर्षे धर्मो यत्प्रजापरिपालनम् ।

भवंति सुखिनो नूनं तेनैवेह परत्र च ॥ ५६

स भवानाज्यभरणं परित्यज्य मदतिकम् ।

भायस्यां सहितो राजन्समायातोऽसि मे वद ॥ ५७

जीमिनिश्वाच्च-एवमुक्तस्तु मुनिना सगरो राजसत्तमः ।

कृतांजलिपृदो भूत्वा प्राह तं मधुर वचः ॥ ५८

इसके अनन्तर आतिथ्य और विश्वानिति हो जाने पर आगे विराज्ञ मान ऋषि को प्रणाम करते के पश्चात् और्व महामुनि ने राजा से धीरे-धीरे मृदु वचन कहे थे । ५०। हे राजन ! आपके राज्य में बाहिर और भीतर सब प्रकार का कुशल-क्षेम तो है न ? और तो धर्मके साथ अपनी मस्तक प्रजा की सुरक्षा तो कर ही रहे हैं न ? ५१। आप तीनों वर्गों को जीतने के लिए उपायों के द्वारा अच्छी तरह से अभिलाषा करते हैं न ? अपके द्वारा भली-भाँति प्रेरित गुणगण आपके लिये कल दिया ही करते हैं न ? ५२। हे न पश्चेष ! यह तो बड़े ही हर्ष की बात है कि आपने समस्त गत्रओं पर विजय प्राप्त कर ली है । यह भी बड़े ही प्रसन्नता है कि आप धर्म पूर्वक सम्पूर्ण राज्य की सुरक्षा किया करते हैं । ५३। जिनकी धर्म में ही स्थिति होती है उनको मद्वालोक में कोई भी विष्टव्र नहीं हुआ करता है । जब वह धर्मजिसके द्वारा अभिरक्षित होता है तो क्या वह स्वयं ही उसकी रक्षा नहीं किया करता है ? अवश्य धर्म उसको सुरक्षित होकर रक्षा करता है । ५४। यह तो पूर्व में ही सुन लिया था कि आपके सम्पूर्ण ब्रह्मवृत्तरा पर विजय प्राप्त करके अपने बजु के स्पृथ सपनीक अपनी नगरी में प्राप्त हो गये हैं । ५५। राजाओं का तो यही परमश्रेष्ठ धर्म होता है कि इनके द्वारा अपनी प्रजा का परिपालन किया जाता है । ऐसे ही न प निश्चय ही इस लोक में और परलोक में भुखी हुआ करते हैं । ५६। तैमें राजा आप हैं फिर राज्य के भरण का त्याग करके इस समय में भैरव सभीप में समागत हए हैं और दोनों पत्नियों को भी साथ में लेकर आये हैं । राजन ! क्या कारण है मुझे आप इस आगमनों को जो भी कारण हो बताइदें । ५७। जीमिनी मुनिने कहा—उस मुनि के द्वारा इस रीढ़ि से राजा से दूछा था तो उस परम श्रेष्ठ नृक सगर ने दोनों करों को जोड़कर उनसे मधुर वचनों में निवेदन किया था । ५८। तैमें ५८। भैरव सभीप की दीड़ बाट